१ प्रकाशन की तिथि सितम्बर १९६८

२- पुरस्कार योजना - १- रवीन्द्र पुरस्कार
२- विशेष पुरस्कार
३- अन्य पुरस्कार

३ — लेखक .. डॉ० रामबाबू शर्मा, एम.ए., पी-एच.डी.
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय,
तिरुपति (आन्ध्र)

हिन्दी-काव्यरूपों का अध्ययन

हिन्दी-काव्यरूपों का अध्ययन

[१५ वीं से १७ वीं शताब्दी तक]

पुरस्कार-हेतु प्रेषित

डॉ० रामबाबू शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक हिन्दी-विभाग
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
तिरुपति [आन्ध्र]

प्रकाशक
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
तिरुपति [आन्ध्र]

मूल्य : ६ रु० ७५ पै०

लेखक : डॉ० रामबाबू शर्मा
प्रकाशक : श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
संस्करण : प्रथम १९६७
मुद्रक : साहित्य प्रेस, आगरा-२

समर्पण

पूजनीया मां के चरणों मे

सादर, सभक्ति ।

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ सन् १९५९ ई० मे आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए "१५वी से १७वीं शताब्दी तक हिन्दी साहित्य के काव्यरूपो का अध्ययन" नाम से स्वीकृत शोध-प्रबन्ध का यत्किंचित परिवर्तित तथा सशोधित रूप है। काव्यरूपो के अध्ययन के लिए अब तक दो प्रकार के प्रयत्न किये गये दिखाई देते है। प्रथम प्रकार का प्रयत्न तो शास्त्रीय ग्रन्थो मे किया गया काव्य का वर्गीकरण तथा उस वर्गीकरण की परिभाषा एव उदाहरण तक ही सीमित है। दूसरे प्रकार के प्रयत्न मे काव्यरूपो का आलोचनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन आता है। प्रस्तुत अध्ययन का सम्बन्ध दूसरे प्रकार मे है।

काव्यरूपो का आलोचनात्मक एव ऐतिहासिक अध्ययन सन् १९५० ई० के बाद आरम्भ हुआ। उन अध्ययनो मे शास्त्रीय आधार पर काव्य का विभाजन न करके एक नये दृष्टिकोण से—शैली, विषय, छन्द, गीत एव सख्या के आधार पर—किया गया। विद्वानो ने अनुभव किया कि किसी भी रूप के निर्धारण मे यही पाँचो तत्व सहायक होते है। ये तत्व अनुभूति एव अभिव्यक्ति दोनो से सम्बन्धित है, जिसमे तादात्म्य स्थापित हो जाने पर काव्यरूप का आविर्भाव होता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" में तत्कालीन साहित्य के स्वरूप के विकास पर विचार करते हुए, चरित काव्य, कथाकाव्य, मंगल पद, साखी, छन्द-परक काव्य, बारहखडी आदि काव्यरूपो पर भी विचार किया है। "मध्य-युगीन हिन्दी-साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन" नामक ग्रन्थ में डा० सत्येन्द्र ने विक्रम की ८वी से १४वी शताब्दी तक के काव्यरूपो पर विचार किया है। उन्होने उपर्युक्त पाँचो तत्वों के आधार पर काव्यरूपो की सज्ञाएँ गिनाई है और उन काव्य-रूपों के प्रमुख तत्व की ओर इगित करते हुए उनका लोकतत्व के साथ समन्वय दिखाया है। 'काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास" नामक ग्रन्थ मे डा० शकुन्तला दुबे ने शास्त्रीय दृष्टि से--बन्ध के आधार पर—काव्यरूपो पर विचार किया है। उन्होने विषय, आकार, शैली एव छन्दो के आधार पर खण्डकाव्य, मुक्तक गीतिकाव्य एवं बन्धाबन्ध काव्य का परिचयात्मक विवरण ही प्रस्तुत किया है। डा० शिवप्रसाद सिह ने "सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य" में सूर से पूर्व ब्रजभाषा काव्य में प्रचलित दस काव्यरूपो पर व्यवस्थित ढग से विचार किया है। लेकिन उस ग्रथ का क्षेत्र सीमित है, साथ ही उसमे काव्यरूपो की परम्परा एव उनमे हुए विकास आदि पर विचार नहीं हुआ

काव्यरूपों पर अब तक हुए कार्य के ऊपर दिये गये विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्तिकाल के काव्यरूपों पर व्यवस्थित ढंग से कार्य नहीं हुआ है। जो कुछ भी हुआ है, वह या तो भिन्न दृष्टिकोण से (ग्रन्थ की दृष्टि से) हुआ है, अथवा अन्य प्रसंग में है और अपूर्ण है। भक्तिकाल की समस्त प्रकाशित एवं अप्रकाशित सामग्री के आधार पर उस काल में प्रचलित समस्त काव्यरूपों का पूर्ण एवं व्यवस्थित अध्ययन ही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का उद्देश्य है।

इस अध्ययन में निम्न-लिखित क्रम का निर्वाह किया गया है—

(१) काव्यरूप के निर्धारण में युग की परिस्थितियों का स्थान प्रमुख होता है। अतः प्रथम अध्ययन में भक्तिकाल की राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है।

(२) द्वितीय अध्याय में इस काल के समस्त काव्यग्रथों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। विवरण प्रस्तुत करने में हिन्दी साहित्य के विविध इतिहासों, खोज रिपोर्टों एवं विभिन्न स्थानों पर संग्रहीत हस्तलिखित प्रतियों का आश्रय लिया गया है। लगभग ३०० हस्तलिखित ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है। उनमें से अनेक ऐसे हैं जिनके सम्बन्ध में प्रथम बार ही प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हुई है। इसी अध्याय के अन्त में कुल कवियों की प्रामाणिकता एवं ग्रन्थों तथा कवियों के रचना-कालों पर विचार किया गया है।

(३) तृतीय अध्याय में प्रामाणिक रचनाओं का विवरण दे कर उनमें प्रयुक्त काव्यरूपों की सूची प्रस्तुत की गई है। इस काल के काव्यरूपों की कुल संख्या २४ है।

(४) चतुर्थ अध्याय काव्यरूपों के ऐतिहासिक अध्ययन से सम्बन्ध रखता है। इसमें प्राचीन काल से प्रचलित काव्यरूपों पर विचार करते समय संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में उनके अन्तर्गत रचे गये ग्रन्थों का विवेचन करके आलोच्यकाल से उसके अन्तर्गत आने वाले समस्त ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। काव्यरूपों को विषय अथवा शैली के आधार पर कोटियों में भी विभक्त किया गया है। नवीन काव्यरूपों के उद्‌भव को स्पष्ट करते हुए उनके अन्तर्गत आने वाले आलोच्यकाल के ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है।

(५) पंचम अध्याय में प्रत्येक काव्यरूप की परिभाषा, व्याख्या, उपयोगिता का मर्म तथा रूप एवं उसमें वर्णित विषय के साथ स्थापित समन्वय पर विचार हुआ है। शास्त्रीय अथवा प्राचीन काव्यरूपों के प्रसंग में उनकी शास्त्रीय अथवा प्राचीन परिभाषा दे कर आलोच्यकाल में उस रूप के अन्तर्गत रची गयी

के आधार पर उस परिभाषा की व्याख्या की गयी है और फिर उसमें हुए विकास के आधार पर उसकी नवीन परिभाषा दी गई है। नवीन काव्यरूपो की परिभाषा के लिए उनके अन्तर्गत आने वाले ग्रन्थों के स्वरूप को ही आधार बनाया गया है। विभिन्न रूपो के पारस्परिक अन्तर को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक काव्यरूप की विशेषताएँ देने का भी प्रयत्न किया गया है।

(६) षष्ठ अध्याय में आलोच्यकाल के बाद से लेकर भारतेन्दु युग तक की मुख्य-मुख्य रचनाओ के आधार पर प्रत्येक काव्यरूप की परम्परा निर्धारित की गई है। परम्परा मे दिये गये ग्रन्थों के लिए भी खोज विवरणों एवं हस्त लिखित ग्रन्थो का आश्रय लिया गया है। परम्परा के पश्चात् प्रत्येक रूप मे होने वाले विकास पर भी सक्षेप मे विचार किया गया है।

(७) उपसंहार मे आलोच्यकाल मे प्राप्त कुल रूपो का उल्लेख करते हुए यह दिखाया गया है कि इस काल के सभी प्रयोग काव्यरूप क्यों नहीं बन सके ? साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि जो काव्यरूप इस काल मे प्रचलित रहे उनमे से कितने प्राचीन है तथा कितने आलोच्यकाल की परिस्थितियों के कारण उद्भावित हुए हैं। यही नवीन उद्भावित काव्यरूपो के प्रचलन के कारणो पर भी विचार हुआ है।

जिस उद्देश्य को सामने रख कर यह प्रबन्ध लिखा गया था, उसकी पूर्ति किस सीमा तक हुई है, यह मेरे कहने की बात नही है। मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि आलोच्यकाल की अब तक के अनुसंधान मे प्राप्त समस्त सामग्री को लेकर उस काल मे प्रचलित समस्त काव्यरूपों की व्याख्या एवं ऐतिहासिक विवेचन इस प्रबन्ध मे हुआ है और जो कुछ भी निष्कर्ष है वे आलोच्यकाल की रचनाओ के अध्ययन के स्वाभाविक परिणाम है।

यह शोध-प्रबन्ध क०मु० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय के तत्कालीन रीडर (अब राजस्थान विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एव अध्यक्ष) डॉ० सत्येन्द्रजी के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया था। प्रबन्ध का यह रूप उनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन एव मार्गदर्शन का ही परिणाम है। इसमे जो कुछ भी शक्ति है, वह उन्ही के श्रम एव अनुग्रह का फल है। हाँ, इसकी त्रुटियाँ अवश्य मेरी अपनी है। उनकी मुझ पर महती कृपा रही है। इस बार उन्होंने अत्यन्त कार्यव्यस्त होते हुए भी अपने वक्तव्य से इस ग्रन्थ का गौरव बढाया है। विद्यापीठ के तत्कालीन सचालक (अब केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय के निर्देशक) डॉ० विश्वनाथप्रसादजी से मुझे समय-समय पर अपूर्व सहायता एवं उपयोगी सुझाव मिले। इन गुरुवर-द्वय का कैसे

और किन शब्दों मे अभिनन्दन करूँ ? यह सब कुछ इन्हीं के चरणों की कृपा का फल है । परमशक्ति एवं प्रेरणा देने वाले इन चरणों मे विनयावनत हूँ ।

हस्तलिखित ग्रन्थो को अध्ययन के लिए सुलभ बनाने मे वृन्दावन के श्री रामदासजी शास्त्री, श्री किशोरीशरणजी अलि तथा श्री ब्रजवल्लभशरणजी ने ; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा पुरातत्व मन्दिर, जयपुर के अधिकारियो ने तथा हिन्दी-विद्यापीठ के श्री उदयशंकरजी शास्त्री ने मेरी बहुल सहायता की है । मै इन सब सज्जनो का हृदय से आभारी हूँ । डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के पत्रो से भी मुझे कुछ काव्यरूपो के उद्भव एवं स्वरूप को समझने मे बड़ी सहायता मिली है, उसके लिए मैं श्रद्धानत कृतज्ञ हूँ ।

मेरे विभागाध्यक्ष डॉ० विजयपालसिंह जी शीघ्रातिशीघ्र इस ग्रन्थ को मुद्रित रूप में देखना चाहते हैं और वे मुझे बार-बार इस दिशा मे कार्य करने को प्रेरित करते रहे है । उन्ही की कृपा एवं प्रयत्नो से यह प्रकाशित भी हो रहा है । प्रेरणा की इस साक्षात् मूर्ति के समक्ष मैं श्रद्धा के साथ नत हूँ । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के अधिकारियो का भी आभारी हूँ जिनकी उदारतापूर्ण सहायता तथा सहयोग से इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हुआ ।

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय,
तिरुपति (आन्ध्र) ।
कार्तिक पूर्णिमा,
२७-११-१९६६

—रामबाबू शर्मा ।

भूमिका

विद्यापीठ शोध-परिषद

(अनुसन्धान-सगम)

क० मु० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ प्रमुख रूप से एक शोध-संस्थान है। आरम्भ काल से ही विद्यापीठ ने चार विशिष्ट क्षेत्रो मे शोध को वैज्ञानिक स्तर पर लाने का प्रयत्न किया है :—

[क] भाषा-विज्ञान,

[ख] पाठालोचन,

[ग] तुलनात्मक साहित्य, और

[घ] लोक साहित्य।

इनमे से प्रत्येक विषय मे विद्यापीठ ने ठोस वैज्ञानिक प्रणाली का विकास और उपयोग तो किया ही है, साथ ही विषय-विवेचन और प्रस्तुतीकरण मे भी स्तर को ऊँचा उठाने का ध्यान रखा है। आज अनुसन्धान-सगम की अवधानता मे उसके विविध शोध-प्रबन्ध प्रकाशित किये जा रहे है। इसमें हमारा उद्देश्य केवल यही है कि ज्ञान के क्षेत्र मे हमारा यह योगदान सुविज्ञ अनुसन्धायको और विचारको के समक्ष पहुँचे। ज्ञान के क्षेत्र मे व्यक्ति और सस्था का महत्व अपने कृतित्व को औरो के विचारार्थ प्रस्तुत कर देने तक ही है। उसका उचित मूल्याकन और उपयोग तो विद्वान् पाठको और आगे के अनुसन्धित्सुओं का ही दायित्व है।

मुझे प्रस्तुत ग्रन्थो को विद्वानों और पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है और मैं आशा करता हूँ कि हमारे विद्यापीठ के निर्देशन मे प्रस्तुत किये गये इस प्रबन्ध का स्वागत होगा। इसके लेखक ने अपनी शक्ति भर पूर्ण परिश्रम और अध्यवसाय मे सामग्री को जुटाया है और उसे वैज्ञानिक रूप प्रदान किया है। ज्ञान के उपासक इस अनुसंधाता का मैं अभिनन्दन करता हूँ, जिसने अपने लिए तो पी-एच० डी की उपाधि इस व्याज मे प्राप्त की है, पर ज्ञान-सुधा की एक घूँट वसुधा भर के लिए सुलभ कर दी है। मै समझता हूँ, मेरे इस अभिनन्दन मे इस शोध-प्रबन्ध के पाठक भी मेरा साथ देगे। ज्ञान की ज्योति का यह एक कण

अन्य ज्योतिकणों का ज्योतित वर्ग भी परम्परा स्थापित करे यही मेरी शुभकामना है।

—विश्वनाथ प्रसाद।

क० मुं० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान
विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
होलिकोत्सव, १९६२ (वि० सं० २०१८)

भूमिका

यह ग्रन्थ डा० रामबाबू शर्मा का शोध प्रबन्ध है, इन्हे इसी ग्रन्थ पर पी-एच० डी० की उपाधि आगरा विश्वविद्यालय ने प्रदान की है।

डा० शर्मा आज श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति मे हिन्दी के प्रवक्ता हैं। हिन्दी के काव्य-रूपो पर यह अनुसन्धान उन्होंने क० मु० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ के अनुसन्धित्सु बन कर किया था।

इस अनुसधान मे डा० शर्मा ने जी-तोड परिश्रम किया था। उन्होने मुद्रित ग्रन्थो से अधिक हस्तलेखो का अध्ययन किया। इसके लिये उन्होने दूर-दूर के हस्त-लेख-भण्डारो का निरीक्षण किया। इस प्रकार उन्होंने ३३८ ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की है। साथ ही इन ३३८ ग्रन्थो में उन्होने २४ काव्य-रूप स्थापित किये है। ये काव्य-रूप मध्ययुग की १५वी से १७वीं शती तक की अवधि मे मिलते है। इन काव्य-रूपो मे उपलब्ध ग्रन्थो को लेखक ने यों ही स्वीकार नही कर लिया है। उन्होंने ग्रथो की प्रामाणिकता पर भी विचार किया है और इस प्रकार इस सूची को उन्होंने प्रमाणित सूची बना दिया है।

विद्वान अनुसधाता ने इन चौबीस काव्य-रूपों का सभी प्रकार से पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रत्येक काव्य-रूप का मूल, उसके वर्ण्य-विषय, उसके छन्द, उसकी शैली आदि के साथ योग्यतापूर्वक उसकी परम्परा का भी विवरण दिया है। साथ ही प्रत्येक-काव्य की परिभाषा, व्याख्या एव उपयोगिता का मर्म तथा वर्णित-विषय एव काव्य-रूप के समन्वय पर विचार भी देकर काव्य-रूपो के अध्ययन को और अधिक विशद कर दिया है। मध्ययुगीन काव्य ग्रन्थों पर यह, मैं समझता हूँ, सबसे पहला अनुसन्धान है। इस दृष्टि से निस्संदेह यह एक महत्वपूर्ण योगदान है, हिन्दी साहित्य के लिए। इसमे मध्ययुगीन काव्य-रूपो का ही उद्घाटन नही हुआ, उन काव्य-रूपो की परम्परा की भी नई प्रतिष्ठा हुई है। साथ ही कितने ही अज्ञात कवि एव उनकी अज्ञात कृतियाँ उभर कर आयी है।

हो सकता है, हो सकता है क्या वस्तुत है कि अभी बहुत से महत्वपूर्ण ग्रन्थ अन्धकार के गर्त्त मे पड़े हुए है, ऐसे अज्ञात ग्रन्थ आज नही कल प्रकाश मे आये आयेंगे ही। पर फिर भी इस अनुसन्धान को व्यर्थ नही कर पायेंगे ऐसा मुझ भरोसा है हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिये इस दृष्टि स यह ग्रथ दिशा

मैं यह मानता हूँ कि किसी भी काव्य का अनुभूति के स्फुरण के साथ ही काव्य-रूप का भी उद्भव होता है। काव्य केवल शब्दो, वाक्यों और छन्दों मे ही नही काव्य-रूपों मे भी बँध कर प्रकट होता है। काव्य-रूप के साथ काव्य का निजी व्यक्तित्व खड़ा होता है।

रूप, अभिव्यक्ति और अनुभूति का नित्य सम्बन्ध है, तो रूप के वैविध्य के साथ अभिव्यक्ति और अनुभूति का वैविध्य भी स्वीकार करना होगा। रूप-तत्व (मेटाफिजिक्स आफ फार्म) पर मौलिक विचार कहाँ किया गया है। अद्वैतवाद तो नाम-रूपात्मक जगत को मिथ्या मानता है। मिथ्या के अर्थ केवल यह है कि वह शुद्ध ब्रह्म-सत्व की भाँति नित्य नही। साहित्य मे भी काव्यात्मक अनुभूति को मूलत अद्वैत ही मानना पड़ेगा, और मूलत रूप को मिथ्या। इस दार्शनिक उपपत्ति का इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ नही कि रूप के द्वारा जिस अनुभूति की अभिव्यक्ति हो रही है, वह सार वस्तु है, वही समस्त रूपो मे समभाव से व्याप्त है, वही अनुभूति यथार्थ काव्य है—यह तभी जब हम 'रूप' को ग्रहण कर अभिव्यक्ति के माध्यम मे अनुभूति मे साक्षात्कार करने के लिये अग्रसर होते हैं। दूसरे शब्दों में आलोचक या दार्शनिक के लिये। पर साहित्यकार, कवि अथवा अभिव्यक्तिकार के लिये इससे भी अधिक सत्य इस क्रम से है अनुभूति-अभिव्यक्ति-रूप। उसकी अद्वैत अनुभूति अभिव्यक्ति के उपादानो (शब्द-अर्थ-कल्पना-चित्रो) से रूप अवतरित होती है, और बिना उसके वही कोई 'नाम' भी नही प्राप्त कर सकती, उसकी सत्ता का आभास भी नही मिल सकता। इस छवि के लिये रूप निश्चय ही सत्य है। किन्तु मौलिक प्रश्न जहाँ का तहाँ है। यह वैविध्य कहाँ से ?

वस्तुत विविधता तो अनुभूति के अद्वैत के विस्तार मे ही निहित है—केन्द्र बिन्दु जब अपनी अभिव्यक्ति के लिये आत्म-प्रसार करता है तो वह परिधि का निर्माण करता चलता है। परिधि—देशकाल को जन्म देते हुए ही उद्भूत होती है। बीज मे वृक्ष, उसकी शाखाएं, पल्लव, पुष्प तथा फल सभी समाये हुए है, वे बीज के विस्तार के परिणाम है। अनुभूति भी इसी प्रकार अपने अन्तरङ्ग निर्माण मे वैविध्य समाहित किये हुए है। इस प्राकृतिक प्रक्रिया का आश्रय न भी लेकर अनुभूति की उद्भूति पर ही ध्यान दे तो यह स्पष्ट हो जायगा कि कवि की अद्वैत अनुभूति को तो अनिवार्यत वैविध्ययुक्त होना होगा। अनुभूति कवि को होती है—कवि क्या है ? शरीर—मन (माइण्ड) से उसका स्थूल पाशविक निर्माण होता है, जिस पर 'आहार-निद्रा-भय-मैथुन' की प्रवृत्तियो के कारण शेष सृष्टि से साम्यवाद खड़ा होता है। किन्तु कवि इससे भी अधिक है। इस कुछ अधिक को उसकी प्रतिभा कह सकते है। यह प्रतिभा उसे अपने शरीर की स्थूल सीमाओं का

उल्लंघन करने को विवश करती है तब कवि क्रान्तदर्शी हो उठता है—और युग ही नही युग-युग भी उसके लिए हस्तामलकवत् हो जाता है। यहाँ वह होता है अपनी शारीरिक स्थूलता और उसकी आवश्यकताओं के साथ: सामने होती है उसके युग की परिस्थितियाँ जिनसे रहता है उसका सघर्ष, और इस सब मे से होकर उसकी प्रतिभा उस भूमि पर जा पहुँचती है जहाँ पर वह प्रकृति (परिस्थितियाँ) और पुरुष (मानव) के परम्परा के आदि-मध्य-अन्त की स्थितियो और विकृतियो का दर्शन कर सकता है: यही दर्शन काव्यानुभूति है। फलत: उसके निर्माण का समग्र रूप यह हो जाता है: कवि=शरीर+मन+प्रतिभा <युग<युग-युग। इस प्रकार अनुभूति मे कवि व्यक्ति, उसकी युगीन प्रतिक्रिया और उस प्रतिक्रिया मे युग-युगीन तादात्म्य सन्निहित रहता है, तो यह अनुभूति अद्वैत होते हुए भी वैविध्य-सम्पन्न होगी ही। कवि के शरीर और मन का निर्माण भी सहज नही होता कितने विज्ञान इस निर्माण के स्वरूप को समझने के लिये सतत् प्रयत्न मे लगे हुए है और अभी तक यथार्थ को प्राप्त कर सकने मे असफल रहे हैं। इसी कारण से अनुभूति मे निजि वैविध्य ही नही होता, वह कवि-प्रतिभा और उसकी सामर्थ्य के भेद से भी भिन्न हो जाती है। तब, जब यह अनुभूति अपनी अभिव्यक्ति के लिए अग्रसर होती है तो अपने अनुकूल ही रूप ग्रहण करती है। बीज मे ही वृक्ष का रूप निश्चित है। 'बोये पेड बबूर के आम कहाँ ते होंय' की प्राकृतिक प्रवृत्ति अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप के साथ भी होती है। रूप को शोध कर उसमे अनुभूति अपने को अवतीर्ण नही करती। अनुभूति की अभिव्यक्ति होते ही वह स्वयमेव ही सहजरूप धारण करती जाती है। यही सहज स्थिति है। इसमे अनुभूति और रूप प्रकृतत: अनिवार्य सम्बन्ध रखते है, रूप से अनुभूति और अनुभूति से रूप को हृदयगम किया जा सकता है। किन्तु यह केवल मौलिक प्राथमिक अवस्था मे ही होता है।[१] रूप अपनी स्थूलता के कारण बाद में प्रमुख हो जाता है, और अनुभूति गौण हो उठती है। इनका अनिवार्य सम्बन्ध शिथिल हो जाता है, बस रूप अनुभूति से अलग होकर भी अपने लिये आकर्षण सग्रह कर सकता है। उस समय 'रूप' का शास्त्र बन जाता है, उसकी टेकनीक ढाल ली जाती है, उसके लक्षण और परि-

---

१ क्रौंच बध को देख कर वाल्मीकि के मुख से कुछ वाक्य अनायास ही निसृत हुए। इन वाक्यो ने स्वय महर्षि को आश्चर्यचकित कर दिया। वे विचारने लगे कि ये शब्द क्या है ? और वे इसी निश्चय पर पहुँचे कि 'शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोक भवतु न अन्यथा' 'मेरी शोकार्त प्रवृत्ति ही श्लोक हो गयी है, वह कुछ अन्यथा नही। यहाँ शोकार्त प्रवृत्ति से शोक की अनिवार्यता कवि ने स्वीकार की है। शोक की अनुभूति ने अनिवार्यत श्लोक का रूप ग्रहण किया।

भाषाएँ निरूपित हो उठती है। तब यह रूप साँचे का स्थान प्राप्त कर लेता है और अनुभूति रहित होकर भी जीवित रह सकता है, अथवा तब अभ्यास से किसी रूप की प्राकृतिक अनुभूति किसी अन्य रूप मे भरी जा सकती है।

यह काव्य-रूपों का दर्शन ही माना जायगा। डा० शर्मा ने जो २४ काव्य-रूप स्थापित किये है। वे सभी इस दर्शन के अनुसार मूल अनुभूति से संजित नहीं। वाल्मीकि की भाँति १४-१८वी शती के बीच का कोई भी कवि 'श्लोक' जैसे किसी काव्य-रूप की उद्‌भावना का उद्देश्य नही कर सकता।

काव्य 'शब्द-अर्थ' मे अभिव्यक्त होता है, और अपनी आन्तरिक प्राणवान अनुभूति के लिए एक सूक्ष्म माध्यम 'भाषा-विन्यास' पद्य या गद्य—यथार्थतः छन्द को ग्रहण कर लेता है।

अनुभूति—१ अनुभूति का अर्थतत्व
+ ↓
२. अनुभूति का व्यंजित रूप
+
३. अनुभूति गत बौद्धिक सार—[युक्ति / चमत्कार] शब्द + अर्थ (वाक्य) + राग = छन्द या श्लोक
+
४. अनुभूति गत राग-तत्व

शब्दार्थ सहित छन्द, इस प्रक्रिया से, काव्य का प्रथम रूप है।

किन्तु काव्य में अनुभूति की मौलिक शक्ति की अभिव्यक्ति अपने अन्दर विशदता का तत्व भी रखती है। अतः काव्य-रूप की स्थापना छन्द तक ही नही रहती। उससे आगे अनुभूति को पूर्णतः साकार करने वाले 'छन्द-तारतम्य' मे प्रस्तुत विशदता को भी काव्य-रूप की सज्ञा ही दी जायेगी। क्योंकि 'अनुभूति' की परिपूर्ण अभिव्यक्ति ही काव्य है—और वही काव्यरूप है। इस युक्ति से पच्चीसी, बत्तीसी, हजारा आदि से काव्य-रूप बनते हैं।

लेखक ने शताब्दी क्रम से काव्य-रूपो की सांख्यिकी दी है.

१५वी शताब्दी मे ९ काव्य-रूप

१६वी शताब्दी में २१ काव्य-रूप।

लेखक का एक निष्कर्ष यह भी है कि सं० १६५० के उपरात किसी नये काव्य-रूप की प्रतिष्ठा नही हुई।

इतिहास के क्रम से भी काव्य-रूपों का विकास एक रोचक विषय है। इसे लेखक ने प्रत्येक काव्य-रूप का उद्‌भव और विकास दिखाने का भी श्लाघ्य प्रयत्न

किया है । इस विकास-निरूपण म छन्द की परिभाषा, उसका रूप, उसकी उद्भावना, काल एवं कारण, साथ ही उसमे वर्णित विषयों के ऐतिहासिक विवरण को भी सम्मिलित कर लिया है ।

समस्त ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक पढने पर निश्चय ही यह धारणा बनती है कि कि डा० शर्मा की यह अच्छी देन है ।

क० मु० हिन्दी विद्यापीठ मे यह अनुसन्धान एक बृहद् योजना के अन्तर्गत किया गया था । योजना यह थी कि हिन्दी साहित्य के प्रत्येक काल के काव्य-रूपो का अनुसन्धान कराया जाय । इस युग से पूर्व के युग के काव्य-रूपो का अनुसन्धान भी एक शोधार्थी को दिया गया था, पर खेद है वे उसे पूरा नही कर सके अन्यथा हिन्दी के आदिकाल मे १७ वी शती तक के काव्य-रूपो का पूरा इतिहास आज उपलब्ध हो जाता । मेरी दृष्टि मे डा० शर्मा इसलिए भी प्रशंसनीय है कि उन्होने अपने एक साथी की भाँति अनुसन्धान कार्य बीच ही मे नही छोड दिया । मै यह जानता हूँ कि कितनी आर्थिक कठिनाइयो को झेलते हुए, तथा कितनी अन्य परेशानियों को उठाते हुए इन्होंने अपना सकलित अनुसधान सतोषप्रद रूप से पूर्ण किया । इस प्रबन्ध को कई वर्ष पूर्व ही प्रकाश मे आ जाना चाहिये था । देर से ही सही, मैं इस प्रबन्ध के प्रकाशन के प्रति आश्वस्त हूँ । अवश्य ही हिन्दी जगत मे इसे योग्य सम्मान मिलेगा ।

साहित्यरत्न भण्डार, आगरा, का यह यश रहा है कि उसने साहित्यिक महत्व के ग्रन्थ प्रकाशित किये है । उसने अपने प्रकाशित ग्रन्थों की माला में एक और अच्छा मनका जोडा है ।

—डॉ० सत्येन्द्र ।

विषय-सूची

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, बात संज्ञक प्रेमाख्यान, अन्य भारतीय प्रेमाख्यान, २—इतिवृत्तात्मक कथा-वार्त्ता-काव्य, (अ) लोककथा, (आ) नीतिकथा, (इ) अन्य कथाएँ। ५. पद, शब्द, लीला के पद—पद तथा सबद, लीला के पद, १—पद—(अ) संतों के पद, (आ) भक्त कवियों के पद, २—सबद, ३. लीला के पद, (अ) स्फुट रूप में, (आ) प्रबन्ध रूप में—कीर्तन काव्य, ४. मात्र कीर्तन। ६. स्तोत्र, स्तुति, विनती-काव्य—संस्कृत साहित्य में स्तुति-परक काव्य, अपभ्रंश साहित्य में स्तुति-परक काव्य, हिन्दी साहित्य में स्तुति-परक काव्य, १—देवी देवताओं की स्तुति सम्बन्धी, २—भक्तों एवं गुरुओं की स्तुति सम्बन्धी। ७. सिद्धान्त एवं उपदेश-परक काव्य, १—ज्ञान संज्ञक रचनाएँ, २—उपदेश संज्ञक, ३—चितावणी संज्ञक, ४—बोध संज्ञक, ५—प्रबोध संज्ञक, ६—सबोध संज्ञक, ७—निरूपण संज्ञक, ८—नामा संज्ञक, ९—विचार संज्ञक, १०—सिद्धान्त संज्ञक ११—ग्रन्थ तथा सागर संज्ञक, १२—लीला संज्ञक, १३—विप्रमतीसी, १४—चरित्र संज्ञक, उपदेश एवं सिद्धान्तपरक कुछ अन्य रचनाएँ। ८. प्रशस्ति काव्य—प्रशस्ति काव्य का प्रारम्भिक रूप, आलोच्यकाल के प्रशस्ति काव्य। ९. पुराण—संस्कृत साहित्य में पुराण, हिन्दी साहित्य में पुराण। १०. ऐतिहासिक काव्य। ११. मंगल-काव्य—प्राचीन रूप एवं परम्पराएँ, आलोच्यकाल से पूर्व के काव्य, आलोच्यकाल के मंगल-काव्य। १२. लीला काव्य। १३. साखी—आलोच्य काल से पूर्व, आलोच्यकाल की रचनाएँ। १४. छंद-गीत-परक काव्य-रूप—आलोच्य-काल एवं उससे पूर्व के काव्यों में प्रयुक्त छंद-परक संज्ञाएँ, १. दोहा, २. पद्धड़िया बन्ध, ३. दोहा-चौपाई बन्ध, ४. छप्पय बन्ध, ५. कुंडलिया, ६. चर्चरी या चाँचर, ७. फागु, ८. सोहर, ९. कहरा, १०. बरवै, ११. बेलि, १२. बिरहुली, १३. गजल, १४. रेखता, १५. नीसाणी, १६. गीत—लौकिक एवं शास्त्रीय, कुछ अन्य छन्द। १५. माला या माल-काव्य—संस्कृत साहित्य में, प्राकृत साहित्य में, आलोच्य काल में, १. कोश ग्रन्थ, २. संग्रह ग्रन्थ, ३. नामस्मरण काव्य। १६. सम्वाद, वादु, गोष्ठी, बोध संज्ञक काव्य—संस्कृत साहित्य में, हिन्दी साहित्य में। १७. बारहखडी या बावनी—आलोच्यकाल से पूर्व के काव्य, आलोच्यकाल की रचनाएँ। १८. बारह-मासा—आलोच्यकाल से पूर्व बारहमासा साहित्य, आलोच्यकाल का बारह-मासा साहित्य। १९. संख्या-परक काव्य—संस्कृत साहित्य में, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य में, हिन्दी साहित्य में। २०. भ्रमरगीत। २१. कथा, १—अनुष्ठान कथा, २—माहात्म्य कथा। २२. अष्टयाम—संस्कृत साहित्य

मे अष्टयाम वर्णन, आलोच्यकाल मे इस रूप का विकास, आलोच्यकाल के ग्रन्थ। २३ नखशिख। २४. नाटक—सस्कृत के नाटक, कालिदास से पूर्व के नाटक, कालिदास तथा उनके बाद के नाटक, हिन्दी नाटक। शास्त्रीय ग्रन्थ—(१) रस एवं नायिका भेद, (२) कोक शास्त्र, (३) अलङ्कार सम्बन्धी ग्रन्थ, (४) ज्योतिष ग्रन्थ, (५) वैद्यक, (६) योग शास्त्र, (७) शालिहोत्र, (८) पिंगल, (९) अन्य। इस काल के कुछ अन्य प्रयोग।

पंचम अध्याय

१—बानी—काव्यरूप की व्याख्या एव परिभाषा, वर्णित विषय, १. सत कवियों की बानियाँ, २ भक्त कवियों की वाणियाँ, चौबोला। २—चरित-काव्य—काव्य-रूप की व्याख्या एवं परिभाषा, विषय-वस्तु, १. पौराणिक चरित-काव्य, २ ऐतिहासिक चरित-काव्य, ३. धार्मिक चरित-काव्य—(अ) जैन कवियों के चरित-काव्य, (आ) हिन्दू कवियो के सत तथा महात्माओं से सम्बन्धित चरित-काव्य, (इ) आत्म-चरित, विशेषताएँ। ३—रास—रास या (रासक) की परिभाषाएँ, रास तथा रासों का सम्बन्ध, आलोच्यकाल के रास ग्रन्थों की विविध सज्ञाएँ एवं उनका स्वरूप, विषय वस्तु—पौराणिक एव धार्मिक पुरुषो से सम्बन्धित रास ग्रन्थ, प्रेमाख्यानक रास ग्रन्थ, सिद्धान्त विषयक रास ग्रन्थ, रास काव्य की विशेषताएँ। ४—कथा-वार्त्ता-काव्य—सस्कृत साहित्य मे कथा-काव्य का रूप, परिभाषा, इस कोटि की रचनाओ की विशेषताएँ, वर्णित विषय, (अ) प्रतीकात्मक कथा-काव्य अथवा सूफी प्रेमाख्यान, (आ) भारतीय प्रेमाख्यान, (१) लोककथा, (२) नीति कथाएँ, (३) अन्य कथाएँ; काव्यरूप की विशेषताएँ। ५—पद, सबद एवं लीला के पद—पद, परिभाषा एव व्याख्या, वर्णित विषय; सबद—व्याख्या एव परिभाषा, सबद तथा पद का भेद, वर्णित विषय, लीला के पद—स्वरूप की व्याख्या, कीर्तन काव्य—सूरसागर का स्वरूप, मात्र-कीर्तन, वर्णित विषय—मात्र-कीर्तन एव कीर्तन काव्य। ६—स्तोत्र, स्तुति, विनती-काव्य—परिभाषा एव व्याख्या, वर्णित विषय—गुरु एव भक्तो की स्तुति, विशेषताएँ। ७—सिद्धान्त एव उपदेश-परक काव्य—काव्यरूप की व्याख्या एव परिभाषा, वर्णित विषय—ज्ञान संज्ञक, उपदेश सज्ञक, चितावणी संज्ञक, बोध, प्रबोध, सबोध संज्ञक, निरूपण संज्ञक, नामा संज्ञक, विचार सज्ञक, सिद्धान्त संज्ञक,

संग्रह एवं सागर संज्ञक, लीला संज्ञक, विप्रमतीसी, चरित संज्ञक, अन्य रचनाएँ , विशेषताएँ । ८—प्रशस्ति-काव्य—काव्य-रूप की व्याख्या एव परिभाषा, वर्णित विषय, विशेषताएँ । ९— पुराण—परिभाषा, व्याख्या, वर्णित विषय । १०—ऐतिहासिक-काव्य—काव्यरूप की व्याख्या एव परिभाषा, वर्णित विषय, विशेषताएँ । ११ मगल काव्य, व्याख्या एव परिभाषा, वर्णित विषय, विशेषताएँ । १२—लीला काव्य, व्याख्या एव परिभाषा, वर्णित विषय, विशेषताएँ । १३—साखी, व्याख्या एव परिभाषा, वर्णित विषय, विशेषताएँ । १४—छन्द, गीत-परक काव्य-रूप—दोहा, विषय, दोहा चौपाई बध , वर्णित विषय, छप्पय, विषय, कवित्त-सवैया, वर्णित विषय, कुडलियाँ, वर्णित विषय, चर्चरी या चाँचर, वर्णित विषय, फागु—विभिन्न परिभाषाएँ एव व्याख्या, वर्णित विषय, विशेषताएँ, सोहर, वर्णित विषय, कहरा, वर्णित विषय, बरवै, वर्णित विषय, वेलि, वर्णित विषय, बिरहुली, वर्णित विषय, गजल, वर्णित विषय, रेखता, वर्णित विषय, नीसांणी, वर्णित विषय, गीत—१. लौकिक, २. शास्त्रीय राग, कुछ अन्य ग्रन्थ । १५—माल या माला काव्य, व्याख्या एवं परिभाषा, वर्णित विषय— १ कोश ग्रन्थ, २. सग्रह ग्रन्थ, ३ नाम स्मरण ग्रन्थ । १६—सम्बाद, बादु गोष्ठी एवं बोध सज्ञक काव्य, काव्य-रूप की व्याख्या, वर्णित विषय, परिभाषा, विशेषाएँ । १७—बारहखडी या बावनी—परिभाषा, व्याख्या, वर्णित विषय, विशेषताएँ । १८—बारह-मासा, परिभाषा एव व्याख्या, वर्णित विषय, विशेषताएँ । १९—संख्या-परक काव्य-रूप—परिभाषा एव व्याख्या, अष्टक, पचीसी, बत्तीसी, चौतीसा, छत्तीसी, पचशिका, बावनी, चौवनी, चौहत्तरी, चौरासी, शतक, सतसई, विशेषताएँ । २०— भ्रमरगीत, व्याख्या एवं परिभाषा, वर्णित विषय । २१—कथा, व्याख्या एव परिभाषा, वर्णित विषय—अनुष्ठान कथा, माहात्म्य कथा, विशेषताएँ । २२—अष्टयाम—व्याख्या एव परिभाषा, वर्णित विषय, विशेषताएँ । २३—नखशिख—परिभाषा एव व्याख्या, वर्णित विषय, विशेषताएँ । २४ नाटक—सस्कृत साहित्य मे नाटक, आलोच्य-काल के नाटक, व्याख्या एवं परिभाषा, वर्णित विषय, विशेषताएँ ।

षष्ठ अध्याय

प्रत्येक काव्यरूप की परम्परा— ३२९ से ३५६

१—बानी, (१) सन्तों की बानियाँ, (२) भक्तों की बानियाँ ।

पूर्व-पीठिका

काव्यरूप

साहित्य में काव्य शब्द का व्यवहार व्यापक अर्थ मे होता है। प्राचीन आचार्यों ने उसमे गद्य एव पद्य दोनो को ही स्वीकार किया है। इन आचार्यों ने काव्य के रूपो पर विचार करते समय इन दोनों भेदो को ही सबसे पहिले स्थान दिया है। लेकिन तथ्य यह है कि गद्य एव पद्य अभिव्यक्ति के प्रकार है, काव्य के प्रकार नहीं। काव्य एव अभिव्यक्ति मे भेद है। अभिव्यक्ति मात्र काव्य नही होती, काव्य तो अभिव्यक्ति मे प्रतिष्ठित होता है। हमें काव्य के रूपों पर विचार करना है, अभिव्यक्ति के रूपों पर नहीं। और न हमें अभिव्यक्ति के माध्यम के रूपो पर विचार करना है। प्राक्कथन मे इस माध्ययम मे हुए रूप विचार का उल्लेख हुआ है। व्यवहार मे काव्य शब्द का प्रयोग पद्य बद्ध कविता के अर्थ मे ही होता है। साधारण व्यवहार में इस शब्द का इस अर्थ मे होने वाला प्रयोग अकारण नही है। जब कवि अनुभूति के आनन्द को अपने हृदय मे रोक रखने मे असमर्थ होकर उसकी अभिव्यक्ति के लिए व्यग्र हो उठता है और उसे पाठक तक पहुँचा देने की कामना मे किसी रूप विशेष मे प्रतिष्ठित करता है, तभी काव्य का जन्म होता है। छन्द की सहायता से ही वह इस कार्य को अधिक प्रभावपूर्ण ढङ्ग से सम्पादित कर सकता है। अत यह आश्चर्य नही कि व्यवहार मे छन्दोबद्ध रचना को ही काव्य कहा जाता है। प्रस्तुत प्रबन्ध मे भी काव्य शब्द का व्यवहार इसी विशिष्ट अर्थ . छन्दोबद्ध रचना . मे हुआ है।

काव्याङ्गो पर विचार करने से पूर्व इस तथ्य पर विचार कर लेना अधिक समीचीन है कि काव्य के विविध रूपो का औचित्य क्या है? काव्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति ही काव्य होती है। अभिव्यक्ति के समय ही अनुभूति को रूप प्राप्त होता है। इसका क्रम यह रहता है—अनुभूति—अभिव्यक्ति · शब्द-अर्थ : रूप। यह क्रम उसी क्रम के समान है—आत्मा चेतन प्राण अनुभूति : शरीर : अभिव्यक्ति : प्राप्त् करते है, तो रूप मिलता है। काव्यात्मक अनुभूति भी रूप के बिना अभिव्यक्त नही हो सकती। अभिव्यक्ति एव रूप का सम्बन्ध हैं। लेकिन यह रूप भेद क्यों होता है? इस प्रश्न पर दार्शनिक दृष्टिकोण से विचार कर लेना आवश्यक है।

अनुभूति की अभिव्यक्त कोई न कोई रूप धारण करती है। अतः अनुभूति, अभिव्यक्ति एव रूप का नित्य सम्बन्ध है। जब काव्य रूपो भेद प्राप्त होता है तो अनुभूति मे भी भेद स्वीकार करना पड़ेगा। अद्वैतवाद रूपात्मक जगत को मिथ्या मानता है। शुद्ध ब्रह्म ही नित्य है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि—अनुभूति की अभिव्यक्ति ही नित्य है। वही सार है और समस्त रूपो मे व्याप्त है। डॉ० सत्येन्द्र के शब्दो मे इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है—"अद्वैत-वाद तो नाम रूपात्मक जगत को मिथ्या मानता है। मिथ्या के अर्थ केवल यह है कि वह शुद्ध ब्रह्मतत्त्व की भाँति नित्य नही। साहित्य मे भी काव्यात्मक अनुभूति को मूलत. अद्वैत ही मानना पड़ेगा, और मूलत रूप को मिथ्या। इस दार्शनिक उपपत्ति का इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ नही कि रूप के द्वारा जिस अनुभूति की अभि-व्यक्ति हो रही है, वह सार वस्तु है, वही सब रूपो मे सम भाव से व्याप्त है, वही अनुभूति यथार्थ काव्य है—यह तभी जब हम रूप को ग्रहण कर अभिव्यक्ति के मध्यम से अनुभूति के साक्षात्कार करने को अग्रसर होते है—दूसरे शब्दों में आलो-चक या दार्शनिक के लिए। पर साहित्यकार कवि अथवा अभिव्यक्तिकार के लिए इससे भी अधिक सत्य इस क्रम से है—अनुभूति—अभिव्यक्ति—रूप उसकी अद्वैत अनुभूति अभिव्यक्ति के उपादानो : शब्द-अर्थ-कल्पना-चित्रो : से रूप मे अवतरित होती है और बिना उसके वह कोई नाम भी प्राप्त नही कर सकती। उसकी सत्ता का आभास भी नही मिल सकता। इस छवि के लिए रूप निश्चय ही सत्य है।[१] इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि रूप अनुभूति . जो कि यथार्थ मे काव्य की आत्मा है . तक पहुँचने का माध्यम है तथा अनुभूति एवं उपादानो सहित अभि-व्यक्ति का अद्वैत ही काव्यरूप है।

अनुभूति की अभिव्यक्ति ही काव्य है। अनुभूति की सभी अभिव्यक्तियाँ काव्यरूप का पद ग्रहण नही कर पाती। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के अनुरूप काव्य के आत्मा और शरीर दो मुख्य तत्त्व हो जाते है। अभिव्यक्ति स्वरूप की महानता इसी मे है कि उसके माध्यम से आत्मा अनुभूति . अपना प्रकाशन करने मे समर्थ हो सके। काव्य मे आत्मा एवं शरीर दो आवश्यक तत्त्व होते है। आत्मा : अनु-भूति : का सम्बन्ध हृदय से है और शरीर अभिव्यक्ति का बुद्धि से। ये दोनो तत्त्व ही महत्त्वपूर्ण हैं क्योकि अनुभूति जब अभिव्यक्ति होती है तब ये दोनों तत्त्व अनुभूति एव अभिव्यक्ति : एक मे एक होकर ही बाह्य आकार ग्रहण करते है। तब बाह्याकार की महत्ता उसमे निहित अनुभूति से ही आकी जाती है। अनुभूति के उच्च होने पर उसके उसके अभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले उपकरण

१ मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य का लोकतात्विक पृष्ठ ४५२

भी निश्चित ही उच्चकोटि के होने चाहिए। ऐसी दशा मे अभिव्यक्ति रूप भी उच्च-कोटि का बन जाता है। यही अभिव्यक्ति रूप काव्यरूप हैं। जिस प्रकार विभिन्न अगो को एक साथ रख देने मात्र से ही मानव नही बनजाता उसी प्रकार बाह्य उप-करग-छन्द, शब्द आदि को एक स्थान पर पर रख देने से काव्यरूप नहीं बन जाता। जब तक अंगों के समूह को क्रम से संजोकर उसमे प्राण प्रतिष्ठा नहीं की जाती तब तक मानव नही बन सकता है। इसी प्रकार जब तक बाह्य उपकरणों मे अनुभूति का समावेश न हो तब तक काव्यरूप नही बनता। काव्य एव काव्यरूप के भेद को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—छन्दोबद्ध रूप मे किसी भी अनुभूति की अभिव्यक्ति काव्य है जब कि इसी छन्दोबद्ध रूप को किसी विशिष्ट क्रम एवं किसी विशिष्ट ढङ्ग : शैली, सख्या तथा विषय के आधार पर : से सजोये जाने पर काव्यरूप बनता है।

शरीर के निर्माण के लिए विभिन्न अगो की आवश्यकता होती है। यदि उन अगो को जोडने में क्रम का विस्तार न रखा जाय तो वह आकृति क्या होगी, कल्पना से बाहर की बात है। ठीक यही बात काव्यरूप के सम्बन्ध मे है। कवि के पास अपनी अनुभूतियों को पाठक तक पहुँचाने के लिए शब्द, अर्थ तथा छन्द यह तीन वस्तुएँ ही रहती है। इन्ही के सहारे कवि की अनुभूति विविध काव्यरूपो मे होकर अभिव्यक्ति होती है। इन तीनों तत्वो का क्रमिक तथा विशिष्टानुपातिक रूप से निर्वाह करने पर ही काव्यरूप का जन्म होता है। क्रम के निर्वाह मे शिथिलता होने पर वह रूप सफल काव्यरूप नही कहला जा सकता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि हाथों के स्थान पर पैर एव पैरो के स्थान पर हाथ लेकर उत्पन्न हुआ बालक सामान्य मानव न होकर कुछ और ही होता है और उसके जीवित रहने की आशा भी नही के बराबर ही होती है। अत यह कहा जा सकता है कि काव्यरूप अनुभूति के अनुरूप खडा होता है और उसके विविध अगो मे विशिष्टतानुपात रहता है। अनुभूति की विशिष्टता के अनुसार वह प्रस्तुत होता है। अनुभूति तो काव्यरूप मे व्याप्त अत्यन्त सूक्ष्मतत्व है जिसकी सामान्यत· परीक्षा नही की जा सकती। हाँ, काव्यरूप हमारी परीक्षा का विषय बन सकता है। काव्यरूप के लिए, रूप वैशिष्ट के लिए काव्यरूपो के अध्ययन की आवश्यकता है साथ ही अनुभूति के अध्ययन के लिए भी काव्यरूपो के अध्ययन की आवश्यकता है क्योकि रूप तथा अनुभूति दोनो मे सामंजस्य रहता है।

अनुभूति के अद्वैत के विस्तार से ही विविधता के दर्शन होते हैं। अनुभूति अपने विस्तार के समय देश एव काल से प्रभावित होती है। अनुभूति कवि के हृदय में उत्पन्न होती है। कवि पर शारीरिक आवश्यकताओं का प्रभाव पडता है।

इन प्रवृत्तियों से प्रभावित होने पर कवि अपनी प्रतिभा के माध्यम से अनुभूति का शेष सृष्टि से तादात्म्य स्थापित करता है। डॉ सत्येन्द्र ने कवि के इस निर्माण के समग्र रूप को इस प्रकार व्यक्त किया है—'फलतः उसके निर्माण का समग्र छप यह हो जाता है कवि शरीर-मन प्रतिभा-युग युग युग। इस प्रकार अनुभूति मे कवि व्यक्ति, उसकी युगीन प्रतिक्रिया और उस प्रतिक्रिया मे युग-युगीन तादात्म्य सन्निहित रहता है, तो यह अनुभूति अद्वैत होते हुये भी वैविध्य सम्पन्न होगी।[1] इस प्रकार देश-काल एव परिस्थितियो के प्रभाव के कारण अनुभूति मे अद्वैतपरक वैविध होना अवश्यभावी है। अनुभूति मे निजी भेद अथवा वैविध्य नही होता, उसमे तो कवि की प्रतिभा एव सामर्थ के आधार पर ही भेद उत्पन्न हो जाता है। यही अनुभूति जब अभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत की जाती है तो अपने अनुकूल ही रूप धारण कर लेती है। किसी रूप को देखकर अनुभूति अभिव्यक्त नही होती, बल्कि अभिव्यक्त होते-होते स्वयमेव सहज धारण कर लेती है। इस प्रकार अनुभूति भेद के माध्यम से रूप भेद के कारण को समझा जा सकता है। अनुभूति एव रूप में स्वाभाविक सम्बन्ध रहता है। एक के अध्ययन से दूसरे को समझा जा सकता है। लेकिन यह दशा किसी का काव्यरूप की पूरी परम्परा मे दिखाई नही देती। पचम अध्याय मे हमने स्पष्ट किया है कि यह सम्बन्ध रूप की प्रारम्भिक दशा मे ही पूर्णत प्राप्त होता है। बाद मे रूप प्रमुख एवं अनुभूति गौण हो जाती है। इनका अनिवार्य सम्बन्ध शिथिल हो जाता है। उस समय अनुभूति से अलग रह कर भी रूप में आकर्षण वर्तमान रहने लगता है।

प्रस्तुत अध्ययन मे सस्कृत साहित्य के आचार्यो के समान बध के दृष्टिकोण के काव्य रूपो पर विचार न करके छद-गीत, शैली संख्या एव विषय इन तत्वो के आधार पर काव्यरूपों का विभाजन किया गया है। यही वे तत्व है जिनके द्वारा अभिव्यक्ति भेद मे रूप भेद होता है। ग्रन्थ की संज्ञा काव्य रूप को समझने मे पर्याप्त सहायक होती है। ग्रंथ का नामकरण करते समय कवि के हृदय मे उस विशिष्ट रूप का भाव अवश्य उपस्थित रहता है जिसको आधार बना कर ग्रंथ की रचना की जाती है। फिर भी कुछ ग्रन्थ ऐसे मिलते है जिनकी सज्ञा से उसके रूप का आभास नहीं हो पाता।

बध की दृष्टि से काव्य का विभाजन न करके उक्त तत्वों के आधार पर उसका विभाजन कहां तक उचित है, विचारणीय प्रश्न है। काव्य का सम्बन्ध तत्कालीन समाज और लोकरुचि से भी होता है। ऐसी दशा मे लोकतत्व से काव्य रूप का घनिष्ठ सम्बन्ध ठहरता है। छन्दो के आधार पर जो काव्यरूप खड़े किए

---

१ मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का अध्ययन पृष्ठ ४५३

गए, उनका उन छन्दो की परम्परा के समान ही लोकक्षेत्र एव लोकतत्व से सम्बन्ध है। इस काल में जिन छन्दों का प्रयोग हुआ वे स्वभाव से मात्रिक है और मात्रिक छन्दो का मानव के स्वभाव एव प्रकृति से घनिष्ट सम्बन्ध है।

गीतो के नाम पर भी काव्यरूप मिलते है। गीतो के नाम पर जो काव्यरूप खडे किये जाते हैं उनमे विषय एव गीत का तादात्म्य होता है। होली एव फाग ऐसे ही गीत है। गीत एव विषय का तादात्म्य रूप की प्रारम्भिक दशा मे पूर्णरूपेण उपस्थित रहता है लेकिन धीरे-धीरे उसमे शिथिलता आने लगती है। तब वह गीत विशेष का नाम रह जाता है। उस रूप का सम्बन्ध विषय मे न रहकर गीत से ही रह जाता है। यदि होली विषय का वर्णन किसी अन्य गीत मे होगा तो वह होली नही कहलायेगा। इसके अतिरिक्त होली राग मे होली के अतिरिक्त अन्य वर्णन होने पर भी वह होली ही कहलायेगा। आज लोक प्रचलित होली के स्वरुप को देखने से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है।

जहाँ तक काव्यरूप के सम्पूर्ण स्वरूप का सम्बन्ध है वह तभी पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त करेगा जब विषय एवं गीत मे पूर्ण तादात्म्य हो। होली के वर्णन की शोभा होली गीत मे ही है। गीतो का सम्बन्ध लोक से है। इसी कारण इनका रूप निरन्तर विकसित होता रहता है। पद भी संगीत तत्व से युक्त गीत ही है। उनका उद्‌भव भी लोक क्षेत्र से हुआ है। अत. बौद्ध एवं नाथ सिद्धो ने अपने उपदेशों को लोक मे प्रचारित करने के लिए लोक-भाषा के साथ-साथ लोक-प्रचलित गीतो अथवा पदो को : जो परम्परा से प्रचलित थे अपनाया। उनकी सफलता ने ही कबीर आदि परवर्ती कवियो को उसी रूप की ओर आकृष्ट किया।

शैली को लेकर भी काव्यरूप खड़े किये गये। किसी विशिष्ट शैली मे किसी विशिष्ट विषय का वर्णन इस प्रकार को काव्य ग्रन्थों के अन्तर्गत किया जाता है। बारहखड़ी, बारहमासा, सम्बाद, नखशिख आदि अनेक काव्यरूप इस तत्व को आधार बनाकर प्रचलित हुये। शैली के आधार पर खड़े किये जाने वाले काव्यरूपो के निर्माण में विषय एव शैली इन दो तत्वो का अनिवार्य सम्बन्ध रहता है फिर भी तत्वशैली ही प्रधान होता है। शैली के रूढ़ हो जाने पर विषय के सम्बन्ध मे अपवाद शैली दिखाई देने लगते है।

विषय के आधारपर खड़े किये गये रूपों मे इसी तत्व की प्रधानता मिलती है 'मगल' एवं 'ज्ञानोपदेश परक' ग्रथो मे विषय की ही प्रधानता दिखाई देती है। मगल एव सोहर मूलत' छन्द है जो प्रारम्भ से ही लोक प्रचलित रहे है। मगल का सम्बन्ध विवाह से है। विवाह अथवा यज्ञोपवीत के अवसर पर यह गाया जाता है। प्रारम्भिक विवाह वर्णन वाले काव्यो मे इस छन्द के प्रयोग से इन काव्यों की

संज्ञा भी 'मंगल' दी गई और कालान्तर मे इस रूप का सम्बन्ध छन्द से टूट कर विषय से जुड गया। 'सोहर' छन्द से भी छन्द का बोध न होकर उसके विषय का ही बोध होता है। आलोच्यकाल के ऐसे अनेको काव्य-ग्रन्थ प्राप्त होते है जो ज्ञानोपदेशपरक है और इनमे विषय को छोडकर और किसी तत्व के आधार पर सामंजस्य स्थापित नही किया जा सकता है।

संख्या के आधार पर बनने वाले रूप वस्तुत. मुक्तक के ही भेद हैं क्योकि ऐसे काव्यो मे छन्द एव विषय दोनो ही मुक्तक रूप मे उपस्थित रहते है। ऐसे रूपो से छन्दों की सख्या का ही बोध होता है। सख्या वाले रूपो के निर्धारण मे ग्रन्थ की संज्ञा से बहुत योग प्राप्त होता है।

रूप निर्धारण मे ग्रन्थ की संज्ञा भी महत्वपूर्ण योग देती है। कवि जब ग्रन्थ का नामकरण करने का प्रयास करता है तब उसके समक्ष उस काव्य मे व्यवहृत रूप उपस्थित रहता है और वह काव्य का नामकरण ऐसा करता है जिससे ग्रन्थ का नाम सुनकर ही उसके रूप का आभास हो सके। जिन काव्य ग्रन्थो मे ग्रथ की सज्ञा एव रूप में साम्य उपस्थित रहता है वही रूप की दृष्टि से सफल काव्य कहे जा सकते है। तुलसीदासजी ने अपने ग्रन्थ की संज्ञा 'रामचरित मानस' दी तो उसमे राम के पुनीत चरित्र का वर्णन करने से पूर्व उसे 'मानस' सिद्ध भी किया। जो विद्वान 'रामचरित मानस' को पुराण सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं वह कवि के ग्रन्थ-रचना के अभिप्राय पर ध्यान नही देते। कवि का उद्देश्य पुराण लिखने का न होकर रामकथा अथवा रामचरित लिखने का ही है—

'एहि माँहि रघुपति चरित उदारा'

जिस शैली के आधार पर उसे पुराण कहा जाता है उस शैली के प्रयोग का कारण पूर्ववर्ती कथा-काव्यो मे प्रयुक्त शैली के अनुकरण के साथ-साथ रामकथा की प्राचीनता तथा राम के लोकोत्तर एवं परम कल्याणकारी रूप के महत्व को स्थापित करना भी है।

विषय के आधार पर खड़े किये गये रूपों मे तो इसी तत्व की प्राधानता है शेष तत्वो के आधार पर जितने भी रूप आलोच्यकाल में खड़े किये गये है सभी का किसी न किसी प्रकार विषय से भी सम्बन्ध है। इस प्रकार इन रूपों मे एक से अधिक तत्वो का समावेश दिखाई देता है। काव्यरूप ऐसी वस्तु नही है जो काव्य मे कहीं बाहर से लाकर टाँक दी गई हो। वह तो अनुभूति एव अभिव्यक्ति के ऐक्य का परिणाम है। इसी काव्यरूप का विषय से अनिवार्य सम्बन्ध रहता है। जब कभी रूप का विषय के साथ समन्वय स्थापित कर पाता है तभी वह सफल कहा जा सकता है

काव्यरूपों के विभाजन का वृक्ष इस प्रकार है :—

---
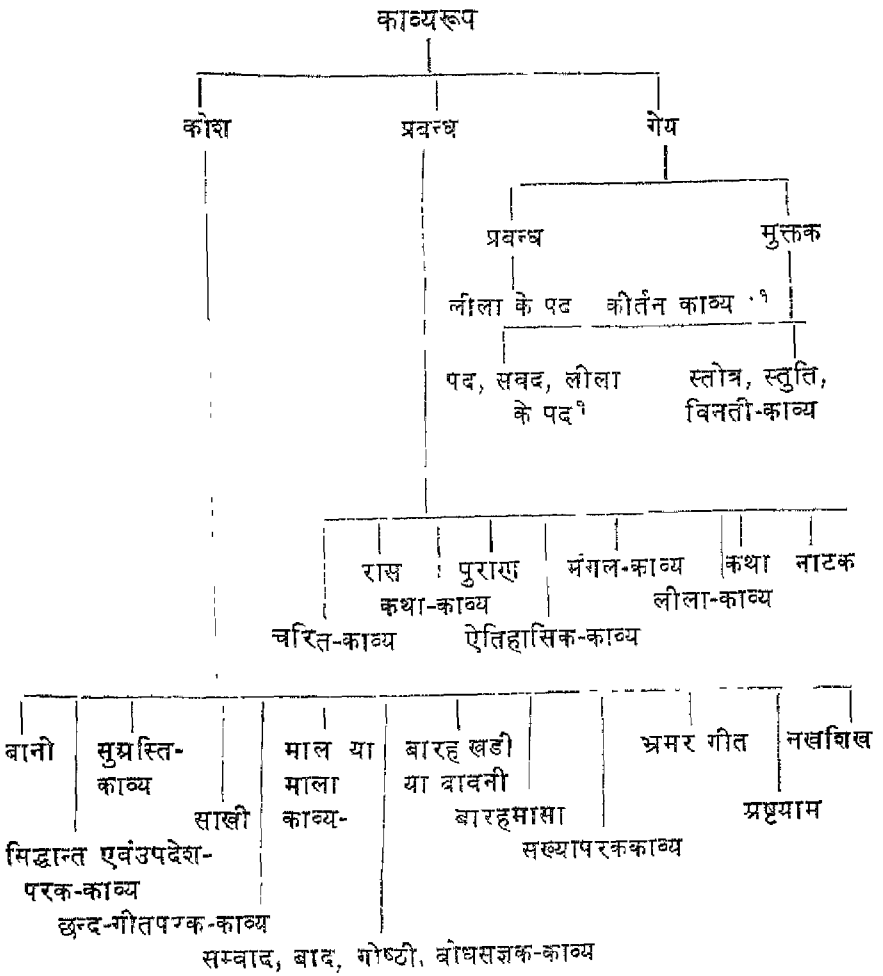
१. यह एक ही काव्यरूप है। प्रबन्ध रूप मे होने के कारण ही 'कीर्तन-काव्य' की लीला के पदो के एक प्रकार विशेष के रूप मे यहाँ अलग दिखाया गया है।

१५वीं से १७वीं शताब्दी तक भारत की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दशा

• प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

१५वीं शताब्दी से १७वीं शताब्दी तक की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दशा

साहित्य---साहित्य जीवन का मुखरित रूप है। मानव जाति के भावों, विचारों और संकल्पों की आत्मकथा साहित्य के रूप में प्रसारित होती है। इसलिए जिन बातों का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव और जीवन पर पड़ता है उनका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है। जीवन की मूल प्रेरणाएँ ही साहित्य की मूल प्रेरक शक्तियाँ हैं।[1] इन प्रेरक शक्तियों के विषय में विवाद है। बृहदारण्यक उपनिषद में पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा तीन प्रेरणाएँ मानी गई है।[2] यूरोप में इन्हीं प्रेरणाओं के अध्ययन के लिये मनोविश्लेषण-शास्त्र का जन्म हुआ इन प्रेरणाओं के बारे वहाँ तीन समुदाय हैं---१. फ्राएड, २ एडलर, ३ जुग। जुग का मत[3] भारतीय दृष्टिकोण से मिलता-जुलता है। आत्म-प्रेम को उपनिषदों में सब क्रियाओं का प्रेरक माना है तथा बृहदारण्यक की तीनों कामनाओं को निम्न श्रेणी का ठहराया है।[4] कामवासना और प्रभुत्वकामना दोनों से आत्म-प्रेम श्रेष्ठ है।

---

[1] काव्य के रूप--गुलाबराय, पृष्ठ ४०।

[2] एवं वै तदात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रेषणाश्च, वित्तेषणाश्च, लोकेषणाश्च व्युत्थायाय भिक्षाचर्यं चरन्ति। बृहदारण्यक ३।५।१

[3] जुग---जुग ने जीवनधारा को मुख्यता दी है। उसके मतानुसार कुछ लोगों में कामवासना का प्राधान्य रहता है और कुछ में प्रभुत्व कामना का। जिनमें कामवासना का प्राधान्य होता है वह दूसरों का ध्यान रखते हैं। अतः उनको उसने वहिर्मुखी तथा जो प्रभुत्व कामना का भाव रखते हुए अपनी ही चिन्ता करते हैं उनको अन्तर्मुखी की संज्ञा दी है।

विशेष विवरण के लिए देखिए---डा० गुलाबराय--काव्य के रूप पृ० ४१--४२।

[4] नवावरे वित्तस्य कामाय वित्त प्रिय भवति, आत्मानस्तु कामाय वित्त प्रिय भवति। सहोवाच नवाजरे पत्यु कामाय पति प्रियो भवति, आत्मानस्तु कामाय पति प्रियोभवति।

बृहदारण्यक २।४।५:

साहित्य शब्द भी हमे आत्महित की भावना की ओर अग्रसर करता है। "सहितस्य भाव साहित्य"। सहित होने का भाव ही साहित्य है। सहित के भी दो अर्थ है—१ हितेनसह सहित, २. एक साथ। इन अर्थो से साहित्य की परिभाषा श्री बाबू गुलाबरायजी इस प्रकार देते है। 'जो हमारे भावों और विचारो को इकट्ठा रख कर या मानव जाति मे एकसूत्रता उत्पन्न कर अथवा जो काव्य के शरीरस्वरूप शब्द और अर्थ को परम्परानुकूलता द्वारा सप्राण बनाकर मानव जाति का हित सम्पन्न करे वही साहित्य है।[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि साहित्य के भिन्न-भिन्न रूप आत्म के ही स्वरूप है। इसी भावना से प्रेरित होकर प्रत्येक कवि तत्कालीन समाज मे अपनी स्थिति को सुदृढ बनाने के लिए सचेष्ट होता है। उसके कवित्व को स्थिर करने मे १. जाति, २ स्थिति और ३ काल तीन बाते सहायक होती है।[2] यही परिस्थितियाँ व्यक्ति की उन विचारधाराओ तथा भावनाओं को प्रभावित करती है जिनके द्वारा साहित्य मे नए नए काव्यरूपो का जन्म होता है। इसलिए काव्यरूपों के अध्ययन मे पूर्व तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन अपेक्षित है।

विक्रम की चौदहवी शताब्दी से पूर्व हिन्दी-साहित्य मे निम्न काव्यरूप प्रचलित थे।[3] १—चरित काव्य, २—कवित्त-सवैया, ३—बरवै, ४—दोहा, ५—मंगल काव्य, ६—सबद, ७—रमैनी, ८—कहरा, ९—वसन्त, १०—चाचर, ११—रासक, १२—फाग, १३—लीला के पद, १४— आल्हा या वीर छन्द, १५—सोहर, १६—हिंडोला तथा वीर काव्यो के छप्पय, तोमर आदि छन्द।

उपर्युक्त काव्यरूपो को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि यह काव्यरूप १४वी शताब्दी के पूर्व की परिस्थितियो के अनुकूल ही थे। मुसलमान भारत को आक्रान्त कर रहे थे। हिन्दू राजा एक-एक करके उनके द्वारा परास्त हो रहे थे। अपनी रक्षा के लिए उन्हें निरन्तर युद्ध करने पड़ रहे थे। उनके दरबारी कवि तथा आश्रित चारण, भाट देश पर बलिदान होने के लिए अपनी कविता मे वीरो के अन्दर जोश भर रहे थे। बड़े-बड़े राजाओं के जीवन वृत्त को बढा चढा कर चरित-काव्य भी लिखे गए। आल्हा, कवित्त तथा छप्पय आदि छन्द वीर रस की कविता के प्राण थे। दूसरी ओर सिद्ध तथा जोगी साखी, सबद, रमैनी तथा दोहों के द्वारा सामान्य जनता को अपने उपदेशामृत से लाभान्वित कर रहे थे।

[1] गुलाबराय—काव्य के रूप, पृष्ठ ४४।

[2] श्यामसुन्दर दास-साहित्यालोचन, पृष्ठ ५३।

[3] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ १०१—१०४।

वरमनिरूपन के लिए तथा विवाह वर्णन के लिए मगलकाव्य लिखने की प्रथा चल रही थी। 'पृथ्वीराज रासो का 'विनय मगल' तथा कबीर का 'आदि मगल' इसके प्रमाण है। दोहा छन्द अपभ्रंश का है। सातवी आठवी शताब्दी मे शृंगार, वीर, धर्म और नीति के वर्णन करने मे इसका प्रयोग होने लगा। बौद्ध सिद्ध, नाथ जोगियो तथा कबीर जैसे सन्तो ने इसे अपने उपदेशो का माध्यम बनाया और अन्त मे तुलसी ने इसे राम-भक्ति-निरूपण के लिए प्रयोग किया। इस काल के कवियो ने लोक प्रचलित काव्य-रूपो को भी अछूता न छोडा। बसत, चाचर, फाग, हिंडोला तथा सोहर जैसे गीतो की भी परम्परा चल पडी।

उपर्युक्त काव्यरूप उन परिस्थितियो का ही परिणाम थे जिनमे कि वह प्रचलित थे। इसी कारण १४वीं से १७वी शताब्दी तक के काव्यरूपों के अध्ययन से पूर्व तत्कालीन परिस्थितियो का अध्ययन आवश्यक है। इस प्रकरण मे आलोच्य काल की इसी पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है।

१—राजनैतिक दशा—

(क) शासक एवं शासन केन्द्र—इस काल मे हिन्दी-क्षेत्र का शासन-सूत्र मुसलमान शासकों के हाथ मे रहा। तुगलक, सैयद, लोदी, सूर और मुगल-वंशों के उन्नीस बादशाहो ने इस क्षेत्र पर शासन किया। प्रारम्भ मे दिल्ली ही राजनीति का केन्द्र थी लेकिन सिकन्दर लोदी ने अवध और दुआव के विद्रोहो को कुचलने के लिए आगरा को भी राजधानी बनाया। तब से दिल्ली और आगरा दोनो ही राजधानी का पद प्राप्त किए रहे। अकबर ने आगरे के निकट फतेहपुर सीकरी को भी सुन्दर महलो से अलकृत कराकर राजधानी बनाया।

(ख) राज्य विस्तार—शासनक्षेत्र के विस्तार के लिये इस काल के सभी शासको ने अपने पडोसी शासको से युद्ध किये। पन्द्रहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे सम्पूर्ण उत्तर भारत और दक्षिण भारत का बहुत बडा भाग दिल्ली केन्द्र से शासित होते थे। अत. उस काल मे चीन पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। यद्यपि इस प्रयत्न मे सफलता प्राप्त नही हुई लेकिन पहाड़ी जातियों पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया।[1] बाद के तुगलक शासक तो अपने राज्य से पृथक होकर स्वतन्त्र शासक बन बैठने वाले सरदारो से युद्ध करने मे ही प्रवृत्त रहे। मुहम्मद तुगलक के समय का विशाल साम्राज्य अनेक स्वतत्र राज्यो मे विभक्त हो गया और अनेक वशो के अनेको बादशाहो द्वारा किये गये युद्धो से भी उसमें उतना विस्तार नही आ पाया। अकबर ने अनेको युद्धो के पश्चात् सम्पूर्ण उत्तर भारत तथा दक्षिण के कुछ भागों पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित किया। उसकी मृत्यु के समय आगरा केन्द्र

[1] बरानी—तारीखे फिरोजशाही, बिबलिथिका इडिका पृष्ठ ४७७।

से शामिल होने वाले राज्य—बगाल, उडीसा, बिहार, इलाहाबाद, अवध, आगरा मालवा, खान देश, बरार, गुजरात अजमेर, दिल्ली, लाहौर, मुलतान तथा काबुल थे।[1] अगले सौ वर्षों मे राज्य की सीमाओ मे निरन्तर विस्तार होता रहा और दक्षिण का बहुत बड़ा भाग भी मुगल साम्राज्य का अग बन गया। इस राजनैतिक एकता ने सास्कृतिक एकता के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

(ग) **प्रजा की शान्ति**—इस तीन सौ वर्षों के लम्बे समय मे होने वाले युद्धो मे अधिकाश प्रजा शांत बनी रही। शासको की हार जीत मे उसने कोई सम्बन्ध नही रखा। अधिकारियो के विद्रोह के कारण राज्य की सीमा घटने-बढने तथा शासक वशो के परिवर्तन ने उसे प्रभावित नही किया। लेकिन कई बार शासको के अत्याचार एव उनकी अशक्तता के फलस्वरूप व्याप्त अव्यवस्थित दशा के प्रति प्रजा शांत नही रह सकी और उसने विद्रोह किया। मुहम्मद तुगलक के समय मे दुआब के किसानो के विद्रोह का कारण अकाल के समय प्रजा पर बढाया गया कर तथा उसे वसूल करने मे अधिकारियो की कठोरता ही था। सैयद और लोदी वश के शासको की अयोग्यता के कारण उनका शासन काल प्रजा के विद्रोहो का ही काल है।[2] तुगलक बादशाहो से लेकर लोदी बादशाहों तक के काल मे उत्तर भारत की प्रजा कभी पूर्ण शान्त नही रही। वह शासको के अत्याचारो के विरुद्ध विद्रोह बनी रही। प्रजा के प्रति शासको के दृष्टिकोण परिवर्तन के अभाव मे उन विद्रोहो का कभी पूर्ण दमन नही किया जा सका। विद्रोहो की दशा उस विषैले फोडे के समान थी जो एक स्थान से रोकने पर दूसरे स्थान से फूट निकलता है। शेरशाह और अकबर जैसे श्रेष्ठ शासको ने जब यथाशक्ति प्रजा को सुखी बनाने का प्रयत्न किया तो प्रजा भी शान्त होकर सुखी जीवन व्यतीत करने लगी।

(घ) **शासको की योग्यता**—श्रेष्ठ और उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण तभी सभव है जब राज्य मे सर्वत्र शाति रहे। प्रजा की शाति का सीधा सम्बन्ध शासको की योग्यता से है। योग्य शासक परिस्थितियों के अनुकूल प्रजा का हित साधन करता हुआ उसके बहुमुखी विकास की व्यवस्था करता है। ऐसे ही शासक इतिहास मे महान् शासको की श्रेणी मे रखे जाते है।

भारतीय इतिहास के मध्यकाल मे कई योग्य शासको ने दिल्ली पर राज्य किया। मुहम्द तुगलक, जिसकी तुलना बरनी ने अरस्तू और आसफ से की

[1] आईने अकबरी, भाग २, पृष्ठ १२६-१३०।

[2] इलियटव—हिस्ट्री आफ इडिया, भाग ४ पृष्ठ ७८।

है।[1] शेरशाह से पूर्व तक के समस्त शासकों में योग्य था। पक्का मुसलमान होते हुए भी धर्म के प्रति सहिष्णुता की नीति उसकी योग्यता की द्योतक है।[2] यद्यपि उसके कार्य मध्य काल के इतिहास में अद्भुत बुद्धिमानी के सूचक थे तथापि अधिकारियों के असहयोग के कारण उसे प्रत्येक कार्य में असफलता ही मिली। बाद के अन्य अनेक शासक योग्य होते हुये भी अपनी धार्मिक नीति के कारण प्रजा का हृदय जीतने में असफल रहे। शेरशाह ने, जो अपनी योग्यता के बल पर ही दिल्ली का शासक बना था, अपने शासन काल में अपनी योग्यता का पूर्ण परिचय दिया। उसमें एक श्रेष्ठ शासक के सभी गुण वर्तमान थे। अकबर से पूर्व दिल्ली पर शासन करने वाले शासकों में वही प्रजा का सच्चा हितैषी शासक था।[3] उसने उत्तर भारत में शान्ति स्थापित की तथा प्रजा की भलाई के लिए अनेकों ऐसे सुधार किए जिन्हें अकबर ने भी अपने राज्य काल में अपना कर शेरशाह की योग्यता को स्वीकार किया। श्री स्मिथ के अनुसार वह इतना योग्य था कि यदि उसे अधिक समय भारत पर शासन करने का अवसर मिलता तो मुगलों का भारत में राज्य न हुआ होता।[4] अकबर की योग्यता का प्रमाण उसकी हिन्दुओं के प्रति नीति है। वह जानता था कि हिन्दुओं की सहायता के बिना कोई भी अहिन्दू राज्य भारत में सफल नहीं हो सकता। उसकी धार्मिक उदारता ने हिन्दुओं को उसका भक्त बना दिया। यूरोप में जिस समय धर्म के नाम पर अत्याचार किए जा रहे थे, अकबर की योग्यता के कारण भारत में वह गौण विषय बना हुआ था। स्टैनली लैनपूल के शब्दों में वह भारत का योग्यतम शासक था।[5] स्मिथ के अनुसार वह जन्मजात शासक था।[6] उसने प्रजा के हित के लिए जो कार्य किए उनसे प्रजा को बड़ी शान्ति मिली। अकबर के राज्य काल में उसकी नीति के फलस्वरूप ही, हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों का प्रणयन संभव हुआ।

(ड) **राजनीति का स्वरूप**—भारत के मुसलमान शासक धर्म और शासन दोनों में सर्वोच्च सत्ता प्राप्त किए हुए थे लेकिन उन्हें राजनीति में भी कुरान के नियमों का पालन करना पड़ता था। मुल्ला और मौलवियों का राजनीति में प्रमुख हाथ था। कुछ प्रतिभाशाली शासकों ने इस प्रभाव से ऊपर उठकर भी कार्य किया।

---

[1] बरनी—तारीखे फीरोजशाही—बिबिलिथिका इंडिया, पृष्ठ ४६१।

[2] डा० ईश्वरी प्रसाद—मैडीवल इंडिया, पृष्ठ २६७।

[3] इर्कसन—हिस्ट्री आफ इंडिया, पृष्ठ ४४१—४३।

[4] आक्स फोर्ड-हिस्ट्री आफ इंडिया, पृष्ठ ३२७—२६।

[5] मैडीवल इंडिया, पृष्ठ २८८।

[6] अकबर दी ग्रेट मुगल, पृष्ठ २५२—५३।

१४ वीं और १५ वीं शताब्दियों में राज्य पूर्णरूपेण सैनिक संगठन पर ही आधारित था। सेना में सैनिक मुसलमान ही होते थे जिन्हें मुल्ला और मौलवियों के द्वारा धर्म के रक्षार्थ प्राण गँवाने को नित्य उत्साहित किया जाता था। उस काल में आदर्श मुस्लिम राज्य का एकमात्र उद्देश्य मूर्त्तिपूजकों का वध अथवा धर्म परिवर्तन ही था। जिन शासकों ने इससे ऊपर उठकर प्रजा के हित साधन का प्रयत्न किया उनमें से इस कार्य में वे ही सफल हो सके जो शक्तिशाली तथा प्रतिभा सम्पन्न थे अथवा उन्हें पग-पग पर 'इस्लामी पुरोहितों का विरोध सहन करना पड़ा। कहना न होगा कि अयोग्य शासकों के समय में इन मुल्लाओं का शासन कार्यों में बोल-बाला था। बाद में शेरशाह और अकबर के काल में शासन में राजनीति का स्वरूप पूर्णरूपेण बदल गया। राज्य का उद्देश्य सम्पूर्ण प्रजा का हित-साधन तथा सबको समान अधिकार प्रदान करना स्वीकार किया गया। राजनीति में हिन्दुओं को भी उच्च स्थान दिया गया और उनकी धर्म भावना को ठेस पहुँचाने वाले सम्पूर्ण नियम तथा कर हटा लिए गए।

युद्ध और धर्म रूढि प्रिय होने के साथ-साथ मुसलमान शासक साहित्य के प्रेमी भी थे। साहित्यिकों, कलाकारों और इतिहासकारों का उनके दरबारों में प्रमुख स्थान था। अमीर खुसरो १४ वीं शताब्दी के कई शासकों के दरबारों में रहा था। उसने हिन्दी भाषा में रचना करके तत्कालीन भाषा, साहित्य तथा लोक रुचि का अच्छा परिचय दिया है। फिर भी अकबर से पूर्व हिन्दी के किसी अन्य कवि को दरबार में आश्रय नहीं मिला। अकबर का दरबार हिन्दी कवियों का अच्छा आश्रय स्थान सिद्ध हुआ। राजनीति के स्वरूप में हुए परिवर्तन से अकबरी दरबार में तो हिन्दी-कविता पनपी ही, देश के अन्य भागों में भी उच्चकोटि का साहित्य रचा गया।

सांस्कृतिक दशा—मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् भारत में एक नए का युग सूत्रपात हुआ। पिछले सहस्रों वर्षों से भारतीय सभ्यता एक निश्चित मार्ग पर आगे बढ़ रही थी। उसने ग्रीक्, हूण और अरबों को भारत से खदेड़ दिया था तथा यूची, कुशन आदि को आत्मसात् कर लिया था।[1] जो विदेशी यहाँ की कला, भाषा, धर्म और साहित्य से प्रभावित हुए, वे इसी सभ्यता के एक अङ्ग बनकर रह गए। लेकिन १२ वीं शताब्दी में हुए तुर्कों के आक्रमण से यहाँ की सभ्यता को बड़ी ठेस लगी। धार्मिक जोश के कारण मुसलमानों को विश्व की कोई भी सभ्यता आत्मसात् नहीं कर सकती थी। इस्लाम ने खुदा की एकता, मुहम्मद की पैगम्बरी, कुरान

[1] डॉ० बेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृष्ठ ५५४—५५।
डॉ० यदुनाथ सरकार—इण्डिया थ्रू दी एजेज, पृष्ठ ४०।

की सच्चाई, बहिश्त और दोजख वगैरह के ऐसे कड़े और स्पष्ट सिद्धान्त बना लिए थे कि वह किसी भी सभ्यता का मुकाबिला कर सकती थी।[1] हिन्दू सभ्यता को अब एक ऐसी सभ्यता का सामना करना पड़ा, जो अजेय थी और जिसके पीछे शासकीय बल था। हिन्दुओं ने उनसे पृथक रहने की कामनाएँ अपने छुआछूत और जाति-पाँति के बन्धनों को और जकड़ दिया और उनके भारत में बस जाने पर उनके प्रति उदासीनता का भाव बनाए रखा।

(अ) सामाजिक दशा—

(१) **शासकीय दृष्टिकोण**— शासकों के मुसलमान होने के कारण मुसलमानों को राज्य की ओर से विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाती थी। शासन के समस्त उच्च पदों पर उन्हीं की नियुक्ति होती थी और सामान्य पदों पर भी हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों को ही प्रश्रय दिया जाता था। महत्त्वपूर्ण पदों पर मुसलमानों की नियुक्ति के कारण मुसलमान प्रजा शासकों के अत्याचारों से बची रहती थी। अकबर के राज्यकाल में जाकर मुसलमानों को सुविधाएँ मिलना बन्द हो गया। तबसे औरङ्गजेब के पूर्व तक हिन्दुओं को शासन में उच्च पद निरन्तर मिलते रहे और राज्य-कार्यों में उनका बोलबाला रहा।

(२) **हिन्दुओं की दशा**— हिन्दू अपने जीवन में सत्य और ज्ञान को प्रधानता देते थे। तत्कालीन इतिहास लेखकों ने उनकी न्याय-प्रियता ईमानदारी और पवित्रता की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। धर्म पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। धर्म भ्रष्ट होने से बचाने के लिए वे मुसलमानों से दूर रहते और उन्हें म्लेच्छ कहकर सम्बोधित करते थे।[2] इस्लाम अन्धभक्त हिन्दुओं को इस्लाम का सबसे बड़ा शत्रु समझते और उनसे घृणा करते थे। शासकीय दृष्टिकोण के एकांगी होने के कारण हिन्दुओं को राज्य-कार्य से हटना पड़ा था और जजिया भी देना पड़ा था। शासकों के नित्य नवीन अत्याचारों से उनकी दशा बड़ी ही सोचनीय हो गई थी। अनेक प्रलोभन एवं धमकियों के द्वारा उन्हें मुसलमान धर्म स्वीकार करने को विवश किया जाता था।[3] सूरी एवं मुगल बादशाहों के काल में जाकर हिन्दुओं की दशा सुधारने की ओर शासकों का ध्यान गया। अकबर ने हिन्दुओं की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाने वाले सब टैक्स बन्द करा दिए और उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त किया।

[1] डॉ० बेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृष्ठ ५५५।

[2] अलबरूनीज इण्डिया—भाग १, पृष्ठ १९—२०।

[3] इब्नबतूता पेरिस संस्करण-३. पृष्ठ १९७—९८।

फलत. हिन्दू पुराने अत्याचारो को भूलकर मुसलमानो से मिलने का प्रयत्न करने लगे ।

(३) **कुरीतिया**—तत्कालीन समाज मे अनेक कुरीतिया प्रचलित थी । कुछ कुरीतियाँ तो हिन्दुओ की अपनी निजी विशेषताएँ थी और कुछ मुसलमानों के सम्पर्क के कारण तत्कालीन समाज मे प्रविष्ट हो गई थी । मद्यपान और द्यूत बहुत प्राचीन काल से ही हिन्दुओं के सामाजिक जीवन का अभिन्न अग बने हुए थे। अनेक बादशाहो ने नियम बनाकर मद्यपान को रोकने की चेष्टा की लेकिन इसमे कभी भी पूर्ण सफलता प्राप्त नही हुई । कई शासक तो स्वयं ही उच्चकोटि के मद्य प्रेमी थे । सती प्रथा भी एक प्राचीन कुरीति थी जो इस काल मे भी समाज मे व्याप्त थी । कई बादशाहो ने नियम बनाकर तथा राज्य की ओर से मृत व्यक्ति की विधवा के भरण-पोषण का प्रबन्ध करके उसे रोकने के प्रयत्न किए[1] लेकिन इस प्रयत्न मे कोई भी शासक पूर्णत सफल नही हो सका । गुलाम बनाने की कुरीति मुसलमानों के ससर्ग का परिणाम थी । शाही महलो और अमीरो के घरो मे अनेको स्त्री-पुरुष गुलाम रहा करते थे । कभी-कभी तो उनकी सख्या लाखो तक पहुँच जाती थी ।[2] प्राय ये सब गुलाम मुसलमान बना लिए जाते थे । दास रखने की यह प्रथा मुगलकाल तक वर्तमान रही, हाँ उनकी सख्या मे कमी अवश्य हो गई ।

(४) **अन्ध विश्वास**—साधू और फकीरो की देश मे एक बडी सख्या थी । मुहम्मद तुगलक साधू और फकीरो की करामातो मे विश्वास करता था । मुगल-काल तक साधू और फकीरों का सर्वत्र स्वागत किया जाता था । अकबर स्वय आदर करता और उनकी दरगाहो का दर्शन करता था । हिन्दू स्त्रियाँ साधुओ को दान देने मे गौरव का अनुभव करती थी । हिन्दुओ का विश्वास था कि मृत्यु के समय नदी स्नान से समस्त पापों का क्षय हो जाता है । ग्रहण के अवसर पर दिए दान के अगले जन्म मे १०० गुना होकर मिलने का विश्वास भी प्रचलित था । ब्राह्मण और पुरोहित जिन्हे इन दोनो मे अच्छी प्राप्ति होती थी, इन विश्वासो के प्रसार मे बडा सहयोग देते थे । धार्मिक स्थानो मे बड़े-बड़े मेले हुआ करते थे । जगन्नाथ जी की रथयात्रा मे रथ के पहिये के नीचे कुचलकर मरना अतीव पुण्यकार्य समझा जाता था । ब्राह्मणो ने यहाँ तक अपने प्रपचों का विस्तार कर लिया था कि सुन्दर-सुन्दर कुमारी कन्याओ को चुनकर जगन्नाथ जी की शादी कराने का ढोंग रचना प्रारम्भ कर दिया था । इस प्रकार ब्राह्मण और पुरोहित अपने स्वार्थ

---

[1] बर्नियर—ट्रैविल्स इन मुगल इम्पायर, पृष्ठ ३०७—८ ।

[2] इलबर—ए हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृष्ठ १२१ ।

के लिए विशाल हिन्दू समाज को अन्धकार की ओर ले जा रहे थे।

(५) **स्त्रियों की दशा**--हिन्दू स्त्रियाँ प्राचीन समय से ही स्वतन्त्र वातावरण मे रह रही थी। उन्हे समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त था लेकिन मुसलमानो के भारत आगमन से उनकी स्वतन्त्रता पर रोक लगा दी गई। मुसलमान शासक और अधिकारियों की कुदृष्टि से बचने के लिए हिन्दू स्त्रियो तथा कन्याओ को 'पर्दे' का आश्रय लेना पड़ा। इब्नबतूता ने लिखा है कि हिन्दू अपनी स्त्रियो का आदर तो करते थे लेकिन कन्या के जन्म पर प्रसन्नता प्रगट नही की जाती थी। स्त्रियो की शिक्षा का प्रबन्ध था। बहु विवाह की प्रथा का भी प्रारम्भ हो गया था।[1] सती प्रथा का प्रचलन था जिसे रोकने के लिए अकबर ने स्त्रियो के पुनर्विवाह पर अधिक बल दिया था। मुसलमान स्त्रियों को भी पर्दे मे रखा जाता था। उन्हे अपने तीर्थ स्थानों में भी जाने की आज्ञा नही थी। नियम विरुद्ध आचरण करने पर उनके लिए दण्ड का विधान भी किया गया था।[2] इस सबसे यह स्पष्ट है कि इस काल मे स्त्री, समाज के निर्माण मे किसी भी प्रकार का योग देने मे असमर्थ हो गई और उसकी चेतना तथा स्वतन्त्रता का पूर्ण ह्रास हो गया।

(६) **भारतीय समाज पर शासक धर्म का प्रभाव**—विद्वानो का मत है कि तुर्क तथा अफगान शासन काल में उत्तर भारत की धार्मिक क्रियाओ तथा विचारो पर कोई भी प्रभाव नही पड़ा। 'डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के शब्दो में उसका वर्णन इस प्रकार है—'इस युग मे देश की करोड़ो जनता, जहाँ तक उसके धार्मिक विचारो तथा अनुष्ठानो का सम्बन्ध था, पूर्णत अप्रभावित रही। हमारे उच्च वर्गो ने निस्सन्देह दोनो धर्मो तथा सम्प्रदायो मे समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। ' ' 'सर्वत्र विदेशियो को सम्मानपूर्ण स्थान मिला और उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक हिन्दुओ को मुसलमान बनाने दिया गया। हमारे कुछ नेताओ, सुधारको एव आचार्यो ने खुले रूप एकता तथा मैत्री का उपदेश दिया।[3] इस युग में व्यवहार मे कट्टर होना ही अपने धर्म तथा समाज को इस्लाम के प्रभाव से बचाने का एकमात्र मार्ग था। इसलिए जाति-पाँति सम्बन्धी नियमों को अधिक जटिल बनाने का प्रयास हुआ। आचार-विचार के नए नियम बनाए गए। बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा तथा खान-पान मे जटिलता इसी का परिणाम थे। भक्ति आन्दोलन यद्यपि हिन्दुत्व और इस्लाम के सम्पर्क का प्रत्यक्ष फल नही

---

[1] इविड, भाग ३, पृष्ठ ३३७—३८।

[2] इलियट—हिस्ट्री आफ इडिया, भाग ३, पृष्ठ ३७०—८०।

[3] भारतीय समाज पर तुर्की शासन का प्रभाव, निबन्ध सैनिक दीपावली अङ्क, अक्टूबर १९५२ ई०।

था फिर भी कुछ हद तक उस पर इस्लाम की उपस्थिति का प्रभाव पड़ा। हमारे सुधारकों ने ईश्वर तथा धर्मों की एकता पर बल दिया। तुर्क-अफगान शासन का हमारी जाति के चरित्र तथा विचारों पर दूषित प्रभाव पड़ा। उच्च तथा मध्यवर्ग के लोगों को प्रतिदिन शासकों के सम्पर्क में आते समय, धर्म, संस्कृति आदि विषयों के सम्बन्ध में अपने विचार तथा भावनाओं को छिपाना पड़ता था। इससे उनके चरित्र में दास-भाव तथा चाटुकारिता का समावेश हुआ। हिन्दू चरित्र तथा आचरण की सरलता, वीरता, साहस आदि गुणों को खो बैठे।[1]

मुसलमान विजेता चाहते हुए भी अपने आप को हिन्दू-संस्कृति के प्रभाव से मुक्त न रख सके। जिन हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया वे अपने साथ अपने पूर्वजों के विचार एवं रीति-रिवाजों को भी लेते गए। मुसलमानों में पीरों, फकीरों और मकबरों की पूजा प्रचलित हो गई, यह हिन्दुओं में प्रचलित स्थानीय तथा जातीय देवताओं की पूजा का ही दूसरा रूप था। सूफी पंथ को भी वेदान्त से ही प्रेरणा प्राप्त हुई। शासन कार्यों में भी प्राचीन ढंग और परिपाटियों का ग्रहण करना उनके लिए अनिवार्य बन गया। मुसलमानों के रीति-रिवाज और शिष्टाचार के ढंगों में भी गम्भीर परिवर्तन हुए। मिस्टर टाइटस का यह कथन है कि 'हिन्दुत्व का इस्लाम पर प्रभाव, इस्लाम के हिन्दुत्व पर पड़े प्रभाव की अपेक्षा अधिक व्यापक है', उचित प्रतीत होता है।[2]

(आ) आर्थिक दशा—

(१) राज्य कोष तथा प्रजा की दशा—राज्य की आर्थिक दशा प्रजा की शान्ति पर निर्भर करती है। पीछे हम देख चुके हैं कि शेरशाह के शासन से पूर्व तक सम्पूर्ण उत्तर भारत में विशृंखलता व्याप्त थी। निरन्तर होने वाले युद्धों के कारण राज्य-कोष रिक्त था जिसे भरने के लिए नित्य नवीन कर लगाये जाते थे। परिणामतः सामान्य लोगों की दशा बड़ी ही सोचनीय थी। एकाध प्रतिभाशाली शासक ने जन कृषि आदि की उन्नति की ओर ध्यान दिया तो लोगों की दशा कुछ सम्भली लेकिन उनकी मृत्यु के पश्चात् फिर दशा की वैसी हो गई। स्थायी रूप से प्रजा की दशा का सुधार, शेरशाह के काल में आरम्भ हुआ। शेरशाह द्वारा प्रारम्भ किए सुधार, जो बाद में अकबर द्वारा पूर्ण हुए, किसानों के लिए बड़े ही लाभकारी

[1] भारतीय समाज पर तुर्की शासन का प्रभाव, निबंध—सैनिक दीपावली अङ्क अक्टूबर १९५२ ई०।

[2] डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव—'भारतीय समाज पर मध्यकालीन तुर्की शासन का प्रभाव' शीर्षक निबन्ध, सैनिक दीपावली अंक १९५२ ई०।

सिद्ध हुए परिणाम यह हुआ कि किसानो की दशा तो सुधर ही गई, राज्यकोष भी धन से पूर्ण हो गया। शाहजहाँ के काल तक प्रजा एवं राज्य की आर्थिक अवस्था अच्छी बनी रही। शाहजहाँ के काल मे पड़े अकालो ने प्रजा की तथा बादशाह की शान शौकत ने राज्य की आर्थिक दशा को फिर सोचनीय बना दिया। आगे के बादशाहो को धन का अभाव सदा ही बना रहा।

(२) **उद्योग तथा व्यापार**——ईसा की १४वी शताब्दी मे भारत का व्यापार पर्याप्त उन्नत दशा मे था। कपास, नील और अंगूरो के व्यापार से देश मे अपार धन की प्राप्ति होती थी। कारीगरी की जड़ाऊ चीजों के व्यापार मे भी धन आता था। विदेशी व्यापार के कारण उस काल मे बगाल धनधान्य से पूर्ण था। लेकिन राजनैतिक अव्यवस्था के कारण देश का व्यापार भी चौपट हो गया। शेरशाह ने सड़को आदि के निर्माण द्वारा उसकी उन्नति की चेष्टा की। विदेशी यात्रियो के वर्णनो से तत्कालीन उद्योग तथा व्यापार की प्रगति का हाल ज्ञात होता है। बर्नियर लिखता है कि भारत का व्यापार एशिया के पूर्वी, पश्चिमी तथा मध्य के देशो से होता था।[1] यहा की वस्तुओ की देश विदेश मे बहुत माँग थी। कृषि तथा व्यापार मे भारत उस काल मे दुनियाँ का सर्वश्रेष्ठ देश था। कारीगर तथा व्यापारी धनधान्य मे पूर्ण थे। सूरत वीरजीवोरा नामक व्यापारी उस समय दुनियाँ मे सबसे अधिक धनवान व्यक्ति था।[2]

(इ) कला——

मुसलमानो के दिल्ली पर शासन करने से पूर्व हिन्दू वास्तुकला अपने निश्चित मार्ग पर आगे बढ रही थी। इस काल मे देश मे सैकडो मन्दिरो, भवनो और मठो का निर्माण हुआ। दिल्ली के मुस्लिम शासक अपने साथ कलाकार नही लाये वल्कि यहीं के कलाकारो को अपनी रुचि के अनुसार निर्माण कार्यो मे नियुक्त किया। तत्कालीन कला के तीनो रूप वास्तुकला, संगीत तथा चित्रकला की विभिन्न शैलियो का हम सक्षेप मे नीचे वर्णन करेंगे।

(१) **वास्तुकला**——भारत मे भली-भाँति साम्राज्य की जडे जम जाने पर मुस्लिम शासक निर्माण कार्यो की ओर प्रवृत्त हुए। प्रारम्भिक वर्षो मे कुछ मस्जिदे, मीनारें, दरवाजे तथा मकबरे ही बनवाए गए जिनमे से कुतुबमीनार अब भी पर्याप्त प्रसिद्ध है। तुगलक काल मे नए शहर बसाकर उन्हे सुन्दर भवनो से अलकृत कराया गया। निर्माण का यह क्रम न्यूनाधिक मात्रा में मुगल काल के

---

[1] ट्रैविल्स इन मुगल इम्पायर, भाग २, पृष्ठ २०३–४।

[2] डब्लु० एच० मोरलैण्ड——फ्रौम अकबर टू औरगजेब, पृष्ठ १५३।

पूर्व तक चलता रहा। मुगलों का शासन काल वास्तुकला की उन्नति का चरम सोपान था। अकबर ने दिल्ली और आगरे के किलों का निर्माण कराकर उन्हें सुन्दर-सुन्दर भवनो से युक्त किया। फतेहपुर सीकरी की प्रसिद्ध इमारतें उसी के द्वारा निर्माण कराई गई। शाहजहाँ इस वंश का सर्वश्रेष्ठ कलाप्रेमी शासक था। ताजमहल, मोती मस्जिद, जामा मस्जिद, एतमादुद्दौला इस काल की कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने है।

१४वी शताब्दी के प्रारम्भ मे दिल्ली साम्राज्य से दूर बंगाल, जौनपुर, मालवा एवं गुजरात मे स्वतन्त्र शासकों ने वास्तुकला के विकास मे पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की। इन स्थानो पर बनी इमारतों मे महल, मकबरे, मस्जिद तथा दरवाजे ही अधिक है। उनमे से अनेक अपनी विशिष्ट शैली के कारण आज भी वास्तु-कला विशेषज्ञो को आकर्षित करते है।

(क) ढांचा—मुसलमान शासकों ने भारतीय कला के प्रचलित रूप को ही भवन निर्माण के लिए ग्रहण किया। पश्चिमी विद्वान तत्कालीन भारतीय कला को इस्लामी कला का स्थानीय रूप ही मानते है।[1] वास्तव मे मुसलमान चाहे किसी भी द्वीप मे क्यो न बसे हो, उन्होने वहाँ की कला को भी अपनी आवश्यकतानुसार ही ग्रहण किया। प्रारम्भिक इस्लामी इमारतो का ढाँचा भारतीय मन्दिरो के आधार पर ही है, जो अन्तर है वह आवश्यकताओ के आधार पर ही रखा गया है। वास्तव मे मन्दिर और मस्जिद दोनों ही भारतीय घर के समान थे। प्रारम्भ मे ऐसे समस्त मन्दिरों को अपने प्रयोग के लिए मुसलमानों ने मस्जिद के रूप मे परिवर्तित कर लिया था।[2]

(ख) अलंकरण—इमारतों को भव्यता प्रदान करने के उद्देश्य से मुसल-मानी शासको ने अलंकरण के अनेको ढंगों का प्रयोग कराया। बड़े बड़े गुम्बद, मीनार तथा कगूरो के प्रयोग ने इन इमारतों को आकर्षक बना दिया। सुन्दर सुन्दर खम्भो के ऊपर महरावों की सहायता से दीवान, सहन और प्रार्थना स्थलो का निर्माण हुआ। इमारतों की आकृतियाँ ज्यामितीय ढग की रखी जाने लगी। फर्श पर बहुरंगी सजावट कराकर उस पर अक्षर खुदवाए गए। बाद में—मुगलकाल मे—रगों के स्थान पर रगीन सगमरमर का प्रयोग प्रारभ हुआ। पत्थरो मे कटाई और जड़ाई के काम भी प्रारम्भ हुए। सजावट और भव्यता की दृष्टि से शाहजहाँ के काल की इमारतें अद्वितीय है उनमें सजावट के लिऐ उसकाल तक प्रचलित समस्त अलंकरणो का उपयोग किया गया है।

---

[1] कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग ३, पृष्ठ ५६८।

[2] वही. पृष्ठ ५७१।

(ग) वास्तुकला का स्वरूप—हावेल महोदय के मतानुसार मुसलमानी शासन के प्रारम्भिक काल की समस्त इमारतों का ढाँचा भारतीय है, जिसके स्वरूप मे शासक की इच्छानुसार कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है जो उसके विकास का द्योतक है। मुसलमानो ने भारतीय वास्तुकला के सभी ढगों को अपनी आवश्यकतानुसार ग्रहण किया।[1] मुगलकाल तक कला का यही रूप प्रचलित रहा। देश की आर्थिक दशा के अनुसार इनमे अलकरण का ह्रास अथवा विकास अवश्य हुआ लेकिन शैली तथा ढाँचा अपरिवर्तनीय रहे। मुगल सम्राट अकबर द्वारा निर्माण कराए भवनो मे जोधाबाई का महल तथा अन्य इमारतें भारतीय वास्तुकला के ज्वलत उदाहरण है। जहाँगीर का मकबरा, जामामस्जिद, पर्लमस्जिद तथा ताजमहल इन्डोपर्सियन कला के ही उदाहरण हैं।[2] जौनपुर की इमारतो का स्वरूप हिन्दू और जैन मन्दिरो से बहुत मिलता है। बर्गस महोदय के अनुसार जौनपुर की कला हिन्दू और मुगल कला के बीच की कडी है।[3] गुजरात की वास्तुकला का आदर्श आबू का जैन मन्दिर रहा। इसीलिए वहाँ की कला हिन्दू और जैन के सम्मिश्रण का विकसित रूप ही है। मालवा की इमारतों का स्वरूप भारतीय और इस्लामिक दोनो शैलियो का मिश्रण है। ईश्वरी प्रसाद के शब्दों मे यह कला विचित्र रूप से इस्लामिक है।[4]

वास्तुकला के स्वरूप के इस विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र मे भी राजनीति तथा समाज के समान सामञ्जस्य की भावना को ही प्रश्रय दिया गया। यह भावना तत्कालीन परिस्थितियो के मेल मे थी। उस समय के साहित्य मे भी हमे इस भावना के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं।

(२) चित्रकारी—बुद्धकालीन चित्रकारी के अन्त के साथ-साथ भारतीय चित्रकला का ह्रास हो गया। लगभग एक हजार वर्ष—अकबर के समय तक उसकी यही अवस्था रही। अजन्ता के पश्चात् अकबर के काल में ही चित्रकला के इतिहास का पता चलता है। इस बीच के समय की परिस्थितियाँ ही इसके विकास मे बाधक रही।

(ग) मुगल पेन्टिग—ईसा की १६वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे अकबर ने चित्रकारी की ओर ध्यान दिया। जहाँगीर और शाहजहाँ के कलाप्रेमी होने के कारण उनके शासन काल में चित्रकला अपनी उन्नति की चरम सीमा को प्राप्त

---

[1] कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इडिया, पृष्ठ ५७२।

[2] सरजार्ज डनवर—ए हिस्ट्री आफ इडिया, पृष्ठ २४५।

[3] इम्पीरियल गजेटियर, भाग २, पृष्ठ १८५।

[4] हिस्ट्री आफ मैडिवल इंडिया, पृष्ठ ६१३।

हुई। मुगल चित्रकला का उद्‌गम स्थान समरकन्द अथवा हिरात था, जहाँ १५वी शताब्दी मे 'इन्डो तैमूरी आर्ट' अपनी चरम उन्नति पर था।[1] बाबर इसी का समर्थक था तथा अकबर ने इसी का प्रचार कराया। वह चित्रकला को प्रोत्साहन देने के लिए प्रति सप्ताह प्रदर्शिनी का आयोजन करता था और श्रेष्ठ चित्रकारो को पुरस्कार देता था। अबुलफजल ने लिखा है कि दरबार के हिन्दू कलाकार सर्वश्रेष्ठ थे और दुनिया के कुछ चित्रकार ही उनकी तुलना कर सकते थे।[2] फर्रुख और अब्दुस्सयद जो अकबर के दरबार मे रहते थे, उस पर पड़े विदेशी प्रभाव के द्योतक है। जहाँगीर कालीन चित्रकला भी ईरानी प्रभावो से ओतप्रोत है।[3] भारतीय कलाकारो ने विदेशी तथा विदेशी कलाकारो ने भारतीय चित्रकला के गुणो को अपनाया और वह मिश्रित रूप ही प्रसिद्धि प्राप्त कर सका।

(ख) विशेषतायें—तत्कालीन चित्रों मे जीवन की वास्तविक घटनाओ, शिकार तथा युद्ध के दृश्य, किलों के घेरने के दृश्य, दरबारो के दृश्य, धार्मिक कहानी तथा प्राकृतिक दृश्य ही प्रमुख है। सामाजिक तथा गृहस्थ जीवन के चित्रो की न्यूनता है। तत्कालीन चित्रकारो ने हृदय के भावो को अकित करने का सफल प्रयास किया है। वास्तविकता उन चित्रो की सबसे बडी विशेषता है। मुगलकाल के चित्र कूची द्वारा निर्मित है जिनमे प्रकाश, छाया तथा प्राकृतिक दृश्यो का विशेष ध्यान रखा गया है। रगो का चुनाव तथा रूपरेखा की प्रौढ़ता भी महत्त्वपूर्ण है।

(३) संगीत—आदिकाल से सगीत व्यक्ति को प्रभावित करता रहा है। सगीत का क्रमिक इतिहास जानना कठिन कार्य है। सगीत के आदि गुरु शकर तथा पार्वती माने जाते है। पच मुख वाले होने के कारण उनके प्रत्येक मुख मे एक-एक राग उत्पन्न हुआ—१—श्रीराग, २—बसन्त, ३—भैरव, ४—पचम, ५—मेघ। साथ ही जगन्माता पार्वती जी के मुख से नट-नारायन राग का जन्म हुआ। अबुलफजल ने 'आईने अकबरी' मे इन ६ रागो के निम्न भेद दिये है:—[4]

१—श्रीराग:—मालवी, तिरोबनी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी तथा बिहारी।

२—बसन्त—देशी, देवागिरि, बैराटी, टोड़ी, लालटा तथा हिंडोली।

३—भैरवी—मध्यमादि, भैरवी, बंगाल, विराटक, सिन्दावी तथा पनुर्जनेव।

---

[1] पर्सी ब्राउन-इन्डियन पेन्टिग, पृष्ठ ४८।

[2] आईने अकबरी, भाग १, पृष्ठ ११४।

[3] पर्सी ब्राउन-इडियन पेन्टिग, पृष्ठ ४९।

[4] आईने अकबरी, भाग ३, पृष्ठ २६४।

४—पचम –विभाषा, भूपाली, कन्नड, : कान्हरा , वधसिका, मालश्री तथा पद मंजरी ।

५—मेघ.–मलार, सोरठ, आसावरी, कौमकी, गान्धारी तथा हार सिगारी ।

६—नट-नारायन'–कमौडी, कल्याण अहीरी, सुधानट, सालक तथा नट अहीर ।

इससे यह स्पष्ट है कि उस समय यह समस्त राग प्रचलित थे । इन रागो के अतिरिक्त बहुत प्रकार के गीत भी प्रचलित थे । दक्खिन मे मार्ग गीत तथा उत्तर मे देशी गीत गाए जाते थे । देशी गीतो मे ध्रुपद मुख्य था । इसका प्रचार आगरा के आस पास खूब था । ग्वालियर के दरबार में बडे-बडे सगीताचार्य रहते थे जो कि नए-नए रागो को जन्म दिया करते थे ।[1] प्रेम के वर्णन के लिए ध्रुपद सर्वोत्तम राग माना जाता था । यह कई नामो से उत्तरी भारत के भिन्न-भिन्न भागों मे प्रचलित था । क्षेत्रीय गीत भी प्रचलित थे । बगाल मे ध्रुपद को बगाल तथा बगाल तथा मथुरा मे गाए जाने वाले पदो को विष्णुपद कहा जाता था । मिथिला मे यही पद लचारी तथा पजाब में छन्द कहे जाते थे । दिल्ली में अमीर खुसरो ने एक नया गीत निकाला था जिसका नाम तराना रखा था । इन प्रचलित रागों के अतिरिक्त सारग, पूर्वी, धनाश्री, रामकली, सुघराई[2], सूहा, देसकाल आदि राग भी थे ।

संगीतज्ञ—अकबर के राज्य-काल मे कई प्रकार के संगीतज्ञो की श्रेणियाँ थी । यह श्रेणियाँ रागो के आधार पर थी । ध्रुपद गाने वालो को कलावन्त कहा जाता था । पजाबी छन्दो मे वीर रस की प्रधानता थी और उस श्रेणी के सगीतज्ञ ढाढी कहलाते थे । देहली के ढग पर कव्वालियाँ गाने वाले कव्वाल भी प्रचुर मात्रा मे थे । हुरकिया अपनी स्त्रियो के साथ हुरक बजाकर कडखा तथा ध्रुपद गाते थे तथा ढाढी स्त्रियाँ डफ तथा ढोलक पर ध्रुपद और सौहिलें गाती थी । इनके अतिरिक्त नट, कीर्त्तनियाँ ब्राह्मण, भगतिया, भाँड, कंजरी, बहुरूपिया, बाजीगर तथा अन्य समुदाय भी थे जो नाच गाने आदि के द्वारा समाज का मनोरजन किया करते थे ।[3]

अकबर के दरबार मे भी अनेक सगीतज्ञ थे । प्रतिदिन संगीत का आनन्द प्राप्त करने के लिए अकबर ने सगीतज्ञो को सात भागो मे बाँट कर प्रत्येक के लिए

---

[1] आईने अकबरी, भाग ३, पृष्ठ २६६ ।

[2] सुघराई, कुराह राग का अकबर के द्वारा दिया हुआ नाम है। वही, पृष्ठ २६७

[3] वही पष्ठ २७२

एक-एक दिन नियत कर दिया था। दरबारी सगीतज्ञो की सख्या बहुत बड़ी थी[1], जिनमें तानसेन प्रमुख था। उन गायको के अतिरिक्त विभिन्न वाद्यो के बजाने वाले प्रमुख कलाकार भी दरबार की शोभा थे। जहाँगीर और शाहजहाँ दोनो ही सगीत प्रेमी थे। उनका दरबार भी प्रमुख सगीतज्ञो के सगन से मुखरित हुआ करता था।[2]

(३) **साहित्यिक दशा**—हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल अथवा आदि-काल का अन्त राजनीति एव साहित्य दोनों ही क्षेत्रो मे क्रान्ति का प्रतीक है। मुसलमानों के आक्रमण ने जनता तथा साहित्य दोनो को ही अस्थिर कर दिया। हिन्दू अपने धर्म एव पवित्रता के रक्षार्थ और भी अधिक सचेष्ट हुए। जातिपाँति के बन्धनों को और अधिक जकड दिया गया। परिणाम यह हुआ कि अनेक नीची कही जाने वाली जातियाँ हिन्दुत्व से च्युत होकर बिना धर्म की ही रह गई। बहुत दिनो तक उनकी यही दशा रही और बाद मे उनमे से अनेको ने मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया। जाति-पाँति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच का विप सम्पूर्ण समाज मे व्याप्त होकर उसे विषाक्त करने लगा। फलत: महात्माओं और लोक-कल्याण की कामना करने वाले कवियो को इसे समाप्त करने के लिए प्रयत्न करना पडा। रामानन्द, कबीर तथा तुलसी प्रभृति विद्वान तथा महात्माओं ने उसका डटकर विरोध किया "जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।" आदि उक्तियाँ इसी अभिप्राय की पूर्ति की द्योतक है। उनकी देखा-देखी अन्य सन्तों ने भी इस मार्ग को प्रशस्त करने मे योग दिया और कालान्तर मे इस उद्देश्य से काव्य-रचना करने वाले कवियो का एक सम्प्रदाय ही बन गया।

पराजित हिन्दू जाति अपने त्राण का कोई मार्ग नही पा रही थी। राज-नैतिक पतन, पुरोहितों के आडम्बर तथा जातीय विशृङ्खलता ने हिन्दुओ के ज्ञान-क्षेत्र को सकुचित करने में पर्याप्त सहयोग दिया था। उनका आत्मबल लुप्त हो चुका था और वह सब कुछ भाग्य के भरोसे छोडकर स्वयं संसार से विरक्त से होकर पारलौकिक जगत के चिंतन में ही मस्त रहने लगे। "करम गति टारेहु नाहि टरै।" एव "सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ। हानि लाभ जीवन मरण जस अपजस विधि हाथ।" आदि उक्तियाँ हिन्दुओ की मानसिक स्थिति का सही चित्रण करती है। दुखी हिन्दू जनता को पुन. जागृत करने के लिए कुछ भक्तों ने उन्हे राजनीति से पृथक करके भक्ति मार्ग की ओर ले जाने का प्रयत्न

[1] आईने अकबरी, भाग १, पृष्ठ ६८०।

[2] ; आईने अकबरी, भाग १, पृष्ठ ६८१।

किया। जनता उस ओर झुकी और उसने राजनैतिक तन्तुवायो से अपने को विलग रखते हुए ईश्वर के सर्वगुण सम्पन्न रूप की उपासना को ही अपना ध्येय निश्चित किया। राजनैतिक व्यापारो से उनका कोई सम्बन्ध न था—"कोउ नृप होउ हमहिं का हानी।" अथवा "सतनु कहा सीकरी सो काम। आवत जात पनाहियाँ टूटी बिसरि गयो हरि नाम।" आदि वाक्य सामान्य व्यक्तियो की मनोवृत्ति के स्पष्ट उदाहरण हैं।

ऐसे ही समय मे जबकि समस्त उत्तर भारत मे सामान्य जनता के हृदय मे धर्म-भावना वर्तमान थी, दक्षिण मे आई हुई लहर अपना प्रभाव डाले बिना न रह सकी। दक्षिण मे भी जिन परिस्थितियो मे उसका विकास हुआ था वही उत्तर मे भी वर्तमान थी। रामानुजाचार्य जैसे श्रेष्ठ आचार्य ने दक्षिण भारत की नीच जातियो मे प्रचलित भक्ति को बड़ा मान दिया। परिणामत' धर्म की दृष्टि से वहाँ सब व्यक्ति समान माने गए। हाँ, सामाजिक व्यवहार मे जाति का भेद-भाव वहाँ अवश्य बना रहा। वही बात उत्तर भारत के वैष्णव महात्माओं मे आज भी विद्यमान है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि भक्ति के लिए जिस भावना की आवश्यकता होती है वह भावना उस समय उत्तर भारत की जनता के हृदय मे विद्यमान थी।[1] उसने भगवान के विविध अवतारो की ऐसी कल्पना कर रखी थी जिसके साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता था। अत. भगवान के विविध अवतार को लेकर उनकी लीलाओं का गान भक्त कवियो का मुख्य विषय बन गया। राम और कृष्ण की लीलाओ का अधिक विस्तार होने के कारण ही इस काल में उनकी प्रधानता रही। उनके लोक-कल्याणकारी रूप के चित्रण मे भक्तिकाल के कवियो की वृत्ति खूब रमी। अवतारवाद को आगे चलकर इतना महत्त्व दिया गया कि भगवान के अवतारो पर ही नही सन्तो के अवतारो पर भी विश्वास किया जाने लगा।[2]

उत्तर भारत मे भक्ति स्रोत को प्रवाहित करने में रामानन्द तथा वल्लभाचार्य का प्रमुख हाथ था। रामानन्द के शिष्यों में निर्गुणवादी तथा सगुणवादी दोनो प्रकार के भक्त थे। एक ओर तो कबीर, रैदास, पीपा आदि उनके शिष्य निर्गुण पंथी हुए और दूसरी ओर उन्ही की शिष्य परम्परा के नरहरिदास के शिष्य गो० तुलसीदास जी राम के सगुण रूप उपासक हुए। वल्लभाचार्य ने कृष्ण के लीलागान को ही प्रमुखता दी। इसीलिए कृष्ण का लोककल्याणकारी रूप गौण

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ६०।

[2] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ६२।

होकर उनका प्रेममय रूप ही आज सूरदास आदि कवियों की कविताओं के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। कृष्ण का यह प्रेममय रूप इतना लोकप्रिय हुआ कि अनेको सहृदय मुसलमान भी उसकी ओर झुके और उसी के होकर रह गए।

कुछ अशो मे भक्त कवियो ने हिन्दू और मुसलमानों को पास-पास लाने का प्रयत्न किया, लेकिन सन्त कवियो ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। परिस्थितियाँ भी उसमे सहायक हुई। हिन्दुओं के हृदय में भी मुसलमानो को समझने की आकाक्षा उत्पन्न हुई। डा० वर्मा के मतानुसार इस आदान-प्रदान एव धार्मिक विचारो के परिवर्तन ने ही हिन्दी साहित्य मे सन्तकाव्य को जन्म दिया।[1] इसमे ऐसे ईश्वर की कल्पना की गई जो दोनो को मान्य था। वाह्याडम्बरों का खण्डन इनका प्रमुख उद्देश्य था। कर्मकाण्ड से इसका कोई सम्बन्ध न था। मुसलमानो की मूर्ति-पूजा-विरोधी भावना का हल सन्त-मत मे प्राप्त हुआ। सन्तमत मे कबीर आदि अनेकों उच्च कोटि के साधक महात्मा हुए जिन्होंने अपनी वाणियो से सामान्य जनता को आप्लावित कर दिया।

इसी समय कुछ सूफी सन्त हिन्दू और मुसलमानो को पास-पास लाने के उद्देश्य को लेकर एक नए रूप में सामने आये। उन्होने ज्ञान का शुष्क मार्ग छोडकर प्रेम का सरस मार्ग अपनाया। और प्रेम को ही ईश्वर प्राप्ति का साधन ठहराया। उन्होने ईश्वर की भावना सूफीमत के अनुसार ही स्त्री रूप में की और मसनवी शैली के आधार पर लोक-प्रचलित प्रेम-कथाओ को लेकर काव्य रचना की। मुसलमान होते हुए भी इन्होंने हिन्दू प्रेम-कथाओ को अपने काव्य के लिये चुनकर अपने धार्मिक कौशल का परिचय दिया। अत हिन्दू जनता पर इनका प्रभाव पड़े बिना न रह सका। जायसी की पद्मावत इस प्रकार की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इन सूफी कवियो ने हिन्दी-साहित्य को 'प्रेम की पीर' मे आप्लावित कथाओं द्वारा पूर्ण करने के साथ-साथ भारतीय जनता के ज्ञानोपदेश के बवडर से झुलसे हुए हृदय को सिक्त एवं सरस बनाने मे बडा योग दिया।

भक्ति की यह लहर इतनी प्रबल वेग से समस्त उत्तर भारत मे फैली कि राजस्थान की डिंगल भाषा के कवि भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। यद्यपि चारण आदि राज्याश्रित जातियों की रचनाओ मे अब भी गुणगान एव वीर पूजा की भावनाओं का प्राधान्य था तथापि यह रचनाएँ स्फुट रूप मे ही अधिकतर प्राप्त होती है। इस प्रकार की रचनाओ का कोई उच्चकोटि का बडा ग्रथ उस काल मे नहीं लिखा गया। इसका कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ है जो राज-

[1] रामकुमार वर्मा, हि० सा० का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ १९३।

स्तुति सम्बन्धी ग्रन्थ प्रणयन के कदापि अनुकूल न थी। गुजरात जहाँ कृष्ण-भक्ति का प्रचार बाद मे हुआ इस काल मे जैन धर्म का प्रधान केन्द्र बना हुआ था। जैन कवि एव आचार्य अपने धार्मिक सिद्धान्तो एव उपदेशो से युक्त रचनाओ मे ही लगे हुए थे। राजस्थानी-गुर्जर भाषा मे लिखे गए अनेक रास, फागु, चच्चरी, विवाहला आदि सज्ञक ग्रन्थ उस काल के प्राप्त होते है। सिद्धान्त-प्रतिपादन एवं उपदेश देने के लिए लिखे गए इन 'रास' ग्रन्थो की संख्या कई सौ हैं।

तत्कालीन भाषा और साहित्य का स्वरूप एक सर्वेक्षण : अब तक के अनुसंधान में प्राप्त समस्त ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों का विवरण एवं उनकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता पर विचार

●● द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

तत्कालीन भाषा और साहित्य का स्वरूप एक सर्वेक्षण : अब तक के अनुसन्धान में प्राप्त समस्त ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों का विवरण एवं उनकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता पर विचार

तत्कालीन साहित्य का स्वरूप—प्रथम अध्याय मे आलोच्य-काल की जन्मदात्री परिस्थितियो पर विचार हो चुका है। यह काल हिन्दी साहित्य के गौरव का काल है। तुलसी, सूर, केशव, रहीम, नन्ददास, जायसी, पृथ्वीराज एव मीरा प्रभृति उच्चकोटि के कवि एव भक्त तथा कबीर, नानक, रैदास, दादूदयाल, सुन्दरदास प्रभृति सन्त एव उपदेशक इस काल मे उत्पन्न हुए। इन विभूतियों ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से प्रणीत साहित्य द्वारा हिन्दी-साहित्य को पुष्ट किया। हिन्दी-साहित्य के सूर, चन्द्र एव उडुगन तीनो ही इस काल मे उत्पन्न हुए जो आज भी साहित्याकाश को अपनी प्रभा से प्रकाशित कर रहे है।

यद्यपि इस काल मे भक्ति-परक रचनाओं की ही प्रधानता रही तथापि ज्ञान, उपदेश, नीति, शृङ्गार, रीति एव अन्य विषयों पर भी अनेकों उच्चकोटि के ग्रन्थो का प्रणयन हुआ। डिंगल भाषा में चारणो ने अपनी सुप्रसिद्ध शैली के आधार पर वीररस पूर्ण कृतियो का निर्माण किया। ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं को कवि-कल्पना द्वारा अतिरञ्जित करके पुराने प्रसिद्ध कवियो की रचनाओं को नवीन रूप प्रदान किया गया। जैन साधुओ तथा कवियो ने इस काल मे साहित्य-सृजन मे बहुत योग दिया। उनका साहित्य आज भी जैन मन्दिरो एव ग्रन्थागारों में सुरक्षित है।

आलोच्य-काल के साहित्य को मुख्य रूप मे चार भागो मे विभक्त किया जाता है :—(१) ज्ञान मार्गी सत-साहित्य, (२) प्रेम-मार्गी सूफी-सन्त-साहित्य (३) राम-भक्ति-साहित्य, (४) कृष्ण-भक्ति-साहित्य। नीचे उक्त चारों प्रवृत्तियों के अन्तर्गत होने वाले प्रमुख कवियों एवं उनके द्वारा प्रणीत साहित्य के स्वरूप पर संक्षेप में विचार करेंगे।

१. ज्ञानमार्गी सन्त-साहित्य :—परिस्थितियो की आवश्यकतानुसार ज्ञान मार्गी सन्त कवियो ने ऐसी भक्ति-भावना का प्रचार करना प्रारम्भ किया जो हिन्दू एव मुसलमान दोनो को ग्राह्य हो सके। उन्होने ईश्वर के प्रगट गुणों की व्याख्या न करके उसे सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, निर्गुण, अखण्ड ज्योतिस्वरूप, एव सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप मे स्वीकार किया। ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन आत्म-ज्ञान ठहरा कर उन्होंने कर्मकाण्ड एव उपासना का खण्डन किया। परिणाम स्वरूप जहाँ एक ओर हिन्दुओ के अवतारवाद, मूर्त्तिपूजा, तीर्थ, व्रत आदि का खण्डन किया गया, वहाँ दूसरी ओर पैगम्बर, नमाज, रोजा, हलाल आदि का भी डटकर विरोध किया गया। इस मत मे इन सब बातो को छोड दिया गया। जिनके कारण दोनो मे विरोध होने की सम्भावना थी। इस प्रकार के कवियो मे कबीर प्रमुख थे। उन्होने अपनी रचनाओ मे जो कि फुटकर दोहे, साखी, पद, सबद एव दोहे-चौपाई के रूप मे प्राप्त होती है, ईश्वर पूजा के सम्बन्ध मे प्रचलित वाह्या-डम्बरो का खण्डन करके शुद्ध ईश्वर-प्रेम और सात्विक जीवन का उपदेश दिया। ज्ञानोपदेश इस साहित्य का प्रधान लक्ष्य था। इस मे भक्ति-साहित्य की सी सरसता का पूर्ण अभाव है। यही कारण है कि शिक्षित एव उच्च वर्ग इसकी ओर बहुत कम आकर्षित हुआ। साहित्य के क्षेत्र मे यह अधिक महत्त्व का न होने पर भी धार्मिक क्षेत्र मे अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। निम्न वर्ग इसी मत के साहित्य की ओट प्राप्त करके मुसलमानी शासको के अत्याचारों के समक्ष अपने धर्म की रक्षा मे समर्थ हो सका।

कबीर के अतिरिक्त रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, सुन्दरदास आदि अनेक सन्त कवियो ने अपनी रचनाओं द्वारा सत-साहित्य को भरा। इन कवियों ने अधिक-तर कबीर को आधार मानकर साखी, सबद एव पदो मे ही रचना की। सुन्दरदास अकेले ऐसे व्यक्ति थे जो पढे लिखे एव विद्वान थे। अत: उनकी रचनाओ मे विवि-धता एवं नवीनता के दर्शन भी होते है। सत-साहित्य का प्रचार बडी तीव्रता के साथ हुआ। इन सन्त कवियो के अनुयायियो की संख्या भी बहुत बढ गई और धीरे-धीरे उन अनुयायियो मे से प्रमुख-प्रमुख सन्तों ने स्वतन्त्र रूप से अपने-अपने अलग पथो की स्थापना की। फलत: कालान्तर में सन्त सम्प्रदाय अनेक सम्प्रदायो मे विभक्त हो गया। लेकिन उनके साहित्य मे उन्ही पूर्वकालीन सन्तो की वर्णित बातो का पिष्टपेषण होता रहा।

२. प्रेम मार्गी सन्त-साहित्य—इस्लामी शासन का दूसरा बड़ा प्रभाव साहित्य

[1] डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ १६४।

मे प्रेम काव्य के रूप मे प्रगट हुआ। सूफी संतो ने सामान्य-जन की भावनाओं को ध्यान मे रखकर प्रेम-कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया। भारत मे आने के पश्चात् सूफी मुसलमान भारतीय वेदान्त के अद्वैतवाद से प्रभावित हुए।[1] भारतीय भी इन सूफियो के सादा जीवन, उच्च विचार एव 'प्रेम की पीर' से प्रभावित हुए और धर्म-जिज्ञासु धीरे-धीरे उनकी ओर आकृष्ट होने लगे। इन सूफियो ने भारतीय लोक-जीवन मे प्रचलित कथाओं को माध्यम बनाकर अपने आध्यात्मिक विचारो का प्रचार करना प्रारम्भ किया। इन कहानियो मे लौकिक प्रेम के द्वारा उस प्रेम तत्त्व का आभास दिया गया है जो ईश्वर से मिलाने वाला है। इन सब कथाओं का विषय तो वही बहुप्रचलित ही है, अर्थात् "किसी राजकुमार का किसी राजकुमारी के रूप-गुण पर मोहित होकर उसके प्रेम मे घरबार त्याग कर उसे प्राप्त करने के लिए योगी बनना एव अनेक कठिनाइयाँ झेलकर अन्त मे उसे प्राप्त कर लेना।" इस साहित्य के लेखक मुसलान थे और यह फारसी की मसनवी पद्धति पर लिखा गया था, तथापि इसका आधार पूर्णत भारतीय था।

प्रेम मार्गी साहित्य की सर्वप्रथम रचना अलाउद्दीन के काल की लिखी हुई मुल्ला दाऊद कृत 'चन्दायन' है। जायसी की 'पद्मावत' इस परम्परा की सर्वश्रेष्ठ रचना है। यद्यपि जायसी से पूर्व भी अनेक प्रेम कहानियाँ लिखी जा चुकी थी, जिनका 'पद्मावत' मे उल्लेख है तथापि उनमें से कुतुबन कृत 'मृगावती' तथा मंझन कृत 'मधुमालती' दो ही प्राप्त है। जायसी के पश्चात् भी उसमान, शेख नबी, नूर मुहम्मद, कासिम शाह आदि ने इसी शैली पर आधारित प्रेम कथाएँ लिखी। मुसलमान कवियों के अतिरिक्त हिन्दू कवियों ने भी प्रेम कहानियाँ लिखीं, लेकिन उनकी शैली सूफी कवियो की शैली से भिन्न है।

३. राम-भक्ति-साहित्य—ईसा की ग्यारहवी शताब्दी मे रामानुजाचार्य ने शकराचार्य के अद्वैतवाद के आधार पर विशिष्टाद्वैत का प्रचार किया। उन्होने भक्ति के द्वारा ईश्वर के सामीप्य लाभ का उपदेश सामान्य जनता को दिया। रामानन्द ने जो उन्ही की शिष्य परम्परा में थे, उपासना का एक नया रूप ग्रहण किया। उन्होंने उपासना के लिए लोक-कल्याणकारी राम के स्वरूप को लेकर प्राणी-मात्र को भक्ति का अधिकारी घोषित कर दिया। तत्कालीन परिस्थितियो के लिए लोक-रक्षक राम के रूप का वर्णन अत्यन्त उपयोगी भी था। रामानन्द के शिष्यो मे सभी वर्ण एवं जातियो के व्यक्ति थे। कबीर, रैदास, सेन, पीपा आदि इन्हीं के शिष्य थे। रामानन्द के समय से लेकर तुलसी के पूर्व तक अनेक भक्त अपने

---

[1] मौलाना सैयद सुलेमान नदवी का मत—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ३०२ पर उद्धृत।

पदो द्वारा राम भक्ति की पुष्टि कर चुके थे। लेकिन इसका पूर्ण विकास तुलसीदास द्वारा ही हुआ। इस महात्मा ने पूर्व प्रचलित सभी शैलियो एव रूपो मे राम का गुण-गान किया। ब्रज एव अवधी दोनो को काव्य-भाषा स्वीकार करके उनमे काव्य-रचना की। रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, जानकी-मगल, पार्वतीमगल आदि १३ ग्रन्थ उन्होने लिखे। मानस मे मानव-जीवन की अनेक दशाओ के चित्रण ने इन्हे हिन्दुओ का प्रतिनिधि कवि बना दिया है। रामचरितमानस आज भी जीवन की अनेक समस्याओ के समाधान मे समर्थ है। भक्ति मार्ग मे व्याप्त कुरीतियो को दूर करते हुए इन्होने रूप एव नाम दोनो की उपासना पर बल दिया। कहना न होगा कि उनकी टक्कर का कोई अन्य कवि, जिसने हिन्दू जनता का इतना उपकार किया हो, नही है। राम-भक्ति सम्बन्धी साहित्य की रचना करने वाले अन्य कवियो मे अग्रदास, नाभादास, प्राणचन्द चौहान, हृदयराम तथा केशवदास प्रमुख हैं जो इसी काल मे हुए। राम के चरित्र-वर्णन करने की यह परम्परा इस काल के बहुत बाद तक अजस्र रूप से प्रवाहित होती रही और आज भी वर्त्तमान है।

४. **कृष्ण-भक्ति-साहित्य**—१५ वी शताब्दी मे होने वाले वैष्णव धर्म के आन्दोलन मे वल्लभाचार्य का प्रमुख हाथ था। उन्होने भारत मे भ्रमण करके वैष्णव धर्म का प्रचार किया था और तदुपरान्त कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा मे अपनी गद्दी स्थापित की। उन्होने कृष्ण के माधुर्य युक्त रूप की उपासना पर बल दिया और उनके लोकरक्षक एव धर्म-सस्थापक स्वरूप को छोड दिया। इस सम्प्रदाय के भक्तो ने अपने मधुर पदो मे कृष्ण की लीलाओ के गान द्वारा तत्कालीन समाज के हृदय को सिक्त करने का सफल प्रयास किया। इस सम्प्रदाय के प्रधान कवि सूरदास थे। उन्होने वल्लभाचार्यजी की आज्ञानुसार 'श्रीमद्भागवत' की कथा को पदो मे कीर्त्तन के रूप मे गान किया। 'सूरसागर' मे भागवत् के दशमस्कध की कथा को ही जिसका सम्बन्ध कृष्ण की लीलाओ से है, विस्तार से गाया गया है। शेष स्कन्धो की कथा को इतिवृत्त के समान चलता कर दिया है। कृष्णावतार वर्णन मे भी कृष्ण की बाल-लीला एव गोपी-कृष्ण-प्रेम-प्रसग सम्बन्धी अनेक मनोहारी लीलाओ का ही विस्तृत वर्णन पदो मे हुआ है। शृङ्गार एवं वात्सल्य के वर्णन मे इनकी पहुँच अद्वितीय रही। अष्टछाप के शेष कवि एवं हितहरिवंश, श्रीभट्ट, नागरीदास आदि ने भी कृष्ण की लीलाओ एवं भक्ति का पदो में गान किया। इस काल के स्त्री-भक्तों मे मीरा सर्वश्रेष्ठ है। वह कृष्ण-प्रेम की दीवानी थी। उन्होने इस प्रेम-मार्ग मे बाधक-समाज, राज्य, घर एव कुटुम्ब सब का परि-त्याग कर दिया था। कृष्ण के स्वरूप के इस माधुर्य ने समाज को इतना प्रभावित

किया कि अनेक सहृदय मुसलमान भी इसकी ओर आकर्षित हुए बिना न रह सके। रसखान आदि मुसलमान भक्त कवियो ने भी कृष्ण के इसी मधुर रूप का अपने काव्य मे वर्णन किया। कृष्ण-भक्त कवियो की यह परम्परा इस काल से प्रारम्भ होकर बहुत पीछे तक हिन्दी-साहित्य को प्रभावित करती रही। हा, रीतिकाल में जाकर इसमें भक्ति के स्थान पर शृङ्गार की प्रधानता स्थापित हुई।

भाषा—इस काल की भाषा पर विचार करने मे पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि भक्त कवियो के आविर्भाव मे पूर्व साहित्य की भाषा का क्या स्वरूप था? वीरगाथा-काल अथवा आदि-काल की अधिकाश रचनाएँ राजस्थान मे ही लिखी गईं। लगभग छठी शताब्दी से लेकर १२ वी शताब्दी तक अपभ्रंश राजस्थान की साहित्यिक भाषा का पद ग्रहण किये रही। तदन्तर धीरे-धीरे उसका प्रभाव क्षीण हो गया और इसी के लोक-प्रचलित रूप राजस्थानी ने काव्य-भाषा का पद ग्रहण किया जिसका एक रूप—मारवाडी—आगे चलकर डिङ्गल के नाम से विख्यात हुआ। राजस्थान के चारण लोगो की यह साहित्यिक भाषा थी। राजाश्रयों मे रहकर चारण इसी भाषा मे अपने आश्रयदाताओ का गुणगान करते थे। राजाओ से सम्मानित होने के कारण ही अन्य लोग भी इसमें काव्य-रचना करने को प्रवृत्त हुए। साथ ही साथ राजस्थानी भाषा मे भी काव्य-रचना होती रही। ब्रजभाषा मे भी इस काल तक कुछ साहित्य लिखा जा चुका था।[१] लेकिन उसका रूप परिष्कृत नही हो सका था। इस काल की भाषा के स्वरूप को समझने के लिए उस समय की प्रचलित सभी धाराओ की भाषाओ पर विचार करना आवश्यक है। नीचे उस काल की प्रवृत्तियो के मुख्य-मुख्य कवियो की भाषाओ पर विचार किया गया है।

१. सन्त कवियों की भाषा—सन्त कवियो का शौरसेनी अपभ्रंश या नागर अपभ्रंश के काव्य के लिए स्वीकृत रूपो से कोई सम्बन्ध न था और न उन्हे पण्डितो की भाषा सस्कृत का ही ज्ञान था। उन्हें तो अपनी बात सामान्य मानव तक पहुँचानी थी, जिसे न काव्य-भाषा का ज्ञान था और न सस्कृत का। इसलिए उन्होने भी महात्मा बुद्ध के समान लोक-भाषा को अपनाया। अधिकाश सन्त कवि अशिक्षित थे। इसलिए भी लोक-भाषा की ओर उनकी प्रवृत्ति अधिक रही। उन्होने अपनी वाणियो मे भाषा को अधिक महत्त्व न देकर प्रेम को ही महत्त्व दिया है। यथा—'क्या भाषा क्या बंदगी प्रेम चाहिए साँच'। कबीर ने तो सस्कृत जानने वाले पण्डितो को अभिमानी तथा मूर्ख तक कह डाला है—

---

[१] देखिए शिवप्रसाद सिह कृत—सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य।

ससकिरत पण्डित कहे बहुत करै अभिमान।
भाषा जानी तर्क करै ते नर मूढ समान॥

सन्त कवि घूम-घूम कर उपदेश किया करते थे। इसलिए उनकी भाषा मे सभी भाषाओं एवं बोलियो के शब्दो का समावेश हो गया। खड़ी बोली तथा पञ्जाबी के शब्दो की बहुलता सभी सन्तो की भाषाओं मे पाई जाती है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि मुसलमानो को भी उपदेश देने की कामना से ही इन भाषाओं के शब्दो का प्रयोग सन्तों को अभीष्ट था क्योंकि पञ्जाबी तथा खड़ी बोली मुसलमानो की भाषा स्वीकृत हो चुकी थी। आचार्य शुक्लजी ने भी अपने इतिहास मे यही मत व्यक्त किया है।[1] फिर भी भिन्न-भिन्न संतो की भाषाओं पर भिन्न-भिन्न बोलियो के शब्दो का प्रभाव पड़ा है जो उनके निवास स्थान तथा कार्य-क्षेत्र से सम्बन्धित होने के कारण ही है। नीचे हम संक्षेप मे उस पर अलग-अलग विचार करेंगे।

कबीर—कबीर की भाषा खड़ीबोली, अवधी, पूर्वी हिन्दी आदि कई बोलियों का मिश्रण है। उसमें कहीं-कहीं ब्रजभाषा का पुट भी मिलता है लेकिन वह न के बराबर ही है। कबीर पर बनारस के आस-पास बोली जाने वाली 'पूरबी' का सर्वाधिक प्रभाव है। उर्दू तथा फारसी के शब्दो का भी यत्र-तत्र प्रयोग मिलता है। अन्य सन्त कवियो के समान कबीर मे भी खड़ीबोली की क्रियाओं की ओर अधिक झुकाव दिखाई देता है।

दादूदयाल—दादू की भाषा पश्चिमी हिन्दी है जिसमे राजस्थानी का मेल है। कुछ पदो में तो राजस्थानी, पजाबी तथा गुजराती तीनों का मेल हुआ है। अरबी, फारसी के शब्दो को इन्होंने कबीर की अपेक्षा अधिक प्रयोग किया है। इन्होंने तो फारसी भाषा मे कविता भी लिखी है और इन पदो मे गम्भीर दर्शन का विवेचन किया गया है।[2]

नानक—नानक की भाषा पर पंजाबी का विशेष प्रभाव है। अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग तथा खड़ीबोली का पुट इनकी भाषा मे सर्वत्र प्राप्त होता है।

---

[1] पृष्ठ १३२।

[2] नफ्स गालिब किब्र काविज, गुस्सः मनी ऐश।
दुई दरोग हिर्स हुज्जत नामे नेकी नेस्त।
हैवान आलिम गुमराह गाफिल अव्वल सरीअत पंद।
हलाल हराम नेकी बदी दर्स दानिश मंद।

—दादू की बानी, पृ० ५९

सुन्दरदास—यह पढ़े लिखे योग्य व्यक्ति थे। यह अकेले ही ऐसे सत कवि थे जो काव्य-कला के मर्मज्ञ थे। इनकी भाषा मँजी हुई ब्रजभाषा है। इनकी भाषा पर राजस्थानी का विशेष प्रभाव है। अरबी-फारसी के शब्दो का प्रयोग भी इनकी भाषा मे मिलता है।

गरीबदास—इन महापुरुष ने तो खुसरो के समान ही संस्कृत तथा फारसी दोनो का साथ ही साथ प्रयोग किया है। 'आध्यात्म बोध' मे इस प्रकार के अनेक छन्द है।

सभी संत कवियो की भाषा में तद्भव शब्दों की भरमार है। कुछ शब्द तो इतने सर्वमान्य हो चुके है कि समस्त संतों की वाणियों मे प्राप्त हो जावेंगे। यथा-तत्त, अलख, सूछम, थूल, पुरुख, रिधि, पांख, सूत्र, कुइयाँ आदि-आदि।

२. सूफी कवियों की भाषा—सूफी सत कवियो के काव्य की भाषा के सम्बन्ध मे यही कहा जा सकता है कि उनमे से अधिकाश ने अवधी भाषा को ही अपनाया है। जायसी ने अवधी भाषा मे 'पद्मावत' की रचना करके तुलसीदास को एक नया मार्ग दिखाया। जायसी ने शुद्ध लोक-भाषा अवधी का व्यवहार किया है। उनकी भाषा में सादगी तथा स्वाभाविकता के साथ-साथ अलङ्कार-योजना तथा शब्द-योजना दर्शनीय है। जहाँ तक भाषा की सरसता एव सहृदयता का प्रश्न है, मझन सर्वश्रेष्ठ ठहरते है। उसमान की भाषा मे भोजपुरी शब्दो का बाहुल्य है। कवि जान ने तो अपने 'कँवलावती' नामक ग्रन्थ मे संस्कृत भाषा को दुरुह बताकर जन-भाषा की महत्ता को प्रतिपादित किया है और इसीलिए उनकी भाषा मे ब्रज तथा पंजाबी का पुट अधिक है। जान का ब्रज तथा अवधी दोनो पर समान अधिकार था। सभी सूफी कवियो ने अरबी, फारसी तथा तुर्की के शब्दों एव मुहावरो का स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया है।

३. भक्त कवियों की भाषा—(अ) कृष्ण-भक्त कवि—इस काल का कृष्ण-भक्ति साहित्य तीन भाषाओ मे लिखा गया। १ मैथिली, २. ब्रजभाषा और ३. डिंगल। मैथिल-कोकिल विद्यापति ने सस्कृत के स्थान पर भाषा को अपनाया और अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पदावली' मे मैथिली का प्रयोग किया। सूर से पूर्व साहित्यिक भाषा के दो रूप प्रचलित थे। एक रूप तो अपभ्रंश मिश्रित डिंगल का था, दूसरा संत कवियो की खिचड़ी भाषा का। सूर ने दोनो मे से किसी को न अपनाकर ब्रज की लोक भाषा को जिसको कुछ-कुछ साहित्यिक रूप मिल चुका था, एक शिष्ट रूप प्रदान किया, जो व्यावहारिक होते हुए हार्दिक भावों के प्रकाशन मे पूर्ण समर्थ था। सस्कृत के तत्सम् शब्दो के प्रयोग ने उसे समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र की काव्य-भाषा का रूप प्रदान कर दिया। वैष्णव धर्म के प्रसार का माध्यम होने

के कारण वह भाषा बिहार से पंजाब तथा गुजरात तक व्याप्त हो गई। लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों तक यही काव्य की भाषा बनी रही। संत कवियों के समान सूर की भाषा में भी फारसी के खसम, जवाब, बकसौ, मवास, मसवकत, जहाज, मुहकम आदि, अवधी के खोइस, होइस, इहवाँ, मोर, तोर, केरो, आदि पंजाबी के प्यारी आदि, गुजराती के वियो आदि, बुन्देलखण्डी के गहिबी, सहिबी आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा का यही रूप सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक कृष्ण-भक्ति विषयक तथा अन्य काव्यों में प्राप्त होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि राजस्थानी की एक शाखा मारवाड़ी डिंगल के नाम से विख्यात होकर चारणों के काव्य की भाषा के रूप में प्रस्फुटित हुई। आगे चलकर अन्य राजस्थानी कवियों ने भी उसे काव्य की भाषा के रूप में अपनाया। यह एक राजाश्रित भाषा थी। इसीलिए आगे चलकर इसकी प्रगति मन्द पड़ गई और इसके उद्गम स्थान राजस्थान में भी ब्रजभाषा काव्य की भाषा के रूप में व्यवहृत होने लगी। फिर भी डिंगल में अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों का प्रणयन हुआ जिनमें से 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' तथा 'ढोला मारू रा दूहा' सर्वश्रेष्ठ हैं। इसी समय अनेक जैन कवियों ने राजस्थानी-गुर्जर भाषा में अपने धर्म ग्रन्थों की रचना की।

(आ) रामभक्त कवि—इस काल में तुलसीदास ही एक ऐसे कवि हैं जिनकी भाषा पर अलग से प्रकाश डाले बिना यह प्रकरण अधूरा ही रह जायगा। तुलसी के आविर्भाव के समय मध्य देश में काव्य-भाषा के दो रूप प्रचलित थे। १—ब्रज, २—अवधी। उन्होंने दोनों को ही काव्य-भाषा में स्वीकार किया। दोनों पर उनका समान अधिकार था। ब्रजभाषा का जो माधुर्य हमें सूरदास, नन्ददास आदि कवियों में मिलता है वही कुछ और संस्कृत रूप में 'गीतावली' तथा कृष्ण गीतावली' में हम पाते हैं। 'पद्मावत' की सी ही मिठास हमें 'जानकी मंगल, 'पार्वती मंगल', और 'बरवैरामायण' में देखने को मिल जाती है। ब्रज और अवधी का जो परिष्कृत एवं ललित रूप यहाँ मिलता है वह इस काल में अन्यत्र दुर्लभ है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस काल में ब्रज, अवधी, डिंगल तथा मैथिली काव्य-भाषा के रूप में वर्त्तमान थी। अकबर के दरबारी कवियों की ब्रजभाषा पर कन्नौजी, बुन्देली आदि बोलियों का प्रभाव एवं फारसी के शब्द एवं नए बने शब्दों का प्रयोग स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। अन्य प्रान्तीय तथा क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों का भी इन काव्य-भाषाओं पर प्रभाव पड़ रहा था जो तत्कालीन साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है।

४. बोल-चाल की भाषा–उर्दू—इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व यहाँ उर्दू के जन्म के विषय में कुछ कहना अनुचित न होगा। मुसलमान शासकों ने इस देश की भाषा को राज-काज की भाषा के पद से हटाकर फारसी को आसीन किया। हिन्दू और मुसलमानों का सम्पर्क बढ़ने पर विचारों का आदान-प्रदान होने से १६वीं शताब्दी में एक मिली-जुली लोक-भाषा का जन्म हुआ। यह फारसी और हिन्दुस्तानी का मिश्रित रूप था। इसी भाषा का नाम आगे चलकर उर्दू पड़ा। १७वीं शताब्दी तक यह भाषा बोल-चाल की भाषा का ही रूप धारण किए रही। १८वीं शताब्दी में जाकर इसका साहित्यिक रूप आरम्भ हुआ।[1]

ग्रन्थों की प्रमाणिकता पर विचार[2]—

१. कबीरदास के ग्रन्थ—कबीरदास पढ़े-लिखे न थे। उन्होंने तो स्वयं कहा है—"मसि कागद छूआ नहीं कलम गही नहि हाथ।" इसलिए किसी भी ग्रन्थ का उनके द्वारा लिखा जाना तो सम्भव था ही नहीं जो कुछ भी लिखा गया उनके शिष्यों द्वारा ही लिखा गया। उन्होंने कितनी रचनाएँ कीं तथा कितनी उनके शिष्यों ने अपनी रचनाएँ उनकी कहकर उनमें मिला दीं, इस बारे में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। भाषा के आधार पर भी उनके ग्रन्थों को छाँटना असम्भव है, क्योंकि भ्रमणकाल में लिखे गए ग्रन्थों में उस स्थान की भाषा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। उनकी एक ही पुस्तक की अनेक प्रतियाँ मिलती हैं और जिसका लिपिकाल बाद का होता है, उसमें कुछ न कुछ पदों की बढ़ोतरी हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि कबीर के नाम से उनके मूल ग्रन्थों में अनेक रचनाएँ जुड़ती चली गई हैं। कबीर द्वारा प्रणीत ग्रन्थों की सूची 'विनोद' के आधार पर परिशिष्ट में दी गई है। उसमें कबीर कृत ८५ ग्रन्थ बतलाए गए हैं। इनमें से अधिकांश ग्रन्थ हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में प्राप्त हो चुके हैं। इन ग्रन्थों में से कितने कबीर के हैं, कहना कठिन है। आचार्य शुक्ल कबीर के 'बीजक' को ही प्रामाणिक ग्रन्थ ठहराते हैं, जिसमें साखी, रमैनी तथा सबदों का संग्रह है।[3] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार कबीर की साखी, पद तथा शब्द यही तीन रूप प्रामाणिक हैं। रमैनी शब्द तो १८वीं शताब्दी में प्रचलित हुआ इसलिए रमैनी के आधार पर रचे जाने वाले कबीर के ग्रन्थ १८वीं शताब्दी में रचे गए[4] कबीर के जो पद तथा

---

[1] डा० यदुनाथ सरकार, इण्डिया थ्रू दी एजेज, पृष्ठ ४६-४७

[2] अब तक के अनुसन्धान में प्राप्त समस्त ग्रन्थ, एवं ग्रन्थकारों के विवरण के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट देखिए।

[3] आचार्य शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ८०।

[4] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य, पृष्ठ १२४-१२५।

साखियाँ 'गुरु ग्रन्थ साहिब' मे सग्रहीत है वह पाठ एव प्रामाणिकता की दृष्टि मे ठीक है।

डा० रामकुमार वर्मा ने कबीर कृत कहे जाने वाले ६१ ग्रन्थो की तालिका दी है जिसमे से उन्होने चार को अप्रामाणिक मान कर शेष ५७ को प्रामाणिक माना है। उन्होने 'कबीर गोरख की गोष्ठी', 'कबीरजी की साखी', 'भक्ति का अङ्ग' तथा 'मुहम्मद बोध' को अप्रामाणिक ठहराया है।[1] उक्त चार ग्रन्थो को निकाल देने पर शेष ग्रन्थो को कबीर कृत मानना ही पडेगा।[2] ऐसा न करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नही है। यह ठीक है कि इनमे से अधिकाश ग्रन्थ बाद के है और कुछ विशेष रूप के साथ सङ्कलित किए गए है।

२. **अनन्तदास तथा उनके ग्रन्थ**—मिश्रबन्धु विनोद मे दो अनन्तदास बतलाए गए है। एक अनन्तदास जिसका वर्णन २४८ पृष्ठ पर है और जिन्होने १—रैदास की परिचई, १—कबीर की परिचई और ३—त्रिलोचन की परिचई लिखी। इनका रचनाकाल १५५७ विक्रमी है। दूसरे अनन्तदास का वर्णन ३९२ पृष्ठ पर है जिन्होने १—राजदास परिचय, २—नामदेव आदि की परची सग्रह, ३—पीपा जी की परची (खो० १९०२ ई० : रचनाकाल १६५७ वि०, ४—रैदास की परची इत्यादि लिखी। इनका रचनाकाल इन्होने १६५७ वि० माना है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी के संग्रह ग्रन्थ सख्या १३६१/८७३ मे गोरखनाथ, पीपा, रैदास, धना, कबीर आदि के ग्रन्थ तथा वाणियो के साथ-साथ अनन्तदास की ८ परिचइयाँ भी सग्रहीत है—१. त्रिलोचन की प्रचई, २ धनाजी की प्रचई, ३ कबीर साहब की परची, ४ रैदास की परची, ५ रॉका बॉका की परची, ६ नामदेव की परची, ७ सेससमन की परची तथा ८. पीपाजी की परची। प्रत्येक ग्रन्थ के अन्तिम दोहा मे प्रायः एक से ही वाक्याशो का प्रयोग हुआ है। त्रिलोचन की परची का अन्तिम दोहा यह है—

> दास अनन्त कथा कही भगतन को जस गाइ।
> तिलोचन की परची कही अब कछु और सुनाइ।१४।

कबीर की परची का अन्तिम दोहा यह है—

> दास अनन्त कहा कहै हरि की कथा अपार।
> कछु एक कही कबीर की सतगुरु के उपगार।१७।

भाषा तथा रूप की दृष्टि से सब ग्रंथ एक ही कवि द्वारा रचित प्रतीत होते है। रचनाकाल के दृष्टिकोण से भी उन पर कुछ विचार कर लेना उचित होगा।

---

[1] डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।
[2] देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट न० २ (कबीर के ग्रन्थ।

नामदेव की परची मे रचनाकाल वाला पद इस प्रकार है—

"संवत् सोलहसै पैताला वाणी बोले वचन रसाला।
अन्तरजामी आज्ञा दीनी, दास अनन्त कथा करि लीन्ही।"

इसी संग्रह मे ग्रन्थ संख्या ११०७/७८६ पर नामदेव की परची की एक और प्रति है उसमे भी रचनाकाल का पद यही है। उक्त रचनाकाल को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अनन्तदास का रचनाकाल १७ वी शताब्दी का मध्य-भाग रहा होगा। नागरी प्रचारिणी सभा खोज द्वारा १६०२ ई० में प्राप्त पीपाजी की परचई का रचना-काल १६५७ वि० बतलाया गया है। रिपोर्ट पन्द्रहवी . १६३२–३४ ई० मे प्राप्त नामदेव की परची मे रचना-काल सम्वत् १६३८ वि० बताया गया है। इसी रिपोर्ट मे इन्ही अनन्तदास की रची 'सेउसमन की परची' का विवरण है। इस प्रति तथा नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति के पाठ मे कोई भेद नहीं है। १२ वी खोज रिपोर्ट मे प्राप्त कबीर, नामदेव तथा पीपाजी की परची का रचना-काल १६४५ वि० बतलाया गया है। इन सब बातो को ध्यान मे रखकर तथा प्राप्त रचनाओं के रूप को देखकर यह कहना पडता है कि इन सब परचइयो का रचयिता एक ही व्यक्ति था, जिसका रचना-काल १६३८ वि० से १६६० वि० के मध्य रहा होगा। जब तक किसी प्रति मे रचना-काल का उल्लेख प्रामाणिक रूप मे सोलहवी शताब्दी का प्राप्त न हो तब तक दो अनन्तदास होने की बात केवल कल्पना ही है।

३. सूरदास के ग्रन्थ—कुछ विद्वानो ने सूरदास कृत पाँच ग्रन्थों का उल्लेख किया है—(१) सूरसागर, (२) सूरसारावली, (३) साहित्य लहरी, (४) ब्याहलो, (५) नल दमयन्ती। इधर नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा कराई गई हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज मे सूरदास या सूरजदास के नाम से ११ नये ग्रन्थों का पता लगा है। इस प्रकार सूर कृत कहे जाने वाले ग्रन्थो की संख्या १६ हो गई है[1]। विद्वानो मे सूर के ग्रन्थों को लेकर काफी विवाद उठ खडा हुआ है। नीचे हम इस सम्बन्ध में हिन्दी के कुछ अधिकारी विद्वानो की सम्मतियाँ उद्धृत कर रहे है —

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—(१) सूरसागर, (२) सूरसारावली, (३) साहित्य लहरी तीन ग्रन्थ है[2]।

२—डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार 'सूरसागर' ही सूर की प्रामाणिक रचना है। अन्य रचनाओं के विषय मे उनका विचार है कि उनमें से कुछ त

[1] देखिए परिशिष्ट संख्या ६१, सूर के ग्रन्थ।

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १६७।

'सूरसागर' के ही अश है या 'सूरसागर' की कथा के रूपान्तर है । इनके अतिरिक्त शेष सब रचनाओं को उन्होंने अप्रामाणिक माना है[1] ।

३—डा० मुशीराम शर्मा सूरसागर, साहित्य लहरी तथा सारावली तीनों को प्रामाणिक ठहराते हैं। उनके विचार से व्याहलो तथा नल दमयन्ती अन्य किसी कवि की रचना है ।

४—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी 'सूरसागर' तथा 'सूरसारावली' को सूर-कृत मानते हैं । उनके मतानुसार 'सूरसारावली' सूरदास द्वारा ६७ वर्ष की अवस्था में लिखी गई । 'साहित्य लहरी' मे सूर के कुछ पद सग्रहीत हो सकते है लेकिन यह संदेहास्पद रचना है ।[2]

५—डा० बृजेश्वर वर्मा 'साहित्य लहरी' को सूर कृत स्वीकार नहीं करते । उनके विचार से यह बाद के किसी सूरजदास नामक भाट की कृति है जिसमें उसने सूरदास को स्वजातीय बनाने का यत्न किया है । वह 'सूरसागर' को ही प्रामाणिक रचना मानते है ।

६—वार्ताओं के आधार पर डा० सत्येन्द्र 'सूरसागर' को ही सूर कृत रचना मानते हैं ।[3]

उक्त मतो के आधार पर 'सूरसागर' को सभी विद्वानों ने सूरकृत स्वीकार किया है । 'साहित्य लहरी' वास्तव मे सदिग्ध रचना है । 'साहित्य लहरी' के कुछ पद जिसमे कवि का वंश-परिचय तथा रचना-काल दिया है सूर के बारे में प्रचलित अन्य मतों एव प्रमाणो से मेल नही खाते । अत उसे सूर कृत मानने मे बडी कठिनाई है । अकेला सूरसागर ही सूर-कृत प्रामाणिक रचना माना गया है ।

४. नन्ददास के ग्रन्थ—सूरदास के समान नन्ददास के ग्रन्थो की सख्या के सम्बन्ध मे भी सभी विद्वान एक मत नही है । भिन्न-भिन्न विद्वानो के मतानुसार ग्रन्थों की सख्या घटाई बढाई जाती रही है । नीचे हम उनके ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विभिन्न विद्वानो के दृष्टिकोण से विचार करेंगे ।

१—फ्रांसीसी विद्वान तासी ने अपने इतिहास मे नन्ददास के १४ ग्रन्थो का उल्लेख किया है । ग्रन्थ ये हैं—१—पचाध्यायी, २—नाम मंजरी, ३—अनेकार्थ मजरी, ४—रुक्मिनी मगल, ५—भँवर गीत, ६—सुदामा चरित, ७—विरह मजरी, ८—प्रबोध चन्द्रोदय नाटक, ९—गोवर्धन लीला, १०—दशमस्कंध, ११—

[1] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ५२६ ।

[2] हिन्दी साहित्य, पृष्ठ १७६—१७७ ।

[3] डा० सत्येन्द्र—सूर की झाँकी, पृ० १०६ ।

रास मजरी, १२—रस मंजरी, १३—रूप मजरी, १४—मान मजरी ।[1]

२—विनोद मे उनके द्वारा लिखे गये १८ ग्रन्थो के नाम परिशिष्ट मे दिये हैं। उनमे से ७ नाम, जो तासी की सूची मे नही है, ये है–१—हितोपदेश, २—ज्ञान मंजरी, ३—नाम चिन्तामणि माला, ४—नासिकेत पुराण, ५—श्याम सगाई, दान लीला, ७—मान लीला ।

३—प० रामचन्द्र शुक्ल ने 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' नाम का ग्रन्थ और बताया है ।[2]

४—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९०६–१९०८ ई० मे 'जोग लीला', सन् १९२९–१९३१ ई० मे 'फूल मजरी', 'रानी मांगी' तथा १९३५–१९३७ ई० मे 'कृष्ण मगल' प्राप्त हुए है ।

५—इनका एक ग्रन्थ 'रासलीला' प्रकाशित हो चुका है तथा डा० माता-प्रसाद गुप्त से 'बासुरी लीला' एव 'अर्थ चन्द्रोदय' इन दो ग्रन्थों की सूचना और मिली है ।[3]

६—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी १४ ग्रन्थो को तथा डा० रामकुमार वर्मा १६ ग्रन्थो को उनके मानते है ।[4]

अभी तक नन्ददास के ग्रन्थो के सकलन कर्त्ता श्री उमाशंकर शुक्ल के अति-रिक्त किन्ही भी महानुभाव ने उनके ग्रन्थो की सख्या तथा प्रामाणिकता पर विस्तार से विचार नही किया है। श्री उमाशंकरजी शुक्ल ने ११ ग्रन्थों को पूर्ण प्रामाणिक ठहराया है—रूप मजरी, २—विरह मजरी, ३—रस मजरी, ४—मान मंजरी नाम माला, ५—अनेकार्थ मजरी, ६—श्याम सगाई, ७—भॅवरगीत, ८—

---

[1] "इस्वार दाला लितिरेत्यूर एदुई ए एंदुस्तानी", भाग २, द्वितीय संस्क-रण, पृ० ४४५ ।

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १७५ ।

[3] उमाशकर शुक्ल—नन्ददास ग्रन्थावली, भाग १ भूमिका ।

[4] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य, पृ० १८८ ।

रास पचाध्यायी, सिद्धान्त पचाध्यायी, अनेकार्थ मजरी, मान मजरी, रूप मजरी, रस मजरी, विरह मंजरी, भँवर गीत, गोवर्धन लीला, श्याम सगाई, रुक्मिणी मगल, सुदामा चरित, भाषा दशम स्कंध और पदावली ।

डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५५१, जोगलीला, हितोपदेश, नाम चिन्तामणि माला तथा नासिकेत पुराण के अतिरिक्त डा० द्विवेदी के समस्त ग्रन्थ ।

रुक्मिनी मगल ९ रास पचाध्यायी १० सिद्धान्त पचाध्यायी व ११ भाषा दशम स्कध । इन ग्रन्थो के अतिरिक्त उन्होने नन्ददास के पदो का भी सग्रह किया है। शेष ग्रन्थो के विषय मे उन्होंने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है-- 'नाम मजरी तथा चिंतामणि माला', मान मजरी नाम माला' के भिन्न नाम है। 'प्रबन्ध चन्द्रोदय नाटक', 'रास मजरी', 'मानलीला', 'ज्ञान मजरी', 'विज्ञानार्थ प्रकाशिका', बाँसुरी लीला' तथा 'अर्थ चन्द्रोदय' अप्राप्त है। 'सुदामा चरित' तथा 'नासिकेत पुराण' का कविकृत होना सदिग्ध है। 'गोवर्धन लीला', 'दशम स्कध' के कुछ भागो से उद्धृत है। अत स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है। 'दानलीला', 'हितोपदेश' तथा 'रासलीला' किन्ही अन्य नन्ददास की रचना है। 'जोगलीला' उदयनाथ कवीन्द्र की रचना है। 'फूल मजरी' और 'रानी माँगी' के रचयिता अज्ञात है। 'कृष्ण मगल' कोई ग्रन्थ न होकर एक पद मात्र है। ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार करने के लिए अन्य कोई आधार न होने के कारण हम भी उमाशङ्कर शुक्ल द्वारा बताए गए उपर्युक्त बारह ग्रन्थों को ही प्रामाणिक मानेंगे।

५. गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थ--हिन्दी के अन्य श्रेष्ठ कवियो के समान तुलसीदासजी के ग्रन्थो की सख्या भी विवादास्पद विषय है। अनेक परवर्ती कवियो ने अपनी रचनाओ को तुलसीदासजी के नाम से प्रचारित करके उनके ग्रन्थों की सख्या भी पर्याप्त बढा दी है। परिशिष्ट मे ऐसे ४५ ग्रन्थो की सूची दी गई है, जिन्हे तुलसी कृत कहा जाता है। इनमे से ३८ ग्रन्थो का नाम विनोद मे दिया गया है तथा पॉच बाद की खोजो मे मिले है और शेष २ ग्रन्थो को नागरी प्रचारिणी सभा काशी के भण्डार मे लेखक ने स्वय देखा है।

कहना न होगा कि ये सब ग्रन्थ तुलसीकृत नही हो सकते। इनमे से 'वानी', 'ज्ञान का परिकरण' तुलसी साहब हाथरस वाले की रचनाएँ है जो गोस्वामी तुलसीदास के नाम के साथ जोड़ दी गई है। सर्वप्रथम डा० ग्रियर्सन ने 'इन्साइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड एथिक्स' मे तुलसी के ६ बड़े तथा ६ छोटे ग्रन्थो को प्रामाणिक माना था। मिर्जापुर के प० रामगुलाम द्विवेदी भी तुलसी के १२ ग्रन्थो को ही प्रामाणिक मानते है और उसी आधार पर नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने तुलसी के उन्ही बारह ग्रन्थो को प्रामाणिक ठहराया। ग्रन्थो के नाम ये है--१ रामचरितमानस, २. रामलला नहछू, ३, वैराग्य सन्दीपिनी, ४. बरवै रामायण, ५ पार्वती मगल, ६ जानकी मगल, ७ रामाज्ञाप्रश्न, ८ दोहावली, ९ कवितावली, १० गीतावली, ११. कृष्ण गीतावली, १२ विनयपत्रिका। बाद के अन्य अनेको विद्वानो ने इन्ही बारह ग्रन्थो को प्रामाणिक माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एव डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी इन्हीं बारह ग्रन्थो को प्रामाणिक मानते

है[1]। डा० रामकुमार वर्मा शैली की दृष्टि से 'कलि धर्माधर्म निरूपण' नामक ग्रन्थ भी तुलसीकृत मानते है।[2] इस प्रकार तुलसीकृत ग्रन्थो की सख्या १३ हो जाती है। यहाँ इन्ही १३ ग्रन्थों को प्रामाणिक माना गया है।

६. **हरिदासजी के ग्रन्थ**—स्वामी हरिदास टट्टी सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते है। उनके ग्रन्थों के विषय मे मतभेद है। विनोद में उनके ७ ग्रन्थ—(१) बानी, (२) साधारण सिद्धान्त, (३) रस के पद, (४) पद, (५) भरथरी वैराग्य, (६) केलिमाल तथा (७) हरिदास जू को ग्रन्थ बताए गए है[3]। 'बानी' ग्रन्थ स्वयं मिश्रबन्धुओ ने देखा है। शेष ग्रन्थ खोज रिपोर्ट १९००, १९०२ तथा १९०५ मे प्राप्त हुए है, ऐसा बतलाया गया है। उनके मतानुसार 'भरथरी-वैराग्य' की रचना १६०७ वि० तथा पदो की १६१७ वि० मे हुई। खोज रिपोर्ट १९२०-२२ मे हरिदास के नाम से उस काल तक प्राप्त समस्त रचनाओ का उल्लेख करके टट्टी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हरिदास स्वामी की रचनाओ पर विचार किया गया है। हरिदास के नाम से प्राप्त कुल रचनाएँ १२ है[4]। वहाँ इन समस्त ग्रन्थो की प्रामाणिकता पर विचार करने के पश्चात्, 'पद', 'हरिदासजू को ग्रन्थ' तथा 'बानी'—इन तीन ग्रन्थो को प्रामाणिक ठहराया गया है। लेखक ने वृन्दावन मे हरिदासजी के 'केलिमाल' तथा 'पद' नामक दो ग्रन्थ देखे है। केलिमाल के दो भाग है। प्रथम भाग 'अष्टादश

---

[1] रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १४४।
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य, पृष्ठ २३२-२३३।

[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ३७१।

[3] मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृष्ठ २८८।

[4] १—हरिदासजी के पद, रिपोर्ट १९००, रचनाकाल अनुमानत: १५६० ई०। २—भरथरी वैराग्य, खोज १९०१, प्रतिलिपि १८०७ ई०। ३—हरिदास जू को ग्रन्थ, १९०२ खोज रिपोर्ट, रचनाकाल अनुमानत १५५० ई०। ४—भाषा भागवत समूल एकादश स्कन्ध, खोज रिपोर्ट १९०४, १७५६ ई०, ५—ज्ञान सतसई, खोज रिपोर्ट १९०४, रचनाकाल १७५१ ई०, ६—बानी, खोज रिपोर्ट १९०५, १९०९, १९११ रचनाकाल अनुमानत १५५०—१५६० ई०, ७—रसकौमुदी, खोज रिपोर्ट १९०६-१९०८, रचनाकाल १८४० रचयिता हरिदास कायस्थ पन्ना, ८—गोपाल पचीसी, रिपोर्ट १९०६-१९०८, रचयिता हरिदास कायस्थ पन्ना, ९—अलङ्कार-दर्पण, रिपोर्ट १९०६-१९०८, रचनाकाल १८४१, रचयिता हरिदास कायस्थ पन्ना, १०—भगवतगीता, रिपोर्ट १९०६—१९०८, ११—रामायन, रिपोर्ट १९०९—१९११, १२—प्रस्ताव रत्नाकर, रिपोर्ट १९२०—१९२२, रचनाकाल अनुमानत १६५० ई०, देखिए खोज रिपोर्ट १९२०—१९२२, पृष्ठ ७०—७१।

सिद्धान्त के पद' तथा द्वितीय 'रस के पद'। प्रथम भाग मे सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का विवेचन है और वह टट्टी सम्प्रदाय से प्रकाशित भी हो चुका है। दूसरे भाग मे ११० पद है जो 'रस के पद' कहे जाते है। यही 'केलिमाल' ग्रन्थ सम्प्रदाय के भक्तो मे वाणी नाम से प्रसिद्ध है। विनोद मे दिए हुए १, २, ३, ६ तथा ७ सब ग्रन्थ अकेले 'केलिमाल' के ही रूपान्तर है[१]। इस प्रकार स्वामी हरिदासजी के रचित ग्रन्थो की सख्या दो ही रह जाती है– १–पद, २–केलिमाल। सम्प्रदाय मे भी इनके यही दो ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

७—मीराबाई के ग्रन्थ—मिश्रबन्धु विनोद मे मीरा-कृत चार ग्रन्थ बताए गए है—(१) नरसी का माहेरा, (२) गीत गोविन्द टीका, (३) राग सोरठ के पद, (४) रागगोविन्द[२]। प० रामचन्द्र शुक्ल का भी यही मत है[३]। डा० रामकुमार वर्मा एक अन्य ग्रन्थ फुटकर पद भी मानते है[४]। डा० मोतीलाल मेनारिया मीराबाई के बताए जाने वाले पॉच ग्रन्थो का उल्लेख करके उनमे से किसी को मीरा-कृत नही मानते। उनके मतानुसार 'गीतगोविन्द की टीका' सस्कृत मे है और महाराणा कुंभा की बनाई हुई है। 'नरसीजी रो माहेरौ' व्रजभाषा की एक नीरस एव सामान्य कोटि की रचना है। 'सत्यभामाजि नू रूसणॅं' गुजराती में है। 'राग सोरठ एव रागगोविन्द' ग्रथ न होकर पदो के शीर्षक मात्र है। मीरा ने केवल स्फुट पद लिखे है।[५]

यह तो सभी मानते है कि मीरा ने पदो की रचना की। 'गीत गोविन्द की टीका' 'राग सोरठ का पद' एवं 'राग गोविन्द' के विषय मे मेनारियाजी का मत सही हो सकता है लेकिन 'नरसी मेहता को माहेरौ' मीरा की रचना है यह परम्परा से प्रसिद्ध है। उसे व्रजभाषा की एव साधारण कोटि की रचना बताकर उसे मीराकृत न मानना कहॉ तक उपयुक्त है ? डा० सत्येन्द्रजी को अजमेर मे प्राप्त हस्तलिखित प्रतियो मे 'नरसी जी कौ माहेरौ' की प्रति भी प्राप्त हुई है। यह माहेरो मीरा मिथिला सवाद रूप मे वर्णित है और उनका विश्वास है कि यह मीरा कृत ही है, क्योंकि इसमे मीरा-कृत होने के स्पष्ट प्रमाण मिलते है। रतन खाती कृत 'नरसी मेहता कौ माहेरौ' से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उससे पूर्व 'मीरा-मिथिला' का एक माहेरा ग्रन्थ प्रचलित था। इसीलिए उसने उन कथाओ को जिनका मीरा-मिथिला के माहेरे मे वर्णन है छोड़ दिया है.—

---

[१] देखिए परिशिष्ट पृष्ठ १०, सख्या ११६।

[२] मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ २८५।

[३] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १८५।

[४] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ५८२।

[५] राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ११०।

सो यह कथा यहाँ नहि आनी।
मीरा मिथुला बहुत बखानी।८।
—रतन खाती कृत 'नरसी को माहेरौ'

अत इन आधारो पर यह कहा जा सकता है कि मीरा-कृत 'नरसी कौ माहेरौ' प्रामाणिक रचना है। सभव है मेनारियाजी द्वारा देखी गई प्रति लिपि-कर्त्ता के कौशल से ब्रजभाषा की रचना बन गई हो और इसीलिए मीरा-कृत होने के अनुपयुक्त हो गई हो।

कुछ कवि एवं उनके रचना-कालो पर विचार—

नीचे हम उन कवियो एव उनके रचना-कालो पर विचार करेगे जिनके विषय में साहित्य के इतिहासो, खोज रिपोर्टो, एव ग्रन्थागारो मे प्राप्त हस्तलिखित प्रतियो में मतभेद है।

१. गोरखनाथ का रचनाकाल—मिश्रबन्धुओ ने 'खोज के आधार पर' गोरखनाथ का रचना-काल १४०७ वि० के लगभग स्वीकार किया है।[1] प० रामचन्द्र शुक्ल गोरखनाथ का समय पृथ्वीराज से कुछ पीछे स्वीकार करते है।[2] डा० रामकुमार वर्मा ने इनके समय के विषय में दिए जाने वाले विभिन्न मतो का सग्रह करके उन पर विचार किया है। उनके द्वारा गृहीत मुख्य मत निम्न है।[3]

(अ) पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर बी० ए० ने मराठी के ग्रन्थ 'ज्ञानेश्वर चरित्र' मे कहा है कि ज्ञानेश्वर महाराज के प्रपितामह श्री त्र्यम्बक पत गोरखनाथ के समकालीन थे और उन्होने वि० १२७० के लगभग गोरखनाथ से दीक्षा ली थी।

(आ) गोरखनाथ का एक शिष्य धर्मनाथ था जिसने १४ वीं शताब्दी मे कच्छ में कनफटे मत का प्रचार किया था। इस आधार पर भी वह १३ वी शताब्दी के ठहरते है।

(इ) डा० महीदुल्ला उनका काल ७२२ वि० मानते है।

(ई) राहुलजी के मतानुसार उनका समय ६०२ वि० है।

(उ) डा० मोहनसिह के अनुसार यह समय विक्रम की नवी और दसवी शताब्दी है।

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० २२७।
[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४—१५।
[3] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १०४—१०७।

(ऊ) डा० बड़थ्वाल वि० १०५० निश्चित करते है।

(ए) डा० फर्कुहर के मतानुसार यह समय १२५७ वि० है।

ऊपर के समस्त मतों से यह निश्चित है कि गोरखनाथ का समय १३ वीं शताब्दी के पश्चात् का तो कदापि नही हो सकता। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी गोरखनाथ का समय विक्रम की नवीं और दशवी शताब्दी का मध्य ही मानते है।[1] अतः गोरखनाथ का समय विनोद मे दिए गये समय से पर्याप्त पहले आता है। गोरखनाथ का समय निर्धारण नवी शताब्दी से १३वी शताब्दी तक किया गया है जिसका एकमात्र कारण लोक मे प्रचलित अनेक अनुश्रुतियाँ ही है, जिनमे अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियो के नामो के साथ गोरखनाथ का नाम जोड दिया गया है। सिद्धों की परम्परा एवं अन्य विश्वस्त प्रमाणो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनका काल किसी भी दशा में १३ वी शताब्दी के बाद नही हो सकता। अतः यह हमारे आलोच्य-काल के अन्तर्गत नही आता।

२. **नामदेव का काल** – नामदेव का रचनाकाल विनोद के अनुसार १४८० वि० के लगभग है[2] जो कि कबीर के भी बाद ठहरता है। जबकि यह प्रसिद्ध है कि नामदेव ज्ञानदेव के शिष्य थे। ज्ञानदेव का समय १३३२ वि० माना गया है।[3] ऐसी दशा मे १३३२ वि० में नामदेव वर्तमान होगे, यह कहा जा सकता है। डा० रामकुमार वर्मा ने सर भंडारकर के आधार पर नामदेव का जन्म १३२७ वि० स्वीकार किया है।[4] उनकी मृत्यु १४०७ वि० मे हुई ऐसा उनका विश्वास है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी १३२४ वि० मे नामदेव का जन्म मानते है।[5] श्री सूर्यकान्त शास्त्री के अनुसार नामदेव का जन्म १४०० वि० से १४३० वि० के बीच हुआ।[6] कुछ लोग नामदेव को कबीर का समकालीन ठहराते है, लेकिन उसका कोई प्रामाणिक आधार नही है। महाराष्ट्र मे इनका समय शक संवत् ११९२ से १२७२ प्रसिद्ध है।[7]

यदि नामदेव का जन्म १३२४ वि० (जो कि प्रमाणो के आधार पर दिए

[1] हिन्दी साहित्य, पृ० २४।

[2] मिश्रबन्धु विनोद, पृ० २४०।

[3] डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २१६।

[4] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २१७।

[5] हिन्दी साहित्य, पृ० ११६।

[6] हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ० ५८।

[7] प० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६६।

हुए कालों मे सबसे कम है) हो तो भी ८० वर्ष की अवस्था मे १४०४ मे उन्होंने शरीर त्यागा। इसलिए उनकी कुछ रचनाएँ तो १५वी शताब्दी के प्रारम्भ के कुछ वर्षों मे अवश्य लिखी गई होगी। ये रचनाएँ कौन सी है, इस सम्बन्ध मे कुछ भी कहना असम्भव है। विनोद मे दिया हुआ समय अशुद्ध प्रतीत होता है और उसके पीछे कोई प्रमाण भी नही है। नामदेव का रचनाकाल हमारे आलोच्य-काल के अन्तर्गत आता है इसलिए यहाँ उनकी रचनाओं को विवेचन के लिए ग्रहण किया गया है।

३. कृष्णदास पयहारी का काल—विनोद के अनुसार इनका रचनाकाल १६०० वि० के लगभग है। इधर डा० मोतीलाल मेनारिया ने अपने ग्रन्थ 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' मे कृष्णदास पयहारी का आविर्भाव काल वि० १५५६-१५८४ मानकर एक उलझन पैदा कर दी है।[1] यह सर्वविदित है कि अग्रदास इनके शिष्य थे और सभी इतिहास लेखको ने यहाँ तक कि मेनारियाजी ने भी उनका रचनाकाल १६३२ वि० ठहराया है। गुरु और शिष्य के रचनाकाल मे ६०-७० वर्ष का अन्तर सम्भव प्रतीत नहीं होता। अष्टछाप के कृष्णदास तथा कृष्णदास पयहारी दोनो दो भिन्न-भिन्न भक्त कवि थे। दोनो १६०० वि० के लगभग वर्तमान थे। अष्टछाप के कृष्णदास श्रीनाथजी के मन्दिर के अधिकारी तथा शूद्र थे। कृष्णदास पयहारी गलता की गद्दी के स्वामी तथा अग्रदास के गुरु थे और १६०० वि० के लगभग विद्यमान थे।

४. चतुर्भुजदास, उनका समय तथा ग्रन्थों पर विचार—भक्ति-काल में दो चतुर्भुजदासो का विवरण मिलता है। पहले अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त तथा दूसरे राधावल्लभी सम्प्रदाय के। विनोद मे अष्टछाप के कवि का रचनाकाल १६२५ वि० के लगभग तथा रचनाएँ 'पद', 'द्वादशयश' जिसका रचनाकाल १५६० वि० तथा 'हितजू का मगल' तीन ग्रन्थ दिए हुए है। शुक्लजी 'भक्ति प्रताप' ग्रन्थ और बताते है तथा रामकुमार वर्मा ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है। दूसरे चतुर्भुजदास राधावल्लभ सम्प्रदाय के अन्तर्गत हुए हैं। जिनके १२ ग्रन्थो का विनोद मे वर्णन है[2]। इनका रचना काल १६८४ वि० बताया गया है। लेकिन वृन्दावन मे हस्तलिखित ग्रन्थो का अध्ययन करते समय इस लेखक को वहाँ के प्रसिद्ध राधावल्लभी भक्त श्री किशोरीशरणजी अलि से राधावल्लभी चतुर्भुजदास की तीन पुस्तके और प्राप्त हुई हैं—'द्वादशयश', 'पद' तथा 'हितजू का मगल'। उन्ही के मतानुसार चतुर्भुजदासजी ने एक 'यमुनाष्टक' भी लिखा था जो अब अप्राप्त है

---

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १०६

[2] देखिए परिशिष्ट संख्या २६३।

लेकिन उसका एक छन्द उनके पास सुरक्षित है। अलिजी से प्राप्त 'द्वादशयश' की प्रति में रचनाकाल का उल्लेख इस प्रकार है—"सवत् सोरहसै चौरासी अधिक द्वै वर्ष सिरानी जू" यह ग्रन्थ १२ भागो मे बँटा है। बारह यशो का वर्णन अलग-अलग किया गया है। इसमे ग्यारहवाँ यश 'श्री मंगलसार यश' है जिसमे श्री हित हरिवंशजी के प्रताप यश के वर्णन को ही परम मगलकारक ठहराया गया है। ग्रंथ के प्रारम्भ मे गुरु का स्मरण भी कवि को राधावल्लभी ठहराता है। यथा—

श्री हरिवंस सुमिरि बरनो माहि, अन्तर भूत सकल सुख जाकहि
श्री वनमाली दासहि सिर नाऊँ, शिक्षा सकल समाजहि गाऊँ। आदि—

'भक्ति प्रताप' ग्रन्थ जिसकी शुक्लजी ने चर्चा की है, स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर 'द्वादश यश' का ही भाग है, जिसे 'भक्ति प्रताप यश' नाम से 'द्वादश यश' के अन्तर्गत रखा गया है। दूसरा ग्रन्थ 'हितजू का मगल' तो स्पष्ट रूप से कवि को राधा वल्लभी घोषित करता है। डा० हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने भी अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य' में चतुर्भुजदास के ग्रन्थो मे 'हितजू के मगल' के समक्ष (?) प्रश्न चिन्ह लगा दिया है[1] पर भी राधावल्लभी सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से लिखे गए हैं। उनमे राधा और कृष्ण की केलि को सर्वत्र प्रधानता दी गई है। अष्टछाप के कवियों मे मान्य कृष्ण के स्वरूप के वहाँ दर्शन भी नही होते। जहाँ भी कवि का नाम आया है उसके साथ 'हित' शब्द जुड़ा हुआ है, जो उन्हे राधावल्लभी घोषित करता है। यथा—

केलि बेलि पसरी आनन्द वन, प्रेम विटप लपटाई।
चतुरभुज हित मुरलीधर बररति ब्यापे कहत सिराई।—पद ११

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि वृन्दावन मे प्राप्त उक्त तीनों प्रतियाँ राधा-वल्लभी चतुर्भुजदास की ही है। एक नाम के अनेक भक्त कवियों के होने से उनकी रचनाएँ एक दूसरे की रचनाओ मे मिल जाती है और फिर वास्तविकता तक पहुँचना बडा कठिन हो जाता है। अब यह कहना कि अष्टछाप के चतुर्भुजदास ने 'द्वादश यश', 'हितजू का मगल' तथा 'पद' तीनो ग्रन्थ लिखे, उचित प्रतीत नही होता, क्योंकि वह वल्लभाचार्य के शिष्य थे, उन्हे 'हितजू का मंगल' लिखने से क्या तात्पर्य ? हाँ, उन्होने पदो की रचना अवश्य की है। ऐसा सभी स्वीकार करते हैं और वह अनेक संग्रहो मे प्राप्त भी है। सम्भव है मिश्रबन्धुओं ने जिस 'द्वादश यश' को १५६० वि० की रचना बतलाया है वह अष्टछाप के चतुर्भुजदास का हो और उसके रचनाकाल में कोई अशुद्धि आ गई हो। लेकिन अभी यह अनुमान मात्र ही है। अष्टछाप के चतुर्भुजदास कृत पदो को ही प्रामाणिक माना जा सकता है।

[1] हिन्दी-साहित्य, पृष्ठ १९१।

५. श्री भट्टदेव का समय—विनाद मे इनके आदिवाणी तथा युगलशत दो ग्रन्थ तथा रचनाकाल १६३० वि० के लगभग माना है।[१] प० रामचन्द्र शुक्ल उनका जन्म १५६५ वि० तथा रचनाकाल १६२५ वि० मे कुछ आगे तक मानते है।[२] डा० द्विवेदी उनका रचनाकाल सवत् १६२२[३] तथा डा० रामकुमार वर्मा भी सवत् १६२२ वि० के लगभग ही मानते है।[४] वृन्दावन मे निम्बार्क सम्प्रदाय मे सुरक्षित 'युगलशत' की हस्तलिखित प्रति मे ग्रन्थ का रचनाकाल १३५२ वि० दिया है। रचनाकाल सूचक छन्द यह है—

नैन बान पुनि राम शशि मनौ अक गति वाम।
२ ५ ३ १
श्रीभट प्रगटत युगल सत यह सवत् अभिराम॥

खोज रिपोर्ट सन् १६२३–२५ मे डा० हीरालालजी ने यह सिद्ध किया है कि १३५२ सवत् अशुद्ध है। 'राम' के स्थान पर 'राग' पाठ कही-कही प्राप्त हुआ है और इस प्रकार १६५२ सवत् ग्रन्थ का रचनाकाल आता है। सूरदास से पहले की और कोई रचना इतनी उच्चकोटि की प्राप्त नही हुई है जो अच्छी एव चलती ब्रजभाषा मे लिखी गई हो। इस प्रकार इनका समय १६५२ ही उचित प्रतीत होता है जो कि अन्य विद्वानो द्वारा निर्धारित किये गये रचनाकाल के लगभग ही ठहरता है। 'आदिवाणी' तथा 'युगल शत' भी दो ग्रन्थ नही है। एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं।

६. बोधा दो हैं, तथा उनका रचना-काल—प० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे बोधा कवि का जन्म राजापुर (बादा) मे बतलाया है। वह सरयू-पारीण ब्राह्मण तथा पन्ना दरबार के आश्रित कवि थे।[५] उन्होंने उसका रचनाकाल शिवसिंह सरोज के आधार पर १८३० से १८६० तक माना है और उनके 'विरह-वारीश' तथा 'इश्कनामा' दो ग्रन्थो की भी चर्चा की है। मिश्रबन्धुओ ने भी प० नकछेदी तिवारी के आधार पर यही मत व्यक्त किया है।[६] आगे चलकर उन्होने विनोद मे सुशीलचन्द्र चतुर्वेदी के नोट के आधार पर एक दूसरे बोधा के विषय मे वर्णन किया है, जो फीरोजाबाद (आगरा) के रहने वाले थे। इनके अनुसार

---

[१] मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ३३७
[२] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ १८८।
[३] हिन्दी साहित्य, पृ० २०१।
[४] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५६२।
[५] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३७१।
[६] मिश्रबन्धु विनोद- पृष्ठ ७५७–७५८।

फीरोजाबाद के पास रहना ग्राम में इनकी पैतृक भूमि थी और इन्होंने 'बागविलास' नामक ग्रन्थ रचा था। यह १८८७ के लगभग वर्तमान थे। मिश्रबन्धुओं ने समय के विचार से दोनों को अन्त में एक ही ठहराया है। बोधा के फीरोजाबाद का होने का एक प्रमाण विनोद में आगरा के पं० लक्ष्मीदत्त का पत्र बतलाया गया है जिसके अनुसार बोधा का १८४५ में होना सिद्ध है तथा उनके प्रपौत्र गोपीलाल अभी तक जीवित है और फीरोजाबाद में रहते हैं।[1]

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की १३ वीं त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में एक बोधा के ५ ग्रन्थ मिले हैं—१ बागवर्णन, २. बारहमासी, ३ फूलमाला, ४ पक्षी मंजरी और ५. पशु जाति नायक-नायिका कथन। यह ग्रन्थ फीरोजाबाद के पास उसायनी नामक ग्राम के श्री शंकरलाल के पास जो खैरगढ जिला मैनपुरी में पटवारी है, प्राप्त हुए हैं। इन ग्रन्थों में अकेले 'पक्षी मजरी' में उसका रचनाकाल दिया है—

यथा — "संवत् सोरहसै सही जानौ तुम छत्तीस।
तेरस शुक्ल असाढ की वार कुम्भ को ईस॥"[2]

इस प्रकार उनका रचनाकाल १६३६ अषाढ शुक्ला १३ है। 'पक्षी मजरी' तथा अन्य एक ग्रन्थ में बोधा कवि का स्पष्ट नाम आया है। 'पक्षी मंजरी' में रचनाकाल तथा कवि का नाम दोनों दिये हुए हैं। अत बोधा का रचनाकाल १६३६ के आस-पास ठहरता है। खोज रिपोर्ट के अनुसार 'बाग वर्णन' में जिस बाग का वर्णन किया गया है वह अब भी बोधा के फीरोजाबादी वंशजों के पास है। अब यही कहा जा सकता है कि यदि मिश्रबन्धुविनोद में बोधा का रचनाकाल ठीक दिया हुआ है तब तो दो बोधा कवि अवश्य रहे होंगे जिनमें लगभग २०० वर्षों का अन्तर है। रचनाओं के दृष्टिकोण से भी दोनों की रचनाओं में कोई समानता नहीं। अत. अभी तक प्राप्त प्रमाणों के आधार पर तो हम दो बोधा मानने के लिये बाध्य हैं। सम्भव है आगे की खोजों में इनके बारे में ठीक-ठीक निर्णय करने के लिये कोई और ग्रन्थ प्रमाणस्वरूप प्राप्त हो जाय।

७. **सुखमनी का कर्ता एवं रचनाकाल**—अभी तक के इतिहासों में 'नानकजी' के द्वारा रचित 'सुखमनी' नामक ग्रन्थ का उल्लेख सर्वत्र मिलता है। लेकिन नागरी-प्रचारिणी सभा काशी की हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट १४ में एक 'सुखमनी' नामक ग्रन्थ प्राप्त हुआ है जिसका रचयिता अर्जुनदेव बत-

[1] मिश्रबन्धुविनोद, पृष्ठ ७५९–६०।

[2] नागरी प्रचारिणी सभा काशी, १३ वीं त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट, पृ० ६।

लाया गया है।[1] खोज रिपोर्ट के अनुसार सभी सिख गुरुओ के स्वरूप को एक ही माना जाता है। अत अधिकाश गुरुओ की रचनाओ मे रचयिता का उपनाम 'नानक' मिलता है। 'सुखमनी' के सम्बन्ध मे भी यही बात है। इस आधार पर 'सुखमनी' का रचनाकाल गुरु अर्जुनदेव का समय १६३६–१६६३ : का अन्तिम भाग १६५० के लगभग माना जा सकता है।

८. **खेमदास दादूपन्थी का समय**—मिश्रबन्धुविनोद के अनुसार इनका समय १६५५ वि० के लगभग है। लेकिन डा० मोतीलाल मेनारिया इनका रचनाकाल १७४० वि० के लगभग मानते है।[2] उनके अनुसार यह दादू की शिष्य परम्परा मे रज्जबजी के शिष्य थे। नागरी-प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट सन् १९२३–२५ मे 'सुखसम्वाद' कर्ता खेमदास की दो रचनाएँ प्राप्त हुई है—(१) 'रस-प्रेम पचीसी', (२) 'भक्ति-पचीसी'। 'रस-प्रेम पचीसी' मे उनका रचनाकाल १७१५ तथा 'भक्ति पचीसी' मे १७१९ दिया गया है।[3] उक्त दोनों मतो के आधार पर विनोद में दिया हुआ सवत् अप्रासगिक ठहरता है। इनका रचनाकाल विक्रम की अठारहवी शती का पूर्वार्द्ध निश्चित किया जा सकता है।

९. **धरमदास का समय**—धरमदास ने महाभारत को भाषा मे लिखा। उनके तीन ग्रन्थ प्रस्तुत सूची मे दिखाये गये है। लेकिन 'भीष्म पर्व' तथा 'डंगी पर्व' स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर वृहत् महाभारत के ही अग है। रिपोर्ट मे इनका रचनाकाल १७११ वि० देखकर इनके काल के विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ। अत. इस विषय मे विशेष छानबीन करनी पडी। रिपोर्ट १९२०–२२ के अनुसार इन्होंने 'द्रोणपर्व' लिखा, जिसमें रचनाकाल का उल्लेख इस प्रकार है—

> सवत विक्रम भूपकर भयऊ। सोरह सै चौसठ गयऊ॥
> ऋतु वसन्त अरु माधव मासा। पुन्य दिवस तहँ कीन्ह प्रकाशा॥

उस समय कवि की अवस्था २५ वर्ष की थी। उसने अपने पूरे जीवन तथा उसके बाद मे उसके चारो पुत्रो ने इस कार्य को जारी रखा। आगे प्राप्त पर्व का रचना काल १७११ दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि वह बहुत लम्बे समय तक अपना कार्य करता रहा था। अत. कवि ने १७वी शताब्दी के अन्तिम भाग में महाभारत के कुछ पर्वों की रचना की, यह निर्विवाद है।

१०. **दयालदास का समय**—परिशिष्ट के न० २५५ पर वर्णित दयालदास का रचनाकाल विनोद के अनुसार १६७७ है और उनके रचित तीन ग्रन्थ 'राण

[1] देखिए पृष्ठ २६।

[2] राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ २२५।

[3] खोज रिपोर्ट सन् १९२३–२५ पृ० २०९।

रासौ', 'रामौ कौ अंग', तथा 'अकल कौ अग' बताए गये हैं। डा० मेनारिया इनका एक ही ग्रन्थ 'राणा रासौ' प्रामाणिक मानते है। लेकिन उनके रचनाकाल के विषय मे उनका मत मिली हुई प्रति के आधार पर मिश्रबन्धुओ से भिन्न है।[1] राजस्थान के हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थो की खोज मे इसकी १६४४ की लिखी एक प्रति मिली है जिसे स० १६७५ की एक अन्य प्रति की नकल बताया गया है। लेकिन डा० मेनारिया इसे भ्रमात्मक मानते है, क्योकि इस ग्रन्थ के अन्त मे महाराज कर्णसिह १६७६–१६८४ का सविस्तार वर्णन है और प्रारम्भ मे महाराणा जगतसिह . १६८४–१७०६, महाराणा राजसिह . १७०९–३७, तथा महाराणा जयसिह . स० १७३७–५५ का भी नामोल्लेख है। वे मानते है कि ग्रन्थ महाराजा जयसिह के समय वि० १७३७ से वि० १७५५ के बीच बना होगा।[2] मूल ग्रन्थ के लेखन-काल के विषय मे उनका अनुमान है कि वह १६७५ के स्थान पर १७७५ रहा होगा जो भूल से १६७५ लिख गया है। शेष दो ग्रन्थो को यह दयालदास नामक रामसनेही सन्त के लिखे हुए मानते हैं।[3] विनोद के रचनाकाल का कोई पुष्ट आधार नही है। अत दयालदास को १८वीं शताब्दी का ही माना जा सकता है।

११. चरणदास का समय—विनोद के पृष्ठ २४६ पर एक चरणदास महात्मा का 'ज्ञानस्वरोदय' नामक ग्रन्थ बताया गया है जिसका रचनाकाल १५३७ वि० दिया है। वास्तव मे चरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक बावा चरणदासजी का रचनाकाल १९ वी शताब्दी है और उनका वर्णन विनोद मे पृष्ठ ६०१ पर दिया गया है। जहाँ उनके १२ ग्रन्थों के नाम तथा 'ज्ञानस्वरोदय' का रचनाकाल १८१७ वि० दिया है। डा० रामकुमार वर्मा ने भी 'ज्ञान स्वरोदय' के कर्ता चरणदास का जन्म १७६० वि० माना है।[4] डा० मेनारिया भी इनका जन्म १७६० वि० तथा मृत्यु १८३८ वि० मानते है।[5] मिश्रबन्धुओ ने न जाने क्यों इनका रचनाकाल सं० १५३७ मान लिया है। वस्तुत. वह १८ वी शताब्दी के कवि थे। उन्ही की शिष्या दयाबाई तथा सहजोबाई थी जिनका आविर्भाव-काल १९ वी शताब्दी माना जाता है।

१२. आनन्द कायस्थ का रचनाकाल—'कोक-मजरी' के कर्ता आनन्द का रचनाकाल मिश्रबन्धुओं ने १६२२ वि० माना है तथा विवरण मे लिखा है—

---

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ १७२।

[2] राजस्थानी भाषा और इतिहास, पृ० १७२।

[3] राजस्थानी पिंगल साहित्य, पृ० ११५।

[4] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ २८४।

[5] राजस्थानी पिंगल साहित्य- पृष्ठ १९८।

"स्यात यह १७११ वि० वाले आनन्द हों[1]। यह दोनों ही मत अशुद्ध है। १३ वी खोज रिपोर्ट मे आनन्द कवि की 'कोक मञ्जरी' की कई प्रतियाँ प्राप्त हुई है। जिनमे से कुछ पर रचनाकाल भी दिया है। विभिन्न प्रतियो मे रचनाकाल भी भिन्न-भिन्न है।[2] एक मे स्पष्ट पाठ यह है—

> रितु बसन्त संवत् सरस सोरह मे अक आठ।
> कोक मञ्जरी सह करी धर्म कर्म करि पाठ।।

दूसरी प्रति मे रचनाकाल के दोहे मे पहली पक्ति इस प्रकार है—

> 'रितु बसत सबत् सत्नोरह आगत साठि'।

हिन्दी मे आठ तथा साठ इस प्रकार लिखा जाता है कि उसे दोनों ही पढा जा सकता है। रचनाकाल का विस्तृत विवरण न होने मे उसकी जाँच भी नही की जा सकती। एक दूसरे सूत्र से इस पर और भी प्रकाश पडता है। राजस्थानी खोज रिपोर्ट भाग दो मे इन्ही आनन्दराम कायस्थ के 'वचन विनोद' नामक ग्रन्थ का विवरण दिया गया है, जिसका रचनाकाल १६७९ वि० है[3]। इस रचनाकाल से पहले रचनाकाल पर भी कुछ प्रकाश पड सकता है। 'कोक मञ्जरी' को यदि १६०८ वि० की रचना मान ले तो 'वचन विनोद' और उसके रचना काल मे ७१ वर्ष का अन्तर आता है जो आज के समय मे असम्भव ही कहा जा सकता है। अत यही उचित प्रतीत होता है कि 'साठ' ही पाठ रहा होगा। इस दृष्टिकोण से आनन्द का रचनाकाल १६६०-७९ वि० ठहरता है।

१४. अहमद और ताहिर उनके ग्रन्थ और रचनाकाल— अहमद और ताहिर इन दो नामो को तथा इनकी कृतियो को लेकर अनेक विवाद है। सक्षेप मे इन सभी मतों को सामने रखकर नीचे उन पर विचार करेगे।

१—विनोद के अनुसार अहमद 'स्फुट काव्य' तथा 'सामुद्रिक' का कर्त्ता है। उसका रचनाकाल स० १६६६ तथा जन्म-काल स० १६६० है। उसी मे यह भी लिखा है कि चतुर्थ त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट मे 'सामुद्रिक' का रचनाकाल १६७८ दिया है[4]। मिश्रबन्धुओ ने ताहिर को आगरे का निवासी तथा कोकसार (जिसमे स्त्री जाति, सामुद्रिक लक्षण, आसन, वाजीकरण आदि) तथा 'गुणसागर' का

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ ३४७।
[2] देखिए रिपोर्ट पृष्ठ १२।
[3] देखिए रिपोर्ट, पृष्ठ १४।
[4] मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ ४२४।

कर्त्ता कहा है। ग्रन्थ का रचनाकाल १६७८ वि० बताया है तथा अन्तिम ग्रन्थ प्रथम त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट मे प्राप्त हुआ है यह भी सूचित किया है।[1]

२—डा० रामकुमार वर्मा दोनो को एक ही मानते है। उनकी लिखी सामुद्रिक की पोथी को हस्तरेखा विज्ञान की बताते है। उनके अनुसार दूसरा ग्रन्थ 'गुणसागर' है जिसमे 'कोकशास्त्र' का निरूपण है।[2]

३—नागरी प्रचारिणी सभा काशी की १५ वी त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट मे अहमद कृत 'बारहमासी' प्राप्त हुई है, जहाँ उन्हे कामशास्त्र ग्रन्थो का प्रणेता माना है। रिपोर्ट मे उन्हें १६२८ वि० जहाँगीर के काल मे वर्तमान माना गया है।

४—नागरी प्रचारिणी सभा काशी खोज रिपोर्ट १६२०–२२ ई० मे 'गुणसागर' ग्रन्थ की दो प्रतियाँ प्राप्त हुई है। जिसमे एक का कर्त्ता अहमद (ताहिर) तथा दूसरी का अहमद बताया है। रिपोर्ट में इनके सम्बन्ध मे दी गयी टिप्पणी मे अहमद तथा ताहिर को एक ही मानते हुए 'गुणसागर' और 'कोकसार' को एक ही ग्रन्थ ठहराया है। इन प्रतियो में जहाँगीर बादशाह के राजवश का वर्णन है तथा इनका रचनाकाल १६४८ वि० बतलाया है, जबकि रचनाकाल सूचक पद्य कही भी नही दिया है। इसी रिपोर्ट मे १० वी त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट मे प्राप्त 'सामुद्रिक' के रचनाकाल १६७८ से यह अनुमान लगाया है कि १६४८ मे इस ग्रन्थ को लिखने का प्रारम्भ किया होगा और यह १६७८ मे पूरा हुआ होगा।[3]

इन पक्तियो के लेखक को काशी ना० प्रचारिणी सभा के ग्रन्थालय मे अहमद तथा ताहिर कृत ४ ग्रन्थ मिले है—१ ४६/२० ग्रन्थ का नाम 'मुक्तिविलास'। लेखक ताहिर रचनाकाल १६७८, 'याज्ञिक सग्रह', २. ३८/३४ ग्रन्थ 'कोकशास्त्र'। लेखक ताहिर (अहमद के शिष्य) रचनाकाल १६७८। रचनाकाल सूचक पद तथा रचना—स्थान (आगरा) दिया हुआ है। ३. ४४१/३१६ ग्रन्थ 'रतिविनोद'। ग्रन्थकार—अहमद। रचनाकाल × । ४ ३६६/२१ ग्रन्थ 'बारहमासी'। रचयिता—अहमद। रचनाकाल × । रिपोर्ट १५ मे इसी प्रति का उल्लेख हुआ है। लेखक ने अहमद कृत 'सामुद्रिक-कोकसार' की एक प्रति जिसमे स्पष्ट रूप से रचनाकाल १६७८ वि० दिया है, हिन्दी विद्यापीठ के श्री उदयशकर शास्त्री के पास देखी है। उक्त ग्रन्थ अहमद कृत 'रतिविनोद' ग्रन्थ के अनुसार ही है।

एक बात जो स्पष्ट है, वह है कि 'गुण सागर', 'सामुद्रिक' तथा 'कोकशास्त्र' तीन अलग-अलग नामो से मिलने वाली प्रतियाँ एक ही विषय 'कोक' के अलग-

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ४०६।

[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५६६।

[3] देखिए रिपोर्ट संख्या २।

अलग नाममात्र है। डा० वर्मा ने 'सामुद्रिक' को हस्तरेखा विज्ञान का ग्रन्थ मान लिया है। वास्तव में वह अंग लक्षण-वर्णन वाला सामुद्रिक है। उन्ही के मतानुसार 'गुणसागर' मे 'कोकशास्त्र' का निरूपण है। खोज रिपोर्ट १९२०–२२ मे प्राप्त एक प्रति की पुस्तिका मे लिखा है "इतिश्री कोकसार गुनसागर पुस्तक समाप्तम् शुभ भूयात।" जो उक्त मत का समर्थन करती है। उदयशंकर शास्त्री वाली प्रति से यह स्पष्ट है कि 'सामुद्रिक-कोकसार' नामक ग्रन्थ एक है। सामुद्रिक कोकसार का एक अङ्ग है स्वतन्त्र ग्रन्थ नही। अत. यह निश्चित है कि 'कोकसार', 'सामुद्रिक' तथा 'गुण सागर' एक ही ग्रन्थ के तीन अलग-अलग नाम है। तीनो का विषय प्रतिपादन आदि सब एक सा ही है। अब तक प्राप्त समस्त प्रतियो मे 'गुणसागर' 'सामुद्रिक' तथा 'कोकसार' का रचनाकाल १६७८ ही मिलता है। यह संवत् वाली बात भी इनको एक ही ग्रन्थ मानने मे सहायक होती है।

अब विचारणीय यह है कि अहमद और ताहिर दो थे या एक। यदि यह दो थे तो 'कोकसार' का रचयिता कौन है ?

अहमद के नाम से पाये जाने वाले ग्रन्थ ५ है—१ स्फुट काव्य २. सामुद्रिक, ३ कोकशास्त्र (रतिविनोद), ४. गुनसागर, ५ बारहमासी। स्फुट काव्य का पता नही चलता। सामुद्रिक का रचनाकाल रिपोर्ट १० (१९१७–१९१९) मे १६७८ वि० है तथा उदयशकर शास्त्री वाली प्रति में (सामुद्रिक कोकसार) अहमद का नाम एक स्थान पर तथा ताहिर का नाम अनेक स्थानो पर आया है। अहमद के नाम वाला छन्द यह है—

रचना रचि जो आदी, प्रगट कहि सो वेद मुष।
अहमद गुरु प्रसाद लीषी कछुक एक जोतषी॥

इसमें अहमद को अपना गुरु स्वीकार किया है। अन्य अनेक स्थानो पर ताहिर का नाम है। उनके रति विनोद ग्रन्थ की जो हस्तलिखित प्रति काशी के ग्रन्थालय मे है, उसमें यह दोहा इस प्रकार है—

रचना रची सु आदि प्रकट करी जो वेद मुष।
अहमद गुरु परसाद कछुक जो तुम यह लिषी॥

गुणसागर' का खोज १९२०-२२ मे जहाँ वर्णन है वहाँ तो ताहिर और अहमद को एक ही मान लिया गया है। अहमद का अन्तिम ग्रन्थ 'बारहमासी' ऐसा है जिसमें सर्वत्र अहमद का ही नाम है ताहिर का नहीं।[1] इससे अहमद तथा ताहिर को भिन्न-भिन्न व्यक्ति मानने को हमे बाध्य होना पडता है।

---

[1] देखिए खोज रिपोर्ट १५, पृष्ठ ६६।

दूसरी ओर ताहिर के ग्रन्थ तीन बतलाए जाते है—१. कोकशास्त्र : सभा की प्रति रचनाकाल १६७८, २. गुणसागर : रिपोर्ट १६२०-२२ रचनाकाल १६४८, ३ मुक्तिविलास : सभा की प्रति रचनाकाल १६७८। पहली पुस्तक मे उन्होने अहमद को अपना गुरु स्वीकार किया है तथा ग्रन्थ-रचना-कारण मे कवि ने अपना नाम स्पष्ट दिया है—

चतुर बनै सो चितु हरैं उपजे हिये अमोद।
ता कारन रचना रची ताहर काम विनोद॥

और भी— जे गुरु मुष अरु वेद मुष वचन सुन्यौ दै कान।
राज सभा ताहर कहै कीनौ प्रगट निदान॥

कवि ने किसी राजसभा मे इसके कहने का वर्णन किया है। उसने 'गुण-सागर' मे 'शाहेवक्त' जहाँगीर की प्रशसा की है। अत. उसकी सभा के लिए यह इशारा हो सकता है। तीसरा ग्रन्थ 'मुक्ति विलास' मे उन्होने अहमद को स्पष्ट रूप से अपना गुरु स्वीकार किया है, यथा—

कवि ताहर बरनइ कियौ साधन जोग अमोल।
अहमद गुरु की कृपा ते दिये कपाट हिये के खोल॥

अत ताहर को निश्चयात्मक रूप से 'मुक्तिविलास' का कर्ता माना जा सकता है जिसका रचनाकाल १६७८ वि० है। इससे ताहर और अहमद दो भिन्न व्यक्ति ठहरते है और अहमद को ताहिर का गुरु कहा जा सकता है। दारा शिकोह द्वारा कराये गए छन्द-संग्रह मे भी यह ज्ञात होता है कि अहमद और ताहिर दो भिन्न व्यक्ति है। उस छंद-सग्रह मे अहमद और ताहिर दोनो के छन्दो का सग्रह हुआ है। १८७० वि मे लाल कवि कृत 'सभाविलास' या 'हियहुलास रागमाला काव्य' नामक सग्रह ग्रन्थ मे तुलसी, रहीम, गिरधर आदि के साथ अहमद के भी छन्द सग्रहीत किए गए है। ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशी के पुस्तकालय मे सुरक्षित है।

उपलब्ध सामग्री पर विचार करके अब हम उनके ग्रन्थो के विषय मे कुछ निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करेंगे। 'स्फुट काव्य' तथा 'बारहमासी' निश्चित रूप से अहमद के ग्रन्थ है और दूसरी ओर 'मुक्तिविलास' ग्रन्थ का कर्ता ताहिर है। अब अहमद कृत 'गुणसागर'—जिसमें सामुद्रिक तथा कोकसार भी सम्मिलित है—तथा ताहिर कृत 'गुणसागर'—जिसमें कोकशास्त्र की प्रति भी सम्मिलित है—विचार करने को शेष रह जाते है। जैसा कि ऊपर कहा गया है—अहमद कृत 'गुणसागर' की प्रति जो खोज १९२०-२२ मे प्राप्त हुई है और वहाँ उसका रचनाकाल १६४८ कहा गया है जबकि रचनाकाल सूचक छन्द नहीं दिया है। ग्रन्थ जहाँगीर के राज्य-

काल मे लिखा गया, जोकि १६०५ ई० से १६१७ ई० तक (वि० १६६२ से १६८४ तक) था। इस असगत बात को देखकर ही डा० हीरालाल ने यह अनुमान लगाया है कि ग्रन्थ का प्रारम्भ सवत् १६४८ मे हो गया होगा। यह समय उसके समाप्त करने का नहीं है। १०वी त्रैमासिक खोज रिपोर्ट के आधार पर ही उन्होंने इसका समाप्ति-काल भी १६७८ वि० मान लिया है। इसी रिपोर्ट मे 'सामुद्रिक' का रचना-काल १६७८ वि० दिया गया है। जिससे यह कहा जा सकता है कि ग्रन्थ 'गुणसागर' (सामुद्रिक तथा कोकसार) १६७८ वि० में रचा गया। ताहिर के नाम से प्राप्त 'कोकशास्त्र' की प्रति मे रचनाकाल सूचक छन्द यह है—

छत्र धरे अविचल सदा राज साहि जहाँगीर।१।
संवत् सौरह सै जितौ अष्टोतरि अधिकाय।
बदि असाढ़ तिथि पंचमी कही कथा समुझाइ ॥ पृष्ठ ३, छंद १४।

रचना-स्थान सूचक छन्द यह है—

काम कौतूहल रस कथा चतुर आगरे चाइ
कवि ताहर या देश मे वरणी कथा बनाइ ॥ पृष्ठ २, छन्द ६।

ग्रन्थ मे नौ खण्ड है—परम खण्ड, राज खण्ड, दम्पति खण्ड, शुभ खण्ड, गुण विदग्ध खण्ड, पुरुष मिलाप खण्ड, सयोग खण्ड, सुरतिविलास खण्ड, और कर्म खण्ड। 'शुभ खण्ड' ही वह भाग है जिसे 'सामुद्रिक' कहा जा सकता है। उसमे अङ्गो के शुभाशुभ लक्षणो का वर्णन है।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अहमद तथा ताहिर के नाम से प्रचलित समस्त कोकशास्त्र के ग्रन्थों का रचनाकाल १६७८ वि० ही है। यह ग्रन्थ एक साथ लिखे गये। अहमद और ताहिर गुरु-शिष्य है। ऐसी दशा मे निम्न बातें ही सम्भव हो सकती है—१ इन दोनों ने मिलकर इस ग्रन्थ की रचना की, २ दोनो ने अलग-अलग एक ही नाम के ग्रन्थ की रचना की, ३. इनमे से किसी एक ने (ताहिर ने) इस ग्रन्थ की रचना की और भ्रमवश गुरु के रूप मे अहमद का नाम आने से लोगो ने उसे अहमद कृत मान लिया।

सर्व प्रथम दूसरे मत पर विचार किया जाता है। यदि दोनो ने अलग-अलग इस ग्रन्थ की रचना की तो दोनो के ग्रन्थो के वे अङ्ग जो अक्षरश मिलते है, के विषय में क्या कहा जा सकता है। ताहिर की प्रति में २० वॉ छन्द अहमद वाली प्रति में प्रथम है। छन्द यह है—

'जे तपुसी तप करें हितै चाहे सिद्ध को।
जे छत्री सिर छत्र ते चाहें रिद्धि को

गुरु वर्णन वाला दोहा दोनो मे एक सा है—

ताहिर वाली प्रति मे—रचना रची सु आदि प्रगट करी सो वेद मुष।
अहमद गुरहि प्रसाद कछुक जोति मै ह लही।

अहमद वाली प्रति मे—रचना रची सुआदि प्रगट करी जो वेद मुष।
अहमद गुरु परसाद कछुक जो तुम यह लिषी ।।

ग्रन्थ रचना का कारण—ताहिर वाली प्रति मे—

चतुरा का जो मनु हरै उपजै हिये प्रमोद।
ता कारन रचना रची ताहर काम बिनोद।

अहमद वाली प्रति में 'ताहर' शब्द के स्थान पर 'विद्या' शब्द आया है। शेष पूरा दोहा ज्यों का त्यो है। अहमद वाली प्रति मे रचनाकाल वाला छन्द नही है। दोनो ग्रन्थो के अधिकांश छन्द एक दूसरे से मिलते है। ताहिर वाली प्रति मे अहमद वाली प्रति के सब छन्द हैं। ताहिर की प्रति मे अहमद की प्रति से कुछ अधिक छन्द है। ऐसी दशा मे यह कहना कि दोनो ने अलग-अलग एक ही विषय पर रचना की और एक के लगभग सब छन्द दूसरे मे प्राप्त होते है असम्भव ही है। अत: यह निश्चित है कि दोनो कवियो ने अलग-अलग इस एक ही विषय को लेकर ग्रन्थ-रचना नही की।

अब प्रथम अनुमान पर यदि विचार किया जाय कि अहमद और ताहिर ने एक साथ मिलकर इसकी रचना की तो इस सम्बन्ध मे कई शङ्काएँ उपस्थित हो जाती हैं—(१) अहमद तथा ताहिर, गुरु एव शिष्य (गुरु वृद्ध तथा शिष्य तरुण) एक साथ बैठ कर कोकसार का ऐसा वर्णन करे जिसे कि एकान्त मे बैठकर पढने मे भी लज्जा अनुभव हो, असम्भव ही प्रतीत होता है। एक उदाहरण देखिये—

कामिनि जैसी प्राग मैं तैसे बरहि जवान।
काम कला लक्षरण कहौं एक एक परवान ।।

चौपाई—और हरै गुजरात फिरग, देवगिरि नारि चारि इक सग।
आलिगन अरु चुम्बन खण्डन, भुजा अङ्क हिय करु कुच मडन।
ज्यों-ज्यो अग पुरुष तन लागै, त्यो-त्यों मदन काम तन जागै। आदि
—ताहिर कृत कोकशास्त्र, ना. प्र सभा की हस्तलिखित प्रति स० ३८।३४

२—दूसरी शका यह है कि इन ग्रन्थों मे अहमद का नाम अधिक से अधिक दो स्थानो पर आता है। किसी-किसी प्रति मे 'अहमद गुरुहि प्रसाद' वाले प्रसङ्ग मे एक ही स्थान पर आया है। अहमद की कही जाने वाली नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति मे एक स्थान पर अहमद का नाम और आया है

जे गुरुमुख और वेदमुख वचन सुन्यौ दे कान ।
राजसभा अहमद कहै कीनों प्रगट निदान ।।

ताहिर वाली प्रतियों मे सिर्फ अहमद के स्थान पर ताहिर का नाम है और कोई भेद नही है। साथ-साथ रचना करने वालो मे से किसी एक का ही नाम होना चाहिए था। दोनो का नाम क्यो है? ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु के प्रसङ्ग मे 'अहमद' का नाम देखकर लिपिकार ने त्रुटि से उसे अहमद कृत मानकर ताहिर के स्थान पर अहमद का नाम रख दिया। अभी यह अनुमान ही है। इस सम्बन्ध मे विशेष कुछ नही कहा जा सकता। लेकिन गुरु और शिष्य दोनो का साथ-साथ बैठकर इस प्रकार की रचना करने का प्रथम उदाहरण है, जो उचित प्रतीत नही होता।

अब अन्तिम अनुमान पर विचार करना है—जहाँ इन दोनो मे से किसी एक को ही इन ग्रन्थो का रचयिता मानने की बात है। अहमद के दो ग्रन्थ 'बारह-मासी' तथा 'स्फुट काव्य' है। इनमे से किसी का रचनाकाल ज्ञात नही है। 'कोक-सार' को इनका ग्रन्थ मान लेने के कारण १५वी रिपोर्ट मे इन्हें जहाँगीर के शासन-काल मे वर्तमान रहना बताया गया है। दूसरी ओर ताहिर के ग्रन्थ 'मुक्ति-विलास' का रचनाकाल १६७८ वि० है। ऐसी दशा में 'मुक्तिविलास' एव 'कोकसार' (गुण-सागर) का रचनाकाल एक ही आता है। इस आधार पर ताहिर को 'कोकसार' का भी कर्ता मान सकते हैं। पहले मत के सम्बन्ध मे भी हम यह कह आये है कि ताहिर का नाम कोकशास्त्र के ग्रन्थ में अहमद की अपेक्षा अधिक मिलता है। दूसरी बात जो इस सम्बन्ध में एक नये अनुमान को जन्म देती है वह खोज रिपोर्ट १९२०–२२ मे प्राप्त 'गुणसागर' की प्रति का रचनाकाल सम्वत् १६४८ है। उसमें यह कहा गया है कि ग्रन्थ १६४८ मे प्रारम्भ होकर सम्भव है १६७८ मे समाप्त हुआ हो। इस अनुमान से यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि १६४८ मे अहमद ने इस ग्रन्थ का प्रारम्भ कर दिया हो और बाद में उसकी मृत्यु के पश्चात् या उसकी आज्ञानुसार उसके शिष्य ताहिर ने १६७८ मे उसे पूरा किया हो। और ग्रन्थ की समाप्ति के समय जहाँगीर के शासन-काल का उल्लेख उसमें जोड दिया गया हो। अन्यथा ग्रन्थ के प्रणयन मे ३० वर्ष का व्यवधान अधिक प्रतीत होता है। अहमद वाली प्रति का यह छन्द—"अहमद गुर परसाद, कछुक जो तुम यह लिषी, इसके किसी अन्य के द्वारा लिखे जाने की ओर सकेत सा करता प्रतीत होता है।

जो भी हो, अब तक प्राप्त सामग्री के आधार पर हम अहमद और ताहिर को दो भिन्न-भिन्न ग्रन्थकार तथा अहमद को ताहिर का गुरु स्वीकार करने को बाध्य है। निश्चय रूप से तो नहीं लेकिन ऊपर के कुछ प्रमाणों के आधार पर

गुणसागर' नामक ग्रन्थ के कर्त्ता के रूप मे ताहिर को स्वीकार किया जा सकता है। आगे होने वाली खोजो मे प्राप्त अन्य सामग्री के द्वारा इस विषय पर और अधिक प्रकाश पड़ने की सभावना है।

बीसलदेव रासो (रास) का रचना-काल--नरपति नाल्ह का 'बीसलदेव रासो' एक ऐसा ग्रन्थ है जो कुछ काल पूर्व तक वि० की १३वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना माना जाता था। अब इसके रचनाकाल के विषय मे विद्वानो मे बड़ा मतभेद है। नीचे हिन्दी के कुछ विद्वानो की सम्मतियो के प्रकाश मे इसके रचना-काल पर विचार किया जाता है।

अब तक इस ग्रन्थ की अनेक प्रतियां प्राप्त हो चुकी है। सबसे प्राचीन प्रति स० १६६९ की लिखी हुई है। भिन्न-भिन्न प्रतियों मे इसका रचना-काल भी भिन्न-भिन्न है—'सवत् सहस तिहुतरह जाणि', 'सवत सहस सतिहतरह जाणि', 'सवत चार बहोतरा मझारि, सवत् तेर मतोतरह जाणि' आदि। सभा द्वारा प्रकाशित सस्करण मे रचनाकाल सवत् १२७२ दिया है—"बारह सौ बहोतराहां मंझारि।' वास्तव मे इन सवतो के आधार पर लोगो ने नरपति को बीसलदेव का समकालीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा इस ग्रन्थ का निर्माण-काल १२७२ वि० ठीक मानते है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४५ अङ्क २ मे उन्होने यह स्पष्ट किया है कि कवि का चरित्र-नायक बीसलदेव विग्रहराज तृतीय है न कि चतुर्थ। विग्रहराज तृतीय का समय उन्होंने स० ११५० अनुमान किया है।

इस सम्बन्ध मे डा० मोतीलाल मेनारिया ने पर्याप्त परिश्रम किया है। उन्होने अपने ग्रन्थ राजस्थानी भाषा और साहित्य में अनेक इतिहास सम्बन्धी भूलो की ओर सकेत करके यह सिद्ध किया है कि नरपति बीसलदेव का समकालीन नही था।[1] भाषा के आधार पर भी वह इस ग्रन्थ को १६वी शताब्दी से पूर्व का स्वीकार करने को प्रस्तुत नही है। उनके मतानुसार यह रासो गीत-काव्य भी नही है। यह राजस्थान मे कभी नही गाया गया। इसलिए इसकी भाषा मे आया हुआ परिवर्तन लोक-काव्य होने के कारण नहीं है। वह 'बीसलदेव रासो' के कर्त्ता नरपति को १६ वी शताब्दी में गुजरात में हुए नरपति कवि से अभिन्न मानते है। दोनो कवियो की भाषा शैली तथा शब्दावली पर उन्होने विचार करके उनमे पर्याप्त साम्य दिखाया है।[2]

---

[1] देखिये पृष्ठ ८६—८७।

[2] राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ८८—८९।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी अपने 'हिन्दी साहित्य' नामक ग्रन्थ मे नरपति नाल्ह को बीसलदेव का समकालीन नही मानते।[1] उन्होने भी डा० मेनारिया के विश्वास को उचित ठहराकर हिन्दी साहित्य के आदिकाल मे उस पर विचार नही किया है।

अब तक जो भी तर्क इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे विभिन्न विद्वानो ने उपस्थित किये है उन पर विचार करने पर हम भी इसे १६ वी शताब्दी की रचना स्वीकार करने को बाध्य है।

[1] हिन्दी-साहित्य, पृष्ठ ५२।

प्रामाणिक ग्रन्थों का विवरण—उनमें प्रयुक्त
काव्य रूपों की सूची

● ● ● तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

प्रामाणिक ग्रन्थों का विवरण—उनमें प्रयुक्त काव्य रूपों की सूची

द्वितीय अध्याय मे ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर हुए विचार के पश्चात् जो ग्रन्थ प्रामाणिक ठहरते है तथा जिन्हे काव्यरूपो के अध्ययन के लिए ग्रहण किया गया है, इस अध्याय मे उनका विवरण प्रस्तुत किया गया है। विवरण के पश्चात् इस काल मे प्रचलित समस्त काव्यरूपो की सूची उनके उद्भावित होने के कालक्रम के अनुसार दी गई है।

प्रामाणिक माने गए ग्रन्थों का विवरण

क्र० सं०	ग्रन्थकार	ग्रन्थ	रचनाकाल
१.	नामदेव	वानी	१४०७ वि० से पूर्व
२.	अग्रवाल	प्रद्युम्न चरित्र	१४११ वि०
३.	विनयप्रभ उपाध्याय	१—गौतम रासा, २—हसवच्छ रासा, ३—शीलरासा	१४१२ वि० के लगभग
४.	हरसेवक मुनि	मयरणरेहा रास	१४१३ वि०
५.	सिद्ध सूरि जैन	शिवदत्त रास	१४२३ वि०
६.	हीरानन्द सूरि जैन	कलिकाल रास	१४२६ वि०
७.	असाइत	हमाउली	१४२७ वि०
८.	विद्यापति	पदावली	१४५० वि० लग०
९.	सोमसुन्दर सूरि	आराधना रास	१४५० वि०
१०	जाषू मणियार	हरिचन्द पुराण कथा	१४५३ वि०
११.	मुनिसुन्दर जैन	शांतरस रास	१४५५ वि०
१२.	रामानन्द	१—रामरक्षा स्तोत्र, २—ज्ञानतिलक, ३—स्फुट पद	१४५६ वि० लग०
१३.	सैन	स्फुट पद	१४५७ वि० लग०
१४.	भवानन्द	अमृतधार	,,

१५.	रैदास	बानी	,,
१६.	श्रीधर	रणमल छन्द	१४५७ वि० लग०
१७.	पीपा	१–वाणी, २–जोग चितावणी ग्रन्थ	१४८० वि० के बाद
१८.	जयसागर जैन	कुशलसूरि स्तोत्र	१४८१ वि०
१९.	लखनसेनि	हरिचरित्र विराट पर्व	,,
२०	हीराणंद	विद्याविलास रास (पवाणउ)	१४८५ वि० लग०
२१.	शिवदास	अचलदास खीची री वचनिका	१४८५ वि० लग०
२२.	दयासागर सूरि	धर्मदत्त चरित्र	१४८६ वि०
२३.	विष्णुदास	१–महाभारत कथा, २–स्वर्गारोहण, ३–रुक्मिणी मगल, ४–सनेहलीला	१४९२ वि० लग०
२४.	चक्रपाणि व्यास	रुक्मिणी हरण	१५वी शती
२५.	विधिचन्द्र शर्मा	१–अवनार रास, २–ब्रह्मविद्यार्थप्रकाश	,,
२६.	माधन	मैनासत	,,
२७.	नारायणदास	छिताई वार्त्ता	,,
२८.	परमानन्द	ओषाहरण	१५१२ वि०
२९.	दामो	लक्ष्मणसेन–पद्मावती	१५१६ वि०
३०.	चेतनदास	प्रसग पारिजात	१५१७ वि०
३१.	कवीरदास	१–अमरमूल, २–अनुराग सागर, ३–उग्रज्ञान, ४–मूल सिद्धान्त, ५–ब्रह्मनिरूपण, ६–हसमुक्ता, ७–कबीर परिचय की साखी, ८–शब्दावली, ९–पद, १०–साखियाँ, ११–दोहे, १२–सुखनिधान, १३–कबीर पजी, १४–बलख की रमैनी, १५–विवेकसागर, १६–विचारमाल, १७–कायापजी, १८–रामरक्षा, १९–अठ पहरा, २०–निर्भयज्ञान, २१–कबीर-धर्मदास गोष्ठी, २२–अगाध मगल, २३–बलख की पैज, २४–ज्ञान, चौंतीसा, २५–कबीराष्टक, २६–मगल शब्द, २७–रामानन्द की गोष्ठी, २८–आनन्दराम सागर, २९–आदिमगल, ३०–अनाथ मंगल, ३१–अक्षरभेद की रमैनी, ३२–अक्षरखड की रमैनी, ३३–अर्जनामा, ३४–आरती, ३५–छप्पय, ३६–चौकाघर की रमैनी, ३७–ज्ञान गूदरी, ३८–ज्ञानसागर, ३९–ज्ञान स्वरोदय, ४०–करमखड की रमैनी, ४१–नाम महात्म्य, ४२–पिया पहचानवे को अग ४३–पुकार शब्द अल-	

	हट्टुक, ४४—साध कौ अग, ४५—सतसग कौ अंग, ४६—स्वाँस गु जार, ४७—तीसाजल, ४८—जन्मबोध, ४९—ज्ञानसबोध, ५०—मखहोम, ५१—निर्भयज्ञान, ५२—सतनाम, ५३—बानी, ५४—ज्ञान स्तोत्र, ५५—हिंडोरा, ५६—सत कबीरबन्दीछोरौ, ५७—शब्द वंशावली, ५८—उग्रगीता, ५९—बसन्त, ६०—होली, ६१—चाँचरा, ६२—रेखता, ६३—झूलना, ६४—खसरा, ६५—राग गौरी, ६६—राग भैरव, ६७—राग काफी, ६८—फगुआ, ६९—बारहमासा, ७०—चौतीसा, ७१—अलिफनामा, ७२—रमैनी, ७३—बीजक, ७४—आगम, ७५—रामसार सोरठा, ७६—पारखा, ७७—ज्ञानतिलक, ७८—सुरति सम्वाद, ७९—सन्तों की गाली, ८०—कबीर भाण्यौ, ८१—अखरावती।	१५२१ वि० लग०
३२. कमाल	कमाल की वाणी	..
३३. धर्मदास	१—शब्द रैदास को वाद, २—स्वास गुन्जार	
३४. भगोदास	बीजक	
३५. श्रुतिगोपाल	सुख निधान	..
३६. जन गिरधारी	भक्त महात्म्य	१५२५ वि०
३७. कनक प्रभु सूरि	वैद्यक	१५३० वि०लग०
३८. कल्लोल	ढोला मारू रा दूहा	१५३० वि०
३९. ज्ञानसागर जैन	श्रीपाल चरित्र	१५३१ वि०
४०. डूंगर	डूंगर बावनी	१५३८ वि०
४१. गुण रतन	श्रीपाल रास	१५३१ वि०
४२. प्रतापसिंह	चन्द कुंवर री बात	...
४३. मानिक कवि	बैताल पचीसी	१५४६ वि०
४४. ठक्कुर सी	१—पचेन्द्रीय वेलि, २—नेम राजमति वेलि, ३—पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी	१५५० वि०
४५. संवेग सुन्दर उपाध्याय—	सार सिखावन रासा	१५४८ वि०लग०
४६. भीम	डगव पुराण	१५५० वि०लग०
४७. रामचन्द्र सूरि	मुनिपति राजर्षि चरित्र	१५५० वि०
४८. नरपति	१—नन्द बत्तीसी, २—विक्रम पंच दड, ३—स्नेह परिक्रम, ४—निःस्नेह परिक्रम, ५—बीसलदेव रासो	१५४५ वि० से १५६० वि० के बाद तक

४६.	सिंहा	१—जम्बू स्वामी बेलि, २—नेमि बेलि	१५५१ वि०लग०
५०.	भानुदास	स्फुट छन्द	१५५५ वि०लग०
५१.	सिद्धसैन	विक्रमपंच दड चौपाई	१५५६ वि०
५२.	थेघनाथ	नेमिश्वर गीत	,,
५३.	हरीराम	गीताभानु प्रकाश	१५५८ वि०
५४	पुरुषोत्तम	धर्माश्वमेघ	,,
५५.	वल्लभाचार्य	पद	१५५६ वि० लग०
५६	कुतुबन	मृगावती	१५६० वि०
५७	चतुर्भुजदास	मधुमालती की कथा	....
५८	सेन	छन्द	१५६० वि० लग०
५६	ईश्वर सूरि जैन	ललितांग चरित्र	१५६१ वि०
६०	मुनि आनन्द	विक्रम वापर चरित्र	१५६२ वि०
६१.	चन्द	हितोपदेश	१५६३ वि०
६२	हितहरिवश	१—हित चौरासी, २—फुटकर वानी	१५६५ वि०लग०
६३.	उदयभान	विक्रम चरित प्रबन्ध	१५६७ वि०
६४.	हितकृष्णचन्द्र गो०	१—आशाशतक, २—सारसग्रह, ३—अर्थ कौमुदी, ४—कर्णानन्द, ५—राधानुनयविनोद, ६—काव्य अष्टपदी	१५६७ वि० लग०
६५.	गोपीनाथ	स्फुट पद	१५६८ वि० लग०
६६.	वीठलदास	पद	,,
६७.	लावण्य समय गणि	१—विमल मन्त्रीरास, २—कर सवाद, ३—रावण संवाद १५६८ वि० १५७५ वि० १७७२ वि०	१५६८ से १५७५ वि०
६८.	सहज सुन्दर जैन	१—गुण रत्नाकर, २—रतनसार चौपाई १५७२ वि० १५८२ वि०	१५७२ से १५८२ वि०
६६.	चतुरमल	नेमिश्वर गीत	१५७१ वि०
७०.	छीहल	१—पच सहेली, २—बावनी, ३—पथीगीत, ४—आत्म प्रतिबोध जयमाल । १५७५ वि०	१५७५ वि० लग०
७१.	बालचन्द्र जैन	राम सीता चरित्र	१५८० वि०
७२.	गौरवदास जैन	यशोधर चरित्र	,,
७३	ठक्कुर सी	कृपण चरित्र	

७४.	सिद्धराम	१—साखी, २—शब्द, ३—वैराग्य को अंग, ४—योग ध्यान का अंग, ५—शब्द बावनी	१५८२ वि० लग०
७५.	हरचन्द	अगडदत्त रास	१५८४ वि०
७६.	गणपति	माधवानल प्रबन्ध दोहाबद	,,
७७.	लालचराम हलवाई	भागवत दशम स्कन्ध भाषा (हरि चरित्र)	१५८७ वि०
७८	मोतीलाल	गणेश पुराण भाषा	१५९० वि०
७९.	सूजाजी	राव जैतसी रो छन्द	१५९१—९८ वि०
८०	गुरु अगद	१—जन्म साखी, २—पद	१५९६ वि० लग०
		१५९६ वि० १५९६ वि लग०	
८१.	जायसी	१—पद्मावत, २—अखरावत, ३—आखिरी कलाम, ४—कहरानामा	१५९७ वि०
८२.	कृपाराम	हिततरगिनी	१५९८ वि०
८३.	केशवदास ब्रजवासी	भ्रमर बत्तीसी	,,
८४	कृष्णदास पयहारी	१—जुगलमान चरित्र, २—ब्रह्म गीता, ३—प्रेमतत्त्व निरूपण, ४—दानलीला	१५५९—८४ वि०
८५	दैपाल	चंदन बाला चौपाई	१६ वी शती०
८६.	सूरदास	सूरसागर	१६०० वि० लग०
८७.	कृष्णदास	१—भ्रमरगीत, २—प्रेमतत्त्व निरूपण, ३—जुगलमान चरित्र, ४—वैष्णव वन्दन	१६०० वि०
८८	मीराबाई	१—पद, २—नरसीजी का मायरा	१६०० वि० लग०
८९.	नरोत्तमदास	१—सुदामाचरित, २—ध्रुवचरित, ३—विचारमाला	१६०२ वि० लग०
९०.	सोमविमल	श्रेणिक रास	१६०३ वि०
९१.	परमानन्ददास	१—परमानन्द सागर, २—ध्रुव चरित्र, ३—पद, ४—दानलीला, ५—दधि लीला	१६०६ वि० लग०
९२.	कुभनदास	पद	१६०७ वि० लग०
९३.	हरराज	ढोला मारू वानी	१६०७ वि०
९४.	हरिराय	वरषोत्सव	१६०७ वि० लग०
९५.	केशव किशोर	वल्लभ कुल वेलि	१६०७ वि०
९६.	अमोलक	खानखवास की कथा	१६०३—११ वि०
९७.	वलवीर	डगीपर्व	१६०८ वि०
९८	गोविन्दराम	हाडावती	१६०९ वि०

६६.	ईसरदास	सत्यवती कथा	सिकन्दर के राज्य-काल मे
१००.	गो० बलचन्द्र	फुटकर पद	१६१० वि० लग०
१०१	लालदास स्वामी	१—बानी, २—मंगल	,, ,,
१०२.	सेवक जी	सेवक बानी	,, ,,
१०३	हरिवंश बलि	हिताष्टक २ भाग	,, ,,
१०४.	प्रपन्न गेसानन्द वैष्णव	भक्तिभावनी	१६०६ वि०
१०५	विनय समुद्र	सिंहासन बत्तीसी	१६११ वि०
१०६	अज्ञात	बल्लभाख्यान	,,
१०७.	मह्रीराज	नल दमयन्ती रास	१६१२ वि०
१०८	छीतस्वामी	स्फुट पद	१६१३ वि० लग०
१०९	विट्ठल विपुल	बानी	१६१५ वि० लग०
११०	जयवंत सूरि	नेमि राजुल बारह मास बेलि	१६१५ वि०
१११	सुन्दरदास जैन	हनुमान चरित्र	१६१६ वि०
११२.	रतन खाती	नरसी मेहता को माहेरो	,,
११३	कुशललाभ	१—माधवानल कामकन्दला, २—ढोला	,,
		मारू की चौपाई, ३—तेजसार रास,	,,
		४—अगड़दत्त चौपाई, ५—पार्श्वनाथ स्तवन	,,
		६—गौड़ी छन्द, ७—नवकार छन्द,	,,
		८—भवानी छन्द, ९—पूज्य वाहण गीत,	,,
		१०—पिंगल शिरोमणि ग्रन्थ,	,,
		११—स्थूलि भद्र छतीसी	,,
११४.	हरिदास स्वामी	१—केलिमान २—पद	१६१७ वि० लग०
११५.	ब्रह्मरायमल जैन	१—हनुमत मोक्ष कथा,	
		२—श्रीपाल रासो, ३—श्रुति	१६१६—३० वि०
		पचमी कथा,	१६३३ वि०
११६	बदन	१—गणेशव्रत कथा, २—भगवान स्तुति	१६१६ वि० ल०
११७.	मोहनलाल मिश्र	शृङ्गार सागर	१६१६ वि०
११८.	रायमल्ल पाण्डे	हनुमच्चरित्र	,,
११९.	चेतनचन्द्र	अश्वविनोद	,,
१२०.	दयासागर	मदननरिन्द चरित	१६१९ वि०
१२१.	मनोहर	शत प्रश्नोत्तरी	१६२० वि० लग०
१२२.	सर्वजीत	विष्णु पद	,,
१२३	गोविन्द स्वामी	स्फुट पद	१६२३ वि० लग०

१२४	व्यासजी	१—वानी, २—रागमाला	१६२३ वि० लग०
१२५	नन्ददास	१—रूप मञ्जरी, २—विरह मंजरी	,,
		३—रस मंजरी, ४—मान मंजरी नाममाला	,,
		५—अनेकार्थ मंजरी, ६—श्याम सगाई	,,
		७—भँवर गीत, ८—रुक्मिनी मंगल	,,
		९—रास पंचाध्यायी, १०—सिद्धान्त	,,
		पंचाध्यायी, ११—दशम स्कंध, १२—पद	,,
१२६.	चतुर्भुजदास	पद	१६२५ वि० लग०
१२७.	कृष्णचन्द्र गो०	सिद्धान्त के पद	१६२६ वि० लग०
१२८.	जमाल	जमाल पचीसी	१६२७ वि० लग०
१२९.	जल्ह	बुद्धिरासो	,, ,,
१३०	भगवत रसिक	१—अनन्य निश्चयात्मक, २—नित्य-	,, ,,
		बिहारी युगल ध्यान, ३—अनन्य	,, ,,
		रसिका भरण, ४—निश्चयात्मक	,, ,,
		ग्रन्थ उत्तरार्द्ध, ५—निर्बोध मनरंजन	,, ,,
१३१	हलधर	सुदामा चरित्र	१६२७ वि०
१३२.	नयसुन्दर	शील रक्षा रास	१६२९ वि०
१३३	दादूदयाल	१—बानी २—सबद	१६३० वि० लग०
१३४.	बिहारिनदास	वाणी	,, ,,
१३५.	नागरीदास	समय प्रबन्ध दो भाग	,, ,,
१३६.	जैतराम	१—गीता की टीका, २—शील रासा	१६३०-३२ वि. लग०
१३७.	तुलसीदास[१]	१—रामलला नहछू १६१६,	१६१६—८० वि०
		२—रामाज्ञा प्रश्न १६२१,	,, ,,
		३—जानकी मङ्गल १६२६	,, ,,
		४—राम चरित मानस १६३१	,, ,,
		५—पार्वती मङ्गल १६४३	,, ,,
		६—गीतावली १६५८	,, ,,
		७—विनयपत्रिका १६५८	,, ,,
		८—कृष्णगीतावली १६५८	,, ,,

[१] तुलसीदास के ग्रन्थों के रचनाकाल के उल्लेख के लिए डा० माताप्रसाद गुप्त को आधार माना गया है। देखिए 'तुलसीदास'—तुलसीदास की कृतियों का कार्यक्रम' पृष्ठ २३४ ४६'

		९—बरवै, १०—सतसई दोहावली, ११—कवितावली, १२—बाटक, १३—कलि धर्माधर्म निरूपण	,,
१३८.	विहारीवल्लभ	१—भगवत रसिक जू की कथा, २—बानी	१६३२ वि० लग०
१३९.	जयचन्द	नासिकेत पुराण	१६३२ वि०
१४०	गदाधर भट्ट	१—बाणी, २—ध्यान लीला	१६३२ वि० लग०
१४१.	अग्रदास	१—रामभजन मंजरी, २—हितोपदेश उपाख्यान बावनी (कुण्डलियाँ), ३—पद, ४—रामचरित के पद, ५—रामाष्टक, ६—छप्पय, ७—ध्यान मजरी	,,
१४२.	देवीदास	सिंहासन बत्तीसी	१६३३ वि०
१४३.	अज्ञात	कुतुवशतक	लिपि १६३३ वि०
१४४.	बोधा	१—बाग वर्णन, २—बारहमासी, ३—फूलमाला, ४—पक्षी मजरी, ५—पशुजाति नायक-नायिका कथन	१६३६ वि० लग०
१४५.	हीरकलश	सिंहासन बत्तीसी चरित चौपाई	१६३६ वि०
१४६.	करनेश बन्दीजन	१—कर्णाभरण, २—कर्ण भूषण, ३—भूप भूषण	१६३७ वि० लग०
१४७.	मुनिलाल	रामप्रकाश	,,
१४८.	गोपीनाथ	भागवत दशम पूर्वार्द्ध	१६३९ वि० लग०
१४९.	तख्तमल्ल	श्री करकुण्ड की चौपाई	१६३९ वि० लग०
१५०.	बलभद्र	१—नखशिख, २—भागवत भाष्य, ३—दूषण बिचार, ४—रसविलास, ५—हनुमान नाटक	१६४० वि० लग०
१५१.	तानसेन	१—सगीतसार, २—रागमाला, गणेश स्तोत्र	
१५२.	टोडरमल	स्फुट पद	
१५३.	वीरबल	स्फुट पद	
१५४.	होलराय	स्फुट छन्द	१६४० वि० लग०
१५५.	सूरजदास मदनमोहन	फुस्ट पद	
१५६.	नारायणदास	हितोपदेश भाषा	१६४० वि० लग०
१५७.	निपट निरंजन	१—सत सरसी, २—निरजन संग्रह	,,
१५८.	आलह	माधवानल काम कंदला, २—छप्पय, ३—कवित्त, ४—श्यामसनेही या रुक्मिणी व्याहलो	१६४० वि० लग०
१५९	गोविन्ददास	एकान्त पद	

१६०. अमृतराय	महाभारत भाषा	१६४१ वि० लग०
१६१. हरिशंकर द्विज	गणेश जी की कथा चारि युग की (संकट व्रत कथा)	१६४१ वि० लग०
१६२ राजपाल	जम्बू स्वामी रास	१६४२ वि०
१६३. जिनदास पांडे	१–जम्बू चरित्र, २–ज्ञान स्वरोदय, ३–स्फुट कवित्त	१६४२ वि० लग०
१६४. लालदास बनिया	इतिहास भाषा, (महाभारत इतिहासकार) २–बलिवामन की कथा, ३–मानसी तीर्थ महात्म्य	१६४३ वि० लग०
१६५. कल्याण देव जैन	हसराज वच्छराज चौपाई	१६४३ वि०
१६६. पृथ्वीराज राठौड	१–वेलिक्रुषन रुक्मिनी री, २–दशम भागवत रा दूहा ३–दशरथरावउत, ४–वसदेव रावउत, ५–गगालहरी	१६४४ वि० लग०
१६७. कनकसोम	आर्द्रकुमार धवल, आसाढ भूत चौपाई	१६४४ वि०
१६८. विजयसूरि	नेमिनाथ शीलरास	,,
१६९. गोपाल लाहौरी	रस विलास	,,
१७०. आशानन्द	१–लक्ष्मणायण, २–निरजन पुराण, ३–गोगाजीरी पेडी, ४–बाधा रा दूहा, ५–उमादे भटियारी रा कवित्त, ६–फुटकर गीत	१६४४ वि० लग०
१७१. गणेश मित्र	विक्रमविलास	१६४५ वि०
१७२. गुरु अर्जुन	सुखमनी	१६५० वि० से पूर्व
१७३. हेमरतन	गोरावादल पद्मिनी चौपाई	१६४५ वि०
१७४. अज्ञात	भागवत दशम स्कध श्रीधरी टीका	१६४७ वि०
१७५. नेनसुख	वैद्य मनोत्सव	१६४९ वि०
१७६. दुरसाचारण	१–प्रताप चौहत्तरी (विरुदछहत्तरी), २–किरतार बावनी, श्रीकुमार अज्जाजी नी भूवर मोरी नी गज मत ।	१६५० वि०
१७७, झूँठा स्वामी	पद्यावली	,,
१७८. चिंतामणि त्रिपाठी	१–पिंगल, २–कविकुल कल्पतरु	,,
१७९ अनन्तदास	१–सेउसमन की परची, २–नामदेवजी की परची, ३–त्रिलोचन की परची, ४–धनाजी की परची, ५–कबीर की परची, ६–रैदास की परची, ७–रंकाबंका की परची ८–पीपा की परची ।	१६५० वि लगभग

१८०	नागरीदास	बानी।	,,
१८१	दामोदरचन्द्र गो०	१—समय प्रबन्ध, २—हस्तामलक, ३—स्फुट पद।	,,
१८२	रहीम	१—रहीम सतसई, २—बरवे नायिका भेद, ३—रास पचाध्यायी, ४—मदनाष्टक, ५—शृङ्गार सोरठा, ६—नगर शोभा वर्णन।	१६५० वि. लगभग
१८३.	ईसरदास बारहट	१—हरिरस, २—हाला भाला रा कुण्डलियाँ, ३—छोटा हरिरस, ४—बाललीला, ५—गुण भागवत हंस, ६—गरुड पुराण, ७—गुण आगम, ८—निन्दा स्तुति, ९—देवयाणी, १०—वैराट, ११—रास कैलास, १२—सभा पर्व।	१६५० वि० लगभग
१८४	नरहरि बन्दीजन	१—कवित्त, २—छप्पय, ३—रुक्मिणी मंगल।	,,
१८५	परमलदास	श्रीपाल चरित्र।	१६५१ वि० लगभग
१८६	केशवदास	१—रसिकप्रिया १६४८, २—कविप्रिया १६५८, ३—रामचन्द्रिका १६५८, ४—वीरसिंह देव चरित १६६४, ५—विज्ञान गीता १६६७, ६—जहाँगीर जसचन्द्रिका १६६९, ७—नखशिख, ८—रतनबावनी, ९—बारह मासा।	१६४८ से १६६९ वि०
१८७	हरिराम	१—छन्द रत्नावली १६५१, २—जानकी राम चरित्र नाटक।	१६५१ वि० लगभग
१८८.	शुक्र	सकट चौथ की कथा।	१६५१ वि०
१८९.	जगजीवनदास	वाणी।	१६५१ वि० लग०
१९०.	अज्ञान	नेमिनाथ के रेखते।	१६५२ वि०
१९१.	दुर्गादास	समीधर स्वामी स्तवन।	१६५२ वि०
१९२	श्री भट्ट	आदि बाणी (युगलसत)	,,
१९३	लछीराम	१—योग सुधानिधि, २—करुणाभरण नाटक, ३—ज्ञानानन्द नाटक, ४—ब्रह्मानन्दनीय, ५—विवेकसार ज्ञान कहानी, ६—ब्रह्मतरंग।	१६५७ वि० लगभग
१९४.	जनगोपाल	१—ध्रुव चरित्र, २—भरथरी चरित्र, ३—प्रह्लाद चरित्र, ४—जडभरत चरित्र, ५—गुरु २४ लीला, ६—मोहमर्द राजा की कथा, ७—मोह विवेक संवाद, ८—शुक्र संवाद, ९—अनन्त लीला, १०—बारहमासिया, ११—साखी, १२—पद, १३—दादू जन्म लीला परची।	१६५७ वि० लगभग

१९५.	बालकृष्ण त्रिपाठी	रस चन्द्रिका	१६५७ वि०
१९६	गग	१—कवित्त, २—पदावली ।	१६५७ वि० लगभग
१९७.	विजयदेव सूरि	श्री शील रास	१६५७ वि०
१९८.	लक्ष्मीनारायण मैथिल	१—प्रेम तरंगिनी, २—हनुमानजी का तमाचा	...
१९९	अज्ञात	रूपावती	१६५७ वि०
२००.	खेमजी ब्रजवासी	चितवनी	१६६० वि० लग०
२०१	कादिर	१—स्फुट पद, २—इश्क पचीसी	,,
२०२.	अमरेश	पद	,,
२०३.	प्रवीन	सार सग्रह	,,
२०४	गदाधर जी	स्फुद पद	,,
२०५.	घनश्याम शुक्ल	१—साँझी, २—मानसपुर पक्षावली	,,
२०६.	पीताम्बरदास स्वामी	१—बानी, २—हरिदास के पदों की टीका, ३—समय प्रबन्ध (२)	,,
२०७	आनन्द कायस्थ	१—कोक मजरी, २—वचन विनोद	१६६०—१६७९ वि.
२०८.	हरिरामदास	प्राचीन बानी	१६६० वि०
२०९.	हरिव्यास देव	महावाणी	१६६० वि० लग०
२१०.	माधोदास	सतगुणसागर सिद्धान्त	१६६१ वि०
२११.	ऋषभदास जैन	१—श्रेणिक रा, २—रोहिणी राम, ३—कुमारपाल रास	१६६२ वि० लग०
२१२.	जिनदास	जम्बू स्वामी की कथा	१६६३ वि०
२१३.	नन्द या नन्दलाल	१—सुदर्शन चरित्र	१६६३ वि०
		२—यशोधरा चरित्र	१६७० वि०
२१४.	दादू पिंजारा	१—विचार सागर, २—स्फुट रचना	१६६३ वि० लग०
२१५.	रायमल्ल ब्रह्मचारी	१—भविष्यदत्तचरित, २—सीता-चरित्र	१६६४ वि० ल०
२१६.	बरमा जी	वाणी	१६४०—७० वि०
२१७	गरीबदास	१—वाणी	जन्म १६३२ वि०
२१८.	जगन्नाथदास	१—वाणी, २—गुणगंजनामा, ३—गीतासार, ४—योगवशिष्ठ सार	१६६४ वि० लग०
२१९.	नयसुन्दर	नलायनो उद्धार	१६६५ वि०
२२०.	मोहन माथुर	१— अष्टावक्र,	१६६५ वि०
		२—कपोत लीला	१६६७ वि०
		३—केलि कल्लोल	...
२२१	रघुनाथ ब्राह्मण	१—रघुनाथ विलास २—रस मजरी	१६६६ वि०

२२२.	रूपचन्द	१—परमार्थी द्रोहाशतक, २—गीत परमार्थी	१६६६ वि० लग०
२२३	हरखचन्द	पुण्यसार	१६६६ वि०
२२४.	प्राणचन्द	रामायण नाटक	१६६७ वि०
२२५.	भूपति (इटावा)	भागवत दशम स्कन्ध	,,
२२६.	धर्मदास	महाभारत (द्रोण पर्व)	१६६८ वि०
२२७.	कृष्णदास	दान शील तप भावना रास	,,
२२८.	पदम भगत	रुक्मिणी कौ ब्याहलौ	,,
२२९.	विद्याकमल	भगवती गीत	१६६९ वि० लग०
२३०.	मुनि लावण्य	रावण मन्दोदरी सवाद	,,
२३१.	सायांजी	१—रुक्मिणी हरण, २—नागदमण	१६६०—७० वि०
२३२.	रज्जब जी	१—वाणी, २—सर्वङ्गी	...
२३३.	काशीराम	१—लग्नसुन्दरी, २—जैमिनी सूनाणि (सटीक)	१६७० वि० लग०
२३४.	रसखान	१—प्रेमबाटिका, २—सुजान रसखान	,,
२३५.	नाभादास	१—भक्तमाल, २—अष्टयाम	,,
२३६.	मुबारक	१—तिल शतक, २—अलक शतक	,,
२३७.	उसमान	चित्रावली	१६७० वि०
२३८.	बनारसीदास	१—अर्द्ध कथानक, २—बनारसीविलास, ३—नाममाला, ४—नाटक समय सार, ५—बनारसी पद्धति, ६—कल्याण मन्दिर भाषा, ७—मारगन विद्या	१६७० वि० लग०
		८—मोक्षपेडी, ९—वेद निर्णय, पंचालिका	१६८६ वि
		१०—सवैया बावनी	...
२३९.	ब्रह्म गुलाल	कृपन जगवानिक की कथा	१६७१ वि०
२४०.	गगादास	भीष्म पर्व	,,
२४१.	सारगधर	भावशतक	१६७२ वि०
२४२.	मालदेव	१—पुरन्दरकुमार कथा, ६—गजसिह कुमार कथा	,,
२४३.	मुकुन्द दास	कोकभाषा	१६७३ वि०
२४४.	चेतराम	ढोला मारू की कथा	,,
२४५.	समय प्रमोद	चउपरवी चौपाई	,,
२४६.	हेमरतन	लीलावती चौपाई	,,
२४७	श्रीलाल जी	भागवत दशम स्कन्ध	१६७४ वि०

बान कवि	कलि चरित्र	,,
लक्ष्मीधर त्रिपाठी	साठिक फल	,,
पुहकर	रस रतन	१६७५ वि०
भद्रसेन	चन्दन मलयागिरि री बात	,,
मान कवि	हंसराज वच्छराज रास	,,
रतन विमल	अमरतेज राजा धर्मबुद्धि मन्त्री रास	,,
गुण सूरि जैन	ढाल सागर	१६७६ वि०
शेखनबी	ज्ञानदीप	,,
समय सुन्दर	१–शत्रुञ्जय रास, २–सांव प्रद्युम्न रास, ३ पिय मेलक चौपाई १६७२, ४–पौषह विधि चौपाई, ५–जिनदत्तर्षि कथा, ६–प्रत्येक बुद्धचौपाई, १७०० ७–करकण्डू चौपाई, ८–नलदमयन्ती १६७३ चौपाई, ९–वल्कल चीरी चौपाई, १०–घनदत्त चौपाई, ११–मृगावती चौपाई १६६०, १२-सीताराम चौपाई, १३–दानशील तप भाव रास, १४–क्षमा छत्तीसी, १५–कर्मछत्तीसी, १६६८, १६–पुण्य छत्तीसी, १६६९, १७–सन्तोष-छत्तीसी, १८–दुष्काल वर्णन छत्तीसी १६८८, १९–सवैया छत्तीसी १६९०, २०–आलोयणा छत्तीसी १६९८, २१–विरहमान बीसी स्तवन, ऐरवत क्षेत्र चौबीसी १६७२ से १७०० वि०	
जान कवि	१–क्यामखा रासा, १६९१ २–अलिफखां की पेडी, १६८३ ३–सतवंती री बात, ४–रस कोष १६७६, ५–वैदिक मति १६९५, ६–पाहन परीक्षा १६९१, ७–कथा मोहिनी १६९४, ८–बुद्ध सागर १६९५, ९–ज्ञान दीप १६८६, १०–शिक्षा सागर १६९५, ११–मदनविनोद १६९०, १२–नाम माला	
बलराम	झूलना	१६७६ वि०
परशुराम	१–साखी का जोड़ा, २–छन्द का जोडा, ३–सवैया दस अवतार का, ४–रघुनाथ चरित, ५–श्रीकृष्ण चरित्र, ६–सिंगार सुदामा चरित, ७–द्रोपदी का जोड़ा, ८–छप्पय गज ग्राह को, ९–प्रह्लाद चरित्त, १०–अमर बोध लीला, ११–नाम निधि लीला, १२–बोध निषेध लीला १३–नाथ लीला १४–निज रूप	

		लीला, १५–श्री हरि लीला, १६–श्री निर्वाण लीला १७–समभरणी लीला, १८–तिथि लीला, १९–वार-लीला, २०–नक्षत्र लीला, २१–श्री बावनी लीला, २२–विप्रमती १६७७ वि०, २३–पद १६७७ वि० लग०
२६०	गुण सागर	पृथ्वीचन्द कुमार रास (गुण सागर रास) लि० १६७७ वि
२६१	अरु भद्र	कोक सामुद्रिक १६७८ वि०
२६२	भाऊ कवि	आदित्यवार कथा ,,
२६३	सुन्दरदास दादू पंथी	१–सुन्दर विलास, २–सर्वाङ्गयोग प्रदीपिका, ३–पचेन्द्रिय चरित्र १६६१, ४–सुख समाधि, ५–स्वप्न प्रबोध, ६–वेद विचार, ७–उक्त अनूप, ८–अद्भुत उपदेश, ९–पंच प्रभाव, १०–गुरु सम्प्रदाय, ११–गुन उत्पत्ति नीसांनी, १२–सदगुरु महिमा नीसाणी, १३–बावनी, १४–गुरुदया षटपदी, १५–भ्रम विध्वंशाष्टक, १६–गुरु कृपा अष्टक, १७–गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक, १८–गुरु महिमा स्तोत्र अष्टक, १९–राम अष्टक, २०–नाम अष्टक, २१–आत्मा अचल अष्टक २२–पंजाबी भाषा अष्टक, २३–ब्रह्मस्तोत्राष्टक, २४–पीर मुरीदाष्टक, २५–अजब ख्याल अष्टक, २६–ज्ञान झूलना अष्टक, २७–सहजानन्द ग्रन्थ, २८–गृह वैराग्य बोध ग्रन्थ, २९–हरिबोल चितावनी, ३०–तर्क चितावनी, ३१–पवगम छन्द, ३२–अडिल्ला छन्द ग्रन्थ, ३३–बारहमासी, ३४–आयुर्वेल भेद आत्मा विचार, ३५–त्रिविध अन्त करण भेद ग्रन्थ, ३६–पूर्वी भाषा बरवै ग्रन्थ, ३७–सवैया, ३८–सुन्दर साख्य (१६७७ वि०) १६७७ वि० से बहुत बाद तक
२६४.	अहमद	१–स्फुट काव्य, १–बारहमासी : १६२८ में वर्तमान १६९६ वि०
२६५.	ताहर	१–कोकशास्त्र, २–मुक्तिबिलास १६७८ वि०
२६६.	रतनेश	कान्ताभूषण ,,
२६७.	मतिसार	शालिभद्र चौपाई -

२६८	सरसदास	बानी	१६८० वि० लग०
२६९.	पूरन कवि	जैमिनि पुराण	१६७९ वि०
२७०	सिरोमणि मिश्र	नाममाला	१६८० वि०
२७१.	तत्त्ववेत्ता	१—वाणी, २—छप्पय	१६८० वि० लग०
२७२	व्रजपति भट्ट	रग भाव माधुरी	१६८० वि०
२७३.	माधोदास चारण	१—रामायण रासो राम रासो, २—स्फुट पद, ३—आध्यात्म रामायण, ४—भाषा दशम स्कध (अप्राप्त)	१६८० वि०
२७४.	संतदास ब्रजवासी	१—शब्दावली, २—बाराखडी	१६८० वि०
२७५	हृदयराम	१—हनुमान नाटक, २—वलि चरित्र	,,
२७६.	घासीराम	पक्षी विलास	१६८० वि० लग०
२७७	केशवदास चारण	१—गुण रूपक १६८१, २—राव अमरसिंहजी रा दूहा ३—विवेक वार्ता	१६८१ वि० लग०
२७८	वल्लभदास साधु	१—सेवक बानी का सिद्धान्त, २—स्फुट पद	,,
२७९	काशीराम	कनक मजरी	१६८०—८४ वि०
२८०	सकलचन्द	शत्रु जय राम	१६८० वि०
२८१.	ध्रुवदास	ब्यालीस लीला १—जीवदशा लीला २—वैद्यक ज्ञान लीला, ३—मनशिक्षा, ४—वृन्दावन सत, ५—ख्याल-हुलास लीला, ६—भक्त नामावली, ७—वृहद वामन-पुराण की भाषा, ८—सिद्धात विचार, ९—प्रीति-चौवनी, १२—आनन्दाष्टक, १३—भजनाष्टक, १२—भवन कुण्डलियाँ, १३—भजन सत लीला, १४—भजन शृङ्गार सत लीला १५—मन शृङ्गार लीला, १६—श्रीहित शृङ्गार लीला, १७—सभा मण्डल लीला, १८—रस मुक्तावली, १९—रस हीरावली, २०—रस-रतनावली, २१—प्रेमावली, २२—श्री प्रियाजी की नामावली, २३—रहस्य मजरी, २४—सुख मजरी, २५—रतिमजरी, २६—नेह मजरी, २७—वन विहार-लीला, २८—आनन्दलतालीला, २९—अनुराग लता लीला, ३०—प्रेमलता लीला, ३१—रसानन्दलीला ३२—श्रीब्रजलीला, ३३—श्री युगल ध्यान लीला, ३४—निर्त्त-विलास लीला, ३५—मान लीला, ३६—दान लीला, ३७—श्री पियाजी की नामावली ३८—श्री लालजी	

		की नामावली, ३६—शृङ्गार समय स्नान के पद, ४०—उत्थापन समय, ४१—वन विहार समय, ४२—व्याहुलो	१६८२ वि० लग०
२८२.	वैरागी नारायण	नलदमयन्ती आख्यान	१६८२ वि०
२८३.	भीषजन	१—सर्वज्ञ बावनी	१६८३ वि०
		२—भारती नाममाला	१८८५ वि०
		६—बारास्खडी	१६८३ वि०
२८४	इच्छाराम	गोविन्द चन्द्रिका	१६८४ वि०
२८५.	मस्तराम	रामाश्वमेघ	...
२८६	श्रीसार	आणद सधि	१६८४ वि०
२८७.	हेमचन्द्र	१—नयचक्र, २—भक्त स्तोत्र भाषा ३—पचाशिका वचनिका	१६८४ वि० लग०
२८८	चतुर्भुजदास	१—बानी, २—द्वादश यश, ३—पद, ४—हितजू का मङ्गल	१६८६ वि० लग०
२८९	मलूकदास ब्राह्मण	१—भक्तवच्छल, २—रसखान, ३—ज्ञान-बोध, ४—मलूक रामायण	१६८५ वि० लग०
२९०	खरगसेन कायस्थ	१—दानलीला, २—दीपमालिका चरित्र	१६८५ वि०
२९१.	छेमराम	फतह प्रकाश	१६८५ वि०
२९२	बालचन्द	बत्तीसी	,,
२९३.	अज्ञात	वृन्दावन स्तवन	१६८६ वि०
२९४.	हीरामनि	१—एकादशी महात्म्य, २—रुक्मिनी मगल	
२९५.	बेनी माधव दास	गुंसाई चरित्र	१६८७ वि०
२९६.	मुनि केशराज	राम रसायन (राम रासो)	,,
२९७.	रसराम	मददीपिका	,,
२९८.	कवीन्द्राचार्य सरस्वती	१—कवीन्द्र कल्पलता, २—समरसार, ३—योगवशिष्ट सार	१६८७ वि० लग०
२९९	दामोदर स्वामी	१—नेम बत्तीसी, २—रेखता, ३—भक्ति सिद्धान्त, ४—रहस्य विलास, ५—स्वगुरु प्रताप, ६—जजमान कन्हाई जस, ७—रसलीला, ८—गुरु प्रताप लीला, ९—बसत लीला, १०—पद, ११—रास पचाध्यायी, १२—व्याहलो, १३—साखी,	१६८७ वि० लग०
३००.	माधुरीदास	१—दानमाधुरी, २—मानमाधुरी, ३—मानलीला, ४—राधारमण विहारी माधुरी, ५—वंशीवट विलास-	

	माधुरी, ६–उत्कण्ठा माधुरी, ७–वृन्दावन कलि माधुरी, ८–वृन्दावन बिहार माधुरी	१६८७ वि० ल०
३०१. मुकुटदास	भक्त विरुदावली	१६८७ वि०
३०२. मोहन कायस्थ हरदोई	१–सनेह लीला, २–स्वरोदय पवन विचार, ३–पवन विजय स्वर शास्त्र	,,
३०३. कृष्ण कवि	नखशिख	१६८८ वि०
३०४. भगवतदास द्विज	नासिकेतु गरुण पुराण	१६८८ वि०
३०५. रतिमान	जैमिनि पुराण	,,
३०६. सुन्दरदास ग्वालियर	१–सुन्दर शृङ्गार, १६८८, २–ध्रुव लीला, ३–सिंहासन बत्तीसी, ४–बारहमासी	,,
३०७. लूणसागर जैन	अजना पुरी संवाद	१६८६ वि०
३०८. लालदास	१–अवध विलास १६६०, २–बारह मासी १७००, ३–विक्रम विलास	१६६०—१७०० वि०
३०९. परशुराम ब्रजवासी	१–वैराग्य निर्णय	१६६० वि० लग०
	२–ऊषा चरित्र	१६८७ वि०
३१०. पुण्यरतन	यादव रास	१६६० वि० से पूर्व
३११ कृष्णदास गिरधर	रुक्मिणी ब्याहलो	१६६१ वि० लग०
३१२ सुमति हंस	विनोद रस	१६६१ वि०
३१३. हरिचन्द	रागमाला	,,
३१४ तोष	१–सुधानिधि, २–विनय शतक, ३–नखशिख	१६६१ वि० लग०
३१५. चतुरदास	१–एकादश स्कन्ध भाषा, २–गोपेश्वर अष्टक, ३–कूर्माष्टक, ४–रामाष्टक, ५–सत्यनारायण अष्टक, ६–सर्वेश्वर जी का अष्टक, ७–गुरु अष्टक, ८–जनक नन्दिनी अष्टक, ९–वृन्दावन अष्टक	१६६२ वि० ल०
३१६. मानसिंह	अश्वमेध पर्व	१६६२ वि०
३१७. कनककीर्ति	१–नेमिनाथ रास १६६२, २–द्रौपदी चौपाई १६६३	
३१८. जटमल	१–प्रेमविलास, २–गजल ग्रंथ,	१६६३ वि० लग०
	३–गोराबादल की कथा	१६८० वि०
	४–बावनी	१६६१ वि० लग०
३१९. त्रिविक्रम सेन	शालिहोत्र	१६६४ वि०
३२०. बलभद्र	वैद्य विद्या विनोद	१६६५ वि०

३२१.	संतदास	वाणी	१६६६ वि० से पूर्व
३२२.	मदलवच्छ	सदेवच्छ सालिंगबा रा दूहा	१६६७ वि०
३२३.	अज्ञात	,, ,,	,,
३२४.	निधान	जमवत विलास	१६६८ वि०
३२५.	सेवादास	जैमिनि पुराण	१७०० वि०
३२६	भुवाल	भगवत गीता	,,
३२७	कल्याणदास	गुण गोविन्द	,,
३२८.	हरिनाम	रसोई लीला	,,
३२९.	गंगासुत	भक्त महात्म्य	,,
३३०.	कपूरचन्द	भाषा रामायण	,,
३३१.	गोपालदास व्रजवासी	१–मोह विवेक, २–परिचई स्वामी दादू जी की	,,
३३२.	समाचन्द	कलि चरित्र	१७०० वि०
३३३.	विनयसुन्दर	सुरसुन्दरी चरित (रास)	१७वीं शताब्दी
३३४.	माल मुनि	१–अंजना सुन्दरी भास	,,
		२–विक्रम पंच डंड रास	,,
३३५	ब्रह्मानन्द	रसिक सुरती भास	,,
३३६.	सहज सुन्दर	परदेशी रास	,,
३३७.	विजयभद्र	कमलावती रास	,,
३३८.	जिनराज सूरि	रावण-मन्दोदरी संवाद	,,

काव्यरूपों की सूची—

ऊपर आलोच्य-काल में प्राप्त सभी प्रामाणिक रचनाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस विवरण के आधार पर इस काल की रचनाओं में प्राप्त होने वाले काव्यरूपों की तालिका इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है—१—बानी, २—चरितकाव्य, ३—रास, ४—कथा-वार्त्ता-काव्य, ५—पद, सबद, लीला के पद, ६—स्तोत्र, स्तुति, विनती-काव्य, ७—सिद्धान्त एवं उपदेश-परक काव्य, ८—प्रशस्ति काव्य, ९—पुराण, १०—ऐतिहासिक-काव्य, ११—मंगल-काव्य, १२—लीला-काव्य, १३—साखी, १४—छन्द-गीतपरक-काव्य, १५—माल या माला-काव्य, १६—सम्वाद, वादू, गोष्ठी, बोध-संज्ञक-काव्य, १७—बारहखडी या बावनी, १८—बारहमासा, १९—संख्यापरक-काव्य, २०—भ्रमरगीत, २१—कथा, २२—अष्टयाम, २३—नखशिख तथा २४—नाटक।

काव्यरूपों का यह क्रम उनके उद्भावित होने के कालक्रमानुसार ही रखा

गया है। १५वी शताब्दी मे प्रारम्भ के ९ काव्यरूपो का प्रचार दिखाई देता है। १६ वी शताब्दी में उनकी संख्या २१ तक पहुँचती है। १७वी शताब्दी में तो सभी काव्यरूपो को आधार बना कर रचनाएँ की गई। प्रयुक्त काव्यरूपो की सख्या के समान इन शताब्दियो के अन्तर्गत रची गई रचनाओ की सख्या मे भी विकास स्पष्ट है। १७वी शताब्दी मे लिखे गये ग्रन्थो की सख्या १५वी और १६वी शताब्दी मे रचे गए ग्रन्थो की सम्मिलित सख्या मे भी अधिक है। काव्यरूपों के विषय मे एक बात और दिखाई देती है कि १६५० वि० के पश्चात् किसी नए काव्यरूप की प्रतिष्ठा नही हुई। इसका कारण यही है कि बाद के ५० वर्षो मे मौलिक प्रतिभा वाले कवियों का अभाव रहा।

इन काव्यरूपो के अन्तर्गत आने वाली अधिकांश रचनाओं के अतिरिक्त अनेक रचनाएँ ऐसी भी है जिन्हे इस काल के कवियो द्वारा किए जाने वाले 'स्फुट प्रयोग' की संज्ञा दी जा सकती है। इस प्रकार की रचनाओ का इस काल मे कोई निश्चित रूप नही बन सका। ऐसे ग्रन्थो की सख्या भी बहुत बडी है जो काव्य-ग्रन्थो की कोटि मे न आकर शास्त्रीय ग्रन्थो की कोटि मे आते है। उनमे रस, छन्द, अलकार, वैद्यक, कामशास्त्र, नायिका-भेद, शालिहोत्र, ज्योतिष आदि शास्त्रीय विषयों का शुद्ध शास्त्रीय दृष्टिकोण से वर्णन हुआ है। उक्त दोनो प्रकार की रचनाओं को अगले अध्ययन मे 'कुछ अन्य प्रयोग' एव 'शास्त्रीय ग्रन्थ' शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित करके उनकी तालिका प्रस्तुत करदी गई है।

प्रत्येक काव्य रूप का ऐतिहासिक अनुसंधान

• • • • चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय
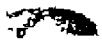
प्रत्येक काव्य रूप का ऐतिहासिक अनुसंधान

१. बानी

इस रूप की प्रारम्भिक रचनाएँ—बानी साहित्य सन्तों से सम्बन्धित है। अत इसका मूल भी इन्ही के साहित्य मे खोजा जा सकता है। नाथ सम्प्रदाय के सिद्ध गोरखनाथ की वाणी सज्ञक रचना खोज मे प्राप्त हुई है। यही सभवतः इस कोटि की सर्वप्रथम रचना है। गोरखनाथ पहिले सिद्ध थे जिन्होने विशाल परिमाण मे उपदेश-परक रचनाएँ की। अत उन रचनाओ का सग्रह रूप ही उनकी 'बानी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है।[1]

आलोच्य काल की रचनाएँ—आलोच्य काल के प्रारम्भ से ही इस प्रकार की रचनाओं की परम्परा का प्रारम्भ होता है। अनेक सन्तो एव भक्तो के प्रादुर्भाव ने इस काव्यरूप को पर्याप्त पुष्टता प्रदान की। इस काल मे प्राप्त वाणियाँ दो प्रकार की है—१. सन्त कवियो की वाणी, २. भक्त कवियो की वाणी। प्रथम कोटि की वाणियों का प्रारम्भ नामदेव की वाणी मे होता है। इसके बाद इस परम्परा की अन्य वाणियाँ रैदास की वाणी, पीपा की वाणी, कबीर की बानी, कमाल की बानी, दादू की बानी, जगजीवनदास की बानी, बखनाजी की बानी, गरीबदास की बानी, जगन्नाथदास की बानी, रज्जवजी की बानी एव मन्नदास की बानी है। सत कवियो से प्रभावित होकर कुछ भक्त कवियो ने भी अपनी कुछ रचनाओं को वाणी कहा। इन वाणियो का प्रारम्भ राधावल्लभी सम्प्रदाय के भक्त कवियो द्वारा हुआ। लालदास स्वामी की बानी, सेवक बानी, विट्ठलविपुल की बानी, व्यासजी ओरछा की बानी, विहारिनदास की बानी, नागरीदास की बानी, विहारीवल्लभ की बानी, गदाधर भट्ट की बानी, नागरीदास (विहारिनदास के शिष्य) की बानी, श्री भट्ट कृत आदि वाणी, हरिव्यासदेव कृत महावाणी, पीताम्बर स्वामी की वाणी, हरिरामदास प्राचीन की वाणी, सरमदास की बानी, तत्त्ववेत्ता की बानी, चतुर्भुजदास राधा०

---

[1] नागरी प्रचारिणी सभा काशी मे प्राप्त 'गोरखबानी' की हस्तलिखित प्रति मे दत्तगोरख सवाद गोरख गणेश गोष्ठी ज्ञान तिलक अमगात्र सबदी

की बानी इस कोटि की रचनाएं है। दूसरी कोटि के अधिकाश कवियो के समस्त कृतित्व को ही वाणी सज्ञा दी गई है।

२. चरित-काव्य

संस्कृत-साहित्य के चरित-काव्य—चरित-काव्य परम्परा का मूल पुराण है। पुराणो एव महाभारत के अनेक चरित्र एवं आख्यान ही चरित-काव्यो के विषय रहे है। कालिदास के समय से ही कवियो का झुकाव इधर दिखाई पडता है। चरित-काव्य सस्कृत की महाकाव्य परम्परा का ही अग्रसरित रूप है, जिस पर उस काल के अन्य अनेक काव्य-रूपो का यथेष्ट प्रभाव पडा है। अश्वघोष कृत बुद्धचरित, प्रवरसेन कृत सेतुबन्ध, बुद्धघोष कृत पद्मचूडामणि, भारवि कृत किरातार्जुनीय, भट्टि कृत रावण वध, माघ कृत शिशुपाल वध, अभिनन्द कृत रामचरित, धनंजय कृत राघव पाडवीय, कनक सैन वादिराज कृत यशोधर चरित, पद्मगुप्त कृत नवसाहसाक चरित, हर्ष कृत नैषधीय चरित, मख कृत श्रीकण्ठ चरित आदि अनेक काव्य लिखे गए। इन काव्यो मे से अनेक उच्चकोटि के महाकाव्यो की श्रेणी के है, तथापि इनमे चरित-काव्य की परम्परा के दर्शन होते है। बुद्धचरित, शिशुपाल वध, यशोधर चरित, नवसाहसाक चरित उच्चकोटि के चरित-काव्य है।

सस्कृत साहित्य मे ऐतिहासिक पुरुषो के चरित्रो के आधार पर लिखे गए अनेक काव्य-ग्रन्थ भी प्राप्त होते है। बाण कृत हर्षचरित इस कोटि का सर्वप्रथम ग्रन्थ है जो गद्य मे लिखा गया और जिसे दडी ने आदर्श आख्यायिका कहा है। अन्य ग्रन्थो मे पद्मगुप्त कृत नवसाहसाक चरित, बिल्हण कृत विक्रमांकदेव चरित, हेमचन्द्र कृत कुमारपाल चरित, चड कवि कृत पृथ्वीराज विजय, सध्याकर नन्दी कृत रामपाल विजय एव जल्हण कृत सोमपाल विजय प्रमुख है। इन ग्रन्थों में इतिहास की अपेक्षा काव्य ही प्रधान है।

जैन कवियों ने अपने धार्मिक पुरुषो को आधार बनाकर चरित-काव्य लिखे जिनमे वाग्भट्ट कृत 'नेमिनिर्वाण', हेमचन्द्र कृत 'त्रिषिष्ट शलाका पुरुष चरित' प्रसिद्ध है। इन मे से अन्तिम ग्रन्थ जैनो के मतानुसार पुराण काव्य की कोटि का है। जैन कवियो ने हिन्दू पौराणिक आख्यानो पर आधारित चरित-काव्य भी लिखे, देवप्रभ सूरि कृत 'पाण्डव चरित' ऐसी ही रचना है। इस प्रकार सस्कृत-साहित्य मे हम तीन प्रकार के चरित-काव्यो का प्रचलन पाते हैं—१. पौराणिक चरितकाव्य, २. ऐतिहासिक चरित काव्य तथा ३. धार्मिक चरित काव्य (जैन कवियो के)।

पालि एवं प्राकृत के चरित काव्य—पालि भाषा मे बुद्धरक्षित कृत जिनालङ्कार एव वनरत्नमेलंकर कृत जिन चरित प्रसिद्ध चरित काव्य है। प्राकृत मे

वाक्पतिराज कृत गौड बध एव रामपाणिवाद कृत कथा उषानिरुद्ध प्रसिद्ध काव्य लिखे गये।

अपभ्रंश के चरित काव्य—अपभ्रंश भाषा मे लिखे गए काव्यों मे तो चरित काव्यो की ही प्रधानता रही। जैन कवियो द्वारा लिखे गये ग्रन्थ मूलतः कथा प्रधान है। यह कथा प्रधान चरित-काव्य दो रूपों मे प्राप्त होते है—१. चरित-काव्य, एव २ प्रेमाख्यान काव्य। मुख्य चरित काव्य ये है—१. पउमचरिउ, २. णाय-कुमार चरिउ, ३ जसहर चरिउ, ४. करकंड चरिउ, ५. भविष्यत्त कहा।[1] इनमे से प्रथम पुराण काव्य के निकट होते हुए भी चरित-काव्य है। णायकुमार चरिउ एवं करकंड चरिउ प्रेमाख्यान चरित-काव्य है। जसहर चरिउ धर्मकथा की कोटि का है। कवि ने उसे धर्म कथा कहा भी है। अन्तिम ग्रन्थ कथा होते हुए भी चरित-काव्य की कोटि का है।[2] इस प्रकार अपभ्रंश साहित्य में भी १. पौराणिक, २ प्रेम परक, एवं ३. धार्मिक तीन प्रकार के चरित-काव्य मिलते है। ऐतिहासिक चरित-काव्यों का इस काल मे अभाव ही दिखाई देता है।

आलोच्य-काल के चरित काव्य—हिन्दी के प्रारम्भ काल मे 'पृथ्वीराज रासो' जैसे श्रेष्ठ चरित-काव्य के दर्शन होते है। यद्यपि इसके रचनाकाल के विषय मे सन्देह प्रगट किया जाता है तथापि इसका मूक्ष्म रूप उस काल मे भी प्रचलित रहा होगा ऐसी कतिपय विद्वानों की सम्मति है। आलोच्य-काल मे सस्कृत एव अप-भ्रंश मे उपलब्ध चरित-काव्यों की सभी श्रेणियो की रचनाएँ प्राप्त होती है। कथा-त्मक की दृष्टि से उन्हे तीन कोटियो मे रखा जा सकता है—१ पौराणिक चरित-काव्य, २. ऐतिहासिक चरित-काव्य, ३. धार्मिक चरित काव्य। नीचे प्रत्येक कोटि के अन्तर्गत रचे गए ग्रन्थो की तालिका प्रस्तुत की जाती है।

१—पौराणिक चरित काव्य—जाखू मणियार कृत हरिचन्द पुराण कथा, परमाणन्द कृत ओषाहरण, नरोत्तमरास कृत सुदामा चरित्र, ध्रुव चरित्र; परमा-नन्ददास कृत ध्रुव चरित्र, हलधर कृत सुदामा चरित्र; तुलसीदास कृत रामचरित-मानस, मुनिलाल कृत रामप्रकाश; लालदास कृत बलिबामन की कथा; आज्ञानन्द कृत लक्ष्मणायण; केशवदास कृत रामचन्द्रिका, जनगोपाल कृत ध्रुव चरित, प्रह्लाद चरित; माधोदास चारण कृत राम रासो, अध्यात्म रामायण; हृदयदास कृत बलि चरित्र; इच्छाराम कृत गोविन्द चन्द्रिका, मस्तराम कृत रामाश्वमेध, मलूक-दास ब्राह्मण कृत मलूक रामायण, खरगसेन कायस्थ कृत दीपमालिका चरित्र,

---

[1] ग्रन्थों के रचयिता क्रमशः ये है—१. स्वयभू, २ पुष्पदन्त, ३. पुष्प-दन्त, ४. कनकामर, ५. धनपाल।

[2] देवेन्द्र कुमार जैन अपभ्रंश साहित्य (थीसिस) पृष्ठ ६८।

सुन्दरदास ग्वालियर कृत ध्रुव चरित्र, लालदास कृत अवधविलास; परशुराम कृत उषा चरित्र एव कपूरचन्द कृत भाषा रामायण इस कोटि की रचनाएँ है।

२—**ऐतिहासिक चरित काव्य**—नरपति कृत बीसलदेव रासो, केशवदास कृत वीरसिंहदेव चरित्र, केशवदास कृत गुण रूपक, जान कवि कृत क्यामखाँ रासा एव निधान कृत जसवत विलास इस कोटि की रचनाएँ हैं।

३—**धार्मिक चरित काव्य**—इस प्रकार की रचनाओ मे तीन प्रकार के काव्य ग्रन्थ मिलते है—१. वे काव्य ग्रन्थ जो जैन धर्म के अथवा हिन्दू धर्म के जैनो द्वारा गृहीत धार्मिक पुरुषों के चरित्र मे सम्बन्धित है, २ वे ग्रन्थ जिनमे हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध आचार्य अथवा महात्माओ के चरित्रों का वर्णन हुआ है तथा ३. आत्म चरित। नीचे तीनो प्रकार के अन्तर्गत आने वाली रचनाओ का उल्लेख किया जाता है।

(अ) जैन कवियो के धार्मिक चरित काव्य—अग्रवाल कृत प्रद्युम्न चरित, दयासागर सूरि कृत धर्मदत्त चरित्र; ज्ञानसागर जैन कृत श्रीपाल चरित्र, सांखभद्र कृत मुनिपति राजर्षि चरित्र, ईश्वर सूरि जैन कृत ललिताग चरित्र, बालचन्द्र जैन कृत राम-सीता चरित्र, यशोधर चरित्र, सुन्दरदास जैन कृत हनुमच्चरित, ब्रह्मराय-मल कृत श्रीपाल रासो, दयासागर कृत मदन नरिंद चरित, जिनदास पाण्डे कृत जम्बू चरित्र, परिमलदास कृत श्रीपाल चरित्र, रायमल्ल ब्रह्मचारी कृत भविष्यदत्त चरित्र, सीता चरित्र, नन्द कृत सुदर्शन चरित्र, यशोधर चरित्र, नयसुन्दर कृत नलायनोद्धार तथा समय सुन्दर कृत जिनदत्त ऋषि कथा इस कोटि की रचनाएँ है।

(आ) हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध सन्त अथवा महात्माओं के जीवन-चरित काव्य—चेतनदास कृत प्रसग पारिजात, अज्ञात कवि कृत वल्लभाख्यान, बिहारी वल्लभ कृत भगवत रसिक जू की कथा; बेनीमाधवदास कृत गुसाईं चरित, अनन्तदास कृत सेउसमन की परची, नामदेव की परची, त्रिलोचन की परची, धनाजी की परची, कबीरजी की परची, रैदास की परची, रकावका की परची, पीपाजी की परची एव जनगोपाल कृत दादू जन्म लीला परची इस प्रकार की रचनाएँ है।

(इ) आत्म चरित—बनारसीदास जैन कृत अर्द्ध कथानक इस कोटि की अकेली रचना है।

ऐतिहासिक चरित काव्यो के अन्तर्गत 'बीसलदेव रासो' एवं 'क्यामखाँ रासो' को स्थान दिया गया है। स्वरूप, विषयवस्तु एवं शैली की दृष्टि से ये आलोच्यकाल के ऐतिहासिक चरित-काव्यो की कोटि के ही ग्रन्थ है। माधोदास कृत राम रासो एव ब्रह्मरायमल्ल कृत श्रीपाल रासो क्रमश पौराणिक एव धार्मिक चरित-काव्य है।

आलोच्य काल में प्राप्त रासो अथवा रासा सज्ञक रचनाओं के स्वरूप पर अगले अध्याय के 'रास' प्रकरण मे विस्तार से विचार किया गया है।

३—रास

रास का प्रारम्भिक रूप—सस्कृत साहित्य मे रास[1] का सर्वप्रथम उल्लेख 'श्रीमद्भागवत' पुराण मे मिलता है। भागवत मे कृष्ण और गोपियो की 'रास लीला' का विशद वर्णन है। सस्कृत एवं अपभ्र श मे इसके वर्णन से युक्त अन्य कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। हिन्दी भाषा मे भी बहुत बाद मे भक्त-कवियो ने इस 'रास' को साहित्य मे स्थान दिया जो रास न कहला कर 'रासलीला' की सज्ञा से अभिहित हुआ। इस प्रकार के ग्रन्थो का विवेचन लीला-काव्य के अन्तर्गत हुआ है। रास ग्रन्थो की एक अन्य समृद्ध परम्परा जैन कवियों की प्राप्त होती है, जिसका उद्गम स्थल गुजरात था। मुनि जिनविजयजी का विचार है कि प्रारम्भ मे 'रास' या 'रासक' आज भी गुजरात में प्रचलित गर्भा नृत्य के समान लोक-नृत्य था और आगे चल कर यही प्राकृत मे साहित्यक रूप मे आकर अभिनीत होने लगा।[2]

अपभ्रंश के रास-काव्य—रास नृत्य के साथ-साथ रास काव्यो का केन्द्र भी गुजरात ही हुआ। सबसे प्राचीन रास ग्रन्थ ११८५ ई० का रचा हुआ शालिभद्र सूरि कृत 'भरत बाहुबली रास' है।[3] दूसरी प्रसिद्ध रचना जिनदत्त सूरि कृत 'उपदेश रसायन रास' है अन्य रचनाएँ ये हैं विजयसेन कृत 'रेवन्त गिरि रास', पल्हन पुत्र कृत 'आबू रास' १३२७ ई० का रचा हुआ 'सप्तक्षेत्र रास' एव अब्दुर्रहमान कृत सन्देश रासक जिसे तेरहवी शताब्दी की रचना कहा जाता है।

हिन्दी के आदिकाल के रास-काव्य—हिन्दी साहित्य मे जिसे वीरगाथाकाल या आदिकाल कहा गया है, की अनेक जैन कवियों की रास संज्ञक रचनाओं का नाहटाजी ने उल्लेख किया है।[4] ग्रन्थ ये है—औसिगु कृत चन्दन वाला रास (१२५७

---

[1] रास सब्द की व्युत्पत्ति के विषय मे विद्वानो के विभिन्न मत है। कुछ इसे 'रस का समूह' मानते हैं, कुछ 'रास' से इसकी उत्पत्ति मानते है जिसका अर्थ नृत्य के मध्य जोर से चिल्ला उठने से है। मुनि जिनविजय रासक को सस्कृत शब्द ठहराकर रास को उसका अपभ्रंश रूप मानते है (सिन्धी जैन सिरीज नं० ३३ पृष्ठ १५०)

[2] सिन्धी जैन सिरीज न० ३३, पृष्ठ १३१।

[3] प्रकाशित। मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित।

[4] अगरचन्द नाहटा—वीरगाथा काल का जैन साहित्य, नामक लेख—ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५१ अङ्क १ २ सवत् २००२।

के लगभग), सुमतिगरण कृत नेमिनाथ रास (१२९० के लगभग), राजतिलक कृत शालिभद्र मुनिवर रास, लखमसिंह कृत जिनचन्द सूरि वर्णन रास, अज्ञात कृत मयणोरहा रास एवं जिन पद्म सूरि रास।

आलोच्य काल के रास ग्रन्थ -आलोच्य काल मे लिखे गये रास ग्रन्थ तीन प्रकार के है—१ पौराणिक एवं ऐतिहासिक पुरुषो के चरित्रो से सम्बन्धित, २ काल्पनिक प्रेम कथाओ से सम्बन्धित, ३ जैन धर्म के सिद्धान्तो से सम्बन्धित। नीचे तीनो कोटि की रचनाओ का उल्लेख किया जाता है।

१—पौराणिक एवं ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्रों से सम्बन्धित रास—विनयप्रभ उपाध्याय कृत गोतम रासा, गुणरतन कृत श्रीपाल रास, लावण्य समय गणि कृत विमल मंत्री रास, कर संवाद रास, रावण संवाद रास, हरचन्द कृत अगडदत्त रास, देपाल कृत चन्दनबाला चौपाई, सोमविमल कृत श्रेणिक रास, महीराज कृत नलदमयंती रास, अगडदत्त चौपाई, लखमल्ल कृत श्री करकंडु चौपाई, राजपाल कृत जम्बू स्वामी रास, विजयसूरि कृत नेमिनाथ शील रास, विजयदेव सूरि कृत श्री शील रास, ऋषभदास जैन कृत श्रेणिक रास, रोहिणी रास, कुमारपाल रास, मुनि लावण्य कृत रावण मन्दोदरी सवाद रास, रतनविमल कृत अमरतेज राजा धर्मबुद्धि मंत्री रास, गुणसूरि जैन कृत हरिवंश रास, समयसुन्दर कृत साब प्रद्युम्न चौपाई, प्रत्येक बुद्ध रास, करकंडु चौपाई, नलदमयंती चौपाई, सीताराम चौपाई, वल्कल चीरी रास, धनदत्त चौपाई, मतिसार कृत शालिभद्र चौपाई, सकलचन्द कृत शत्रुंजय रास, मुनिकेशराज कृत रामजस रसायन (राम रासो), लूणसागर जैन कृत अंजना सुरी संवाद, पुण्यरतन कृत यादव रास, कनक कीर्त्ति कृत नेमिनाथ रास, द्रौपदी चौपाई, विनय सुन्दर कृत सुरसुन्दरी चरित रास, मालमुनि कृत अंजना सुन्दरी रास, विक्रम पचदंड रास, सहज सुन्दर कृत परदेशी रास एवं जिन राजसूरि कृत रावण मन्दोदरी संवाद, इस कोटि की ही रचनाएँ है।

२—काल्पनिक प्रेम कथाओ से सम्बन्धित रास—विनयप्रभ उपाध्याय कृत हंसवच्छ रास, हीराणंद कृत विद्याविलास रास, वाचक सहज सुन्दर कृत रतनकुमार रास (चौपाई) महीराज कृत तेजसार रास, कल्याण देव जैन कृत हंसराज वच्छराज चौपाई, हेमरतन कृत लीलावती चौपाई, मानकवि कृत हंसराज वच्छराज रास, समय सुन्दर कृत मृगावती रास, प्रियमेलक चौपाई एवं विजयभद्र कृत कमलावती रास, काल्पनिक प्रेम कथाओ से सम्बन्धित रास ग्रन्थ है।

३—जैन धर्म के सिद्धान्तों से सम्बन्धित रास—विनयप्रभ उपाध्याय कृत शीलरास, हरसेवक मुनि कृत मयणरेहा रास, सिद्धसूरि जैन कृत शिवदत्त रास, हीरानन्द सूरि कृत कलिकाल रास सोमसुन्दर सूरि कृत रास मुनिसुन्दर

जैन कृत शान्त रस रास, संवेग सुन्दर उपाध्याय कृत सार सिखावन रासा, नय-सुन्दर कृत शील रक्षा रास, समयप्रमोद कृत चउपरवी चौपाई; समय सुन्दर कृत शत्रु जय रास, गुण सागर कृत पृथ्वीचन्द कुमार रास एवं श्रीसार कृत आणंद संधि, इस कोटि की रचनाएँ है।

राजस्थानी-गुर्जर भाषा में लिखे गए इन रास ग्रन्थो की बड़ी समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है। आलोच्य काल के पश्चात् भी इस भाषा में सैकड़ों रास ग्रन्थ लिखे गए। जैन-ग्रन्थागारो की खोज होने पर अभी सैकडों ग्रन्थों के और प्राप्त होने की सम्भावना है।

४—कथा-वार्ता-काव्य

संस्कृत साहित्य में कथा-काव्य—भारत मे कथाओ की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। सबसे प्राचीन कथा ग्रन्थ गुणाढ्य की 'बृहत् कथा' है। कहा जाता है इसका मूल भाग पैशाची प्राकृत मे लिखा गया था। यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है। ईसा की ८वीं ९वीं शताब्दी तक इसके ज्ञात होने का प्रमाण तत्कालीन साहित्य से होता है। लगभग ८५७ ई० की कम्बोडिया की एक संस्कृत प्रशस्ति में गुणाढ्य एवं उसके ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है।[1] बृहत्कथा का सातवाँ भाग अब भी संस्कृत अनुवाद रूप मे प्राप्त है। बुध स्वामी का बृहत्कथा श्लोक संग्रह, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मंजरी, और सोमदेव का कथा सरित्सागर उसी बृहत्कथा के शेष भाग की कथाओ से भरे है। इस कथा का मूल भाग पद्य मे था या गद्य मे, यह कहना कठिन है लेकिन इसके संक्षिप्त रूप तो पद्य मे ही प्राप्त होते है। संस्कृत गद्य में लिखी अज्ञात संग्रहकर्त्ता की 'अवदान शतक' भी कथाओं का संग्रह है जो ईसा की तीसरी शताब्दी की कृति है।[2] इस ग्रन्थ के अनुकरण पर दूसरा ग्रन्थ 'दिव्यावदान' लिखा गया। इन्हीं दोनो ग्रन्थो की कथाओ को लेकर १०५० ई० के लगभग क्षेमेन्द्र ने 'अवदान कल्प लता' (बोधिसत्त्वावधान कल्पलता) नामक ग्रन्थ लिखा। 'बैताल पंचविंशतिका', 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' विक्रमादित्य से सम्बन्धित क्रमश २५ एवं ३२ कहानियो के संग्रह है। ये कथाएँ बहुत प्राचीन है और इनमे से कुछ 'बृहत्कथा मंजरी' एवं कथा 'सरित्सागर' मे संग्रहीत है। ये दोनो कथाएँ बहुत लोकप्रिय हुई। अनेक लेखकों ने इन्हें अनेक रूपो में प्रस्तुत किया। हेमचन्द्र से पूर्व 'शुक-सप्तति' ७० कहानियो का संग्रह लिखा जा चुका था। शिवदास का एक और ग्रन्थ 'कथार्णव' है जिसमें ३५ कहानियाँ है। श्रीधर कवि का १४५१ का लिखा हुआ 'कथा-

---

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ५४।

[2] प्रो० वरदाचार्य संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ १७३

कौतुक' ग्रन्थ है जो पद्यबद्ध तथा १५ अध्यायो मे विभक्त है। वल्लालसेन का 'भोज-प्रबन्ध' आदि अनेक कथा ग्रन्थ उस काल के प्रसिद्ध है।

संस्कृत मे नीति कथाओं की भी समृद्ध परम्परा मिलती है। इन कहानियो के पात्र पेड, पशु और पक्षी है तथा एक कहानी के अन्तर्गत अनेक कहानियो का विधान, इनकी विशेषता है। इसमे कहानी को अधिक प्रधानता न देकर नीति के विषय को ही प्रधानता दी जाती थी। इनका प्रारम्भ 'पचतन्त्र' एव 'हितोपदेश' से है। पचतत्र के अनुवाद अनेक भाषाओ मे भी हो चुके है। इससे इसकी लोकप्रियता का ज्ञान होता है। पचतत्र के अनेक सस्करण प्राप्त होते है। ११०० वि० के लगभग का एक जैन सस्करण मिलता है जिसमे कुछ नई कहानियाँ जोडी गई। ११९९ ई० का पूर्णभद्र जैन का 'पचाख्यान', १६६० ई० का मेघविजय का पचाख्यानोद्धार' प्रसिद्ध है। इसी प्रकार की कथाओ का अन्य रूप 'हितोपदेश' के नाम से प्रख्यात हुआ। इसमे पंचतत्र की ही अधिकाश कहानियाँ है। इसमे सग्रहीत श्लोक कामन्दक के 'नीतिसार' से लिए गए है।

प्राकृत एवं अपभ्रंश में कथा-काव्य—ऊपर कहा जा चुका है कि गुणाढ्य 'वृहत्कथा' पैशाची प्राकृत मे ही लिखी गई थी। प्राकृत में कथाएँ लिखने की परम्परा पर्याप्त विकसित हुई। पालि भाषा मे अनेक जातक लिखे गए। आर्य सूर की 'जातक माला' इस प्रकार की जातक कथाओ का प्रसिद्ध संग्रह है। हेमचन्द्र के ग्रन्थ 'त्रिष्टि शला का पुरुष चरित' के परिशिष्ट मे अनेक जैन मुनियो की आत्मकथाएँ सग्रहीत है। अपभ्रंश के चरितकाव्यो मे से कई काव्य-ग्रन्थ कथा-काव्य की कोटि के है और उनकी सज्ञा भी 'कहा' दी गई है। 'भविष्यत कहा' इस प्रकार की उल्लेखनीय रचना है।

आलोच्य काल से पूर्व के हिन्दी के कथा-काव्य—ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि कथा-काव्य भारतीय साहित्य का एक श्रेष्ठ अङ्ग रहा है। हिन्दी के आदिकाल का प्रसिद्ध ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो कथा-काव्यो के अनेक लक्षणो से सयुक्त काव्य-ग्रन्थ है। इसमे कथा-काव्य की विशिष्ट शैली के अतिरिक्त उसके आवश्यक तत्त्व प्रेम-भावना का भी समावेश हुआ है।

आलोच्यकाल के कथा-वार्त्ता-काव्य—आलोच्य काल मे कथा-वार्त्ता-काव्य की यह परम्परा सस्कृत के कथा-काव्यो के ही समान दो रूपो मे प्राप्त होती है। १—रसात्मक कथा-वार्त्ता-काव्य, २—इतिवृत्तात्मक कथाएँ। रसात्मककथा-वार्त्ता-काव्यो के दो प्रकार है। एक प्रकार के प्रेमाख्यान रूपकात्मक हैं जिनका सूफी कवियो मे प्रचलन हुआ। दूसरा प्रकार हिन्दू कवियो द्वारा लिखे गए लोक प्रचलित प्रेम-कथानकों का है इस प्रकार की प्रेम-परक रचनाओं मे　　　की बात

संज्ञक रचनाएँ भी आ जाती है जो भिन्न प्रदेश मे भिन्न संज्ञा के साथ लिखी जाने पर भी भारतीय प्रेमाख्यान काव्यो के कोटि की है। उनके कथानक भी अन्य भारतीय कहानियो के समान ही लोक-व्यापक तथा प्रभावपूर्ण रहे है। इसी कारण रूप का नाम 'बात' के साथ दिया गया है। इतिवृत्तात्मक रचनाओं के एक प्रकार 'लोक-कथा' के अन्तर्गत वे रचनाएँ आती है जिनके लोक-प्रचलित नायकों के चरित्रो के साथ अनेक निजधरी कथाओं का लोक द्वारा समावेश कर दिया गया है। ये चरित नायक अनेक निजधरी कथाओं के नायक बनकर साहित्य में अवतीर्ण हुए है। दूसरी कोटि के अन्तर्गत 'नीति कथा' तथा अन्य कथाएँ आती है। आलोच्यकाल की नीति कथाएँ संस्कृत साहित्य के 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' के आधार पर ही लिखी गई हैं। उन्हे इन्ही नामो के संस्कृत ग्रन्थो का हिन्दी मे अनुवाद कहा जा सकता है। 'तीसरी कोटि' मे 'अन्य कथाएँ' में काल्पनिक कथानको को लेकर लोक मनोरञ्जन के लिए लिखी कथाएँ आती हैं।

१. रसात्मक कथा-वार्ता काव्य—

(अ) सूफी प्रेमाख्यान काव्य—इस श्रेणी मे कुतुबन कृत मृगावती, मझन कृत मधुमालती, जायसी कृत पद्मावत, उसमान कृत चित्रावली तथा शेखनबी कृत ज्ञानदीप आते है।

(आ) भारतीय प्रेमाख्यान काव्य—१. बात संज्ञक प्रेमाख्यान—नारायण कवि कृत छिताई वार्ता, प्रतापसिंह कृत चन्द कुवरि री बात, भद्रसेन कृत चन्दन मलिया गिरि री बात, जान कृत मन्तवन्ती री बात, सदलवच्छ एव अज्ञात कवि कृत सदैवच्छ सावलिगा री बात दूहा वध, इस प्रकार की रचनाएँ है।

२. अन्य भारतीय प्रेमाख्यान—असाइत कृत हँसाउली, साधन कृत मैनासत, दामो कृत लक्ष्मणसेन पद्मावती, कल्लोल कृत ढोला मारू रा दूहा, चतुर्भुजदास कृत मधुमालती कथा, गणपति कृत माधवानल प्रबन्ध दोहाबन्ध, हरराज कृत ढोला मारू बानी, गोविन्दराम कृत हाड़ावली, ईसरदास कृत सत्यवती कथा, कुशललाभ कृत माधवानल कामकंदला, ढोलामारु री चौपाई, नन्ददास कृत रूप मंजरी, जल्ह कृत बुद्धि रासो[1], आलम कृत माधवानल काम कदला, अज्ञात कवि कृत कुतुब शतक, चेतराम कृत ढोलामारु की कथा, अज्ञात कवि कृत रूपावती, पुहकर कृत रसरतन, काशीराम कृत कनक मजरी, वैरागी नारायण कृत नलदमयती आख्यान, सुमतिहंस

[1] यह ग्रन्थ 'रासो' संज्ञक है। विषय शैली आदि सभी की दृष्टि से यह चरित्र प्रधान रासो काव्य न होकर प्रेमाख्यान काव्य की कोटि का है। इसीलिए यहाँ इसका उल्लेख हुआ है

कृत विनोद रस, जान कवि कृत कथा मोहिनी, जटमल कृत प्रेमविलास एव गोरा बादल की कथा, इस कोटि की रचनाएँ है।

२. **इतिवृत्तात्मक कथा-वार्ता काव्य**—

(अ) **लोक कथा**—मानिक कवि कृत बैताल पचीसी, नरपति कृत विक्रम पचदड (विक्रम चरित प्रबन्ध), सिद्धसैन कृत विक्रम पंचदड चौपाई, उदयभानु कृत विक्रम चरित प्रबन्ध, भानुदास कृत विक्रम पचदड चौपाई, मुनि आनन्द कृत विक्रम वापर चरित, विनय समुद्र कृत सिंहासन बत्तीसी, देवीदास कृत सिंहासन बत्तीसी, हीरकलश कृत सिंहासन बत्तीसी चरित चौपाई, गणेश मिश्र कृत विक्रम विलास, मालदेव कृत भोज प्रबन्ध एव सुन्दरदास ग्वालियर कृत सिंहासन बत्तीसी, इस कोटि के ग्रन्थ हैं।

(आ) **नीति कथा**—इस कोटि की रचनाओ मे चन्द कृत हितोपदेश, नारायणदास कृत हितोपदेश भाषा दो ग्रन्थ आते है। हितोपदेश सज्ञक एक ग्रन्थ अग्रदास का भी प्राप्त होता है, लेकिन वह सस्कृत साहित्य की हितोपदेश शैली का नही है। उसमे उपदेश परक छप्पयो का सग्रह है। उसका उल्लेख सख्यापरक काव्य रूप के अन्तर्गत हुआ है। ग्रन्थ की सज्ञा बावनी के साथ प्राप्त होती है यद्यपि उसमें छन्द सख्या ५२ न होकर ६९ है।

(इ) **अन्य कथाएँ**—ठकुरसी कृत कृपण चरित्र एव ब्रह्म गुलाल कृत कृपन जगबानिक की कथा इस श्रेणी की दो रचनाएँ प्राप्त होती है।

५—पद, सबद, लीला के पद

पद तथा सबद—सिद्धो से पूर्व के साहित्य से पदो के विषय में कुछ भी ज्ञात नही होता। उपदेश, चर्या एव सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए पदों का सर्वप्रथम प्रयोग हमे पुराने सिद्धो की रचनाओ मे प्राप्त होता है। एक अन्य प्रकार के पदो (लीला के पद) की परम्परा तो हमे सस्कृत साहित्य में भी लक्षित होती है, जिसका उल्लेख इसी प्रसग मे आगे किया गया है। लेकिन उपदेश परक पदो का सधान सस्कृत-साहित्य मे प्राप्त नही होता। सिद्धो ने इस गेय पदो को किसी राग विशेष का नाम देकर ही लिखा है। सिद्ध वीणापा के विषय मे तो यह प्रसिद्ध है कि वह अपने पदो को वीणा पर गा गाकर उपदेश दिया करते थे। नाथपथी योगियो मे पद के लिए 'सबद' या 'सबदी' का भी प्रचार मिलता है। सवत् १७१५ की लिखी हुई एक प्रति से सग्रहीत और 'गोरख बानी' मे उद्धृत पदो को सबदी कहा गया है। डा० द्विवेदी का अनुमान है कि "यह सबदी शब्द नाथपथी योगियो का है और कबीर पथ मे सीधे वहीं से आया है।[1]" नागरी प्रचारिणी सभा काशी की हस्तलिखित

[1] हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृष्ठ १०७।

ग्रन्थ संख्या १३६१/८७३ वाली प्रति मे सग्रहीत अनेक सत कवियो की रचनाओ के साथ गोरखनाथ की सबदी भी है जिसमे दी हुई सबदी गेय पद है। उसी गुटका मे सग्रहीत गोरख के दूसरे ग्रन्थ ज्ञानतिलक मे सबद के महत्त्व को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

बोऊ सबद ही ताला सबद ही कूची सबद ही सबद भया उजियाला।
कांटा सेती कांटा खूटै कूची सेती ताला सिधि मिलै तो साधक निपजै
जब घटि होइ उजाला ॥१॥

उक्त पद मे सबद को उजियाला उत्पन्न करने वाला तथा साधक को सिद्धि दिलाने मे सहायक बताया गया है। इससे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि नाथपथी योगियो के समय मे गुरु श्रेणी के सिद्धो के उपदेश-परक पदो को सबद और शिष्य श्रेणी के व्यक्तियों के पदो को पद कहा जाता था। साखी और दोहरे के सम्बन्ध मे भी यही बात है।[1] साखी के समान ही यह शब्द भी फिर व्यापक हो गया और पद एव सबद मे भेद समाप्त हो गया। जिस प्रकार किसी भी साधारण सत द्वारा लिखे गए उपदेश-परक दोहे को साखी नाम दे दिया गया उसी प्रकार सभी सतो के ज्ञान-कथन वाले पदों को सबदी कह दिया गया। कुछ प्रारम्भिक रचनाओ मे तो यह भेद स्पष्ट लक्षित होता है। कबीर के जो पद 'बीजक' मे सग्रहीत हैं वे कबीर पन्थी साधुओ द्वारा सग्रह किए जाने के कारण शब्द ही कहे गए है। 'कबीर ग्रन्थावली' आदि मे उन पदों मे प्रयुक्त रागो का उल्लेख करके उन्हे गेय पदो के रूप मे दिया गया है। उक्त बातो के सबद के स्वरूप के सम्बन्ध मे किए गए अनुमानो की कुछ पुष्टि होती है। इस सम्बन्ध में अगले अध्याय मे विस्तार से विचार किया गया है। कबीर से पूर्व नामदेव की वाणी के अन्तर्गत सग्रहीत पदो को रागो मे लिखा गया है। अत आलोच्यकाल से पूर्व से ही उपदेश-परक गेय पद एव सबद दोनो की अलग-अलग परम्पराएँ अग्रसर होती हुई दृष्टिगोचर होती है।

लीला के पद— सस्कृत साहित्य मे कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित पदों का सबसे प्राचीन प्रयोग जयदेव के 'गीत गोविन्द' मे प्राप्त होता है। ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग पदों की यह परम्परा पूर्व में बगाल से लेकर उत्तर मे काश्मीर तक

---

[1] साखी और सबद आत्मज्ञानियो के लिए ही माने जाते थे। निम्न श्रेणी के सन्तो के पदो को जब सबदी और दोहो को साखी कहा गया तभी कबीर को यह कहना पड़ा—

माला पहिरै टोपी पहिरै छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदी गावत भूलै आतम खबर न जाना ॥

व्याप्त थी।[1] पश्चिमी भारत विशेषत राजस्थान एव गुजरात मे, जहाँ कि उस काल तक कृष्ण-भक्ति का इतना व्यापक प्रचार नहीं हो पाया था, कृष्ण की रास-लीला एक-दूसरे ही रूप मे चित्रित होती रही। उस पर जैन धर्म का व्यापक प्रभाव लक्षित होता है। जयदेव से पूर्व लीला के पदों की लोक प्रियता के विषय मे अनुमान होता है। इन पदो की इसी लोक प्रियता से आकृष्ट होकर जयदेव ने 'गीत गोविन्द' की रचना की होगी। जयदेव के पश्चात् चण्डीदास आदि ने भी पदो की रचना की। बाद मे लीला के पद लिखने की परम्परा पर्याप्त लोकप्रिय रही होगी। सूर के काल मे आकर तो इसका पूर्ण विकास हुआ। सूर द्वारा वर्णित लीला के पदो के प्राजल एवं उत्कृष्ट रूप को देखकर ही आचार्य शुक्लजी ने यह अनुमान लगाया था "कि सूरसागर दीर्घकाल से चली आती हुई पुरानी परम्परा का विकास है, चाहे वह मौलिक ही क्यो न रही हो।"[2]

इस प्रकार आलोच्य काल से पूर्व से ही पदो की तीन परम्पराएँ प्राप्त होती है १. पद, २. सबद, ३. लीला के पद। आलोच्य काल के अन्तर्गत इनमे और विकास हुआ। पद दो प्रकार के मिलते है—१. सन्तो के, २. भक्त कवियो के। लीला के पद भी दो रूपों मे प्राप्त है—१ स्फुट रूप मे, २ प्रबन्ध रूप मे। प्रबन्ध रूप मे लीला के पद 'सूरसागर' एव 'परमानन्द सागर' मे प्राप्त होते है। 'सूरसागर' कीर्तन काव्य है एवं 'परमानन्द सागर' मात्र कीर्तन। अत प्रबन्ध रूप मे लिखे लीला के पदो का पुन: दो रूपो मे विभाजन किया जा सकता है—१. कीर्तन काव्य, २. मात्र कीर्तन। कीर्तन काव्य के अन्तर्गत भ्रमरगीत, बधाई, स्तुति, दशावतार वर्णन, अष्टयाम, वर्षोत्सव आदि रूप प्रसगवश गृहीत हुए है।

नीचे प्रत्येक प्रकार के अन्तर्गत रची गई रचनाएँ दी जाती है—

१. पद—

(अ) सन्तो के पद—स्फुट रूप से लिखे गए पद दो सन्त कवियो के ही प्राप्त होते है—कबीर कृत पद एव गुरु अगद कृत पद। उक्त रचनाओ के अतिरिक्त सन्तो की वाणियो मे भी बहुत बड़ी संख्या मे पद सगृहीत है।

(आ) भक्त कवियों के पद—हित हरिवश कृत फुटकर पद, हरिदास स्वामी कृत सिद्धान्त के पद, गोपीनाथ कृत पद, बीठलदास कृत पद, मीरा कृत पद, सर्वजीत कृत विष्णु पद, कृष्णचन्द्र गोस्वामी कृत सिद्धान्त के पद, तुलसी कृत गीतावली, अग्रदास कृत पद, रामचरित्र के पद, तानसेन कृत स्फुट पद, गोविन्ददास कृत एकान्त

---

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदि काल, पृष्ठ १०९।

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १६५।

पद, अमरेश कृत पद, जनगोपाल कृत पद एवं परशुराम कृत पद, इस प्रकार के अन्तर्गत आते हैं। इनके अतिरिक्त भक्तों की वाणियों के अन्तर्गत भी असख्य पद सग्रहीत हैं।

२. **सबद**—

कबीर कृत शब्दावली एवं सबद, धरमदास कृत सबद, सिद्धराम कृत शब्द, दादू दयाल कृत सबद एव सन्तदास ब्रजवासी कृत सबद, इस प्रकार की रचनाएँ है।

३. **लीला के पद**—

(अ) **स्फुट रूप में**—विद्यापति कृत पदावली, सूरदास को छोड़कर अष्टछाप के शेष कवियों के पद, सूरजदास मदनमोहन के पद, हरिदास स्वामी के पद, गोस्वामी बनचन्द्र जी के पद, गोस्वामी कृष्णचन्द्र जी के पद, तुलसीकृत कृष्ण गीतावली, दामोदरचन्द्र गोस्वामी कृत पद, पीताम्बरदास कृत पद, चतुर्भुजदास कृत सिद्धान्त के पद (लीला वर्णन) एव दामोदर स्वामी कृत पद। इनके अतिरिक्त भक्त कवियो की वाणियो मे सग्रहीत पदो मे से कुछ इसी कोटि के अन्तर्गत आते है। इन स्फुट पदो मे बरषोत्सव, बधाई, स्तुति, भ्रमरगीत प्रसंग, अष्टयाम आदि अनेक काव्य-प्रकारो को आधार मानकर लिखे गए पद भी मिलते है।

(आ) **प्रबन्ध रूप में लीला के पद— कीर्तन काव्य**—सूरदास कृत सूरसागर इस प्रकार की अकेली रचना है जिसके अन्तर्गत लीला वर्णन के अतिरिक्त अन्य अनेक काव्यरूपो यथा—भ्रमरगीत, बधाई, स्तुति, दशावतार वर्णन, बरषोत्सव, अष्टयाम आदि का समावेश हुआ है।

४. **मात्र-कीर्तन**—परमानन्द दास कृत परमानन्द सागर इस कोटि की अकेली रचना है।

६—स्तोत्र, स्तुति, विनती-काव्य

संस्कृत साहित्य में स्तुति-परक काव्य—इस प्रकार के काव्य ग्रन्थो की संस्कृत साहित्य में बहुलता है। वहाँ यह पंचक, अष्टक, दसक, पंचाशत और शतक आदि के रूप मे है। कुछ दण्डक भी है जो गद्य मे है। वेदों और पुराणों मे देवी-देवताओ की स्तुति के अनेक स्तोत्र हैं। कालिदास कृत श्यामला दशक, अश्वघोष कृत गण्डि स्तोत्र गाथा, जैन कवि सिद्धसेन कृत ५०० ई० के लगभग की जैन तीर्थंकरो की स्तुति मे लिखा गया कल्याण मन्दिर स्तोत्र, ऐसी ही रचनाएँ है। राजा हर्ष के भी सुप्रभात स्तोत्र तथा अष्ट महाश्री चैत्य स्तोत्र बताए जाते है। बाण कृत चण्डी शतक, मानतुंग कृत भक्तामर स्तोत्र, मयूर कृत सूर्यशतक, सर्वज्ञमित्र कृत सुग्धरा स्तोत्र, शंकराचार्य कृत अन्नपूर्णा दशक, कनकधारा स्तव, रामभुजंग स्तोत्र, लक्ष्मी

नृसिंह स्तोत्र, शिवभुजग स्तोत्र आदि, आनन्दवर्धन कृत देवीशतक, उत्पलदेव कृत स्तोत्रावलि, यामुन कृत चतुश्लोकी तथा स्तुतिरत्न, श्री वसाक कृत पंचस्तव (श्री स्तव, अतिमानुष स्तव, वरदराज स्तव, सुन्दर बाहुस्तव, वैकुण्ठ स्तव), जयदेव कृत गगा स्तव आदि अनेक स्तुति-परक ग्रन्थो की परम्परा सस्कृत साहित्य मे १७वी शताब्दी तक प्राप्त होती है।

अपभ्रंश साहित्य में स्तुति-परक काव्य—अपभ्रश के काव्यो मे स्तुति एव वन्दना काव्य के आवश्यक अग के रूप में दिखाई देते है। 'पउमचरिउ' मे राम वनगमन के अवसर पर उनकी स्थान-स्थान पर जिनमन्दिरो मे की गई प्रार्थना अपभ्रश काव्यो मे प्रचलित स्तुति-परक उक्तियो का श्रेष्ठ उदाहरण है। जैन कवियो ने स्तोत्रो की धारा बहाई है। अभयदेव सूरि का तीस गाथा छन्दो मे लिखा 'जयतिहुअण स्तोत्र' आत्म कल्याण की भावना से लिखा गया है।

हिन्दी साहित्य में स्तुति-परक काव्य—सस्कृत एव अपभ्रश मे प्रचलित यह परम्परा हिन्दी मे भी पर्याप्त विकसित रूप में प्राप्त होती है। सस्कृत एव अपभ्रंश के स्तुति-परक ग्रन्थों मे देवी-देवताओ की स्तुति का ही विधान है जबकि आलोच्य काल की इस रूप की रचनाएँ हमे दो रूपो मे प्राप्त होती है—१. देवी-देवताओ की स्तुति एव विनती के रूप मे, २. भक्तो एव गुरुओ की स्तुति के रूप मे।

१. **देवी-देवताओं की स्तुति सम्बन्धी**—रामानन्द कृत रामरक्षा स्तोत्र, कबीर कृत कबीराष्टक, ज्ञान स्तोत्र, कुशल लाभ कृत पार्श्वनाथ स्तवन, वन्दन कृत भगवान स्तुति, तुलसीदास कृत विनय पत्रिका तथा (कवितावली मे सग्रहीत) हनुमान बाहुक, अग्रदास कृत रामाष्टक, मलूकदास कृत भगवतदल, पृथ्वीराज राठौर कृत दशरथ रावउत, बसदे रावउत तथा गगालहरी, गरीबदास कृत आरती, समय सुन्दर कृत विरहमान बीसी स्तवन एव ऐरवत क्षेत्र चौबीसी, अज्ञात कवि कृत वृन्दावन स्तवन एव चतुरदास कृत गोपेश्वर अष्टक, कूर्माष्टक, रामाष्टक, सत्य-नारायन अष्टक, सर्वेश्वर जी का अष्टक, जनकनन्दिनी अष्टक, वृंदावन अष्टक, इस कोटि की रचनाएँ है।

२. **भक्तों एव गुरुओं की स्तुति सम्बन्धी**—जयसागर जैन कृत कुसल सूरि स्तोत्र, जन गिरधारी साधु कृत भक्त माहात्म्य, कृष्णदास कृत वैष्णव वन्दन, हरिवश अली कृत हिताष्टक २ भाग, दुर्गादास कृत समीधर स्वामी स्तवन, हेमचन्द्र कृत भक्त स्तोत्र भाषा, मुकुटदास कृत भक्त विरुदावली एवं चतुरदास कृत गुरु अष्टक, इस कोटि की रचनाएँ है।

उक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त चरित काव्य, प्रेमकथा काव्य एव रास संज्ञक ग्रन्थ के आरम्भ में ईस गनेस गुरु जिन शिव आदि की वन्दना के छन्द मिलते है

तुलसी के रामचरित मानस के प्रारम्भ एव मध्य मे प्रसगवश अनेक देवा की स्तुति का विधान किया गया है। रहीम ने बरवै प्रारम्भ करने से पूर्व राम-कृष्ण, सूर्य, शकर, हनुमान सबकी एक-एक बरवै छन्द में स्तुति की है। जैन ग्रन्थ तो बिना स्तुति के प्रारम्भ ही नहीं होते। सूफी प्रेम कथानकों मे ईश्वर प्रार्थना का अनिवार्य विधान है। पुहकर कृत रसरतन मे भी प्रसंगवश शिव स्तोत्र दिया गया है। भक्त कवियो के पदों मे स्तुति-परक पदों की बहुलता है। सूर आदि कवियों मे ऐसे पद बहुत है। निम्बार्क एव राधावल्लभी सम्प्रदाय के भक्तो ने अपनी वाणियों मे भगवान की स्तुति के पद एव राधा-कृष्ण की आरती आदि के छन्दो का समावेश किया है।

७—सिद्धान्त एवं उपदेश परक-काव्य

सिद्धो एव नाथों ने अपने उपदेश एव सिद्धान्तो के प्रचार के लिए मुक्तक पद अथवा दोहो का आश्रय लिया था। उन्ही के समान आलोच्य काल के सन्त कवियो ने अपने सिद्धान्तो के प्रतिपादन एव सामान्य जनो को बोध देने के लिए अनेक छन्दो दोहों एवं पदो में स्फुट रचनाएँ कीं। उन दोहों, छन्दो एवं पदों के अनेक सग्रह उपदेश, चितावणी, बोध आदि सज्ञाओ के साथ प्राप्त होते है। सन्तो के समान भक्त कवियो ने भी अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तो के प्रचार, भक्ति एव प्रेम के निरूपण एव उपदेशों के लिए बोध, मजरी, सिद्धान्त, लीला आदि सज्ञाएँ देकर ग्रन्थ लिखे। नीचे आलोच्य काल के अन्तर्गत प्राप्त विभिन्न संज्ञाओं वाली इन रचनाओ की तालिका प्रस्तुत की जाती है। कुछ रचनाएँ ऐसी भी है जो उक्त संज्ञाओ के अन्तर्गत तो नही आती लेकिन विषय की दृष्टि से उसी कोटि की रचनाएँ है। उनकी तालिका भी बाद मे दी गई है।

१—**ज्ञान-संज्ञक रचनाएँ**—कबीर कृत उग्रज्ञान, निर्भयज्ञान।

२—**उपदेश-संज्ञक रचनाएँ**—सुन्दरदास कृत अद्‌भुत उपदेश।

३—**चितावणी संज्ञक रचनाएँ**—पीपा कृत जोग चितावणी, खेम जी कृत चितावनी, सुन्दरदास कृत बोल चितावणी, तर्क चितावणी, विवेक चितावणी।

४—**बोध संज्ञक रचनाएँ**—कबीर कृत जनम बोध, मलूकदास ब्राह्मण कृत ज्ञान बोध, परशुराम कृत अमर बोध।

५—**प्रबोध संज्ञक रचनाएँ**—सुन्दरदास कृत स्वप्न प्रबोध।

६—**संबोध संज्ञक रचनाएँ**—कबीर कृत ज्ञान सम्बोध।

७—**निरूपण संज्ञक रचनाएँ**—कबीर कृत निरूपण कृष्णदास पयहारी कृ

प्रेमतत्व निरूपण, कृष्णदास कृत प्रेमतत्त्व निरूपण, तुलसीदास कृत कलि धर्माधर्म निरूपण ।

८—**नामा संज्ञक रचनाएँ**—कबीर कृत अर्जनामा, जगन्नाथदास कृत गुण गंज नामा ।

९—**विचार संज्ञक रचनाएँ**—सुन्दरदास कृत वेद विचार, आत्मा विचार, ध्रुवदास कृत सिद्धान्त विचार, मोहन कायस्थ कृत स्वरोदय पवन विचार ।

१०—**सिद्धान्त संज्ञक**—कबीर कृत मूल सिद्धान्त, माधोदास कृत सन्त गुण सागर सिद्धान्त, वल्लभदास साधु कृत सेवक बानी का सिद्धान्त, एव रामोदर स्वामी कृत भक्ति सिद्धान्त ।

११—**संग्रह तथा सागर संज्ञक**—कबीर कृत अनुराग सागर, विवेक सागर, ज्ञान सागर, आनन्दराम सागर, हितकृष्णचन्द्र कृत सार संग्रह, निपट निरंजन कृत निरजन सग्रह, दादूपिजारा कृत विचार सागर, प्रवीन कृत सार सग्रह, जान कृत बुधसागर एव शिक्षा सागर ।

१२—**लीला संज्ञक**—ये लीला ग्रन्थ नही है अपितु भक्त कवियो द्वारा लीला सज्ञा देकर लिखे गए उपदेश-परक ग्रन्थ है । ग्रन्थ ये है—रामानन्द कृत ज्ञान लीला (ज्ञान तिलक) जनगोपाल कृत गुरु २४ लीला, मोहन माथुर कृत कपोत लीला, परशराम कृत अमरबोध लीला, साच निषेध लीला, निज रूप लीला, हरि लीला, निर्वाण लीला, समभणी लीला, निथि लीला, वार लीला, नक्षत्र लीला, गदाधर भट्ट कृत ध्यान लीला, ध्रुवदास कृत जीव दशा लीला, वैद्यक ज्ञान लीला, मनशिक्षा लीला, वृन्दावन सत लीला, ख्याल हुलास लीला, भजनसत लीला, श्री युगल ध्यान लीला ।

१३—**विप्रमतीसी**—यह उपदेश देने का एक विशिष्ट प्रकार था । विप्र मतीसी सज्ञक दो रचनाएँ प्राप्त होती है—कबीर के बीजक में सग्रहीत विप्रमतीसी तथा परशरामदेव कृत विप्रमतीसी ।

१४—**चरित्र संज्ञक रचनाएँ**—बान कवि कृत कलि चरित्र, सुन्दरदास कृत पचेन्द्रिय चरित्र एव सभाचन्द कृत कलि चरित्र ।

उपदेश एवं सिद्धान्त परक कुछ अन्य रचनाएँ—भवानन्द कृत अमृतधार, कबीर कृत अमर मूल, हस मुक्तावली, कबीर पजी, काया पजी, रामरक्षा, अठपहरा, आरती, बलख की पैज, ज्ञानगूदरी, ज्ञान स्वरोदय, पुकार शब्द अलहट्टक, स्वास

गुजार, तीसा जन्त्र, मखहोम, सतनाम, सत कबीर बदी छोरी, शब्द वंशावली, उग्रजीता, आगम, पारखा, ज्ञानतिलक सन्तो की गाली, कबीर माण्डयौ, श्रुतिगोपाल कृत सुख निधान, धरमदास कृत श्वास गुजार एव सुखनिधान, जन गिरधारी कृत भक्त माहात्म्य, नरपति कृत स्नेह परिक्रम, निस्नेह परिक्रम, प्रपन्नगंसानन्द कृत भक्ति-भावती, हितकृष्णचन्द कृत अर्थकौमुदी, करुणानन्द, छीहल कृत आत्म प्रतिबोध जयमाल, कृष्णदास पयहारी कृत ब्रह्म गीता, भक्ति प्रताप, भगवतरसिक कृत अनन्य निश्चयात्मक, नित्य विहारी युगल ध्यान, निश्चयात्मक ग्रन्थ उत्तरार्द्ध, निर्बोध मन-रजन, तुलसी कृत वैराग्य सदीपिनी, रामाज्ञा प्रश्न, अग्रदास कृत ध्यान मजरी, राम भजन मजरी, निपट निरजन कृत सन्त सरसी, जिनदास पाण्डे कृत ज्ञान, स्वरोदय, आशानन्द कृत निरजन प्राण, गुरु अर्जुन कृत सुखमनी, अनन्तदास कृत मोह विवेक ग्रन्थ, मोहन माथुर कृत अष्टावक्र, जनगोपाल कृत मोह मर्द राजा की कथा, शुक सम्वाद, दामोदरचन्द्र कृत हस्तामलक, ईसरदास कृत हरि रस, छोटा हरि रस, गुण भागवत हस, गुण आगम, निन्दा स्तुति, केशवदास कृत विज्ञान गीता लछीराम कृत ब्रह्मानन्दनीय, विवेकसार ज्ञान कहानी, ब्रह्मतरग, ज्ञानानन्द नाटक, जगन्नाथदास कृत गीता सार, योगवशिष्ठ सार, हरपचन्द कृत पुण्य सार, रज्जब कृत सर्वंगी, बनारसी दास कृत नाटक समय सार, बनारसी विलास, बनारसी पद्धति, कल्याण मन्दिर भाषा, मारगन विद्या, सुन्दरदास कृत सुन्दर विलास, सर्वाङ्गयोग प्रदीपिका, सुख समाधि, उक्त अनूप पंच प्रभाव, गुरु सम्प्रदाय, आयुर्वल भेद, सहजानन्द, त्रिविध अन्त करण भेद, सुन्दर साख्य, परशुराम कृत छन्द का जोडा, परबोध का जोडा, केशवदास कृत विवेक वार्ता, हेमराज कृत नयचक्र, चतुर्भुजदास कृत द्वादश यश, मलूकदास कृत रतनखान, दामोदर स्वामी कृत स्वगुरु प्रताप, परशराम ब्रजवासी कृत वैराग्य निर्णय, गोपालदास ब्रजबासी कृत मोह विवेक ग्रन्थ एवं जान कवि कृत ज्ञानदीप, इस प्रकार की अन्य रचनाएँ है।

भक्ति का प्राधान्य होने से कारण आलोच्य काल में इस प्रकार की रचनाओ की अधिकता रही। सन्तो एव भक्तो की प्रवृत्ति सिद्धान्त-निरूपण एव उपदेश-कथन मे खूब रमी। ज्ञान एव उपदेश का निरूपण करने के लिए अनेक कवियो ने कुछ पौराणिक आख्यानो को भी अपनाया। शुक सम्वाद, अष्टावक्र, मोह मर्द राजा की कथा, ऐसे ही ग्रन्थ है, जो नाम से चरित-काव्य-से प्रतीत होते हुए स्वरूपत. इसी कोटि के ग्रन्थ है।

८—प्रशस्ति काव्य

प्रशस्ति काव्य का प्रारम्भिक रूप—सस्कृत साहित्य मे ऐतिहासिक चरित-काव्यो की एक विस्तृत परम्परा प्राप्त होती है। इन चरित-काव्यो मे चरित-नायक

के जीवन की वास्तविक घटनाओं का ही वर्णन मिलता है। समय के साथ-साथ कवि-रुचि में परिवर्तन हुआ। वास्तविकता के स्थान पर कल्पना को महत्त्व दिया जाने लगा। राजनैतिक स्थिति के डाँवाडोल होने पर राजाश्रयों में रहने वाले कवियों के पास राज-स्तुतिपरक कविताएँ लिखना ही शेष रह गया। इन कविताओं मे राजाओं के युद्ध, शौर्य, प्रताप, दान एव वैभव आदि का फुटकर वर्णन ही प्रधान रूप मे होता था। कभी-कभी किसी घटना विशेष को लेकर हुए युद्ध एवं विवाद का भी अतिरजित वर्णन कवियो द्वारा किया गया। 'प्राकृत पेंगलम्' मे दिये गए उदाहरण वाले पद्यों मे इस प्रकार की राज-स्तुति-परक रचनाएँ बड़ी संख्या मे उपलब्ध है। तत्कालीन संस्कृत साहित्य मे भी इस श्रेणी की रचनाओ की बहुलता है। यद्यपि इनको चरित-काव्य के रूप मे प्रस्तुत करने की चेष्टा है लेकिन उनमे 'वीर गाथा' उतनी नही है जितनी कि 'राजस्तुति'।[1] इनकी घटनाओ मे तथ्य कम है कल्पना अधिक।

आलोच्य-काल के प्रशस्ति काव्य—हिन्दी के प्रारम्भ से ही राजस्तुति-परक रचनाओ की एक परम्परा राजस्थान के कवियो की प्राप्त होती है। चन्द कृत पृथ्वीराज रासो मे राज-स्तुति का प्रयास है। इस प्रकार की फुटकर रचनाओ से राजस्थानी भाषा का साहित्य अत्यन्त ही समृद्ध है। आलोच्य-काल मे इस काव्य-रूप के अन्तर्गत निम्नलिखित रचनाएँ हुई—केशवदास चारण कृत अमरसिंह रा दूहा, केशवदास कृत जहाँगीर जस चन्द्रिका एवं कवीन्द्राचार्य सरस्वती कृत कवीन्द्र कल्प-लता।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त अकबर के दरबारी कवियो के कवित्त, छप्पय एव सवैयों मे अकबर, खानखाना एव अन्य सरदारों की वीरता, दान आदि की प्रशसा के छन्द है। गग, तानसेन, नरहरि आदि ने गौस मुहम्मद, खानखाना आदि की प्रशसा भी अनेक छन्दो मे की है। रीतिकाल में जाकर यह परम्परा अपने पूर्ण यौवन को प्राप्त हुई।

९—पुराण

संस्कृत साहित्य में पुराण—महाभारत से पुराणों का जन्म माना जाता है। पुराणों की सख्या अठारह है।[2] सभी पुराणो का कर्त्ता वेदव्यास को बताया जाता

---

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ २३।

[2] पुराण ये है—१–ब्रह्म पुराण, २–पद्म पुराण, ३–वैष्णव पुराण, ४–शैव या वायवीय पुराण, ५–भागवत पुराण, ६–नारदीय पुराण, ७–मारकण्डेय पुराण, ८ आग्नेय पुराण ९ भविष्य पुराण १०–ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ११–लिंग पुराण

है, लेकिन यह समीचीन प्रतीत नही होता। पुराणो का वर्तमान स्वरूप अनेक शताब्दियो का प्रयास है। क्रमश. परम्परागत रूप के चले आये अनेक आख्यानो का संग्रह मात्र ही पुराणों के स्वरूप की विशेषता है। पुराणो के अतिरिक्त उपपुराण भी है जिनकी संख्या भी कम नही है। पुराणों के आख्यान सदैव से ही कवियो को आकर्षित करते रहे है। संस्कृत साहित्य का अधिकांश भाग पौराणिक आख्यानो पर ही आधारित है।

हिन्दू पुराणो के ही अनुसार जैनो ने भी अपने पुराणो की रचना की। आचार्य जिनसेन का महापुराण संस्कृत मे एव पुष्पदन्त का महापुराण अपभ्रंश मे लिखा गया। जैन परम्परा मे पुराण उसे कहा जाता है जिसमें सभी तीर्थंकर, बलभद्र, वासुदेव और प्रतिवासुदेव का वर्णन हो।[1] इन सब की सख्या ६३ है। अत इन ६३ व्यक्तियों के चरित जिन काव्यों मे लिखे गये वे पुराण कहलाए। स्वयंभू कृत रिट्ठणेमि चरिउ या हरिवश पुराण की संज्ञा 'चरिउ' एव 'पुराण' दोनो दी गई है, तथापि यह पुराण के अन्तर्गत आता है। पुन्नार संघ के आचार्य जिनसेन ने महाभारत की कथा के आधार पर हरिवशपुराण की रचना की। परवर्त्ती जैन आचार्यो ने भी अनेक पुराण सज्ञक ग्रन्थो को जन्म दिया।

हिन्दी साहित्य में पुराण—आलोच्य काल से पूर्व गोरखनाथ कृत विराट पुराण का उल्लेख प्राप्त होता है। यदि यह ग्रन्थ प्रामाणिक है तो हिन्दी मे पुराण लिखने की परम्परा का श्रीगणेश यही से समझा जा सकता है। आलोच्य काल के भक्त कवियों ने कृष्ण-लीला के वर्णन के लिए भागवत पुराण का आश्रय लिया। अत: उस काल मे भागवत पुराण का सर्वाधिक प्रचार हुआ। उसके आख्यानो एव प्रसगो पर तो काव्य-ग्रन्थो की रचना की ही गई उसके हिन्दी मे अनेक अनुवाद भी हुए। भागवत के अतिरिक्त वामन पुराण, जैमिनि पुराण एव पुराणो के उद्गम स्थल महाभारत के पर्वो के भी अनेक अनुवाद हुए। इस कोटि के अन्तर्गत आने वाले ग्रन्थ ये है—लखनसेन कृत हरि चरित्र, विराट पर्व, विष्णुदास कृत महाभारत कथा, स्वर्गारोहण, भीम कृत डगवै पुराण, घेघनाथ कृत गीताभाषा, पुरुषोत्तम कृत जैमिनि पुराण, लालचराम कृत भागवत दशम स्कन्द भाषा, बलवीर कृत डगौ पर्व, नन्ददास कृत दशम स्कन्ध, जयचन्द कृत नासिकेत पुराण, गोप कृत भागवत दशम पूर्वार्द्ध, बलभद्र कृत भागवत भाष्य, अमृतराय कृत महाभारत भाषा, लालदास कृत इतिहास सार भाषा, पृथ्वीराज राठौड कृत दशम भागवत दूहा, अज्ञात कवि कृत भागवत

१२—बाराह पुराण, १३—स्कन्द पुराण, १४—वामन पुराण, १५—कूर्म पुराण, १६—मत्स्य पुराण, १७—गरुड पुराण एव १८—ब्रह्मांड पुराण।

[1] अपभ्रंश साहित्य (थीसिस) देवेन्द्र कुमार जैन पृष्ठ ५५।

दशम स्कन्ध (श्रीधरी टीका), ईसरदास बारहट कृत गरुड पुराण, सभा पर्व, भूपति कृत भागवत दशम स्कन्ध, धर्मदास कृत द्रोण पर्व, गगादास कृत भीष्म पर्व, श्रीलाल जी कृत भागवत दशम स्कन्ध, पूरन कवि कृत जैमिनि पुराण, ध्रुवदास कृत वृहद वामन पुराण भाषा, भगवतदास द्विज कृत नासिकेतु गरुड पुराण, रतिभान कृत जैमिनि पुराण, चतुरदास कृत एकादश स्कन्ध भाषा, मानसिंह कृत अश्वमेघ पर्व, सेवादास कृत जैमिनि पुराण, भुवाल कृत भगवत गीता।

हिन्दी मे जैन कवियो ने भी अपने पुराण लिखे। सवत् १६५५ मे जैन कवि शालिवाहन ने हरिवश पुराण सस्कृत के जैन हरिवश पुराण के आधार पर रचा। जैन कवि की इस काल की यह अकेली रचना है।

हिन्दी मे पुराण लिखने की यह परम्परा बडी लोकप्रिय हुई। परवर्त्ती काल मे भी अनेक ग्रन्थ लिखे गए। आलोच्य काल मे पौराणिक आख्याना के आधार पर लिखे गए कुछ चरितकाव्यो को सज्ञा पुराण भी दी गई लेकिन वह वास्तव मे पुराण न होकर चरितकाव्य ही थे १४५३ विक्रमी मे लिखा गया जाखू मणियार कवि का 'हरिचन्द पुराण कथा' ऐसी ही रचना है। मोतीलाल कृत गणेश पुराण एक अन्य ऐसी रचना है जिसकी सज्ञा तो पुराण दी गई है लेकिन ग्रन्थ मे गणेश व्रत अथवा सकट चौथ के व्रत की महिमा का गान हुआ है। काव्य-रूप के दृष्टिकोण से यह रचना कथा की कोटि की है। अतः इसका विवेचन भी उसी प्रसंग मे किया गया है।

१०—ऐतिहासिक-काव्य

सस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक चरित-काव्यों की परम्परा दृष्टिगोचर होती है, जिसका उल्लेख चरित-काव्य के प्रकरण मे हो चुका है। आलोच्य काल से पूर्व जब कवियों को राज्याश्रय प्राप्त होने लगा तो उन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशसा से युक्त काव्यो का निर्माण प्रारम्भ किया। इस प्रकार के काव्य तीन रूपो मे लिखे गए—१. जिनमे आश्रयदाता अथवा किसी अन्य इतिहास प्रसिद्ध-व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन चरित्र का वर्णन होता था। २. जिसमे किसी एक घटना विशेष को लेकर अपने आश्रयदाता अथवा अन्य किसी प्रसिद्ध योद्धा के किसी ऐतिहासिक गुण का विवेचन प्रशस्ति के रूप मे किया जाता था। ३. जिनमे राज्याश्रय मे रहने वाले कवि अपने आश्रयदाता के गुणगान करने के लिए कल्पना एव अतिरजना का आश्रय ग्रहण करते थे। प्रथम कोटि की रचनाएँ चरित-काव्य की कोटि मे आती है जिन पर अलग से विचार हो चुका है। दूसरे प्रकार की रचनाओ को ऐतिहासिक-काव्य की सज्ञा दी जा सकती है, जिनका विवेचन यह किया जा रहा है तीसरे प्रकार की रचनाएँ प्रशस्ति-काव्य की कोटि मे आती है

जिन पर पीछे विचार किया जा चुका है। आलोच्यकाल की ऐतिहासिक-काव्य की कोटि के अन्तर्गत आने वाली रचनाएँ ये है—

श्रीधर कृत रणमल छन्द, शिवदास कृत अचलदास खीची री वचनिका, सूजाजी कृत राव जैतसी री छन्द, आशानन्द कृत गोगा जी री पैडी, अमोलक कृत खान खवास की कथा, केशवदास कृत रतन बावनी एव जान कवि कृत अलिफ खाँ की पैंडी।

ऊपर की रचनाओ मे से अधिकाश राजस्थान के कवियो द्वारा लिखी गई है। वहाँ इस प्रकार के काव्य-ग्रन्थो की परम्परा आलोच्य-काल के बाद तक प्रचलित रही।

११—मंगल-काव्य

प्राचीन रूप एवं परम्पराएँ—भारतीय साहित्य मे मगल-काव्य लिखने की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। काव्य का यह रूप १२वी शताब्दी मे पूर्व प्रचलित था। हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'त्रिशिष्ट शलाका पुरुष चरित' में भी ऋषभदेव और सुमगला के लगन का विशद वर्णन किया है।[१] उनके ग्रन्थ छन्दोनुशासन मे मगल छन्द का लक्षण भी मिल जाता है। अत्यधिक मांगलिक अवसर होने के कारण हिन्दी-साहित्य मे विवाह काव्यो को मगल-काव्य की सज्ञा दी गई है। हिन्दी साहित्य मे प्राप्त मगल काव्यो की परम्परा से पूर्व हमे सुदूर क्षेत्रों में मगलकाव्यो की दो परम्पराएँ प्राप्त होती हैं जिनका हिन्दी के मंगल काव्यो पर प्रभाव पडा। उनमे से एक बगाल मे तथा दूसरी गुजरात मे थी। बगला के मगलकाव्य विवाह काव्य न होकर देवताओ के यश वर्णन तथा कथाओ एवं 'धरम निरूपण' के प्रयास वाले उपाख्यानो से सम्बन्धित हैं।[२] मनसा मगल इस प्रकार का श्रेष्ठ ग्रन्थ है।[३] दूसरी परम्परा गुजरात एवं राजस्थान के जैन कवियो की है। जिन्होने अनेक जैन तीर्थकरों एव मुनियो के सगम श्री के साथ हुए विवाहो का वर्णन किया है। उन्होंने इस प्रकार के ग्रन्थो की सज्ञा मगल, धवल, विवाहला आदि दी है। गुजरात मे प्रचलित धवल एक लौकिक गीत था जो विवाह के अवसर पर गाया जाता था। धवल सज्ञक अनेक रचनाएँ प्राप्त होती है जो स्वरूप की दृष्टि से मगल-काव्य के अन्तर्गत आती है। इस प्रकार की रचनाओं में 'जिनपति सूरि धवल गीत' सबसे प्राचीन है।

---

[१] सर्ग २ श्लोक ६६८-७९ तक।

[२] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदि काल, पृष्ठ १०३

[३] अगरचन्द नाहटा—'मगलकाव्य' शीर्षक निबन्ध, भारती साहित्य जनवरी, १९५६ ई०

'ऋषभदेव विवाहले' की सज्ञा धवल बन्ध भी दी गई है।[1] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस काल मे मगल काव्यो मे यह शैली पर्याप्त प्रचलित थी। नैमिनाथ धवल, वास पूज्य-धवल इस प्रकार की कुछ अन्य रचनाएँ भी प्राप्त है।

आलोच्यकाल से पूर्व के काव्य—जैन परम्परा मे लिखे गए कई प्राचीन 'विवाहला' सज्ञक काव्य प्राप्त है। सबसे प्राचीन जिनप्रभसूरि का अन्तरग विवाह है। अन्य रचनाओ मे सोममूर्ति कृत जिनेश्वर सूरि विवाहला तथा मेरुनन्दन कृत जिनोदय सूरि विवाहला प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थो का रचना-काल विक्रम की १४वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। गुजराती, राजस्थानी मे अनेक ऐसे काव्य है जिनका उल्लेख मजुलाल मजूमदार ने अपने ग्रन्थ गुजराती साहित्यना स्वरूपो—'विवाहलो वेलि' प्रसग मे किया है। जैन कवियो के अतिरिक्त गुजरात के हिन्दू कवियो ने भी कई विवाह काव्य लिखे है जिनमे सबसे प्राचीन नरसिह कृत शाह का विवाहला है।[2] चन्द कवि कृत पृथ्वीराज रासो मे भी विनय मगल का प्रसग है जो विवाह काव्य तो नही है लेकिन उसमे मागलिक कार्यो का वर्णन है। उसमे सयोगिता को वधू धर्म की शिक्षा दी गई है। इसकी प्रामाणिकता मे विद्वानो को सन्देह है।

आलोच्यकाल के मगल-काव्य—कबीर के नाम से तीन मगल काव्य मिलते है—आदि मंगल, अगाध मंगल एव अनादि मंगल। ये मगलकाव्य बगला की मगलकाव्य-परम्परा से प्रभावित है। पश्चिम मे प्रचलित जैन विवाह काव्यो के अनुकरण पर मगल नाम के साथ प्राप्त होने वाली सर्वप्रथम रचना १४९२ विक्रमी की विष्णुदास कृत रुक्मिणी मगल है। आलोच्यकाल मे प्राप्त अन्य मंगल ग्रन्थ ये है—लालदास स्वामी कृत मगल, नन्ददास कृत रुक्मिनी मगल, तुलसीदास कृत जानकी मगल, पार्वती मगल, कनकसोम कृत आर्द्र कुमार धवल, नरहरि कृत रुक्मिणी मगल, चतुर्भुजदास राधावल्लभी कृत हितजू का मंगल, हीरामनि कृत रुक्मिनी मगल। कुछ ऐसे भी ग्रन्थ है जो विवाह काव्य है लेकिन जिनकी सज्ञा मगल नही हैं, व्याहलो है—आलम कृत व्याहलो, पदम तेली कृत रुक्मिणी व्याहलो, ध्रुवदास कृत व्याहलो, दामोदर स्वामी कृत व्याहलो, कृष्णदास गिरधर कृत रुक्मिणी व्याहलो। उक्त दोनो सज्ञाओं से भिन्न संज्ञा वाले भी कुछ मंगल काव्य प्राप्त होते है—चक्रपाणि व्यास कृत रुक्मिणी हरण, पृथ्वीराज राठौड कृत क्रिसन रुक्मिणी री वेलि एव साया जी कृत रुक्मिणी हरण। पृथ्वीराज कृत वेलि का

---

[1] अगरचन्द नाहटा—प्राचीन भाषा काव्यो की विविध सज्ञाएँ—ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८ अंक ४ सम्वत् २०१०, पृष्ठ ४२६।

[2] अगरचन्द नाहटा • काव्य भारतीय साहित्य जनवरी १९५६ ई०

उल्लेख, छन्दपरक-काव्यरूप के अन्तर्गत भी किया गया है क्योंकि उसकी संज्ञा उसमें प्रयुक्त छन्द के आधार पर दी गई है। ग्रन्थकार ने इसे वेलि एव मगल दोनो रूपो मे प्रस्तुत किया है। फिर भी इसमे मगल काव्य का रूप ही प्रधान है। मीरा कृत नरसी माहेरा एव रतनखाती कृत नरसी का माहेरा दो रचनाएँ माहेरा सज्ञक भी प्राप्त होती है जो इसी कोटि की रचनाएँ है। माहेरो गुजराती शब्द मामेरा का अशुद्ध रूप है। गुजराती भाषा के साहित्य मे मामेरा सज्ञक अनेक काव्य लिखे गये है। वहाँ मगल काव्य की कोटि मे रखी जाने वाली रचनाएँ देवी-देवताओ के स्त्रोत्र तथा लग्नो एव शुभ अवसरो पर गाए जाने वाले गीत ही प्रमुख है।[1] विवाह के अवसर पर होने वाले मागलिक कृत एव भगवान द्वारा भक्तों पर किए गए मगल पूर्ण अनुग्रह का वर्णन होने के कारण, उक्त दोनो ग्रन्थ भी इसी कोटि मे रखे जा सकते है।

१२—लीला काव्य

लीला के पदों के साथ ही लीला काव्य का भी उद्गम माना जा सकता है। लीला काव्य लीला के पदो का ही विकसित रूप है तथापि इनका अलग उल्लेख इस लिए किया जा रहा है कि लीला-काव्य गेय पदो मे न लिखे जाकर अन्य छन्दो मे लिखे गए। १४वी शताब्दी मे सकलित 'प्राकृत पेंगलम्' के छन्द मे लीला काव्य का कुछ आभास मिलता है—

अरेरे वाहहि कान्ह णाव छोडि डगमग कुगति न देहि।
तइ इत्थि णाइहि सनार देहि जो चाहइ सो लेहि ॥पृष्ठ १२, छन्द ९।

उक्त छन्द मे नौकालीला-प्रसग मे कृष्ण-गोपी-सम्वाद की योजना है।

कृष्ण की लीलाओं का स्रोत भागवत है। विक्रम की १४वी शताब्दी से १७वी शताब्दी तक भागवत के स्कन्धो के हिन्दी मे अनेक अनुवाद हुए एव कृष्ण की अनेक मनोहारिणी लीलाओ का चित्रण किया गया। इस परम्परा मे प्राप्त ग्रन्थ ये है—विष्णुदास कृत सनेह लीला, हितकृष्णचन्द्र कृत राधानुनयविनोद, कृष्णदास कृत जुगलमान चरित, परमानन्ददास कृत दान लीला, दधि लीला, हरिराम कृत वरषोत्सव, नन्ददास कृत मान मजरी, श्याम सगाई, रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पचाध्यायी साया जी कृत नाग दमण, ध्रुवदास कृत सभा मडल लीला, वन विहार लीला, रग विहार लीला, रस विहार लीला, रग हुलास लीला, रग विनोद लीला, आनन्द दशा विनोद लीला, अनुराग लता लीला, प्रेमलता लीला, ब्रज लीला, निर्त विलास लीला,

[1] श्री शान्ति आकड़िया कर—गुजराती मे मगल काव्य—'भारतीय साहित्य', जनवरी १९५६ ई०।

दान लीला, मान लीला, दामोदर स्वामी कृत अजमान कन्हाई जस, रस लीला, बसन्त लीला, रास पचाध्यायी, माधुरीदास कृत श्री राधारमण विहारी माधुरी, वंशीवट विलास माधुरी, उत्कंठा माधुरी, वृन्दावन केलि माधुरी, दान लीला माधुरी, मान माधुरी, परशुराम कृत श्री कृष्ण चरित की जोडौ, खरगसेन कायस्थ कृत दान लीला एवं मोहन कायस्थ कृत सनेह लीला।

१३—साखी

आलोच्यकाल से पूर्व—यह हिन्दी का निजी काव्य-रूप है। संस्कृत अथवा अपभ्रंश में इसका संधान प्राप्त नहीं होता। साखी काव्य-रूप सन्त साहित्य में खूब प्रचलित था। कबीरदास से पूर्व इस रूप के प्रचलन का निम्न पंक्तियों में आभास होता है—

> माला पहिरै टोपी पहिरै छापतिलक अनुमाना।
> साखी सबदी गावत भूलै आतम खबर न जाना॥

कबीर से पूर्व नामदेव रचित 'साखियाँ' प्राप्त है जो उनकी वाणी में संग्रहीत है। लेकिन कबीर का तात्पर्य उनकी ओर इंगित करने का प्रतीत नहीं होता। ऐसा ज्ञात होता है कि सन्त कवियों से पूर्व बौद्ध एवं नाथ सम्प्रदायों के सिद्धों में इस का प्रचार अवश्य रहा होगा। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी बौद्ध सिद्ध कण्हपा के एक पद में "साखि करब जालन्धर पाएँ" पाठ को देखकर कण्हपा द्वारा जालन्धर पाद के वचनों को साखी रूप में उल्लेख करने की बात करते हैं।[1] सरहपाद ने एक दोहे में 'उएस' या उपदेश कहा है। यही 'उएस' या उपदेश परवर्त्ती काल में साखी बन गया है।[2] सन्त कवियों के साहित्य में तो दोहे का अर्थ ही साखी हो गया। कबीर की देखा-देखी बाद के सभी सन्तों ने साखी शब्द का प्रयोग किया।

आलोच्यकाल की रचनाएँ—साखी काव्यरूप के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली सबसे प्रथम रचना जो आलोच्यकाल से पूर्व की है, गोरखनाथ द्वारा रचित ज्ञानेश्वरी साखी है। गोरखनाथ के पश्चात आलोच्य-काल के कबीर, भगोदास, कमाल, धरमदास, सिंद्धराम, नानक, अंगद, दादूदयाल, जनगोपाल आदि अनेक सन्त कवियों ने साखियाँ लिखी। सन्त कवियों द्वारा गृहीत यह काव्य-रूप इतना लोकप्रिय हुआ कि भक्त कवियों को भी इसने आकर्षित किया। फलतः अनेक भक्त कवियों ने या तो स्वतन्त्र रूप से साखी ग्रन्थों की रचना की या अपनी वाणियों में साखियों को स्थान दिया। इस प्रकार के भक्त कवियों में व्यास जी ओरछा, बिहारिनदास,

[1] हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ १०५।
[2] वही वही।

परशुराम देव तथा दामोदर स्वामी प्रसिद्ध है। परशुराम देव एव दामोदर स्वामी ने स्वतन्त्र रूप से साखियो की रचना की। व्यास जी ओरछा एव विहारिनदास की साखियाँ उनकी वाणियों मे संग्रहीत है।

१४—छन्द-गीत परक-काव्य-रूप

आलोच्यकाल एवं उससे पूर्व के काव्यो में प्रयुक्त छन्द-परक संज्ञाएँ—ग्रन्थ मे प्रयुक्त छन्द के आधार पर उसका नामकरण करने की प्रवृत्ति हिन्दी-साहित्य मे अति प्राचीन है। हिन्दी से पूर्व भी यह परम्परा प्रचलित थी। हाल की 'गाथा सप्तसती' इसका उदाहरण है। विक्रम की १४वी शताब्दी से पूर्व यह परिपाटी पर्याप्त विकसित हो चुकी थी। डा० सत्येन्द्र ने ८वी से १४वी शताब्दी के अन्तर्गत प्रचलित गीत छन्दपरक काव्य-रूप ये बतलाए है[1]—१ गाथाबन्ध, २. दोहाबन्ध, ३ पद्धडियाबन्ध, ४. चौपाई दोहाबन्ध, ५ छप्पय बन्ध, ६. कुण्डलिया बन्ध, ७ रामाबन्ध, ८. चर्चरी या चॉचर, ९ फाग, १० दोहरे, ११. सोहर, १२. कवित्त-सवैया, १३ कहरा, १४ बरवै, १५. पद, १६ वेलि तथा १७ विरहुली। विक्रम की १५वी से १७वीं शताब्दी के बीच इन छन्द-गीत-परक काव्यरूपो मे विशेष बढोतरी नही हुई। इस काल मे नए प्रयुक्त काव्यरूपो मे सोरठा, गजल, रेखता, नीसाणी, झूलना तथा कुछ गीत ही प्रमुख है। यह काव्यरूप छन्द एव गीत इन दो कोटियो मे विभक्त किया जा सकता है। गीत भी तीन प्रकार के प्राप्त होते है—१ लौकिक गीत, २. शास्त्रीय राग, ३. अन्य गीत। पहले प्रकार मे होरी, झूलना, खसरा, हिंडोरा आदि एव दूसरे मे राग वसन्त, राग गौरी, राग भैरव, राग काफी आदि आते है। कुछ अन्य गीत भी प्राप्त होते है। आलोच्य-काल मे ऊपर के कुछ बन्ध तो अत्यन्त लोकप्रिय हुए। रामाबन्ध एवं पद पर स्वतन्त्र काव्यरूप के ढग पर विचार किया जा चुका है। गाथा बन्ध का सीधा सम्बन्ध प्राकृत से होने के कारण आलोच्य-काल के साहित्य मे उसका प्रयोग नही हुआ। आलोच्य-काल मे दोहा एवं दोहरे मे भी कोई भेद लक्षित नही होता। शेष काव्यरूपो एव बन्धों पर यहाँ विचार किया जावेगा।

१—दोहा—श्लोक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का और दूहा अपभ्रंश का निजी छन्द है। दोहे के प्रचलन-काल के विषय में निश्चय पूर्वक कुछ कहना कठिन ही है। दोहे का सबसे पुराना रूप 'विक्रमोर्वशी' मे प्राप्त होता है।[2] संस्कृत एव प्राकृत के भी कुछ दोहे बताए जाते है। गाथाएँ संस्कृत मे भी लिखी गई है। अत. यह

---

[1] मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृष्ठ ४६७,-६८।

[2] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृष्ठ ९१

सम्भव है कि दूहा जिसका सीधा सम्बन्ध अपभ्रंश साहित्य से है, प्राकृत एवं संस्कृत मे भी प्रयुक्त हुआ हो। प्राचीन साहित्य मे दूहा अपभ्रंश का पर्याय माना जाता था। जैन साहित्य के इतिहास मे उद्धृत निम्न दोहे से उक्त कथन की पुष्टि होती है।

दव्वसहावपयास दोहयबंधेण आसि ज दिट्ठ।
त गाहाबंधेणाय रइय माइल्ल धवलेण ॥[1]

'प्राकृत पैगलम्' के अहीर छन्द का लक्षण दोहे के समान ही है। इसके प्रत्येक चरण मे ११ मात्राएँ होती है। अत. डा० द्विवेदी ने अहीर जाति एव दोहे छन्द मे कुछ सम्बन्ध होने का अनुमान किया है। दण्डी ने अहीर जाति की भाषा को जो नाम (अपभ्रंश) दिया है उससे उनके अनुमान की पुष्टि होती है।[2] इस विषय मे अभी और अधिक प्रमाण होना आवश्यक है, तभी अधिकार पूर्वक कुछ कहा जा सकता है।

अपभ्रंश साहित्य के दोहे दो प्रकार के प्राप्त होते है--१. दोहाकोश, २ स्फुट दोहा। प्रथम प्रकार मे जोइन्दु का 'परमात्म प्रकाश दोहा' एव 'योगसार' तथा मुनि रामसिंह के 'पाहुड दोहा', 'सिद्ध दोहा कोश' एव 'सावयधम्म दोहा' प्रसिद्ध है। स्फुट दोहे भी प्रचलित थे। सिद्धो ने नीति एव उपदेशो के लिए स्फुट दोहो का प्रयोग किया।

प्राकृत साहित्य में गाथा छन्द का प्रयोग स्फुट रचना के लिए ही हुआ। कहा जाता है कि हाल की 'गाथा सप्तसती' १ करोड गाथाओ मे से चुनकर रखी गई सात सौ सर्वश्रेष्ठ गाथाओ का संग्रह है। इससे प्राकृत में मुक्तक गाथाओ की एक पुष्ट परम्परा का होना सिद्ध होता है। सिद्धो ने दोहे का प्रयोग प्राकृत की गाथा के समान मुक्तक रूप में किया। इस रूप मे दोहे का प्रयोग सिद्धो के समय से लेकर रीतिकाल के अन्त तक निर्बाध रूप से चलता रहा। आलोच्य काल मे कुछ कवियों ने इस छन्द मे कथा लिखने की चेष्टा करके इसे कथानक छन्द की कोटि मे बिठाने की चेष्टा की। छीहल कृत 'पच सहेली' एव कल्लोल कृत 'ढोला मारू रा

---

[1] माइल्ल धवल ने 'द्रव्यस्वभाव प्रकाश' ग्रन्थ को पहले दोहाबन्ध (अपभ्रंश) मे देखा था। लोग उसकी हँसी उडाते थे अपभ्रंश शायद उनके लिए गँवारू भाषा थी। उन्होने उसे गाहाबन्ध (प्राकृत मे) कर लिया।
— नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १६८।

[2] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ९२-९३।

दूहा' ऐसे ही प्रयोग है। छोटे कथानको के निर्वाह मे तो इस छन्द मे किसी प्रकार काम चल भी गया लेकिन बडे कथानको के लिए यह उपयुक्त सिद्ध नही हुआ इसीलिए इस मुक्तक छन्द के साथ चौपाई जैसे कथानक छन्द को जोडकर दोहा-चौपाई बन्ध को कथा-काव्यो के लिए प्रयुक्त किया गया। कुशललाभ का ढोला मारू रा चौपाई ऐसा ही प्रयत्न है। अत दोहे के प्रयोग में तीन क्रम प्राप्त होते है—१. स्फुट रूप मे प्रयोग, २. छोटे कथानकों के लिए प्रयोग, ३ बड़े कथानकों के लिए किसी चौपाई जैसे छोटे कथानक छन्द के साथ प्रयोग।

अपभ्र श के बाद दोहों का प्रयोग हमे सण्हपा, कण्हपा, तिलोपा तथा गोरखनाथ की वाणियो मे प्राप्त होता है। वही से यह सन्त कवियों द्वारा अपनाया गया, जिसे उन्होने साखी नाम देकर अन्य प्रकार के दोहो से भिन्न बना दिया। शृङ्गार के दोहे हेमचन्द्र के व्याकरण, प्राकृत पेंगलम्, प्रबन्ध चिन्तामणि, सन्देश रासक आदि मे प्राप्त होते है। आलोच्य काल मे प्राप्त दोहा सज्ञक ग्रन्थ निम्न है—१ कबीर कृत दोहे, २. कल्लोल कृत ढोला मारू रा दूहा, ३ छीहल कृत पच सहेली रा दूहा, ४. गणपति कृत माधवानल प्रबन्ध दोहा बन्ध, ५. तुलसी कृत दोहावली, ६ पृथ्वीराज राठौड कृत दशम भागवत दूहा, ७. आशानन्द कृत बाघा रा दूहा, ८ रहीम कृत सतसई के दोहे, ९. रूपचन्द कृत परमार्थी दोहा शतक, १० केशवदास कृत राव अमरसिंह रा दूहा, ११ रसखान कृत प्रेमवाटिका, १२. सदलवच्छ कृत मालिगवा रा दूहा, १३. अज्ञात कवि कृत मदैवच्छ सालिगवा रा दूहा। इसके अतिरिक्त राजस्थान मे वीररस पूर्ण स्फुट दोहो की एक उत्कृष्ट परम्परा प्राप्त होती है। दोहे के साथ ही साथ आलोच्य काल में सोरठे को भी अपनाया गया। कबीर तथा रहीम ने सोरठे मे स्वतन्त्र ग्रन्थो की रचना की। उक्त ग्रन्थो मे से १, ३, ५ व ७ तथा सोरठे वाले ग्रन्थ ही छन्दपरक काव्यरूप की कोटि मे आते है। शेष ग्रन्थों मे छन्द के अतिरिक्त अन्य तत्त्वों की प्रधानता है। ग्रन्थ २, ४, १२ एव १३ भारतीय प्रेमाख्यानो की कोटि के ग्रन्थ है। अतः उनका विवेचन कथा-काव्य के प्रकरण मे, नं० ६ का पुराण होने के कारण पुराण के प्रकरण मे, ८ व ९ का सख्यापरक काव्यरूप के अन्तर्गत एवं १० का प्रशस्ति काव्य के अन्तर्गत वर्णन किया गया है।

३. **पद्धड़िया बन्ध**—पद्धड़िया चौपाई के समान छोटा छन्द है। अपभ्र श के चरित काव्य कडवक शैली मे लिखे गए, जहाँ एक कडवक मे कई पद्धडिया (पज्झटिका) या अरिल्ल या किसी ऐसे ही छोटे छन्द को देकर अन्त मे धत्ता का ध्रुव कर दिया जाता था। अपभ्र श साहित्य में इस बन्ध का बडा प्रचलन था। 'उपदेश रसायन रास' नामक गेय काव्य इसी बन्ध मे लिखा गया जिसमे श्रावको के

लिए उपदेशो का विधान है।[1] चतुर्मुख पद्धड़िया बन्ध का राजा था उसने पद्धड़िया बन्ध मे छर्दनिका तथा द्विपदी छन्दो का प्रयोग किया—

छड्डणिय दुवइ धुवएहिं जडिय।
चउमुहेण समप्पि अपद्दडिय।[2]

चन्द के रासो मे पाधरी छन्द है जो प्राचीन पद्धडिया का ही एक रूप है। उत्तर अपभ्रंश काल की रचनाएँ कडवक बद्ध शैली मे है जहाँ पद्धड़िया के साथ अन्त मे बड़े छन्द का घत्ता देकर एक कड़वक माना जाता था। यही शैली हिन्दी मे दोहे-चौपाई के रूप मे ग्रहण की गई।

अपभ्रंश मे पद्धडिया छन्द का ही प्रयोग हुआ। वह १६ मात्राओ का छोटा छन्द था। चौपाई भी १६ मात्राओ का छन्द है। दोनो मे मात्राओ की समानता होने के कारण पद्धडिया छन्द के स्थान पर चौपाई छन्द का प्रयोग करने मे कवियो को विशेष कठिनाई नही होती थी। परिणामत: अपभ्रंश का पद्धरी बन्ध हिन्दी मे दोहा-चौपाई बन्ध के रूप में परिणित हो गया। आलोच्यकाल मे अनेक चरित-काव्य, रास एव कथा-काव्य इसी बन्ध मे लिखे गए। जिनमे अधिकांश का नाम-करण भी पद्धडिया बन्ध के इसी विकसित रूप (चौपाई-बन्ध) के आधार पर चौपाई ही रखा गया। इस प्रकार के ग्रन्थो का उल्लेख दोहा-चौपाई बन्ध के अन्तर्गत होगा डा० मेनारिया ने इस काल मे भी पाधरी छन्दो मे रचे जाने वाले कुछ ग्रन्थो के विषय मे सकेत किया है, ग्रन्थकार एव ग्रन्थो के नामो के विषय मे कोई उल्लेख नही किया।[3]

३—दोहा-चौपाई बन्ध—अपभ्रंश की रचनाएँ कडवक बद्ध है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्रत्येक कडवक मे कई अरिल्ल या पज्झटिका जैसे छोटे छन्दो के बाद घत्ता[4] का ध्रुव कर दिया जाता था। घत्ते के लिए घत्ता छन्द का प्रयोग ही आवश्यक नहीं था। अनेक स्थानो पर घत्ते के लिए उल्लाला या अन्य किसी दो पक्तियों वाले छन्द का प्रयोग हुआ। थूलिभद्द फागु नामक जैन कवि की रचना मे घत्ता के लिए दोहे का प्रयोग भी किया गया है। फिर भी यह प्रयोग उस काल मे अधिक लोकप्रिय नही हुआ।

---

[1] देवेन्द्र कुमार जैन—अपभ्रंश साहित्य (थीसिस), पृष्ठ १३६।

[2] नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३७१-७२।

[3] डा० मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ५१।

[4] घत्ता छन्द ६२ मात्राओ का होता था जिसके प्रथम तथा द्वितीय चरण मे १०, ८ और १३ पर यति होती थी।

दोहा-चौपाई बन्ध का सबसे प्राचीन प्रयोग सरहपा सिद्ध की रचना में प्राप्त होता है। आलोच्य काल में सर्वप्रथम सन्त कवि कबीर ने सिद्धों में प्रचलित इस बन्ध को अपनाया। बीजक में इसे रमैनी कहा गया है। डा० द्विवेदी जी का अनुमान है कि रमैनी शब्द बहुत बाद में कबीर सम्प्रदाय में प्रचलित हुआ।[1] फिर भी यह तो निश्चित ही है कि यह रूप कबीर को ज्ञात था और उन्होंने इसका प्रयोग भी किया था, चाहे उस काल में इस रूप का नाम कुछ भी प्रचलित रहा हो। चन्द कवि कृत हितोपदेश इस बन्ध में लिखी गई सूफी कवियों से पूर्व की एक महत्त्वपूर्ण रचना है जिससे इस बन्ध के उस काल में हुए प्रचार का कुछ आभास मिलता है।

प्रथम काव्यों में इस बन्ध का सर्वप्रथम प्रयोग सूफी कवियों की प्रेम-कहानियों में प्राप्त होता है। कुतुबन कृत मृगावती, जायसी कृत पद्मावत, उसमान कृत चित्रावली, शेखनबी कृत ज्ञानदीप इसी बन्ध में रची गई। तुलसीदास का प्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरितमानस भी इसी बन्ध में रचा गया और तब यह बन्ध चरित-काव्य एवं कथा-काव्यों के लिए इतना सफल सिद्ध हुआ कि अनेक जैन कवियों ने अपनी रास, चरित एवं चौपाई संज्ञक रचनाएँ एवं ब्रजभाषा के कवियों द्वारा किए गए भागवत के अनुवाद एवं परिचइयाँ आदि काव्य-ग्रन्थ इसी बन्ध में रचे गये। भारतीय प्रेमाख्यानों में भी इसी पद्धति का निर्वाह हुआ। साधन कृत मैनासत, हेमरतन कृत गोरा बादल पद्मिनी चौपाई, कुसललाभ कृत माधवानल कामकंदला, ढोला मारू रा चौपाई, आलम कृत माधवानल भाषा बन्ध, गणपति कृत माधवानल प्रबन्ध आदि इसी पद्धति पर रचित कृतियाँ हैं। इस बन्ध में रचित अधिकांश कृतियाँ चरित-काव्य अथवा कथा-काव्य हैं जिनका वर्णन उन रूपों के अन्तर्गत हुआ है। शेष में से कुछ का राम एवं पुराण काव्य के अन्तर्गत उल्लेख हुआ है। सन्त कवियों की रमैनी संज्ञक रचनाएँ यहाँ विवेच्य हैं।

४—**छप्पय बन्ध**—छप्पय दोहे-चौपाई की अपेक्षा बड़ा छन्द है। डा० द्विवेदी इसे अपभ्रंश का छन्द मानते हैं।[2] अपभ्रंश साहित्य की प्रारम्भिक रचनाएँ कडवक बद्ध होने के कारण उनमें छोटे छन्दों का ही समावेश होता था, तथापि वीर रस

---

[1] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ १०५।

[2] स्वयभू (छन्द) में (प्राकृत) छप्पय छन्द का लक्षण यह है—

पढम चउत्थे तिण्णि छ आरआ
दोछा पंचम बीए होन्ति दोण्णि छ आरआ तस्सि।
अवरे चे पे पवरे त सुइ सुह जण अ
तं छप्प अस्स लक्खणम्।३८।

(विशाल भारत, अक्टूबर, १९५० ई०)

पूर्ण वर्णनों के लिए छप्पय भी लिखे जाते थे। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में चन्द के नाम से प्राप्त होने वाले चार छप्पयों की भाषा में उक्त कथन की पुष्टि हो जाती है। पृथ्वीराज रासो के वर्त्तमान रूप में भी छप्पय छन्द पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं लेकिन रासो का छप्पय हिन्दी का कवित्त अथवा घनाक्षरी छन्द है। इस छन्द को बन्दीजन का छन्द बताकर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी उन्हीं की परम्परा में इसके मूल को खोजने की बात की ओर संकेत करते हैं।[1] फिर भी यह कहा जा सकता है कि १४वीं शताब्दी से पर्याप्त समय पूर्व कवित्त एवं सवैया साहित्य में बड़े प्रचलित छन्द थे। सवैया का प्रयोग तो कुछ बदले हुए रूप में संस्कृत साहित्य में भी प्राप्त हो जाता है। आलोच्य-काल में प्राप्त छप्पय छन्द के रासो में प्रयुक्त छप्पय छन्द से बिल्कुल भिन्न है। चन्द का छप्पय हिन्दी का कवित्त अथवा घनाक्षरी है जबकि हिन्दी का छप्पय मिश्रित छन्द है। अतः अपभ्रंश साहित्य की छप्पय बन्ध परम्परा में हिन्दी के कवित्त-सवैया छन्द आते हैं और हिन्दी में छप्पय छन्द की एक अन्य परम्परा प्राप्त होती है जिसका सम्बन्ध 'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह' में प्राप्त छन्द के छप्पयों से जोड़ा जा सकता है। नीचे दोनों परम्पराओं १. छप्पय, २. कवित्त-सवैया का अलग-अलग विवेचन होगा।

१—**छप्पय**—आलोच्यकाल में सर्वप्रथम तुलसीदास जी ने वीरदर्पपूर्ण उक्तियों के लिए छप्पय छन्द का प्रयोग किया है। तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त होने से इस छन्द के उस काल में व्यापक प्रसार का आभास होता है। उनके पश्चात् अग्रदास कृत छप्पय, नरहरि कृत छप्पय एवं तत्त्ववेत्ता कृत छप्पय आदि इस छन्द में हुई रचनाएँ हैं। राजस्थान में चारणों द्वारा इस छन्द का वीररस की उक्तियों के लिए बड़ा प्रयोग हुआ। वहाँ इस छन्द में लिखी फुटकर कविता को 'साखरी कविता' कहा जाता है, क्योंकि यह किसी प्राचीन घटना की सत्यता की साक्षी होती है। आशानन्द कृत 'उमादे भटियारी रा कवित्त' डिंगल की एक अन्य छप्पय बद्ध रचना है।

२—**कवित्त-सवैया**—छप्पय के समान कवित्त-सवैया छन्द का सर्वप्रथम प्रयोग भी तुलसीदास में ही प्राप्त होता है। इससे इस छन्द की लोकप्रियता एवं प्रचार का अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होंने अन्य बन्धों के समान इस बन्ध में भी राम की कथा का वर्णन किया। तुलसी कृत कवितावली के पश्चात् नरहरि कृत कवित्त, गंग कृत कवित्त, जिनदास पाण्डे कृत स्फुट कवित्त, आलम कृत कवित्त, रसखान कृत सुजान रसखान, परशुराम कृत सवैया, (सवैया दशावतार, सवैया

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ १०२।

रघुनाथ चरित, गजग्राह एवं सुदामा चरित के सवैया) एवं सुन्दरदास दादू पन्थी कृत सवैया इस छन्द मे लिखे हुए ग्रन्थ है। स्फुट रूप से इस छन्द का बड़ा प्रचार हुआ। विट्ठलविपुल, विहारिनदास एव नागरीदास आदि भक्त कवियों ने अपनी वाणियो मे उपदेशों के लिए इस छन्द का प्रयोग किया। अकबर के दरबारी बीरबल, टोडरमल आदि ने नीति एव शृङ्गार के वर्णनो मे इसी छन्द को अपनाया।

५—**कुण्डलिया**—कुण्डलिया अपभ्रंश का छन्द है। सम्भव है वहाँ वीररस-पूर्ण स्फुट रचनाओ मे इसका प्रयोग किया जाता रहा हो। हिन्दी मे यह छन्द बहुत बाद मे प्रचलित हुआ। इस छन्द का प्रयोग तुलसी के बाद से ही मिलने लगता है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज मे तुलसी के नाम से एक कुण्डलिया रामायण की प्रति भी प्राप्त हुई है यद्यपि उसकी प्रामाणिकता मे विद्वानो को सन्देह है। कुण्डलिया नाम से सर्वप्रथम रचना अग्रदास कृत कुण्डलियाँ प्राप्त होती है अन्य रचनाएँ ईसरदास बारहट कृत हाला झाला रा कुण्डलियां एव ध्रुवदास कृत भजन-कुण्डलियां है। स्फुट रूप से नरहरि, गग, अहमद, हीरामनि आदि अनेक कवियों ने इस छन्द को अपनाया। आलोच्यकाल मे यह रूप अधिक प्रचलित नही हो सका। आगे चलकर इस छन्द मे नीति एव उपदेशपूर्ण अनेक उच्चकोटि की रचनाएँ लिखी गई, जिनमे से कुछ तो बड़ी ही लोकप्रिय हुई।

६—**चर्चरी या चांचर**—चर्चरी विभिन्न रागो मे निबद्ध गेय काव्य है। यह उत्सव आदि के अवसर पर गाई जाने वाली रचना है। इसका सबसे प्राचीन रूप कालिदास के 'विक्रमोर्वशी' मे प्राप्त होता है। जहाँ कवि ने उक्त नाटक के चौथे अक मे चर्चरी पदो की रचना की है।[१] हर्ष कृत 'रत्नावली' एव बाणभट्ट के ग्रन्थो से भी चर्चरी गान की सूचना प्राप्त होती है। बारहवी और तेरहवी शताब्दी के क्रमश सोमप्रभ एव लक्खण नामक कवियो ने चर्चरी गान सुना था।[२] तेरहवी शताब्दी के जैन कवि जिनदत्त सूरि की चर्चरी प्रसिद्ध है जो रासक जैसे गेय छन्द मे लिखी गई है। 'प्राचीन गुर्जर-काव्य-सग्रह' मे कवि सोलण की चर्चरी छप चुकी है। नाहटा जी ने विक्रम की १४वी शताब्दी की लिखी हुई चार चर्चरियो का उल्लेख किया है।[३] ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि अपभ्रंश काल मे चर्चरी एक लोकप्रिय गान था जो नाच-नाच कर गाया जाता था।

---

[१] देवेन्द्रकुमार जैन—अपभ्रंश साहित्य (थीसिस), पृष्ठ ११९।

[२] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ १०६।

[३] नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५८, अक ४, स० २०१० प्राचीन भाषा काव्यो की विविध सज्ञाएँ'।

कबीर से पूर्व सिद्धो के पदो मे भी यह राग मिल जाता है।[१] कबीर के बीजक मे तो चाँचर नामक एक अध्याय ही है। कबीर द्वारा इसे अपनाये जाने से यह अनुमान किया जा सकता है कि उनके द्वारा प्रयुक्त अन्य काव्य-रूपो के समान यह रूप भी उस काल मे लोकप्रिय रहा होगा। कबीर का चाँचर चर्चरी ही है। ऊपर देखा जा चुका है कि अपभ्रंश साहित्य मे चर्चरी गान विभिन्न छन्दो मे लिखा जाता था। कबीर ने हरिपद तथा दोहा मे यह गान लिखा है। कबीर के पश्चात् निम्बार्क सम्प्रदाय के अनेक भक्त कवियो ने राधा कृष्ण की केलि वर्णन के अन्तर्गत होली के प्रसग मे चर्चरी गान का प्रयोग किया है। साधन कृत मैनासत एवं हरि-वासुदेव की महावाणी में भी चर्चरी गान का प्रयोग है। अपभ्रंश साहित्य के समान हिन्दी मे चर्चरी सज्ञक काव्यो की कोई स्वतन्त्र परम्परा नही मिलती। कुछ कवियो ने प्रसंगवश इस लोकप्रचलित रूप को अपने ग्रन्थो मे स्थान अवश्य दिया।

७—**फागु**—सस्कृत साहित्य मे फागु काव्यो की परम्परा प्राप्त नही होती। फागु की स्पष्ट झलक हर्ष की रत्नावली के प्रथम अंक में प्राप्त होती है। मदनोद्यान मे अनग पूजा के अवसर पर दासियाँ समवेतस्वर से द्विपदी खण्ड का गान करती हुई दिखाई देती है —

कुसुमाउह पिअदूअओ मउली किद बहु चूअओ।
सिडिलय माग गाहणओ वाअदि दाहिण पवणओ।
विअसिअ वउलासो अओ कसिअ पिअजण मेलओ।
पडिवालण समत्थओ तम्मइ जुवई सत्थओ।
इहि पढयं मधुमासो जणस्स हिअआइ कुणइ मिउलाइ।
पच्छा विद्धह कामोलद्ध पस्सरेहिं कुसुमवाणेहि।
(रत्नावली १।१३–१५)

फागु और धमाल एक ही विषय से सम्बन्धित होने के कारण इस प्रकार की प्राचीन रचनाओ के दोनो नाम प्राप्त होते है। वास्तव मे धमाल शास्त्रीय रूप है और फागु लौकिक। लेकिन कालान्तर मे होली के आस-पास गाई जाने वाली रचनाओ के लिए दोनो ही शब्द प्रयुक्त होने लगे। डप पर अनेक व्यक्तियो द्वारा गाई जाने के कारण एक कोलाहल-सा उत्पन्न हो जाता है इसीलिए आज भी

समोमूर्ति कृत जिनप्रबोध सूरि चर्चरी, हेमभूषण कृत जिनपद सूरि चच्चरी एव अज्ञात कृत धर्म चच्चरी तीन रचनाओं का वर्णन नाहटा जी ने ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५०, अक १-२ मे किया है।

[१] देवेन्द्रकुमार जैन अपभ्रंश साहित्य (थीसिस) पृष्ठ १३९।

'धमार' शब्द कोलाहल के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। मध्यकाल मे तो 'फागु बन्धी' एक शैली ही प्रचलित हो गई थी जिसका अधिकाश रचनाओ मे प्रयोग होता था।

फागु सम्बन्धी सबसे प्राचीन रचना 'जिन प्रबोध सूरि' कृत 'जिनचन्द सूरि फागु' है। दूसरी प्रसिद्ध रचना जिनपद्मसूरि कृत 'थूलभद्र फागु' है। जिस का रचना-काल विक्रम की १४वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। अन्य रचनाएँ—समधर कृत नमिनाथ फागु, राजशेखर सूरि कृत नेमिनाथ फागु, राजवल्लभ कृत थूलभद्र फागु, अज्ञात कृत पाँच पाण्डव फाग है।[1] राजस्थानी एव गुजराती मे फागु एव धमाल सज्ञक रचनाओं की 'लम्बी परम्परा' है। लगभग ५० ग्रन्थ इस परम्परा मे प्राप्त होते है जिनका विवरण 'जैन सत्यप्रकाश' मे प्रकाशित हो चुका है।[2]

हिन्दी साहित्य मे इस लोक प्रचलित काव्यरूप का सर्वप्रथम प्रयोग कबीर के फगुआ और बसन्त मे प्राप्त होता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है फागु काव्यो का सम्बन्ध मधुऋतु एव इसके उल्लास से है वही बात एक भिन्न दृष्टिकोण के साथ हमे कबीर के बसन्त मे प्राप्त होती है। दादू पन्थी सुन्दरदास ने भी अपने ग्रन्थ 'पूर्वी भाषा बरवै' मे दादू तथा कबीर के समान ही सरस बसन्त का वर्णन किया है। भक्त कवियों ने इस रूप को कृष्ण-लीला-वर्णन के लिये उपयोगी मानकर अपनाया। सूर आदि अष्टछाप के कवियो की रचनाओ मे बसन्त एव होली वर्णन के अनेक पद मिलते है। श्री भट्टदेव, हरिव्यासदेव, विहारीवल्लभ, विहारिनदास, विट्ठलविपुल, दामोदर स्वामी तथा नागरीदास आदि की वाणियों मे बसन्त तथा होली का वर्णन हुआ है। स्वतन्त्र रूप मे फागु काव्य लिखने की परम्परा जैन कवियो मे अठारहवी शताब्दी तक चलती रही।

८—**सोहर**—सोहर एक लोक प्रचलित छन्द है। पुत्रजन्म, विवाह आदि शुभ अवसरों पर सोहर गाने की प्रथा प्राचीन काल से आज तक चली आ रही है। इसे 'सोहला' या 'सोहलो' भी कहते है। यह मगल-सूचक छन्द है। 'जानकी मगल' मे इसी से मिलता हुआ अरुण छन्द है, जिसे मगल छन्द भी कहा गया है।[3] इस छन्द का काव्य मे सबसे प्राचीन प्रयोग तुलसीदास जी के ग्रन्थ 'रामललानहछू' मे प्राप्त होता है। तत्कालीन अन्य प्रचलित रूपों के समान इसे भी लोकप्रिय समझ

---

[1] ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५० अक १-२ स० २००२, वीरगाथा काल का जैन साहित्य—श्री अगरचन्द नाहटा का निबन्ध।

[2] श्री अगरचन्द नाहटा प्राचीन भाषा-काव्यो की विविध सज्ञाएँ—निबन्ध नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५८, अक ४।

[3] तुलसी ग्रथावली भाग २ पृष्ठ ४७

कर तुलसी ने अपनाया। इसके काव्य मे प्रयोग की परम्परा तो नही प्राप्त होती, लेकिन लोक मे आज भी यह व्याप्त है। लोक मे इस रूप का सम्बन्ध छन्द से न होकर विषय से जुड गया है। अत वर्त्तमान रूप मे यह प्रधानत गीत है जो पुत्र-जन्म के अवसर पर गाया जाता है।

९—**कहरा**—कहरा एक प्रकार का गीत है। कहार लोग नाचने के साथ-साथ यह गीत गाते है। कहारो से सम्बन्धित होने के कारण इसका नाम कहरा पडा होगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।[1] अन्य प्रचलित काव्यरूपो के समान कबीर ने इसे भी उपदेशो का माध्यम बनाया। कबीर के पश्चात् सूफी कवि जायसी का कहरानामा ग्रन्थ भी इसी काव्यरूप के अन्तर्गत आता है। डा० द्विवेदीजी के अनुसार इस ग्रन्थ का रूप वही है जो कबीर के कहरा मे है।[2] उन्होने यह भी विश्वास प्रकट किया है कि अन्य सन्त कवियो मे भी यह मिलना चाहिए। यदि यह सम्भव हुआ तो इस काव्यरूप की एक पुष्ट परम्परा प्राप्त होने पर इसके स्वरूप के विषय मे विस्तार से विचार करने का अवसर विद्वानो को प्राप्त होगा।

१०—**बरवै**—बरवै अवधी भाषा का अपना छन्द है। इस छन्द का काव्य मे सबसे प्रथम प्रयोग रहीम ने अपने ग्रन्थ 'बरवै' में किया। रहीम को यह छन्द विशेष प्रिय था। कहा जाता है, उन्हे इस छन्द में काव्य रचना की प्रेरणा अपने एक सिपाही की पत्नी द्वारा लिखे गये एक बरवै को देखकर हुई थी। रहीम की बरवै की रचना मे प्रभावित होकर ही तुलसी ने बरवै छन्द मे 'बरवै रामायण' की रचना की थी। बाबा बेनीमाधव ने अपने गुसाईं चरित मे इसकी ओर सकेत किया है—

कवि रहीम बरवा रचै पठये मुनिवर पास।
लखि तेहि सुन्दर छन्द मे रचना कियो बखान ॥६३॥

जो हो, तुलसी को इस छन्द के प्रयोग में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। तुलसी के समान ही सन्त सुन्दरदास को भी विविध छन्दों मे रचना करना प्रिय था। अत उन्होने भी अपने ग्रन्थ 'पूरबी भाषा बरवै' मे इसी छन्द का व्यवहार किया। एक भाषा विशेष का छन्द होने के कारण यह अधिक लोकप्रिय न हो सका, फिर

---

[1] सम्भव है 'कहरा' का सम्बन्ध 'कहरवा' से हो जो एक अवधी गीत है। बीजक के टीकाकार ने कहरा शब्द को 'कहारों का गीत' एवं जन्म-मरण 'कहर' दोनो अर्थों मे लिया है। कहरा का सम्बन्ध कहारो से है या कहरवा से या कहर से इस सम्बन्ध मे अधिक खोज की अपेक्षा है।

[2] ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८, अक ४, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का 'महरी-बाईसी' शीर्षक निबन्ध

भी बरव का यदाकदा प्रयोग जायसी परवर्त्ती सूफी कवियो के प्रेम कथानकों मे देखने को मिल जाता है।

११—वेलि—प्राचीन राजस्थानी एवं गुजराती मिश्रित राजस्थानी भाषा का यह एक मुख्य काव्यरूप था। सबसे प्राचीन वेलि सज्ञक ग्रन्थ 'वाच्छा श्रावक' कृत 'चहुँगति वेलि' है।[1] राजस्थानी गुजराती मे लिखी हुई कुछ अन्य रचनाएँ भी प्राप्त है जिनमे से—सिहा कवि कृत 'जम्बू स्वामी वेलि', 'नेमि वेलि', जयवन्त सूरि कृत 'नेमि राजुल बारह मास वेलि', केशवदास वैष्णव कृत 'वल्लभ वेलि', कवि गजिया कृत 'सीता वेलि' तथा केशवकिसोर की कीरत लीला में सग्रहीत 'वल्लभ कुल वेलि' प्रसिद्ध है। नाहटाजी ने इस प्रकार की २१ रचनाओ का उल्लेख किया है।[2] डिंगल भाषा में लिखी हुई पृथ्वीराज राठौड की 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' इस कोटि की सर्वश्रेष्ठ रचना है जो वास्तव में मगल-काव्य है और जिसका उल्लेख मगल-काव्य के अन्तर्गत किया गया है।

कबीर के बीजक मे उनकी वेलि सज्ञक रचना सग्रहीत है जिसमे माया रूपी वेल का संसार रूपी वृक्ष पर छा जाने का रूपक बाँधा गया है। कबीर के बाद इस प्रकार की ब्रजभाषा की अन्य रचनाएं ठक्कुरसी कृत 'पचेन्द्रिय वेलि' एवं 'नेमिराज-मती वेलि' है। कबीर के अनुकरण पर अन्य सन्तों ने भी इस प्रकार की रचनाएँ की। दादू ग्रन्थावली मे सग्रहीत 'काया वेलि' ऐसी ही रचना है।

१२—विरहुली—'विरहुली' साँप के विष उतारने का एक गीत है। यह 'गरुड मत्र' का प्राकृत नाम है। साँप का विष उतारने को झाड-फूँक करने वाले आज भी इस गीत को गाते देखे जाते है। इस लोक-प्रचलित गीत के प्रचार के कारण ही कबीर ने इसे अपने उपदेशों के प्रचार के लिए अपनाया। कबीर के पश्चात् इसका काव्य मे प्रयोग नही मिलता। अत. कबीर द्वारा इसका प्रयोग स्फुट प्रयोग मात्र ही कहा जायेगा। लोक मे तो यह आज भी उसी रूप मे प्रचलित है।

१३—गजल—गजल फारसी का एक प्रसिद्ध काव्य प्रकार है। मुसलमानो के आगमन के कारण उनके साहित्य का यह प्रमुख रूप हिन्दी मे भी चल पडा। हिन्दी मे गजल का सर्वप्रथम प्रयोग खुशरो मे प्राप्त होता है। आलोच्यकाल मे जटमल कृत दो गजल ग्रन्थ प्राप्त होते है जो नगर वर्णन के रूप मे हैं। राजस्थान

---

[1] 'जैन गुर्जर कवियो के अनुसार इसका रचनाकाल १४६२ तथा नाहटा जी के निबन्ध, 'प्राचीन भाषा काव्यो की विविध मंज्ञाएँ' ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ४, के अनुसार १५६८ के लगभग है।

[2] नाहटा जी का उपरोक्त निबन्ध।

के परवर्ती-साहित्य में इस प्रकार के ग्रन्थों की एक बहुत बड़ी परम्परा प्राप्त होती है।

१४—**रेखता**—यह भी फारसी से प्रभावित एक नवीन काव्यरूप है जो हिन्दी मे प्रचलित हुआ। सर्वप्रथम रचना कबीर कृत 'रेखता' नामक ग्रन्थ है। अन्य ग्रन्थ अज्ञात कवि कृत 'नेमिनाथ के रेखते' तथा दामोदर स्वामी राधावल्लभी कृत 'रेखता' है। समाज मे इसके गाने का बड़ा प्रचलन था। सन्त कवियो के काव्य मे इसकी परम्परा कुछ विरल रूप से निरन्तर प्राप्त होती है।

१५—**नीसाणी**—राजस्थानी साहित्य मे प्रयुक्त यह प्रसिद्ध छन्द है। आलोच्य-काल मे कुल दो ग्रन्थ इस छन्द मे लिखे हुए प्राप्त होते है—सुन्दरदास दादू पन्थी कृत 'गुनउत्पत्ति नीसानी' एव 'सदगुरु महिमा नीसानी।' नीसानी सज्ञक काव्य १८वी एव १९वी शताब्दी मे बहुत लिखे गए।

गीत—(१) **लौकिक गीत**—इस प्रकार के गीतो मे लोक-प्रचलित गीत आते है। यह गीत अत्यन्त प्राचीन काल मे प्रचलित है। कबीर के नाम से प्राप्त होने वाले अनेक ग्रन्थ इसी प्रकार के है। होरी, झूलना, खसरा तथा हिंडोरा उनके प्रसिद्ध गीत लौकिक गीतो से सम्बन्धित है। अन्य सन्त कवियो मे भी ये गीत मिल जाते है। भक्त कवियो ने भी अपने पदो एव वाणियो मे राधा-कृष्ण की लीला के प्रसग मे होली, झूलना एव हिंडोला आदि गीतो का पर्याप्त प्रयोग किया है। 'धवल' एक अन्य प्रसिद्ध लौकिक गीत है जो विवाह के अवसर पर राजस्थान एव गुजरात मे गाया जाता है। 'आर्द्रकुमार धवल' ऐसी ही रचना है जिसका उल्लेख मगल-काव्य के अन्तर्गत किया गया है।

(२) **शास्त्रीय राग**—रागो का प्रचलन कब से हुआ इस विषय में कुछ कह सकना सम्भव नही है फिर भी यह अत्यन्त प्राचीन है। सिद्धो के पदों मे रागो का प्रयोग मिल जाता है। सस्कृत मे जयदेव ने सर्वप्रथम राग-रागिनियो के आधार पर रचना की। अपने सिद्धान्तो के प्रचार के लिए ही सिद्धो ने अपने पदो को सगीत का आधार दिया। खुसरो के पद रागो मे निबद्ध प्राप्त होते है। लेकिन कबीर से पूर्व तक रागो के आधार पर ग्रन्थो का नामकरण करने की परिपाटी का प्रचलन नही मिलता उनके 'बसन्त', 'राग गौरी', राग भैरव', 'राग काफी' आदि ग्रन्थ इसी प्रकार के छन्दो को आधार मानकर ही रचे गये है। कबीर के पश्चात् इस प्रकार ग्रन्थो की सज्ञा राग के आधार पर देने की परिपाटी दृष्टिगोचर नही होती है। अनेक भक्त कवियो आदि के पदो एवं वाणियो मे अनेक रागों का समावेश अवश्य मिल जाता है। आगे के काल मे तो यह परम्परा सगीतज्ञो तक ही सीमित रही, कवियों ने रागो की ओर विशेष ध्यान नही दिया

कुछ अन्य छन्द एव गीत परक ग्रन्थ ऊपर जिन बन्धो, छदो एव गीतो का वर्णन हुआ है उनका आलोच्य काल मे न्यूनाधिक प्रचलन रहा। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कवियो ने कुछ अन्य गीतो एव छन्दो के आधार पर काव्य रचना की। कुछ कवियों ने स्फुट छन्द भी रचे। कबीर कृत झूलना भानुदास कृत 'स्फुट छन्द', सैन कृत 'छन्द', हितकृष्णाचन्द गोस्वामी कृत 'काव्य अष्टपदी', चतुरमल कृत 'नेमिश्वर गीत', छीहल कृत 'पथीगीत', कुशललाभ कृत 'गौडी छन्द', 'नवकार छन्द', 'भवानी छन्द', 'पूज्यवाहण गीत', आशानद कृत 'फुटकर गीत', रूपचन्द कृत 'गीत परमार्थी', विद्याकमल कृत 'भगवती गीत', सुन्दरदास कृत 'पवंगम छन्द ग्रन्थ', 'अडिला छन्द ग्रन्थ' एव 'गुरुदयाषटपदी तथा बलराम कृत 'झूलने' उक्त ग्रन्थ आलोच्यकाल के छन्द एव गीतों के स्फुट प्रयोग मात्र है। इनकी कोई परम्परा इस काल मे दृष्टिगोचर नहीं होती।

१५—मालाया माल काव्य

संस्कृत साहित्य में—संस्कृत साहित्य मे अनेक कोश ग्रन्थ मिलते है। उनमे दो प्रकार के शब्दो को स्थान मिलता था—समानार्थक एव नानार्थक। सस्कृत के कुछ कोश ग्रन्थ कात्यायन कृत 'नाममाला', वाचस्पति कृत 'शब्दकोश', विक्रमादित्य कृत 'शब्दकोष' तथा 'शब्दार्णव' बताये जाते है जो अब अप्राप्य है। प्राप्य ग्रन्थो मे सबसे प्राचीन ग्रन्थ अमरसिंह कृत 'अमरकोश' है। शाश्वत कृत 'अनेकार्थ समुच्चय', हलायुध कृत 'अभिधान रत्नमाला', यादव प्रकाश कृत 'वैजयन्ती', अजयपाल कृत नानार्थ रत्न माला', हेमचन्द्र कृत 'अभिधान चिन्तामणि', मंख कृत 'अनेकार्थ कोश' तथा धनजय कृत 'नाम माला' आदि अन्य प्रसिद्ध कोश ग्रन्थ है।

प्राकृत साहित्य में—धनपाल कृत 'पैयालच्छि ग्रन्थ' एव हेमचन्द्र कृत 'देशी नाम माला' आदि प्राकृत शब्दों के कोश है।

आलोच्य-काल में—हिन्दी-साहित्य मे भी माल या माला संज्ञक अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते है। इस सज्ञा वाले ग्रन्थो को तीन कोटियो मे विभाजित किया जा सकता है—१. कोशग्रन्थ, २. संग्रह ग्रन्थ, ३ नामस्मरण ग्रन्थ।

१—**कोशग्रन्थ**—इस प्रकार के ग्रन्थ संस्कृत के कोश ग्रन्थों को ध्यान मे रखकर ही रचे गए है। इसीलिए इनमें समानार्थक, नानार्थक और अनेक शब्दो के लिए एक ही शब्द का विधान किया गया है। इस प्रकार के ग्रन्थ—नन्ददास कृत 'नाम माला' 'अनेकार्थ नाम माला', बनारसीदास कृत 'नाम माला', सिरोमणि मित्र कृत 'नाम माला', भीषजन कृत 'भारती नाम माला' तथा जन कवि कृत 'नाम माला' हैं। इस प्रकार का एक अन्य प्रयोग दामोदर स्वामी कृत 'मध्याक्षरी' है।

२—**संग्रह ग्रन्थ**—इस प्रकार के ग्रन्थो मे ऐसे ग्रन्थ आते है जिसमे एक ही प्रकार की अनेक वस्तुओ रूपी फूलो को व्यवस्थित रूप मे सग्रह करके माला के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है और उनका नाम उनमे अपनाई गई शैली के आधार पर ही माल या माला रख दिया जाता है। कबीर कृत 'विचारमाल', नरोत्तमदास कृत 'विचारमाल', हरिदास जी कृत 'केलिमाल', भगवत रसिक कृत 'भक्त नामावली' बोधा कृत 'फूलमाला', नाभादास कृत 'भक्तमाल', ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली' ऐसे ही ग्रन्थ है।

३—**नाम स्मरण काव्य**—इस प्रकार के ग्रन्थो मे ईश्वर के विविध नामो को स्मरण करने हेतु सग्रहीत किया गया है। यह 'विष्णु सहस्र नाम' के प्रकार के ग्रन्थ है, जिनका उपयोग नाम स्मरण के लिए ही है। इस प्रकार के ग्रन्थ भक्त कवियो द्वारा ही लिखे गए। ग्रन्थ ये है—परशराम कृत 'नामनिधि लीला', 'नाथ लीला', एव ध्रुवदास कृत 'प्रिया जू की नामावली' तथा लालजी की 'नामावली'।

उक्त तीनो कोटियो के अन्तर्गत आने वाली अनेको रचनाएँ परवर्त्ती साहित्य मे भी दृष्टिगोचर होती हैं, जो इस काव्य-रूप के व्यापक प्रचार की द्योतक है।

१६—सम्वाद, वादु, गोष्ठी, बोध सज्ञक काव्य

संस्कृत साहित्य में—काव्य मे सम्वादो का प्रयोग सस्कृत साहित्य के प्रारम्भ से मिलता है। ऋग्वेद के 'आख्यान सूक्त' सज्ञक मत्र 'सम्वाद' रूप मे ही है। परवर्ती काल मे सम्वादो की प्रेरणा यही से मिली होगी क्योकि इन सूक्तों का प्रभाव बड़ा ही नाटकीय होता है। महाभारत का तो अधिकाश भाग सम्वादो द्वारा ही वर्णित है। पुराण तो दो या अधिक व्यक्तियो के बीच सम्वादो के रूप मे ही लिखे गए है। कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवश मे 'दिलीप सिह सम्वाद', 'इन्द्र-रघु सम्वाद आदि सम्वादों की योजना की है। विषय प्रतिपादन एव शैली के एक विशिष्ट प्रकार के रूप मे तो यह वहाँ प्रयुक्त हुआ ही, विभिन्न वस्तुओ के गुण एव दोषो का दिग्दर्शन कराने के लिए भी इस शैली का आश्रय लिया गया। 'सम्वाद सुन्दर' नामक ग्रथ इसी शैली पर लिखा गया, जिसमे नौ सम्वाद है।

हिन्दी साहित्य मे—हिन्दी के आदिकाल के सिद्ध तथा नाथ योगियो ने महाभारत काल से चली आती हुई सम्वाद की शैली को अपने सिद्धान्तो के प्रचार एव उपदेशो के लिए अपनाया। गोरखनाथ के नाम से प्राप्त होने वाले 'गोष्ठी' तथा 'सम्वाद' सज्ञक ग्रन्थ इसी शैली मे लिखे गए। आलोच्यकाल के प्रारम्भ मे ही कबीर ने नाथ सन्तो की परम्परा मे इसी शैली के माध्यम से अपने उपदेश का प्रचार करने का प्रयत्न किया। उनकी 'कबीर धर्मदास गोष्ठी', 'कबीर रामानन्द गोष्ठी' तथा 'सुरति सम्वाद' ऐसी ही रचनाएँ है। कबीर के शिष्य धरमदास ने

अपने ग्रन्थ 'शब्द रदासु को बाद' मे कबीर और रैदास के बीच सम्वाद की व्यवस्था कराके कबीर द्वारा रैदास को उपदेश देने की बात कही गई है। इस शैली के अन्य ग्रन्थ—मनोहर कवि कृत 'शत प्रश्नोत्तरी', नरहरि कृत 'बादु', समय सुन्दर कृत 'दानशील तप भावना सम्वाद', कृष्णदास कृत 'दानशील तप भाव रासा', जनगोपाल कृत 'मोह विवेक सम्वाद' एवं सुन्दरदास दादू पंथी कृत 'गृह वैराग्य बोध है।

इस शैली की कुछ अन्य रचनाएँ भी आलोच्य काल मे प्राप्त होती है—लावण्य समय कृत 'रावण सम्वाद', लूण सागर जैन कृत 'अञ्जना सुरी सम्वाद', एवं जिन राज सूरि कृत 'रावण मन्दोदरी सम्बाद' ऐसी ही रचनाएँ है। सम्वाद शैली मे लिखे होने पर भी ये 'रास ग्रन्थ' हैं। इन मे शैली प्रधान न होकर वस्तु वर्णन ही प्रधान है। अत इनका विवेचन भी रास काव्य रूप के अन्तर्गत हुआ है। भ्रमर गीत के प्रसग मे सूर एव नन्ददास ने तथा रामचरित मानस एवं रामचन्द्रिका मे क्रमशः तुलसीदास एव केशवदास ने अनेक प्रसंगों मे इस शैली का मार्मिक प्रयोग किया।

आलोच्य काल मे प्राप्त इस काव्यरूप की रचनाओ का विभाजन शैलीगत भेद के आधार पर निम्न प्रकार किया जा सकता है--
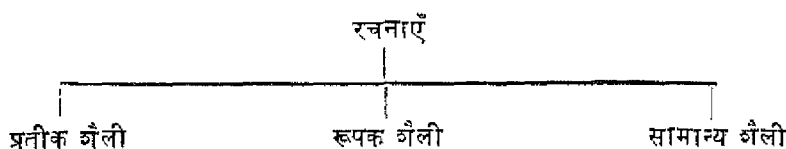
१—प्रतीक शैली के अन्तर्गत वे रचनाएँ आती है जिनमे विवाद करने वाले दोनो पक्षों को गुणो का प्रतीक मान कर उनके गुणों का प्रतीक-शैली मे वर्णन किया जाता है। नरहरि कृत 'बादु' संज्ञक रचना, जिसमें कनक, लोहु, आदि के ५ बादु है, इसी शैली की है।

२—रूपक शैली के अन्तर्गत वे रचनाएं आती है जिनमे भाव तत्त्वो को व्यक्ति के समान स्थान देकर उनमे हुए वाद-विवाद का वर्णन किया जाता है। समय सुन्दर तथा कृष्णदास की 'दान शील तप भावना सम्वाद' तथा 'दान शील तप भावरासा' संज्ञक रचनाएं इसी शैली की है।

३—तीसरी कोटि मे दो व्यक्तियो में हुए सम्वादो की योजना वाली रचनाओं को रखा जायगा। कबीर के दोनो 'गोष्ठी' संज्ञक तथा एक 'सम्वाद' संज्ञक ग्रन्थ धर्मदास कृत 'शब्द रैदासु को बादु', मनोहर कृत 'शत प्रश्नोत्तरी' तथा सुन्दर दास कृत 'गृह वैराग्य बोध' सामान्य शैली की रचनाएँ है।

१७—बारह खडी या बावनी

वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर के क्रम से लिखे गए छन्दो से युक्त ग्रन्थो की सज्ञा कवियों द्वारा बारहखडी, (बाराखडी) बावनी या ककहरा दी है। गृहीत अक्षरो की सख्या के आधार पर इसकी सज्ञा 'चौतीसा' अथवा 'छत्तीमी' भी प्राप्त होती है।[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेजी ने लिखा है कि बंगाल मे अनेक मुसलमान कवियो द्वारा इस शैली की रचनाओ की संज्ञा 'चौतीसा' है।[2] गुजराती मे लिखी गई इसी शैली की प्राचीन रचनाओ की सज्ञा 'कक्क' अथवा 'मातृका' दी गई है। श्री चीमनलाल दयाल द्वारा सम्पादित 'प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह' (गायकवाड ओरियटल सिरीज १३) मे 'सालिभद्द कक्क' एव इसी शैली की 'दूहा मातृका', 'सम्यकत्वमाई चौपई' एव 'मातृका चउपई' आदि रचिनाएँ सकलित है।

आलोच्य काल से पूर्व के काव्य—सस्कृत साहित्य मे इस शैली का कोई ग्रन्थ नही प्राप्त होता। इस प्रकार की सर्वप्रथम रचना पृथ्वीचन्द रचित 'मातृका प्रथमाक्षर दोहका' विक्रमी १३ वी शती की रचना है।[3] 'प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह' मे प्रकाशित उपर्युक्त चार रचनाएँ भी १३ वी—१४ वी शताब्दी की ही रचनाएँ है।[4]

आलोच्यकाल की रचनाएँ—आलोच्य काल मे इस रूप का सर्वप्रथम प्रयोग कबीर मे प्राप्त होता है। कबीर की तीन रचनाएँ इस शैली की प्राप्त होती है—१ ज्ञान चौतीसा, २. अलिफनामा, ३ बावनी। इनमे से 'चौतीसा' बगाल के मुसलमान कवियो के ग्रन्थो के आधार पर, 'अलिफनामा' फारसी शैली के आधार पर, एव 'बावनी' १६ वी शताब्दी मे प्रचलित हुए बारहखडी के नए नाम को आधार मानकर लिखे गए। इनका एक और ग्रन्थ 'अखरावती' भी प्राप्त हुआ है जो जायसी के ग्रन्थ 'अखरावत' के अनुकरण पर कबीर के उन परवर्त्ती शिष्यो का प्रयास प्रतीत होता है जो कबीर को सब रूपो मे कविता करते देखना चाहते थे। कबीर के बीजक मे जिसे 'ज्ञान चौतीसा' कहा है उसी की सज्ञा 'ग्रन्थसाहिब' मे

---

[1] चौतीसा, छत्तीमी एव बावनी संज्ञक ग्रन्थ रचनाओं जिसमे इस शैली का निर्वाह न होकर छन्द सख्या ही प्रधान होती है, का उल्लेख 'सख्या परक काव्य-रूप' के प्रकरण में किया गया है।

[2] हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ १०७।

[3] हिन्दी अनुशीलन वर्ष ८ अक २ जुलाई-सितम्बर १९५५, पृष्ठ ११७।

[4] अगरचन्द नाहटा – प्राचीन भाषा काव्यो की विविध सज्ञाएँ ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८ अक ४ सवत् २०१०. पृष्ठ ४२९।

बावन आखरी दी गया है। कबीर द्वारा इस रूप के प्रयोग से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस काल मे इनका लोक में प्रचार अवश्य रहा होगा। कबीर के पश्चात् जायसी का ग्रन्थ 'अखरावत' उसी शैली मे लिखा गया। विक्रम की १७ वी शताब्दी मे इस शैली मे अनेक ग्रन्थ लिखे गए। परशुराम कृत 'नामनिधि लीला', 'बावनी लीला', सन्तदास ब्रजवासी कृत 'गोपीसनेह बारहखडी', भीषजन कृ 'बाराखडी', सुन्दरदास दादू पथी कृत 'बावनी' एव जटमल कृत 'बावनी' ऐसी ही रचनाएँ है। अग्रदास कृत 'हितोपदेश उपाख्यान बावनी' नामक रचना को डा० शिव प्रसाद सिह ने इसी काव्य-रूप के अन्तर्गत स्थान दिया है।[1] वास्तव मे यह ग्रन्थ 'सख्यापरक बावनी' के अन्तर्गत आता है क्योकि इसमे अक्षरो के क्रम से कु डलियो का विधान कही भी उपलब्ध नही होता।

१८—बारहमासा

आलोच्यकाल से पूर्व बारहमासा साहित्य—सस्कृत साहित्य में बारहमासा साहित्य का सर्वथा अभाव है। हॉ, उसमे 'षट-ऋतु-वर्णन' तो प्राप्त हो जाता है। कालिदास कृत 'ऋतु सहार' मे 'षट-ऋतु-वर्णन' का सर्वप्रथम प्रयास हुआ है। प्रारम्भ मे बारहमासा लोक-प्रचलित काव्य-प्रकार रहा होगा। विरह वर्णन मे इसकी उपयोगिता लक्ष्य करके ही इसे काव्य मे स्थान मिला। कालान्तर मे षट-ऋतु-वर्णन सयोग पक्ष एव बारहमासा वियोग पक्ष मे सम्बन्धित हो गए।

इस प्रकार की उपलब्ध रचनाओ मे सबसे प्राचीन 'जिन धर्म सूरि बारह नावउ' है जो कि १३ वी शताब्दी की रचना है और पाटन की ताल पत्रीय प्रति मे सुरक्षित है।[2] विनयचन्द्र सूरि कृत 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' नामक ग्रन्थ मे राजमती का विरह-वर्णन इसी पद्धति पर हुआ है।[3] जैन कवियो के नेमिनाथ तथा थूलभद्र सम्बन्धी अनेक बारहमासे प्राप्त हुए है।[4]

आलोच्य काल का बारहमासा साहित्य—आलोच्य काल मे इस शैली पर किया गया सर्वप्रथम विरह वर्णन विद्यापति की पदावली मे प्राप्त होता है। कबीर

---

[1] सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य, पृष्ठ ३४१।

[2] अगरचन्द नाहटा—प्राचीन भाषा काव्यो की विविध संज्ञाएँ। ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८ अंक ४, पृष्ठ ४३०।

[3] प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह—गायकवाड ओरियटल सिरीज, भाग १२, बडौदा १९२० ई०।

[4] अगरचन्द नाहटा—प्राचीन भाषा काव्यों की विविध संज्ञाएँ। ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८ अक ४

ने अन्य लोक-प्रचलित काव्य-रूपों के समान इसे भी उपदेश के लिए अपनाया। उनका 'बारहमासा' खोज मे प्राप्त हुआ है। कबीर के बाद तो नायिकाओं के विरह वर्णन से ओत-प्रोत अनेक बारहमासे लिखे गए। साधन कृत 'मैनासत' एव जायसी कृत 'पद्मावत' में वियोग वर्णन के प्रसग मे बारहमासे की योजना है। 'मैनासत' मे तो सयोग एव वियोग दोनों के बारहमासे है। सूफी कवियो के प्रेम कथा-काव्यो मे सर्वत्र बिरह-वर्णन के प्रसग मे बारहमासे की पद्धति अपनाई गई है। उसमान ने 'चित्रावली' में परेवा के हाथ पाती भेजने के प्रसग मे, इसी शैली मे, चित्रावली के वियोग का वर्णन किया है। नरपति कृत 'बीसलदेव रासो' मे भी राजमती वियोग वर्णन में बारहमासा है। भक्त कवि नन्ददास ने 'विरह मंजरी' एव केशवदास ने 'कविप्रिया' के अन्तर्गत बारहमासे लिखे है। यह रूप इस काल तक प्रेम-कथा काव्यो मे अन्तर्भुक्त काव्य-रूप के रूप में ही प्रयुक्त होता रहा लेकिन इसकी लोक-प्रियता एवं सफलता से कवि प्रभावित हुए और इसको स्वतन्त्र काव्यरूप की श्रेणी मे स्थान दिया गया। बारहमासा की सज्ञा देकर स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना की गई। बोधा कवि कृत 'बारहमासी', नरहरि कवि कृत 'बारहमासा' (स्फुट छंदो मे) जनगोपाल कृत 'बारहमासिया', सुन्दरदास दादू पथी कृत 'बारहमासी', अहमद कृत 'अहमदी बारहमासी' सुन्दरदास ग्वालियर कृत 'बारहमासी', लालदास कृत 'बारहमासी', ब्रह्मानन्द कृत 'रसिक सुरतीमास' इसी कोटि की रचनाएँ है।

१६—संख्यापरक काव्य

संस्कृत साहित्य में—जैसा कि स्तुति काव्यरूप के प्रसग मे कहा जा चुका है सस्कृत साहित्य मे पचक, अष्टक, दशक, पंचासत या शतक आदि नामों वाले अनेक स्तुति-परक ग्रन्थ मिलते है। बाण का 'चंडीशतक' ६०० ई० के लगभग लिखा गया जिसमे चडी की स्तुति के १०१ श्लोक है। अमरुक कृत 'अमरुक शतक', भर्तृहरि कृत 'नीतिशतक', 'शृंगार शतक' एव 'वैराग्य शतक', बिल्हण कृत, 'चौर पचाशिका' आदि ऐसे ग्रन्थ है जिनमें छंदो की सख्या के आधार पर ही ग्रन्थो की सज्ञा दी गई है। इस साहित्य मे स्तुति के लिए अनेक 'अष्टक' एवं 'शतक' सज्ञक रचनाएँ प्राप्त है। कुछ ग्रन्थ पचशती एव सप्तशती संज्ञक (अमरुक कृत आर्या सप्तशती) भी प्राप्त होते है।

प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य में—सस्कृत की यही परम्परा परवर्त्ती काल मे भी प्रचलित रही। इस काल की इस प्रकार की उल्लेखनीय रचना हाल कृत 'गाथा सप्तशती' है।

हिन्दी साहित्य मे—हिन्दी साहित्य मे सर्वप्रथम संख्यापरक काव्य गोरखनाथ कृत 'ज्ञान चौंतीसा' कहा जा सकता है। आलोच्य काल के प्रारम्भ मे ही कबीर

कृत दो रचनाए इस काव्यरूप के अन्तगत लिखी गइ— चौतीसा,[1] एव कबीराष्टक। इन ग्रन्थो की आज प्राप्त होने वाली प्रतियो मे छन्द संख्या काफी अधिक है जो उनमे परवर्त्ती सन्तो द्वारा किए गए गड्डमड्ड का प्रमाण है। कबीर के पश्चात् के कवियो के इस कोटि के अन्य ग्रन्थ निम्न है—नरपति कृत 'नन्द बत्तीसी', डूगर कृत 'डूगर-बावनी', हितहरिवश कृत 'हित चौरासी', हितकृष्णचन्द कृत 'आशाशतक' छीहल कृत बावनी',[2] सिद्धराम कृत 'शब्दबावनी', केशवदास ब्रजवासी कृत 'भ्रमर बत्तीसी', हरिवश अलीकृत 'हिताष्टक दो भाग, कुशललाभ कृत 'स्थूल भद्र छत्तीसी', जमाल कृत 'जमाल पचीसी', अग्रदास कृत 'रामाष्टक', दुरसाचारण मारवाड कृत 'प्रताप चौहत्तरी' (विरुद्ध छिहत्तरी) एव 'किरतार बावनी', नागरीदास कृत 'अष्टक', रहीम कृत 'सतसई' एव 'मदनाष्टक', केशवदास कृत 'रतनबावनी', श्री भट्टदेव कृत 'युगल शतक', कादिर कृत 'इश्क पचीसी', रूपचन्द कृत 'परमार्थी दोहा शतक' मुबारक कृत 'तिल शतक', 'अलक शतक', बनारसीदास कृत 'वेद निर्णय पंचाशिका सवैया बावनी', सारंगधर कृत 'भाव शतक', समय सुन्दर कृत '७ छत्तीसी संज्ञक रचनाएँ,[3] सुन्दरदास दादू पथी कृत '१२ अष्टक[4]' ध्रुवदास कृत 'प्रीति चौवनी', 'आनन्दाष्टक' एव 'मगनाष्टक', 'भजन सत', 'वृन्दावन सत', एव 'भजन शृ गार सत', भीषजन कृत 'सर्वज्ञ बावनी', हेमराज कृत 'पचासिका वचनिका', बालचन्द्र कृत 'बत्तीसी', दामोदर स्वामी कृत 'नेम बत्तीसी' एव चतुरदास कृत ८ 'अष्टक' सज्ञक रचनाएँ[5]।

उक्त ग्रन्थो को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थो के नाम का पूर्वार्द्ध उसके विषय एवं उत्तरार्द्ध उस ग्रन्थ की छन्द संख्या का निर्देशन करता है। इस कोटि के सर्वाधिक ग्रन्थ 'अष्टक' सज्ञक है। संस्कृत के अष्टक 'स्तुति' के लिए

---

[1] कबीर का अन्य ग्रन्थ जिसका नाम 'ज्ञान चौंतीसा' है 'बारहखडी' काव्यरूप के अन्तर्गत आता है।

[2] बावनी संज्ञक रचनाएँ जो बारहखडी काव्यरूप के अन्तर्गत आती है उनका यहाँ उल्लेख नही है।

[3] क्षमा छत्तीसी, कर्म छत्तीसी, पुन्य छत्तीसी, सन्तोष छत्तीसी, दुष्काल वर्णन छत्तीसी, सवैया छत्तीसी एव आलोचणा छत्तीसी।

[4] भ्रम विध्वंस अष्टक, गुरु कृपा अष्टक, गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक, गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक, रामाष्टक, नामाष्टक, आत्मा अचलाष्टक, पजाबी भाषाष्टक, ब्रह्म स्तोत्राष्टक, पीर मुरीद अष्टक, अजब ख्याल अष्टक, एव ज्ञान झूलनाष्टक।

[5] गोपेश्वर अष्टक, कूर्माष्टक, रामाष्टक, सत्यनारायण अष्टक, सर्वेश्वरजी का अष्टक गुरु अष्टक जनक नन्दिनी अष्टक तथा वृन्दावन अष्टक

लिखे जाते थे। हिन्दी मे भी उसी आधार पर आलोच्यकाल मे 'कबीराष्टक', 'हिताष्टक', अग्रदास कृत 'रामाष्टक' एव चतुरदास कृत '८ अष्टक' स्तुति के लिए लिखे गए प्राप्त है। इन अष्टकों मे सख्या प्रधान न होकर स्तुति ही प्रधान है। इसीलिए इन पर 'स्तुति काव्यरूप' के प्रकरण मे विचार किया गया है। शेष अष्टक सज्ञक काव्य-सिद्धान्त प्रतिपादन एव महिमा-गायन के लिए लिखे गए है। केशवदास कृत 'रतन बावनी' ग्रन्थ की सज्ञा भी सख्या परक है और उसमे छन्दो की सज्ञा भी उसकी सख्या के आधार पर ही है परन्तु उसमे छन्द सख्या प्रधान न होकर रतनसिंह के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना का चित्रण हुआ है। कवि ने लिखा है कि 'जिस प्रकार उन्होंने समर किया उनके चरित का कुछ वर्णन करता हूँ'—

'तिनकौ कछु बरनत चरित जाविधि समर सुकीन।'

रतनसिंह का चरित्र-चित्रण करते हुए एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन करना कवि का प्रधान उद्देश्य है जिसके द्वारा उसके नायक के गुणो पर प्रकाश पडता है। अतः इस रचना का इस रूप के अन्तर्गत विवेचन न होकर 'ऐतिहासिक काव्यरूप' के अन्तर्गत विवेचन किया गया है।

२०—भ्रमर गीत

भागवत पुराण के 'उद्धव गोपी प्रसग' मे 'भ्रमरगीत' की परम्परा का प्रारम्भ माना जाता है। सस्कृत एव अपभ्रंश साहित्य मे भ्रमरगीत विषयक कोई भी स्वतन्त्र ग्रथ प्राप्त नही होता। हिन्दी-साहित्य मे सर्वप्रथम सूरदास जी ने अपने ग्रथ 'सूरसागर' मे उद्धव-गोपी प्रसग मे भ्रमर की कल्पना करके गोपियों की विरह दशा का विषद विवेचन, निर्गुण का खंडन एव उद्धव और कृष्ण के प्रति भ्रमर के व्याज से (रूपसाम्य के कारण) मार्मिक उक्तियाँ कही है। सूरदास जी ने स्वतन्त्र रूप से भ्रमरगीत प्रसग पर कोई ग्रन्थ नही लिखा। उस प्रसग के समस्त पदो का 'भ्रमरगीत सार' नाम से सकलन किया जा चुका है। परमानन्द दास के पदो मे भी हमे इस प्रसग के पदो की ऐसी ही योजना प्राप्त होती है। उक्त दोनो कवियो के इस प्रसगो के पदो की विवेचना लीला के पद (कीर्तन काव्य) के अन्तर्गत की जा चुकी है। यहाँ उन्ही कवियो की रचनाओ पर विचार किया जावेगा जिन्होने इस रूप पर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थ रचना की है।

आलोच्यकाल मे 'भ्रमरगीत' सज्ञक दो ग्रन्थ प्राप्त होते है। १—कृष्णदास कृत 'भ्रमरगीत', २—नन्ददास कृत 'भँवरगीत'। सूरदास ने इस विषय को इतना लोकप्रिय बना दिया था कि अष्टछाप के अन्य कवियो ने भी अपने पदो में इस प्रसग के पदो की रचना की। आलम के कवित्तो में भी हमे 'भ्रमरगीत' की इस के दर्शन होते हैं लक्ष्मी मथिल कृत प्रम तरगिनी नामक रचना

भी इसी शैली पर लिखी गई है। बीरबल, रहीम, गग, नरहरि, तानसेन आदि कवियो ने भी अपनी स्फुट रचनाओ मे इस प्रसग के अनेक छन्द लिखे है। परवर्त्ती काल मे यह परम्परा इतनी लोकप्रिय हुई कि रीतिकाल मे होती हुई वर्त्तमान काल मे आकर कवियों द्वारा एक नए रूप मे अपनाई गई।

२१—कथा

पुराणो मे अनेक आख्यानो के प्रसग मे अनेक व्रत, अनुष्ठान आदि की कथाएँ एव उनके माहात्म्य का वर्णन मिलता है। इस प्रकार के प्रसगो मे कथा-श्रवण अथवा व्रत से होने वाले फल का निर्देश सदैव कथा के अन्त मे मिलता है। कुछ ऐसी कथाएँ भी मिलती है जो किसी अनुष्ठान के समय कही जाती है। फल की कामना से इन कथाओ का प्रचार होना आवश्यक था। आलोच्य काल की परिस्थितियो ने इस प्रचार के लिए और अधिक मार्ग प्रशस्त किया। फलत यह लोक प्रचलित कथाएँ कवियो द्वारा भाषा मे निबद्ध हुई। इन कथाओ मे दो प्रकार की कथाएँ मिलती है—१- अनुष्ठान कथाएँ, २. माहात्म्य कथाएँ। नीचे दोनो कोटियो के अन्तर्गत रची गयी रचनाओं का उल्लेख किया जा रहा है—

१—**अनुष्ठान कथा**—इस कोटि के अन्तर्गत आने वाली दो रचनाएं है—१ मोतीलाल कृत 'गणेश पुराण' अथवा १२ वी खोज मे प्राप्त कुछ प्रतियो के अनुसार 'सकट चौथ की कथा' एव दूसरी शुक्र कृत 'सकट चौथ की कथा' है।

२— **माहात्म्य कथा**—इस काल मे माहात्म्य कथा ही अधिक लिखी गई हैं—ब्रह्मराय मल कृत 'श्रुति पंचमी कथा', बन्दन कृत 'गणेश व्रत कथा', हरिशकर द्विज कृत 'गणेश जू की कथा चारि युग की' (सकट व्रत कथा) लालदास कृत 'मानसी तीर्थ माहात्म्य' भाऊ कवि कृत 'आदित्यवार कथा', हीरामनि कृत एकादशी माहात्म्य कथा'।

२२—अष्टयाम

संस्कृत साहित्य में अष्टयाम वर्णन—महाकवि कालिदास के 'ऋतुसंहार' मे अष्टयाम का बीज प्राप्त होता है। उसमे विविध ऋतुओं में विलासियो की जीवनचर्या का सकेत है। सयोग शृङ्गार वर्णन के प्रसंग मे अष्टयाम वर्णन की परम्परा सस्कृत-साहित्य मे कही-कही प्राप्त हो जाती है। स्वतन्त्र रूप से अष्टयाम को ही लक्ष्य बनाकर रचना करने का प्रयास वहाँ नही मिलता। इस प्रकार अष्टयाम को हिन्दी का निजी काव्यरूप कहा जा सकता है।

आलोच्यकाल में इस रूप का विकास—आलोच्यकाल मे ही इस काव्यरूप का प्रारम्भ होता हुआ दिखाई देता है। वल्लभाचार्य ने भक्ति के क्षेत्र में 'नित्याचार'

को प्रधानता दी । इस 'नित्याचार' की प्रधानता से ही मन्दिरो मे इसे अष्टयाम न कहकर आठ झाँकियाँ कही गई । ये आठों झाँकियाँ उपास्यदेव के नित्य-कर्म के अनुसार सजाई जाती थी । इन झाँकियो की सज्ञाएँ, मगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सध्या एव शयन दी गई । अष्टछाप की स्थापना होने पर इन कवियो को एक-एक झाँकी के समय गाने के लिए नियत कर दिया गया । इस प्रकार कृष्ण की आठो याम की शोभा एव क्रीडाओ का क्रमिक रूप से गान करने की प्रथा का जन्म हुआ । धीरे-धीरे कृष्ण की आठों याम की शोभा एव चर्या का जिसमे उनकी विभिन्न क्रीडाओ का ही मुख्य-रूप से वर्णन हुआ करता था, भक्त कवियों द्वारा स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया जाने लगा । इस प्रकार के काव्यो की सज्ञा भी इन कवियो ने इसमे वर्णित विषय के आधार पर 'समय प्रबन्ध' अथवा 'अष्टयाम' दी । ये ग्रन्थ 'लीला-काव्य' की कोटि के ग्रन्थो से सर्वथा भिन्न हैं । इनमें न तो लीला-काव्यो के समान प्रबन्धात्मकता होती है और न कृष्ण की किसी लीला का वर्णन ही होता है अपितु विभिन्न समयो की शोभा एव क्रीडा-कौतूहल आदि का कवि की सेवा-भावना के आधार पर वर्णन होता है ।

आलोच्य-काल के ग्रन्थ—इस काव्य-रूप का प्रारम्भ विक्रम की १७ वी शताब्दी में हुआ । यो तो कबीर कृत एक 'अठपहरा' सज्ञक रचना का उल्लेख मिलता है जिसमे एक भक्त की दिनचर्या का वर्णन है, लेकिन इस ग्रन्थ को कबीर कृत मानने के लिए हमारे पास कोई ठोस प्रमाण नही है । कबीर के बहुत बाद तक कबीर को आधार मानकर रचना करने वाले सन्तो मे इस रूप का प्रयोग नही मिलता । इस काव्य-रूप का प्रादुर्भाव भी 'लीला-काव्य' के साथ-साथ वल्लभाचार्य द्वारा 'नित्याचार' की महत्ता प्रतिपादित करा देने के पश्चात् ही हुआ । अत कबीर के नाम से प्राप्त इस रचना को इस काव्य-रूप के अन्तर्गत स्थान नही दिया जा सकता । 'अठपहरा' को 'सिद्धान्त एव उपदेशपरक काव्य' के अन्तर्गत रखा गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि किसी कबीर पथी परवर्त्ती सन्त ने भक्त कवियो की देखा-देखी इसे रचकर कबीर के नाम से प्रचारित कर दिया होगा । कबीर के ग्रन्थो की प्रामाणिकता पर काव्य-रूपो के दृष्टिकोण से विचार किए जाने की आवश्यकता है । आलोच्य-काल मे रचा हुआ इस प्रकार का सर्वप्रथम ग्रन्थ नागरीदास कृत 'समय प्रबन्ध' है जो १६२० विक्रमी लगभग की रचना है । इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ—दामोदर चन्द्र गोस्वामी कृत 'समय प्रबन्ध', पीताम्बरदास कृत 'समय प्रबन्ध' २ भाग एव नाभादास कृत 'अष्टयाम' हैं । रीति-काल मे जाकर अष्टयाम की इस परम्परा का बड़ा विकास हुआ ।

२३—नखशिख

प्रसंगवश स्त्री-सौन्दर्य-चित्रण तो संस्कृत साहित्य के प्रारम्भ में ही मिल जाता है। कालिदास के 'कुमार सम्भव' में पार्वती के नख-शिख सौन्दर्य का मनोहर वर्णन हुआ है। भर्तृहरि के 'वैराग्य शतक' में भी कवि स्त्री के सौन्दर्य का पूर्ण वर्णन करके उसे अस्थिर एवं ईश्वर से विमुख कराने वाला ठहराकर वैराग्य की श्रेष्ठता पर पूर्ण आस्था व्यक्त करता है। माघ, हर्ष एवं भवभूति में भी हमें आलंकारिक स्त्री-सौन्दर्य-वर्णन मिलता है। 'थूलभद्र फागु' का वेश्या-सौन्दर्य-वर्णन उच्च कोटि का है। हेमचन्द्र ने अपने मुक्तकों में रूप-चित्रण की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है। 'सन्देशरासक' में भी हमें रूढ़िगत सौन्दर्य-वर्णन के दर्शन होते हैं।

हिन्दी के 'रास' संज्ञक काव्य स्त्री-सौन्दर्य चित्रण से भरे पड़े हैं। चन्द ने तो पृथ्वीराज की प्रमुख रानियों के रूप वर्णन में बड़ी ही प्रतिभा दिखाई है। 'प्रेम-परक' कथानक वाले काव्यों में कवियों की प्रवृत्ति इस ओर अवश्य झुकी है। जायसी के पद्मावत का सौन्दर्य वर्णन इसी शैली का है। इस काल में इस परम्परा में निम्न ग्रन्थ रचे गए—बलभद्र कृत 'नख-शिख', केशवदास कृत 'नखशिख', कृष्ण कवि कृत 'नखशिख' इसके अतिरिक्त व्रजपति भट्ट कृत 'रंग भाव माधुरी' के अन्तर्गत नखशिख वर्णन हुआ है। फुटकर छन्दों में सौन्दर्य वर्णन करने वालों में गंग, नरहरि, एवं बीरबल प्रमुख हैं। आलोच्यकाल के पश्चात् रीतिकालीन साहित्य में इस रूप का अत्यधिक विकास हुआ और वहाँ 'नखशिख' संज्ञक सैकड़ों ग्रन्थ लिखे गए।

२४—नाटक

संस्कृत के नाटक—संस्कृत साहित्य नाटकों का भण्डार है। संस्कृत काल के नाटकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, १—कालिदास से पूर्व, २—कालिदास तथा उसके पश्चात्।

कालीदास से पूर्व के नाटक—कालीदास के नाटकों को देखकर यह अनुमान सहज ही हो जाता है कि उनसे पहिले संस्कृत साहित्य में अनेक नाटक लिखे गए होंगे। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में उनके पहिले के 'भास', 'सौमिल्ल' और 'कवि पुत्र' आदि कई प्रसिद्ध नाटककारों का उल्लेख मिलता है[१]। ट्रावनकोर में भास के कहे जाने वाले १३ नाटकों का पता चला है, जिनको 'त्रयोदश त्रिवेन्द्रम् नाटकानि' नाम से गणपति शास्त्री ने सम्पादित किया है। मध्य एशिया में भी बौद्ध-कालीन अनेक नाटकों की खण्डित प्रतियाँ मिली हैं इनमें से

कालिदास तथा उनके बाद के नाटक—कालिदास के तीन नाटक 'मालविकाग्नि मित्र', 'विक्रमोर्वशीय' और 'शाकुन्तल' मिलते है। कालिदास के बाद के नाटको मे शूद्रक कृत 'मृच्छकटिक', हर्ष कृत 'रत्नावली नाटिका' तथा 'नागानन्द', भवभूति कृत 'मालती माधव', 'उत्तर रामचरित' एव 'महावीर चरित', भट्ट नारायण कृत 'वेणी संहार', राजशेखर कृत 'कर्पूर मञ्जरी' (प्राकृत मे) 'बाल-रामायण', 'बाल भारत', कृष्णचन्द्र कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि अनेक श्रेष्ठ नाटक विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी तक लिखे गए। नाटको की यह परम्परा १८वी शताब्दी तक चलती रही लेकिन ११वी शताब्दी के बाद से उनका पतन होना प्रारम्भ हो गया था।

हिन्दी नाटक—हिन्दी साहित्य मे नाटक सज्ञक ग्रन्थ लिखने का प्रारम्भ विक्रम की १७वीं शताब्दी के मध्य मे हुआ। इस प्रकार का सर्वप्रथम ग्रन्थ वल्लभ कृत हनुमान नाटक है। तत्पश्चात् हरिराम कृत 'जानकी रामचरित्र नाटक', लछीराम कृत 'राम करुणा नाटक', प्राणचन्द चौहान कृत 'रामायण महानाटक' एव हृदयराम कृत 'हनुमान नाटक' प्राप्त होते हैं। जैन कवि बनारसीदास ने 'समयसार नाटक' तथा लछीराम ने 'ज्ञानानन्द नाटक' नामक सिद्धान्त परक ग्रन्थ लिखे। अङ्को मे विभाजन होने के कारण ही जैन कवि ने इन ग्रन्थों का नाम 'नाटक' दिया है लेकिन ये स्वरूप से नाटक नही है। अतएव इनका वर्णन 'सिद्धान्त एव उपदेशपरक' काव्यरूप के अन्तर्गत किया गया है। विक्रम की १७वी शताब्दी के पश्चात् नाटक परम्परा का बड़ा विकास हुआ और अनेक कवियो ने कई उच्चकोटि के नाटको की रचना की।

शास्त्रीय ग्रंथ

मानव जीवन से सम्बन्धित और उसके लिये उपयोगी, बनाए गये नियम और सिद्धान्त, जो एक पूर्ण धारणा को स्पष्ट करते है, शास्त्र कहलाते है। संस्कृत साहित्य में पिंगल, वैद्यक, ज्योतिष, योग, रस, छन्द, अलकार आदि का विवरण प्रस्तुत करने वाले शास्त्रीय ग्रन्थो की एक बडी सख्या प्राप्त होती है। हमारे आलोच्यकाल मे भी ऐसे ग्रन्थ एक बडी सख्या मे प्राप्त होते है। ये ग्रन्थ काव्य ग्रन्थ न होकर शुद्ध शास्त्रीय ग्रन्थ है। नीचे विषय के आधार पर उनकी तालिका प्रस्तुत की जाती है।

१—रस एव नायिका भेद—कृपाराम कृत 'हिततरंगिनी', मोहनलाल मिश्र कृत 'शृंगार सागर', नन्ददास कृत 'रस मजरी', बोधा कृत 'पशु जाति नायक-नायिका कथन', वलभद्र कृत 'रस विलास', गोपाल लाहौरी कृत 'रस विलास', केशव कृत 'रसिक प्रिया' बालकृष्ण कृत 'रस चन्द्रिका' रघुनाथ कृत 'रस मजरी',

'रघुनाथ विलास', जान कृत 'रस कोष' रतनेश कृत 'कान्ता भूषण', सुन्दरदास कृत 'सुन्दर शृंगार' एवं व्रजपति भट्ट कृत 'रस भाव माधुरी।

२—**कोक शास्त्र**—आनन्द कायस्थ कृत 'कोक मंजरी', मोहन माथुर कृत 'केलि कल्लोल', मुकन्ददास कृत 'कोक भाषा', जान कृत 'मदन विनोद', अरुभद्र कृत 'कोक सामुद्रिक', ताहर कृत 'कोकशास्त्र' एव रतराय कृत 'मद दीपिका'।

३—**अलंकार सम्बन्धी ग्रन्थ**—करनेस कृत 'कर्णाभरण', 'कर्ण भूषण', 'भूप भूषण', बलभद्र कृत 'दूषण विचार', चितामणि कृत 'कविकुल कल्पतरु', केशव कृत कविप्रिया' एव छेमराम कृत 'फतह प्रकाश'।

४—**ज्योतिष ग्रन्थ**—ठक्कुरसी कृत 'पाइर्वनाथ शकुन सत्तावीसी', काशीराम कृत 'लग्न सुन्दरी', 'जैमिनीय सूत्राणि' एव लक्ष्मीधर त्रिपाठी कृत 'माठिक फल'।

५—**वैद्यक**—कनक प्रभ सूरि कृत 'वैद्यक', नैनसुख कृत 'वैद्यमनोत्सव', जान कृत 'वैदिक मति' एव बलभद्र कृत 'वैद्य विद्या विनोद'।

६—**योग शास्त्र**—जिनदास पाडे कृत 'योग रस', लछीराम कृत 'योग सुधा निधि', सुन्दरदास कृत 'सुन्दर सांख्य', मोहन कायस्थ कृत पवनविजय स्वर शास्त्र' एव ताहर कृत 'मुक्ति विलास'।

७—**शालिहोत्र**—चेतनचन्द्र कृत 'शालिहोत्र' एव त्रिविक्रम सेन कृत 'शालिहोत्र'।

८—**पिगल**—कुशललाभ कृत 'पिगल शिरोमणि ग्रन्थ', चिन्तामणि कृत 'पिगल', हरिराम कृत 'छन्द रत्नावली' एव आनन्द कृत 'वचन विनोद'।

९—**अन्य**—तानसेन कृत 'सगीत सार', जान कृत 'पाहन परीक्षा' व्यास जी कृत 'रागमाला' एवं हरिचन्द कृत 'रागमाला।

इस काल के कुछ अन्य प्रयोग

इस काल मे कुछ ऐसे ग्रन्थ भी रचे गए जो इस काल मे होने वाले स्फुट प्रयोग कहे जा सकते हैं। ऐसे ग्रन्थ न तो इस काल मे प्रचलित किसी काव्यरूप के अन्तर्गत आते है और न शास्त्रीय ग्रन्थो की कोटि के है—ग्रन्थ ये है—हरिराम कृत 'गीता भानुप्रकाश', जेतराम कृत 'गीता की टीका', बोधा कृत 'बाग वर्णन' एवं 'पक्षी मजरी', रहीम कृत 'नगर शोभा वर्णन', पीताम्बर दास कृत 'हरिदास के पदों की टीका' एव धासीराम कृत 'पक्षी विलास'।

इन ग्रन्थों मे से कुछ टीकाएँ है। महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो की टीकाएँ परवर्त्ती काल मे भी पर्याप्त मात्रा मे लिखी गई। टीका करना ही जहाँ कवि का मुख्य उद्देश्य

होता है वहाँ काव्यत्व का प्राय अभाव ही रहता है। हाँ, परवर्त्ती काल की कुछ टीकाएँ ऐसी भी है जिनमे काव्यत्व भी प्राप्त होता है। बाग वर्णन', 'पक्षी मजरी' एव 'पक्षी विलास' ग्रन्थो मे वृक्ष एव पक्षियो के नाम आदि को लेकर अलंकारो के माध्यम से शृ गार एव नीति युक्त युक्तियाँ कही गई है। नगरो की शोभा वर्णन का प्रयास परवर्त्ती काल मे पर्याप्त प्राप्त होता है लेकिन वहाँ यह ग्रथ गजल रूप मे ही लिखे हुए प्राप्त होते है। पशु-पक्षी, वृक्ष आदि पर रख कर अन्योक्ति के माध्यम से नीति-कथन की परिपाटी रीतिकाल मे पर्याप्त प्रचलित हुई है। इस प्रकार वर्णनो के कुछ नवीन प्रकारो का जिनका रीतिकाल मे जाकर विकास हुआ, इस काल मे जन्म होता हुआ दिखाई देता है। सत्रहवी शताब्दी मे राजनैतिक स्थिरता प्राप्त हो जाने पर कवियो की प्रवृत्ति शृ गार एव नीति-वर्णन की ओर अधिक रमी, इसलिए उन समस्त रूपो का, जिनका रीतिकाल मे विकास हुआ, इस काल मे किसी न किसी रूप मे प्रारम्भ हो जाना आश्चर्यजनक प्रतीत नही होता।

प्रत्येक काव्यरूप की परिभाषा व्याख्या एवं उपयोगिता का मर्म, वर्णित विषय एवं काव्यरूप के समन्वय पर विचार

● ● ● ● ● पंचम अध्याय

पंचम अध्याय
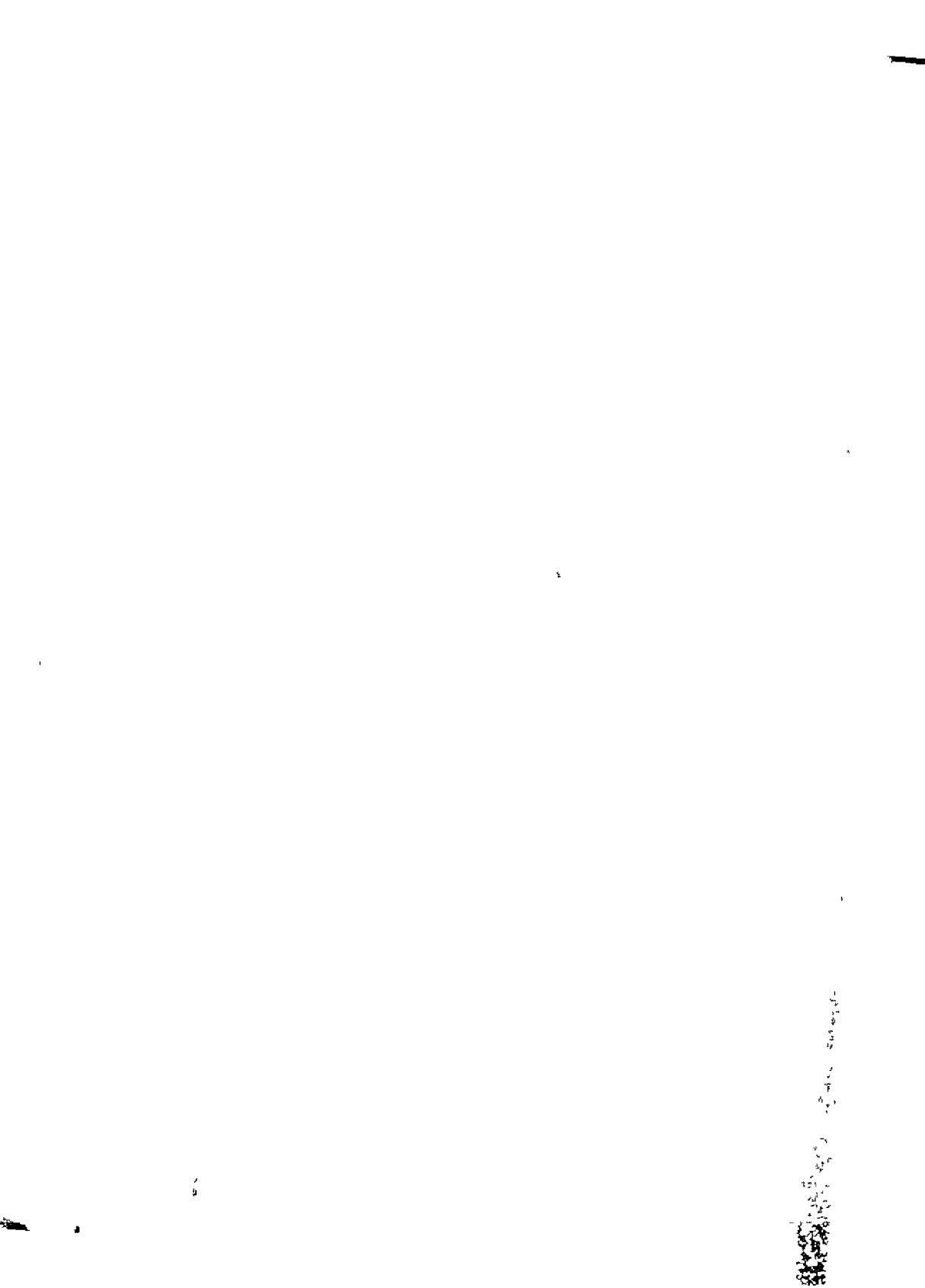
प्रत्येक काव्यरूप की परिभाषा, व्याख्या एवं उपयोगिता का मर्म, वर्णित विषय एवं काव्यरूप के समन्वय पर विचार

१—बानी

काव्यरूप की व्याख्या एवं परिभाषा—शब्दकोशो मे वाणी शब्द के अर्थ के लिए अधिकाशत तीन शब्दो का प्रयोग मिलता है—सरस्वती, बोली तथा शब्द सामान्य अर्थ मे मुख मे निसृत वचनावली को ही बानी अथवा वाणी कहा जाता है। आलोच्यकाल के साहित्य मे बानी शब्द मुख मे निकले हुए प्रत्येक शब्द के लिए प्रयुक्त न होकर किन्ही विशिष्ट व्यक्तियो के मुख से निकले हुए विशिष्ट प्रकार के शब्दों के लिए ही प्रयुक्त हुआ। इस कथन के स्पष्टीकरण के लिए 'बानी' सज्ञक प्रारम्भिक रचनाओं के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है। सर्वप्रथम बानी सज्ञक प्राप्त ग्रन्थ गोरखनाथ कृत 'गोरख बानी' है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी मे सग्रहीत उक्त ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—श्री श्री श्री गोरखनाथ जी को कृत लिख्यते—अथ गोरख बोध—
गोरखोवाच—

स्वामी जी तुम्हें गुरु गुसाईं। अम्है असिष सबद एक बूंझिबा।
दयाकरि कहिवा मन उन करि बारीस आरम्भी चेला कैसे रहे। आदि

इसमे गोरखनाथ के 'गोरख बोध' के अतिरिक्त 'दत्त गोरख सम्वाद', 'गणेश-गोरख गोष्ठी', 'ज्ञान तिलक', 'अमेगात्र', 'सबदी' आदि ग्रन्थ सग्रहीत है। गोरखनाथ की कृतियो का यह सग्रहीत रूप ही 'गोरख बानी' नाम मे अभिहित हुआ है। डा० बडथ्वाल ने भी गोरखनाथ की प्रामाणिक रचनाओ को 'गोरख बानी', (जोगेसुरी बानी भाग १) नाम से हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित कराया है। कबीर से पूर्व के सन्त नामदेव की 'वाणी' भी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा कराई गई खोज में प्राप्त हुई है। उस प्रति में भी उनके पद एव साखियों का सग्रह है। रैदास की 'वाणी' जो कबीर के समय की ही रचना है, प्रकाशित हो

चुकी है, और उसमे भी पद एव साखिया का सग्रह ही प्राप्त होता है। पीपाजी की 'वाणी' का स्वरूप भी यही है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट सन् १९०६-१९०८ में 'कबीर बानी' की एक प्रति का उल्लेख हुआ है जिसकी पद सख्या ८०० है। खोज रिपोर्ट सन् १९०९-१९११ मे प्राप्त 'कबीर साहब की बानी' की पद सख्या ३८३० है। पहली प्रति सन् १५१२ ई० मे सग्रहीत की गई थी। दूसरी का सग्रह काल १७९८ ई० है। यद्यपि 'बानी' सज्ञक उक्त दोनों ग्रन्थो मे कबीर का समस्त कृतित्व नही आ पाया है तथापि बानी मे सग्रहात्मक स्वरूप का इससे आभास अवश्य मिलता है। गुरुदेव के मार्ग-दर्शक एव उपदेशपूर्ण वचनो के लिए 'वाणी' शब्द का प्रयोग हमे कबीर के ग्रन्थों मे प्राप्त होता है---

अब मैं जांणिबो रे केवल राइ की कहांणी।
मंभा जोति राम प्रकासै, गुर गमि बाणी। टेक पद १६६
. कबीर ग्रन्थावली— पदावली, पृष्ठ १४३ :

कबीर के अनुसार अमृत वाणी वही है जिसमे गुरु पर भरोसा करने का उपदेश दिया गया हो। उस वाणी का आधार मान कर चलने वाले शिष्य को ही सतगुरु की प्राप्ति होती है, जिससे उसका आवागमन छूट जाता है—

\+ \+ \+ \+

गुरु बिन यह जग कौन भरोसा, काके सगि ह्वै रहिये।
गनिका के घरि बेटा जाया, पिता नाव किस कहिये।
कह कबीर यहु चित्र विरोध्या, बूझी अमृत वाणी।
खोजत खोजत सतगुरु पाया, रहि गई आवण जाणी।
' कबीर ग्रन्थावली---पृष्ठ १५५

बीजक की पक्ति 'बानी हमारी पूरबी' की टीका करते हुए कबीर पथी टीकाकारो ने पूरबी का अर्थ आदि करके उसका अर्थ आदिकालीन अर्थात् वेद किया है। सन्तो मे 'सबद' का वडा महत्व है और वहाँ यह गुरु के ज्ञान-पूर्ण वचनो के लिए प्रयुक्त हुआ है नाथ एव सन्तो मे, सबद वेदो के समान ज्ञान का भडार माने गए है। 'गुरु वाणी' और 'सबद' के समानार्थी होने के कारण बाद मे गुरु के 'सबद' कोटि के समस्त वचनो के सग्रह को बानी या वाणी कहा जाने लगा।

गुरु के मौलिक कथन पूर्ण वचनो के लिए, जो ज्ञान का भडार थे और जिनके लिए 'सबद' सज्ञा दी जाती थी, वाणी शब्द का प्रयोग हमे कबीर की रचनाओं मे मिल जाता है। 'गुरु-वाणी' को उन्होंने ससार के आवागमन से छुटकारा दिलाने वाला कहा है। हिन्दू धर्म मे वेद ज्ञान के भण्डार माने जाते थे और वेदो को अपौरुषेय ठहराकर उसके प्रमाणो को अकाट्य समझा जाता था। सतो के

लिए वेद तो प्रमाण थे ही नही, इसीलिए उन्होंने वेद-वाक्य के तुल्य प्रमाण हेतु 'गुरु वाणी' की कल्पना की। 'सन्त सम्प्रदाय' मे गुरु का महत्त्व ही सर्वाधिक था। उसे ईश्वर से भी श्रेष्ठ स्थान दिया जाता था, क्योकि उसके माध्यम से ईश्वर-प्राप्ति सम्भव थी। अत: सन्तो मे गुरु की मौलिक कथन युक्त वाणियो को वेदो के समान ही अपौरुषेय माना जाने लगा। राम एव कृष्ण के समान उनके नाम के साथ भी अनेक चमत्कारी-कथाओ को जोड दिया गया। ऐसे अपौरुषेय गुरु की वाणी शिष्यो के लिए श्रद्धा एव भक्ति की वस्तु थी। गुरु के समान ही 'गुरुवाणी' का भी आदर होने लगा। दादू-द्वारो मे तो आज भी 'दादू की वानी' की पूजा उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार हिन्दू मन्दिरो मे मूर्त्ति की पूजा की जाती है। फिर भी सभी सन्त मौलिक-कथन की योग्यता से युक्त नही थे, इसलिए प्रारम्भ में सभी सन्तो की रचनाओ को वाणी नही कहा जाता होगा। केवल उन्ही सन्तो के वचनो को जो गुरु के वास्तविक स्वरूप के अधिकारी थे, वाणी सज्ञा दी जाती होगी। प्रारम्भ मे सबदो का सग्रह ही वाणी कहा जाता होगा। धीरे-धीरे सन्तो के सबदो के अतिरिक्त साखियों को भी वाणियो मे स्थान दिया जाने लगा। यहाँ यह बात भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रारम्भ मे श्रेष्ठ सन्तो के वचनो को 'वाणी' सज्ञा देने का काम उनके शिष्यो द्वारा किया गया। 'कबीर की वानी' एव 'कबीर साहब की बानी' नामक सग्रह कबीर पन्थी सन्तो द्वारा ही प्रस्तुत किए गए। दादूजी के वचनो को भी उनके शिष्य सन्तदास एव जगन्नाथदास ने 'हरडे वानी' के नाम से सग्रहीत किया था।[1] अधिकाश सन्त अधिक पढे-लिखे न थे। अत. उनके वचनों के सग्रह करने का काम उनके शिष्यो द्वारा ही सम्पादित हुआ था। कालान्तर में इस प्रकार की सभी रचनाओ के लिए चाहे वह गुरु कोटि के सन्तो की रचनाएँ थी या साधारण कोटि के सन्तों की, चाहे उनमे मौलिक कथन था या सुनी सुनाई बातो की पुनरावृत्ति, वाणी सज्ञा दी जाने लगी, और वाणी शब्द सन्तो के समस्त कृतित्व के सग्रहीत रूप की सज्ञा के रूप मे रूढ हो गया।

'कबीर की बानी' की जो प्रति पहले सग्रहीत हुई उसमे पद सख्या ८०० है तथा बाद की सग्रहीत 'कबीर साहब की बानी' की प्रति मे ४००० से कुछ कम। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि पहली प्रति के सग्रह काल तक 'वाणी' के अन्तर्गत रखे जा सकने वाले पद्यो की सख्या थोडी थी। धीरे-धीरे 'वाणी' कोटि की रचनाओ के स्वरूप मे विकास होता गया और किसी भी प्रसिद्ध सन्त के समस्त कृतित्व को वाणी संज्ञा दी जाने की प्रवृत्ति के प्रचलित होने के कारण ही दूसरे सग्रह मे 'वाणी' कोटि की रचनाओ मे रखे जा सकने योग्य पद्यों की सख्या मे भी बढोतरी हो गई।

---

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य पृष्ठ १४२

इस काव्य रूप का प्रारम्भिक स्वरूप जो गोरखनाथ, नामदेव, रैदास एव पीपा की 'वाणियो' मे मिलता है वह कबीर, दादू आदि सन्तो की 'वाणियो' के मेल मे कदापि नही है। वहाँ वाणी का विशिष्ट अर्थ 'गुरुत्व युक्त मौलिक-वाणी' न होकर सामान्य अर्थ सग्रह रूप (जिस प्रकार वाणी शब्दों का सग्रह, उसी प्रकार वाणी काव्य सन्तों की रचनाओ का सग्रह) ही ग्रहण किया गया। सन्तो की 'वाणी' संज्ञक रचनाओं में यही दो रूप परिलक्षित होते है।

वाणी के तीसरे प्रकार भक्त कवियों द्वारा रचित वाणी सज्ञक रचनाओ के स्वरूप पर विचार करना ही आवश्यक है। इन भक्त कवियों के समक्ष तो वेद, शास्त्र एव पुराण प्रमाण के लिए उपस्थित थे, इसीलिए इनकी वाणियो मे गुरु का पद सन्तो की अपेक्षा शिथिल है। भक्तो ने गुरु की वाणी को अपौरुषेय न मानकर श्रद्धा की वस्तु ठहराया। गुरु के प्रति भी उनमे श्रद्धा एव भक्ति का भाव ही प्रधान है। गुरु का महत्त्व ईश्वर प्राप्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करने का ही है, लेकिन ईश्वर का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। उन्होने वाणी का शब्दार्थ ही ग्रहण करके—'जो कुछ भी पूज्य एव श्रद्धास्पद गुरु की सरस्वती कहे' किसी भी पहुँचे हुए सिद्ध महात्मा के सर्वश्रेष्ठ रचना-सग्रह को 'वाणी' सज्ञा दी है। अनेक सम्प्रदायो के प्राचीन श्रेष्ठ भक्त कवियो की वाणियो को उस सम्प्रदाय के भक्तगण आज भी बड़ी श्रद्धापूर्ण दृष्टि से देखते है।

इस प्रकार आलोच्यकाल मे इस काव्यरूप के अन्तर्गत आने वाली रचनाएँ तीन कोटियों के अन्तर्गत प्राप्त होती है—१. प्रारम्भिक, २. सन्तो की वाणियाँ एव ३. भक्त कवियो की वाणियाँ। स्वरूप की दृष्टि से तीनो प्रकार की रचनाओ की भिन्नता का ऊपर वर्णन हो चुका है। स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए इस काव्य रूप की तीनो कोटियो की अलग-अलग परिभाषाएँ देना अपेक्षित है—

परिभाषा—१—किसी श्रेष्ठ सन्त की समस्त रचनाओं के सग्रह रूप को 'वाणी' कहा जाता था।

२—गुरु की गुरुत्वयुक्त, मौलिक वचनावली जो अपौरुषेय जैसी श्रद्धा भाजन हो, उसे 'वानी' सज्ञा दी जाती थी।

३—पूज्य एव श्रद्धास्पद गुरु के मुख से प्रस्फुटित समस्त वाणियो का सग्रह 'वाणी' कहा जाता था।

भक्त कवियों की वाणी सज्ञक रचनाओ मे प्रथम एव द्वितीय दोनो कोटि की रचनाओं के कुछ तत्वो का मिला जुला रूप प्राप्त होता है।

वर्णित विषय—

१–सन्त कवियों की बानियाँ—इस काव्यरूप का प्रारम्भ सन्त कवियों द्वारा हुआ। अत इसमें प्रारम्भ मे वही विषय गृहीत हुए जो सन्तों को प्रिय थे। नामदेव, रैदास एव पीपा की बाणियों के अन्तर्गत साखी एव पदो मे भक्ति माहात्म्य, रामनाम की महत्ता, मनशुद्धि, मन को उपदेश, माया से छुटकारा पाना, साधु सगति की महिमा, भगवान की भक्तवत्सलता एवं उससे अनुग्रह की प्रार्थना आदि का ही वर्णन हुआ है। भगवान की भक्ति की महत्ता उन्होने भक्त कवियो के सामान ही स्वीकार की है—

अभि अन्तर काला रहे बाहिर करै उजास।
नाम कहे हरि भजन बिनु निहचै नरक-निवास।२।
(नामदेव की वाणी, हस्तलिखित प्रति)

रैदास ने कबीर के ही समान राम, रहीम, कृष्ण, करीम की उपासना का खडन करके निर्गुण की उपासना पर बल दिया है। पीपाजी कलियुग से निस्तार पाने के लिए सतगुरु की आवश्यकता का बखान करते है—

पीपादास कहा बनो कठिन है मन ही मानै मानि।
सतगुरु सौ परचौ नही कलियुग लागौ कानि।२।
(पीपाजी की वाणी, हस्त० प्रति)

मन की शुद्धता भगवान के ध्यान के लिए अत्यन्त आवश्यक है। बिना मन के शुद्ध किए भजन-ध्यान सब व्यर्थ है—

काहे को कीजे ध्यान जपना। जो मन नही सुध अपना।१३।
(नामदेव की वाणी-वही प्रति)

इन कवियो की वाणियो मे निर्गुण एव सगुण दोनो प्रकार की विचार-धाराओ का समावेश मिलता है। भगवान के नाम के प्रति इनका विश्वास किसी भक्त से कम नही है—

कौन के कलक रह्यो राम नाम लेत ही।
पतित पावन भये राम कहत ही।२८।
(नामदेव की वाणी-वही प्रति)

कबीर आदि सन्तो की बानियो के विषय ज्ञानोपदेश ही रहे। उन्होने अपनी बानियों मे गुरुमहिमा, तत्त्वज्ञान, नाम महिमा, सत्पुरुष निरूपण, सत्सगति, माया आदि का अनेक पदो एव साखियों मे विस्तार से वर्णन किया है। कबीर के पश्चात् के सन्तो ने लगभग इन्ही विषयो पर साखी एव सबदो (पदो) की रचनाएँ की। दादू आदि एकाध उच्चकोटि के सन्तो की बानियो मे कुछ ऐसे तत्त्व भी मिलते हैं जो

कबीर की बानी में कम ग्रहण किए गए। 'दादू की बानी' में प्रेम भाव का निरूपण कबीर की अपेक्षा अधिक सरस एवं गम्भीर है। उन्होंने कबीर के समान खंडन-मंडन को अधिक प्रमुखता न देकर अनेक बातों के त्याग के साथ ब्रह्म के प्रति प्रेम को ही अपने पंथ की प्रमुखता के रूप में स्वीकार किया है—

भाई रे ऐसा पंथ हमारा
द्वै पख रहित पंथ गहि पूरा अबरन एक आधारा।
बाद विवाद काहू सौं नाहीं मैं हूँ जग ते न्यारा।
समदृष्टी सूं भाई सहज में आपहि आप विचारा।
मैं, तैं, मेरी यह मति नाहीं निरबैरी निरविकारा।
काम कल्पना कबै न कीजे पूरन ब्रह्म पियारा।
एहि पथ पहुँचि पार गहि दादू, सो तब सहज सभारा।

(दादू की बानी)

दादू ने कहीं-कहीं निर्गुण, निराकार ब्रह्म को व्यक्तिगत भगवान के रूप में उपस्थित किया है। वहाँ प्रेम का चित्रण और भी उच्च कोटि का हुआ है। सूफियों की भाँति यह भी प्रेम को ही भगवान का रूप और जाति मानते हैं। कबीर के समान कहीं-कहीं ज्ञान वर्णन के प्रसग में उन्होंने रूपकों का आश्रय भी ग्रहण किया है।

दादू के पश्चात् के जिन संतों की वाणियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें इन्हीं सब विषयों का विवेचन हुआ है। इन वाणियों में पद, साखी एवं अरिल आदि में लिखी ज्ञानोपदेश परक उक्तियों का ही सग्रह है।

२— **भक्त कवियों की वाणियां**—प्रमुख रूप से राधावल्लभी एवं निम्बार्क इन दो सम्प्रदायों के भक्तों ने वाणियाँ लिखी। इन वाणियों में उक्त सम्प्रदायों में प्रचलित उपासना पद्धति के आधार पर राधा एवं कृष्ण की केलि एवं लीलाओं का ही विस्तृत वर्णन मिलता है। राधावल्लभी सम्प्रदाय के सेवक जी, लालस्वामी, व्यास जी ओरछा, पीताम्बरदास, चतुर्भुजदास आदि की वाणियों में गुरुयश वर्णन, केलि वर्णन, रस-रीति वर्णन, भजन एवं ध्यान का महत्त्व वर्णन ही प्रमुख रूप से हुआ है। केलि एवं रस-रीति वर्णन के प्रसग में राधा-कृष्ण का वृन्दावन विलास, उनकी विभिन्न अवसरों की शोभा का वर्णन एवं वर्षोत्सव के अवसरों पर उनकी विविध लीलाओं होरी-धमार, फूलडोल, जल-विहार, चन्दन, राजभोग, वसन्त, रास, झूला, राखी, दिवारी आदि का वर्णन हुआ है। 'स्वामिनी' एवं 'लाल', राधा एवं कृष्ण, के साथ-साथ गुरुदेव के जन्म के अवसरों पर गाई जाने वाली बधाइयों का भी इनमें अपूर्व सग्रह हुआ है। इन वाणियों का विभाजन शीर्षकों में हुआ है।

व्यास जी की प्रकाशित वाणी के अन्तर्गत दिए गये शीर्षक इस प्रकार है—१ शृंगार रसविहार, २. समय के पद, ३. ब्रज लीला एवं ४. रास पंचाध्यायी। इनके अतिरिक्त सम्प्रदाय के सिद्धान्तो के विवेचन के लिए भी अनेक पद है। अन्य भक्तो की वाणियो मे भी विषयवस्तु का विभाजन इसी प्रकार किया गया है। 'शृंगार रसविहार' के अन्तर्गत गुरु एवं राधा-कृष्ण की वन्दना, अंग शोभा, शृंगार, भोग, आरती, बन-विहार, मानविनोद, विभिन्न क्रीडाएँ, मुरली, रास, दूती वर्णन, रति आदि विषयो के पद है। 'समय के पद' मे विभिन्न ऋतुओ एवं अवसरो पर की जाने वाली क्रीडाओ का वर्णन है। राधा एवं कृष्ण के 'व्याहुले' भी अधिकांश कवियो द्वारा इस प्रसंग मे वर्णन किए गये है। 'ब्रजलीला' प्रसंग मे ब्रज की अनेक लीलाएँ यथा—दानलीला, मानलीला, पनघट लीला, विवाह लीला, उपालंभ, रथयात्रा, एवं अन्य अनेक रस प्रसंगो का वर्णन है। 'रास पंचाध्यायी' का विषय तो सर्वविदित है और सभी वाणियो मे इसका समावेश भी हुआ है।

निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्त कवियो एवं निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत सखी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदास के शिष्य विट्ठलविपुल एवं उनके शिष्यो की वाणियो मे भी विषय का उक्त क्रम ही सर्वत्र लक्षित होता है। उनकी वाणियो मे भी सिद्धान्त के पद, ब्रजलीला के पद, केलि के पद, उत्साह एवं वरषोत्सव के पद आदि शीर्षको के अन्तर्गत पद संग्रहीत है। इन वाणियो मे भी उन रूपो का समावेश हुआ है जो राधावल्लभी भक्त कवियो की वाणियो मे प्राप्त होते है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो दोनो सम्प्रदायो के भक्त कवियों की वाणियो मे संग्रहीत एक ही विषय के पद बहुत कुछ एक जैसे ही प्रतीत होते है—

आवत गावन प्रीतम दोऊ बने मरगजे बागै।
सुरति कुंज ते चले प्रात उठि, पिय पाछे धन आगै।
छूटी लट टूटी बनमाला, अब घूंघट, चल पागै।
फूले अधर पयोधर-मंडित, गंड विराजत दागै।
नख-सिख विषिख कुसुम की सेना, रनछूटी जनु बागै।
व्यास स्वामिनी कौ सुख सर्वसु, लूट्यौ स्याम सभागै।।

(पद ३१४, भक्त कवि व्यास जी)

प्रात समै आवत आलस भरे जुगलकिशोर देषे कुंजन की षोरी।
लटपटी पाग लुटे चन्द पिय के पिया की बैनी विथुरी छूटी कँच डोरी।
ललितादिक देषन जुनैन भरि अति अद्भुत सुन्दर वर जोरी।
श्री वीठल विपुल पुहप वरष नन कुंजन टूटत है अब हो हो होरी।१।

(विटठल विपुल की बानी—हस्तलिखित प्रति)

विषय की दृष्टि से इनकी समानता अद्भुत है। दो भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों से सम्बन्धित होने पर भी इनकी विषय वस्तु की समानता का कारण इनकी उपासना पद्धति की एकरूपता ही है। राधावल्लभी सम्प्रदाय मे श्री राधा ही परम इष्ट है और भगवान श्रीकृष्ण प्रियतम होने के कारण ही प्रिय एव सम्मान्य है, वह इष्ट नही है। वह सदैव राधाजी की दासियो से राधा प्रसाद की प्राप्ति के लिए चाटुकारिता करते रहते है। निगमागम से अगोचर श्री राधा-कृष्ण नित्य किशोर युगल रूप मे श्री वृन्दावन मे प्रेम क्रीडाएँ किया करते है। यह स्वेच्छा से ब्रज मे प्रगट होकर अपनी क्रीड़ाओं से रसिको को आनन्दित किया करते है। इसी ब्रजलीला की उपासना तथा गान इन राधावल्लभी भक्तों ने किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय मे प्रारम्भ मे परम पुरुषोत्तम रूप (श्री सर्वेश्वर) की उपासना ही प्रचलित थी। किन्तु १७वी शताब्दी के प्रारम्भ मे वर्त्तमान श्रीभट्ट जी, राधावल्लभी सम्प्रदाय मे प्रचलित 'रस रूप' की उपासना से बड़े प्रभावित थे, 'रस रूप' उपासना की ओर आकृष्ट हुए, 'युगल शतक' मे उसी रस रूप की उपासना का वर्णन मिलता है। तब इस सम्प्रदाय के साहित्य मे कृष्ण के साथ राधा को भी स्थान मिला। श्री भट्ट के पश्चात् तो उस सम्प्रदाय के साहित्य मे इसी उपासना का वर्णन मिलता है। हाँ, मूल सम्प्रदाय मे भक्ति की वही प्राचीन धारा ही प्रधान बनी रही। साहित्य मे हुए इस रसरीति की उपासना के वर्णन के आधिक्य के कारण ही आज इन प्राचीन कवियों को राधावल्लभी सम्प्रदाय वाले अपने मे समेटने को प्रयत्नशील दिखाई देते है। विषय-वस्तु की दृष्टि से तो निम्बार्क, सखी एव राधावल्लभी सम्प्रदायों के भक्तों की वाणियो मे अन्तर लक्षित होता ही नही। जहाँ पदो मे सिद्धान्त-निरूपण हुआ है वहाँ भी अन्तर दिखाई नही देता—

करि मन वृन्दावन सो हेत।
निस-दिन-छिन छाया जिनि छाँडहि, रसिकन को रस-खेत।
जहँ श्री राधा-मोहन विहरत, करि कुंजनि संकेत।
पुलिन रास-रस-रंजित देखत, मनमथ होत अचेत।
वृन्दावन तजि जे सुख चाहत, तेई राकस-प्रेत।
व्यासदास के उर मे बैठ्यो, मोहन कहि कहि देत।२५।

(भक्ति कवि व्यासजी-सिद्धान्त के पद-पृष्ठ २५६)

हमारे भाई श्यामा जू को राज।
जाके सदा अधीन सांवरो या ब्रज को सरताज।
यह जोरी अविचल वृन्दावन नांहि और सो काम।
श्री बीठल विपुल बिहारिन बिन जलधर सग गाव। रागमलार १

(बीठल विपुल की वाणी प्रति वृन्दावन)

इन वाणियो के अन्तर्गत 'व्याहलो' एवं 'रास पचाध्यायी' अथवा 'रास, दो शीर्षको के अन्तर्गत पदो का सग्रह प्राय. सर्वत्र मिलता है। 'व्याहलो' के अन्तर्गत दिए गए पदो मे राधा-कृष्ण का विवाह एव 'रास पचाध्यायी' मे उस प्रसिद्ध रास का वर्णन हुआ है जो शरद ऋतु की रात्रि को कृष्ण ने गोपियों के साथ रचाया था। इस रास मे शरद की रात्रि की शोभा, यमुना की शोभा, राधा एव अन्य सखियो की शोभा एवं शृ गार, कृष्ण की शोभा, मुरलीवादन एव उसका प्रभाव तथा परस्पर की रास-क्रीडाओ का वर्णन हुआ है। इस अलौकिक रास-क्रीड़ा का प्रभाव भी अलौकिक ही चित्रित किया गया है। रास-क्रीडा से मुग्ध हुए जीव, जन्तु सरिता, गिरिवर, भूमि, पवन सब की दशा एक समान हो गई है। सब अपने कार्यो को भूल बैठे है—

घुमि कोलाहल दसदिसि जाति। कलप समान भई सुख राति।
जीव जन्त मैमन्त सब
उलटि बह्यौ जमुना कौ नीर, बालक अच्छ्र न पीवत खीर।
राधा रवन ठगे सबै।
गिरधर तरवर पुलकित गात, गोधन थन ते दूध चुचात।
मुन खग-मृग मुनिव्रत धरयौ।
फूली मही. फुल्यौ गति पौन। सोवत ग्वाल तजत नहि भौन।
राम रसिक गुन गाइहौ।२५।
(भक्त कवि व्यास जी, पृष्ठ ४०६)

माध्व गौड सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त श्री गदाधर जी की वाणी मे युगल-किशोर की शोभा, बधाई एव अनेक लीलाओ के पद मिलते है। बसन्त, होली, झूलना, विवाह आदि लीलाओ का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है, रास को भी अछूता नही छोडा है।

भक्त कवि अपनी वाणियो की रचना मे सन्तो से प्रभावित हुए थे। अतः उन्होने अपनी वाणियों मे उन विषयो को भी स्थान दिया जो सन्तो की वाणियो मे प्रमुख रूप से ग्रहण किए जाते थे। सन्तो के समान भक्त कवियो ने भी अपनी वाणियो मे साखियो को स्थान देकर उनके द्वारा सामान्य जन को उपदेश देने का प्रयास किया। व्यास जी, बिहारिनदास, नागरीदास, वल्लभ रसिक आदि की वाणियो मे उनकी साखियाँ भी सग्रहीत हैं। इन साखियों मे सन्त कवियो के समान ही गुरुस्मरण, सन्तप्रशंसा, दृढविश्वास, मन की एकाग्रता, कहनी-करनी, नाम गुणगान, कुसग त्याग, भ्रमजाल, मन को शिक्षा आदि विषयो पर सुन्दर ढङ्ग से प्रकाश डाला गया है। साथ ही भक्त कवि होने के कारण कुछ ऐसे विषयो को भी

वर्णन के लिए स्वीकार किया गया है जो सन्तों को ग्राह्य न थे यथा—हरिजन महिमा, प्रेम भाव, भक्ति-उपदेश, वृन्दावन वास, राधा-कृष्ण-विहार-प्रेम आदि। साखियों के अतिरिक्त कुछ चौबोला, सवैया आदि भी इसी प्रसग मे है। ढोंग एव पाखड आदि का खडन मंडन तो इन भक्त कवियो मे भी सन्तो के समान ही हुआ है—

चौबोला—घर परिहरि बन छानि छवावै। मौनी ह्वै के मुंडी डुलावै।
गूदरी ओढि अथाई आवै। अनष विहारीदास न भावै।२७८।
(बिहारिन दास की बानी-हस्तलिखित प्रति)

कही-कही इन कवियो की उक्तियाँ भी बडी खरी तथा सन्त कवियो के मेल की ही दिखाई देती है—

जनम बिगारियो भगति बिनु कसय रम एक पूत।
छेरी के गल सौ थना जामैं दूध न मूत।४७०।
(बिहारिनदास की बानी-हस्तलिलित प्रति)

इन भक्त कवियो की वाणियो मे पद, दोहे, कवित्त, सवैया, चौबोला आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है। सर्वाधिक सख्या पदो की है। दोहो का स्थान दूसरा है। श्री भट्ट एव उनके शिष्य हरिव्यास देव की वाणियो मे तो एक दोहा एव एक पद का क्रम सर्वत्र लक्षित होता है। प्रथम दोहे मे आभास है तथा उसके पश्चात् पद मे उसका वर्णन है। एक उदाहरण से यह स्वरूप स्पष्ट हो जायगा।

सिद्धान्त सुख—राग केदारो-आभास-(दोहा)—

चरन कमल की दीजिये सेवा सहज रसाल।
घर जाओ मोहि जानि के चेरो मदन गोपाल।

पद— मदन गोपाल सरन तेरी आयो।
चरन कमल की सेवा दीजे चेरो करि राखौ घर जायौ।टेक।
धनधन मात पिता सुत बन्धू धन जननी जिन गोद खिलायौ।
धनधन चरन चलत तीरथ को धन गुरु जिन हरि नाम सुनायौ।
(आदि वाणी-हस्तलिखित प्रति)

भक्त कवियो द्वारा इन वाणियो मे अनेक काव्य-रूपो का समावेश किया गया है। स्तुति, लीला, अष्टयाम, वरषोत्सव, मंगल, व्याहुला, उपदेश एव सिद्धान्त-निरूपण तथा साखी काव्य रूप इनमे प्राप्त होते हैं। सन्त एव भक्त कवियों के स्वरूप को स्पष्ट करने मे उनके द्वारा गृहीत यह काव्य-रूप पूर्णतया उपयोगी सिद्ध हुआ है।

संक्षेप में इस काव्य रूप की विशेषताएँ ये हैं—

१—यह तीन रूपों में प्राप्त होता है—(अ) प्रारम्भिक रूप में यह पूर्णत संग्रह रूप में है। (आ) सन्त कवियों में यह गुरु की गुरुत्वपूर्ण गुरु-वाणी के रूप में है जो अपौरुषेय एवं पूज्य समझी जाती थी। (इ) भक्तों में यह दोनों के मिश्रित रूप में (श्रेष्ठ भक्तों की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के संग्रह रूप में) प्राप्त होता है।

२—इस रूप के वर्ण्य विषय भी दो कोटियों के हैं—प्रारम्भिक सन्तों की वाणियों में ज्ञान कथन तथा उपदेश एवं सिद्धान्त निरूपण का प्रयास है तथा भक्तों की वाणियों में उपदेश एवं सिद्धान्त निरूपण के अतिरिक्त राधा-कृष्ण की विविध लीला, क्रीडा, उत्सव, शोभा आदि का भी वर्णन हुआ है।

३—सन्तों ने साखी एवं पदों का ही प्रयोग किया है। भक्तों के दोहे, चौबोला एवं सवैया आदि का प्रयोग और किया है।

४—इस रूप में स्तुति, लीला, वरषोत्सव, अष्टयाम, व्याहुलो आदि अन्य अनेक काव्यरूपों का समावेश भी हुआ है।

२—चरित-काव्य

काव्य-रूप की व्याख्या एवं परिभाषा—चरित-काव्य प्रबन्ध काव्य का एक विशेष प्रकार है यह संस्कृत साहित्य की महाकाव्य परम्परा से विकसित होकर एवं अन्य अनेक काव्य-रूपों से प्रभावित होकर अग्रसरित हुआ। इसमें संस्कृत साहित्य के प्रबन्ध काव्य, कथा काव्य एवं इतिवृत्तात्मक कथा—तीनों के लक्षणों का समन्वय हुआ है। इसके रूप निर्धारण में अपभ्रंश साहित्य के 'चरिउ' संज्ञक धार्मिक काव्यों का भी बडा हाथ रहा। प्रबन्ध, कथा एवं पुराण तीनों का समन्वय होने के कारण इस काव्य-प्रकार को कभी चरित, कभी कथा तथा कभी पुराण कहा गया। अपभ्रंश साहित्य में इसके लिए तीनों संज्ञाएँ दी गई हैं। आलोच्य-काल में भी अनेक चरित्र-काव्यों की संज्ञाएँ कथा एवं पुराण मिल जाती हैं। 'रामचरित मानस' चरित तो है ही 'कथा' भी है। गोस्वामीजी ने उसे अनेक स्थानों पर कथा कहा भी है। चरित काव्य को कथा कहने की यह प्रणाली अपभ्रंश काल से होकर तुलसी के समय तक प्राप्त होती है जिससे इस काल में चरित-काव्य की प्रचलित शिथिल परिभाषा का आभास होता है। फिर भी कथा, चरित एवं पुराण संज्ञक सभी ग्रन्थ चरित-काव्य नहीं हैं। संस्कृत-साहित्य के अनेक चरित संज्ञक काव्य-शास्त्रीय शैली के महाकाव्य हैं, अनेक कथा संज्ञक ग्रन्थ इतिवृत्तात्मक कथा-काव्य हैं तथा पुराण संज्ञक ग्रन्थ पुराणों की कोटि के हैं।

चरित-काव्य प्रबन्ध काव्य है। संस्कृत में चार शैलियों के प्रबन्ध काव्यों का प्रचलन था—१. शास्त्रीय शैली, २. ऐतिहासिक शैली, ३. पौराणिक शैली एवं ४. रोमांटिक शैली। जिनमें से अन्तिम तीन शैलियों में लिखे गए प्रबन्ध काव्य चरित-काव्य होते थे।[१] चतुर्थ अध्याय में इन शैलियों के चरित काव्यों का नामोल्लेख हो चुका है। अपभ्रंश साहित्य के कवि विशेष धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे, अतः उन्होंने ऐतिहासिक शैली को छोड़कर शेष दो शैलियों को ही अपनाया। वहाँ कुछ चरित-काव्यों की संज्ञा 'पुराण' भी मिलती है स्वरूप की दृष्टि से अपभ्रंश के इन पुराण संज्ञक ग्रन्थों एवं 'चरिउ' संज्ञक ग्रन्थों में कोई भेद नहीं। डा० हरिवल्लभ भायाणी ने 'पउमसिरि चरिउ' की भूमिका में चरित-काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है— 'स्वरूप की दृष्टि से अपभ्रंश के पौराणिक काव्यों और चरित काव्यों में बहुत अन्तर नहीं है। पौराणिक काव्यों में विषय का विस्तार बहुत अधिक होने से सन्धि संख्या पचास से सवासौ तक हो सकती है किन्तु चरित काव्यों में विषय विस्तार मर्यादित होता है इसलिए सन्धि संख्या अधिक नहीं होती। "किन्तु सभी चरित काव्य कडवक बद्ध हों यह बात भी नहीं है।"[२] भायाणी जी का यह भेद आकारगत है स्वरूप गत नहीं। डा० पी० एल वैद्य ने पुष्पदन्त कृत 'महापुराण' की भूमिका में कहा है कि ' कुछ लोग पुराण एवं चरित काव्य को भिन्न मानते हैं।" उन्होंने उसी ग्रन्थ से उद्धृत करके दोनों का भेद दिखाया है—'अड्हास एक पुरुपाश्रिता कहा' एक पुरुष के जीवन पर आश्रित चरित है, जबकि पुराण का अर्थ 'त्रिशिष्ट पुरुषाश्रिता कहा'[३] ६३ पुरुषों के जीवन पर आश्रित कथा है। यह परिभाषा भी विषय की एकांगिता से सम्बन्धित है। इससे रूप की समस्त विशेषताओं पर प्रकाश नहीं पड़ता। इन्होंने 'पुराण, पुराण-सामग्री युक्त काव्य एवं पुराण शैली के काव्य तीनों को ही 'पुराण' के अर्थ में ग्रहण किया है। वस्तुतः ये तीनों भिन्न वस्तु हैं और इनमें से प्रथम (पुराण) तो कभी भी काव्य हो ही नहीं सकता। हाँ, शेष दो चरित-काव्य हो सकते हैं दूसरे प्रकार के काव्य पौराणिक चरित काव्य एवं अन्तिम प्रकार के पौराणिक शैली के चरित-काव्य कहलाते हैं। 'रामचरितमानस' इसी शैली का चरित्र-काव्य है। पौराणिक शैली में लिखा होने के कारण ही इसे कुछ विद्वान चरित न कहकर पुराण कहना ही अधिक उचित समझते हैं।

आलोच्य काल में पौराणिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक तीन प्रकार के चरित

---

[१] हिन्दी साहित्य कोश—डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित, पृष्ठ २८६।

[२] पउमसिरि चरिउ—भूमिका, पृष्ठ १५।

[३] महापुराण भाग १, पृष्ठ ३२।

काव्य प्राप्त होते है। उनका यह भेद विषय वस्तु के आधार पर किया गया है। अपभ्रंश साहित्य मे ऐतिहासिक चरित काव्यो के नायको के साथ अनेक लोक-प्रचलित निजन्धरी कथाओ, रोमाचक एव काल्पनिक घटनाओं का इतना अधिक मेल कर दिया गया कि उनका ऐतिहासिक रूप पूर्णत लुप्त हो गया और परवर्त्ती काल मे उन एक ही प्रकार की रोमाचक एव काल्पनिक घटनाओ का इतना अधिक प्रयोग होने लगा कि वह इस कोटि के साहित्य की प्रमुख रूढ़ि बन गई। अर्द्ध ऐतिहासिक एव रोमाचक सामग्री के आधार पर रचे गए 'रासो' सज्ञक काव्य एव आलोच्य काल के प्रतीकात्मक एव प्रेमाख्यानक काव्यो मे इस प्रकार की काव्य रूढियो का निर्वाह हुआ है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चरित-काव्य के स्वरूप निर्धारण मे संस्कृत के शास्त्रीय शैली के प्रबन्ध काव्य, पुराण एव कथा-काव्य का पूर्ण हाथ रहा है। इसके साथ यह रूप अनेक लोक प्रचलित निजधरी एवं रोमाटिक कथाओ से प्रभावित हुआ है। चरित काव्यों के नायकों में प्राप्त अति प्राकृत, अलौकिक एव अति मानवीय शक्ति, कार्य एव वस्तुओ का समावेश इसी प्रभाव के कारण लक्षित होता है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार चरित्र-काव्य के लक्षण ये हैं[1]—१—चरित काव्य के प्रारम्भ मे नायक के पूर्वज, माता-पिता का अथवा उसके पूर्व-जन्मो का वर्णन होता है। कथा जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक की अथवा जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना पर समाप्त होती है। यह कथात्मक अधिक और वर्णनात्मक कम होता है। इस दृष्टि से यह कथा-काव्य के अधिक निकट एव स्वाभाविक तथा लोकोन्मुख होता है। २—चरितकाव्य मे प्रेम, वीरता, धर्म अथवा वैराग्य का चित्रण होता है। एक प्रेम कथा का होना आवश्यक है जिसका स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। प्रेम का प्रारम्भ रूढिगत स्वप्न दर्शन, चित्रदर्शन, गुण श्रवण अथवा प्रथम साक्षात्कार द्वारा ही होता है। विवाह से पूर्व अथवा बाद मे अनेक विघ्न-बाधाएँ यथा—युद्ध आदि का चित्रण रहता है। अन्त मे प्रेम-पात्र की प्राप्ति होती है। जैन चरित-काव्यो में नायक का किसी घटना विशेष या उपदेश के कारण अन्त मे वैराग्य की ओर झुकाव होता है। ३—वक्ता-श्रोता योजना का भी चरित-काव्यो मे विधान किया जाता है। ४—इसमे कथानक रूढियों की अधिकता तथा मनुष्य की अलौकिक, अति प्राकृत एव असानवीय शक्तियों का वर्णन होता है। ५—इसका कथानक शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यो मे भिन्न कथा काव्यो के समान विस्तृत, गुम्फित या जटिल होता है। ६—इसकी शैली सरल, आकर्षक एव लोकरुचि के

---

[1] **देखिए, पृष्ठ २८६ ८७,**

अनुकूल होती हैं। ७—यह उद्देश्य प्रधान होता है। केवल मनोरजन ही इसका उद्देश्य नही होता। कभी इसका उद्देश्य धार्मिक कभी प्रशस्ति मूलक तथा कभी लोक कल्याणकारी होता है। काव्य के प्रारम्भ मे ही लेखक उसके उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है।

ऊपर चरित-काव्य की जिन विशेषताओ का वर्णन हुआ है वे आलोच्य काल के सभी चरित-काव्यों मे प्राप्त न होकर मानस जैसे आदर्श चरित-काव्य मे ही प्राप्त होती है। आलोच्य काल मे प्राप्त सभी चरित काव्यों मे प्रेम कथा का विधान अनिवार्य नही है। ग्रन्थों के प्रारम्भ मे नायक के पूर्वज अथवा पूर्व जन्मों की कथा का विधान भी सर्वत्र लक्षित नही होता। वक्ता, श्रोता शैली में लिखी गई रचनाएँ भी कम ही है। किसी चरित्र-काव्य मे यदि प्रथम लक्षण को प्राथमिकता दी गई है तो किसी मे द्वितीय को। इस प्रकार आलोच्य-काल मे भी चरित-काव्य की किसी सर्वमान्य परिभाषा का अभाव ही दिखाई देता है। इस काल मे जीवन चरित की शैली वाले प्रबन्ध काव्यों को भी चरित-काव्य कहा गया। चरित-काव्य का जो स्वरूप इस काल मे प्राप्त होता है उसके आधार पर इस रूप की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—

परिभाषा—'किसी भी पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा धार्मिक पुरुष को आधार मानकर उसके जीवन की सम्पूर्ण अथवा कुछ घटनाओ का जिन रचनाओ में भावपूर्ण शैली मे चित्रण होता था, चरित्र-काव्य कहलाती थी।'

आलोच्यकाल में चरित-काव्य का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है उससे उसकी इस काल में प्रचलित शिथिल परिभाषा का आभास होता है। इस शिथिल परिभाषा के कारण ही सुदामा, ध्रुव, प्रह्लाद, उषा आदि के छोटे-छोटे पौराणिक एव लोक-प्रचलित कथानक तथा भक्त एव सन्तों के जीवन चरित्र इस काल मे चरित्र वर्णन के लिए अधिकता से ग्रहण किए गए। प्रबन्ध काव्य होने के कारण चरित-काव्यों का विभाजन भी खण्डों मे किया गया। कुछ रचनाओ मे तो विभाजन का पूर्ण अभाव भी लक्षित होता है। प्राय. सभी ग्रन्थो के प्रारम्भ मे सरस्वती वन्दना अवश्य दी गई है। जैन कवियो के चरित-काव्यों मे भी वन्दना का यह स्वरूप प्राप्त होता है।

विषय वस्तु—चतुर्थ अध्याय में आलोच्यकाल के चरितकाव्यो को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया गया है—१ पौराणिक चरित-काव्य, २. ऐतिहासिक चरित-काव्य, ३. धार्मिक चरित-काव्य। नीचे प्रत्येक श्रेणी के ग्रन्थो के वर्णित विषय पर अलग-अलग विचार किया जाता है।

१ **पौराणिक चरित काव्य** इस कोटि के चरित काव्यो मे हरिश्चन्द्र उषा, प्रहलाद, ध्रुव एव राम के चरित ही प्रमुख रूप से वर्णित हुए। एक कवि ने कृष्ण के चरित्र को भी प्रबन्ध रूप मे वर्णन करने का प्रयास किया। कृष्ण चरित्र मे सम्बन्धित सुदामा की कथा भी इस काल मे लोकप्रिय हुई और उसको आधार बनाकर भी रचनाएँ की गई। बलि-वामन के पौराणिक आख्यान पर भी काव्य-रचना हुई। राम के चरित्र के साथ लक्ष्मण का एव प्रह्लाद के चरित के साथ दीप-मालिका का सम्बन्ध होने के कारण एकाध कवि ने स्वतन्त्र रूप से लक्ष्मण एव दीपमालिका के चरित्रो को भी आधार बनाकर चरित्र-काव्य लिखे। कुछ चरित्र तो बड़े ही लोकप्रिय रहे है, इसीलिए एक-एक चरित को आधार मानकर लिखे गये ग्रन्थो की सख्या भी एकाधिक है। सर्वाधिक संख्या राम चरित विषयक काव्य-ग्रन्थो की है। ध्रुव एव सुदामा के कथानक भी करुणा-विगलित होने के कारण लोकप्रिय रहे है। अत उनका वर्णन भी अनेक कवियो ने किया है। राम-चरित्र को इतना लोकप्रिय बनाने का श्रेय तुलसीदास को है। परवर्ती कवियो ने उन्हीं को आदर्श मानकर राम-कथा का वर्णन किया है। अत यहाँ रामचरित के विषय एव स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है।

रामचरितमानस सर्वश्रेष्ठ चरित-काव्य है। तुलसीदास को प्राकृत-जन-गुण-गान अभीष्ट नही था, इसीलिए इसमे राम के लोक-पावन चरित्र का वर्णन हुआ है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में सस्कृत साहित्य के महाकाव्यों मे प्रचलित सभी रूढियों का पालन हुआ है। गणेश, शिव, विष्णु, गुरु आदि की वन्दना के पश्चात् कवि ने रघुवश मे गृहीत 'कवि की आत्म-लघुता' का वर्णन किया है। अपभ्रंश के चरित-काव्यो मे प्रचलित सज्जन वन्दना के साथ-साथ कवि ने दुर्जनो की भी वन्दना की है। पुराणों की प्रचलित शैली एवं कथा-काव्यो मे गृहीत शैली के अनुसार ही इसमे कवि ने वक्ता-श्रोता के कई जोड़ों का पूर्ण निर्वाह किया है। कवि ने राम-चरित का रूपक एक विस्तृत 'मानस' से बाँधा है और इसीलिए ग्रन्थ की सज्ञा 'रामचरित-मानस' दी गई है। राम के जन्म के कारणो का विशद विवेचन करता हुआ कवि राम के जन्म का वर्णन करता है। कथा राम के जन्म से प्रारम्भ होकर उनके लका विजय के पश्चात् अयोध्या लौट आने तक चलती है। सम्पूर्ण कथा का सात अध्यायों मे विभाजन हुआ है जिनकी संज्ञा 'काण्ड' दी गई है जो उस अगम्य मानस तक पहुँचाने वाले सप्त सोपान है—

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना।

(बालकाण्ड ३६)

मानस का यह सर्ग-विभाजन सस्कृत एव अपभ्रंश के चरित काव्यो जैसा

होते हुए भी अपनी मौलिकता रखता है। इस बाह्य ढाँचे के निर्माण के पश्चात् कवि ने अपनी वाणी की तूलिका से उसको चित्रित किया। रामचरितमानस के पात्रों के चरित्र-चित्रण को कवि ने सजीव बना दिया। मानव जीवन की जिन-जिन अवस्थाओं का संस्कृत साहित्य में वर्णन मिलता है उन सभी को कवि ने अपनी मनोवैज्ञानिक सूझ के साथ एक मौलिक रूप प्रदान किया। मानस का एक-एक पात्र एक-एक आदर्श का प्रतीक बन गया। तुलसी ने अपने जीवन की समस्त अनुभूतियों को इसमें भर देने का प्रयास किया है। इसी कारण रामचरितमानस के राम तुलसी के आराध्यदेव ही न रह कर सम्पूर्ण मानव समाज के हितकारी राम बन गए है।

तुलसी द्वारा राम के लोक-पावन रूप के इस सफल चित्रण से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने इसको वर्णन के लिए अपनाया। अन्य सभी ग्रन्थों में कथा तो लगभग वही रही, लेकिन छन्द, भाव विस्तार आदि में परिवर्तन हुआ। 'रामचन्द्रिका' में तो केशव ने छन्दों का अजायबघर ही खड़ा कर दिया। अनेक मार्मिक स्थलों को या तो छोड़ दिया या कुछ पंक्तियों में वर्णन करके चलता कर दिया। हाँ, सम्वाद के स्थलों का खूब जम कर वर्णन किया। कवि की दृष्टि छन्द एवं अलकार वर्णन पर ही अधिक रही, इसीलिए ग्रन्थ प्रबन्धता का अभाव लक्षित होता है। लालदास कवि के 'अवध विलास' ग्रन्थ में राम की अवध से सम्बन्धित कथा का दोहे चौपाई तथा बीस विश्रामों में वर्णन हुआ है। कथा का प्रारम्भ राम के वंश-विस्तार से होकर अयोध्या वर्णन, जन्म का कारण, नारद द्वारा रावण को सूचना देना, मारीच आदि का वध, स्वयंवर, वनगमन तक चलकर राम के चित्रकूट पहुँचने पर समाप्त हो जाती है। बाद की कथा का दो दोहों में ही वर्णन कर दिया गया है—

बन तरु गिरि सर बास करि सिय लछिमन संग साज।
बालि मारि हति रावनहिं राम करत है राज।
बन लंका की बात को जानत है संसार।
ताते लाल कहै नही असुरन के संहार॥ (बीसवाँ विश्राम)

(ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९२६-२८ संख्या २६२, पृष्ठ ४०२ से उद्धृत)

मलूकदास तथा कपूरचन्द आदि कवियों ने संक्षेप में दोहे,चौपाई में ही कथा का वर्णन किया है। इस प्रसंग में मस्तराम अकेला ऐसा कवि है जिसने राम के राज्याभिषेक से कथा का प्रारम्भ करके उनके अश्वमेध यज्ञ एवं लवकुश प्रसंग का वर्णन किया है। तुलसी के समकालीन मुनिलाल नामक कवि ने 'रामप्रकाश' नामक ग्रन्थ में राम कथा का वर्णन तो किया लेकिन यह वर्णन रीति-शास्त्र के अनुसार किया गया है।

रामायण के अनुकरण पर आमानन्द का 'लक्ष्मणायण' नामक काव्य-ग्रन्थ रचा गया, जिसमे लक्ष्मण के चरित्र का वर्णन हुआ। लक्ष्मण का चरित्र राम-चरित्र के साथ सम्बद्ध होने के कारण इस ग्रन्थ मे राम-कथा का ही वर्णन है, तथापि लक्ष्मण के चारित्रिक गुणों का वर्णन अधिक विस्तार से हुआ है। यद्यपि इस काल मे कृष्ण के मधुर रूप का ही सर्वाधिक वर्णन हुआ तथापि इच्छाराम ने 'रामचरित मानस' के अनुकरण पर उसी की शैली मे कृष्ण के चरित्र का 'गोविन्द चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ मे वर्णन किया। वह एक विशाल ग्रन्थ है। इसमे मंगलाचरण के पश्चात् उद्धव के वद्रिकाश्रम आगमन से कथा का प्रारम्भ होता है। कृष्ण का गोकुल आगमन, विविध क्रीडाएँ, राक्षसो का वध, अक्रूर हस्तिनापुर आगमन, कृष्ण का द्वारिका प्रस्थान, कृष्ण के अनेक विवाह, शिशुपाल वध, अनिरुद्ध विवाह, सुदामा चरित, कुरुक्षेत्र यात्रा, कुरुक्षेत्र युद्ध वर्णन के पश्चात् वेदो द्वारा की गई स्तुति के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है। सम्पूर्ण कृष्ण चरित्र एव उससे सम्बन्धित ग्रन्य अनेक आख्यानों का इसमे समावेश है। कृष्ण चरित्र के सम्बन्धित उषा एव सुदामा इन दो को आधार मानकर स्वतन्त्र काव्य-ग्रन्थ भी रचे गये। 'उषा चरित्र' सज्ञा वाले काव्य-ग्रन्थो मे कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध एव वाणासुर की पुत्री उषा की प्रेम-कथा एव उनके विवाह का वर्णन है। कथा का आधार श्रीमद्भागवत मे दी हुई कथा है। जाधूमणियार कृत 'हरिचन्द पुराण कथा' मे पुराण के आधार पर हरिश्चन्द्र के चरित्र का वर्णन हुआ है। कथा के अनेक स्थल तो बड़े ही मार्मिक बन पड़े है।

सुदामा चरित एव ध्रुव चरित नाम से कई काव्य-ग्रन्थ भी इस काल मे प्राप्त होते है। इन ग्रन्थो की संज्ञाए 'चरित' के साथ प्राप्त होती है तथापि इनमे चरित-काव्य की समस्त विशेषताएँ प्राप्त नही होती। इनमे जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओ का वर्णन पुराणो के आधार पर हुआ है। इन ग्रन्थो मे कथा कहने का भाव ही प्रधान है फिर भी मार्मिक स्थलो को पहचान कर कवियों ने उनका वर्णन अधिक विस्तार से किया है। सुदामा की दीनावस्था का चित्रण प्राय सभी रचनाओ मे वडा सुन्दर बन पडा है—

> सीस पगा न झगा तन पै प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा।
> धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पायँ उपानह की नहि सामा।

(नरोत्तमदास कृत सुदामा चरित)

> दीपु सुदामा हाते एक पुहुमीपर, सीपन सोपट सीपागी जन्म ते प्रेम दुखी नर।
> बसन हीन कोपीन एक सोउ वलकल कै, दुनुवल दसा मलीन मुज मेखली दीही बल कौ।

(हलधर कृत सुदामा चरित—हस्तलिखित प्रति)

इन ग्रन्थो मे विभाजन का अभाव है। ध्रुव चरित्र, प्रह्लाद चरित्र, दीपमालिका चरित्र एव बलि चरित्र ग्रन्थो मे इनकी कथा का पौराणिक आधार पर वर्णन हुआ है। दीपमालिका चरित्र के अन्तर्गत प्रह्लाद की कथा का ही मुख्य रूप मे वर्णन है।

अधिकाश पौराणिक चरित-काव्य दोहा-चौपाई शैली मे ही लिखे गए। अपभ्रंश साहित्य की कडवक शैली जिसे जायसी ने 'पद्मावत' में अपनाया, तुलसी मे एक नए रूप मे प्राप्त होती है। तुलसीदास ने ५ अथवा ७ चौपाइयो के बाद एक दोहे का क्रम न रखकर ८ चौपाइयों के पश्चात् एक दोहे का क्रम रखा। इस क्रम मे कहीं-कहीं शिथिलता भी दिखाई देती है। भावो के अनुसार छन्द परिवर्तन का विधान भी 'मानस' मे प्राप्त होता है। तुलसी के बाद से दोहे-चौपाई की यह शैली चरित-काव्य एव कथा-काव्यो के लिए प्रसिद्ध हो गई। इस काल की अधिकाश रचनाएँ इसी शैली की प्राप्त होती है। केशव, नरोत्तमदास, आशानन्द आदि कवि इसके अपवाद भी है।

२—**ऐतिहासिक चरित-काव्य**—आलोच्य काल मे इस कोटि की रचनाओ की न्यूनता है। उच्चकोटि के वीर पुरुषो का अभाव होने के कारण इस प्रकार के ग्रन्थ कम रचे गए। इस कोटि की सर्वप्रथम रचना 'बीसलदेव रासो' है जिसमे अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव के चरित्र का वर्णन है। ग्रन्थ मे चार सर्ग है। प्रथम सर्ग मे वन्दना के पश्चात् भोज की पुत्री राजमती के साथ बीसलदेव का विवाह, दूसरे मे स्त्री से रूठकर बीसलदेव की उड़ीसा यात्रा एव हीरे की खान का हस्तगत करना, तीसरे मे राजमती का वियोग-वर्णन एव भोज द्वारा उसे लिवा ले जाना तथा चौथे मे बीसलदेव का राजधानी लौटना एव राजमती को घर लाना वर्णित है। मुख्यतः यह वर्णनात्मक ग्रथ है। राजमती का वियोग-वर्णन इस ग्रन्थ का सबसे महत्त्वपूर्ण अग है। विरह वर्णन के प्रसग मे कवि ने 'बारहमासे' की योजना भी की है।

केशव कृत 'वीरसिंहदेव चरित' मे वीरसिंहदेव का चरित्र एव उसके युद्धो के वर्णन के साथ-साथ दान, लोभ आदि भावनाओ के सम्वाद भी वर्णित है। वीरसिंहदेव चरित' मे वर्णित घटनाएँ इतिहास सम्मत है। अत इतिहास की दृष्टि से इस ग्रन्थ का महत्त्व है। केशवदास चारण कृत 'गुणरूपक' एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्र-काव्य है जिसमे जोधपुर के महाराज गजसिंह का चरित्र-वर्णन है। इस ग्रन्थ में गजसिंह के राज्य-वैभव उनकी तीर्थ यात्राएँ, युद्ध, दान आदि का विस्तृत वर्णन हुआ है। राजस्थान के कवियो द्वारा, प्रकाश, विलास, रूपक आदि सज्ञाएँ देकर लिखे गये चरित-काव्यो में से यह एक श्रेष्ठ रचना है। जान कवि कृत

श्यामखां रासा रासा संज्ञक होते हुए भी ऐतिहासिक चरित काव्य है। इस ग्रंथ के प्रारम्भ में कवि ने पौराणिक ढग से सृष्टि की उत्पत्ति और चौहान वंश का विवरण दिया है। चौहान वश के मोटेराम के पुत्र करमचन्द को दिल्ली के बादशाह ने तुर्क बनाकर श्याम खाँ नाम रखा था। श्याम खाँ के पाँचो पुत्र ताज खाँ, महमद खाँ, कुतुब खाँ, इख्तियार खाँ और मोमिन खाँ के वर्णन के पश्चात् श्याम खाँ से लेकर अलिफखाँ उर्फ जान के पूर्व तक के समस्त नवाबो का इतिहास-सम्मत-वर्णन हुआ है। कवि ने यह स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया है कि वह सत्य बात कहेगा। पिता जान कर अत्युक्तिपूर्ण वर्णन नही करेगा—

कहत जान अब बरनि हौ अलिफ खान की बात।
पिता जानि बढिना कहो भाखो साची बात।

(श्याम खाँ रासा)

इस ग्रन्थ मे वश के इतिहास वर्णन के अतिरिक्त अलिफखाँ के चरित्र का विशद वर्णन हुआ है। अलिफ खाँ के मल्लू खाँ, मुगलो एव खिदर खाँ के साथ हुए युद्धो का वर्णन बड़े विस्तार से हुआ है।

३—धार्मिक चरित-काव्य—

(अ) जैन कवियों के चरित-काव्य—इस कोटि के काव्य मे जिन चरित्रो का वर्णन हुआ है वे दो प्रकार के है—(१) जो जैन धर्म से सम्बन्ध रखते है और (२) जो हिन्दू पौराणिक आख्यानो से ग्रहण किये जाकर जैन धर्म के आरोप के साथ वर्णित हुए है। प्रथम कोटि के चरित्रों मे धर्मदत्त, श्रीपाल, सुदर्शन सेठ, मुनिपतिराजर्षि, ललितांग, यशोधर, मदन नरिन्द, जम्बू स्वामी, भविष्यदत्त आदि प्रमुख है। उक्त सभी चरित्र जैनियो मे बड़े ही लोकप्रिय रहे है और उनका अपभ्रंश काल से लेकर आलोच्य-काल तक अनेक कवियो द्वारा वर्णन हुआ है। जैन मुनि एव कवियो के समक्ष एक मात्र उद्देश्य अपने सिद्धान्तो का प्रचार एव सामान्य-जन को उपदेश देना ही था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के हेतु उन्होंने अनेक प्राचीन कथानको के साथ-साथ नवीन कथानको को भी अपनाया। दूसरी कोटि के चरित्रो मे प्रद्युम्न, राम-सीता, नल-दमयन्ती आदि हिन्दू पौराणिक चरित्र है, जिन्हे उनकी लोकप्रियता के कारण जैन धर्म के आरोप के साथ ग्रहण किया गया है। इन जैन कवियो के सभी चरित-काव्यो मे अद्भुत कथानक साद्दश्य मिलता है। प्राय: सभी चरित-काव्यों मे एक प्रेम-कथा होती है जिसमे गुण श्रवण, चित्र-दर्शन अथवा स्वप्न दर्शन द्वारा प्रेम का प्रारम्भ होता है। नायक, नायिका प्राप्ति के लिए अनेक कष्टो को झेलता हुआ निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। नायिका की तीव्र विरह दशा के चित्रण के पश्चात दोनो का मिलन होता है। कहीं-कहीं मिलन के पश्चात् पुन.

वियोग हो जाता है। पुन. मिलन के पश्चात् शान्तरस में कथा का अन्त होता है। कथासाम्य के अतिरिक्त इन काव्यो मे स्वरूप साम्य भी अद्भुत है। जिन की स्तुति, सरस्वती वन्दना के पश्चात् कथा के उद्देश्य-कथन के तुरन्त पश्चात् ही जम्बूद्वीप के अन्तर्गत कथा-स्थल से सम्बन्धित देश, नगर का वर्णन होता है। चरित-नायक के लिए यात्रा का विधान होता है। कथा के चरित्रो मे पारलौकिक एवं आश्चर्यपूर्ण तत्वो का समावेश किया जाता है। पशु-पक्षी भी मानव के समान नायक की सहायता करने में समर्थ होते हैं। आख्यान काव्यो मे गृहीत अनेक कथानक रूढियो का आवश्यकतानुसार प्रयोग सभी मे प्राप्त होता है। कवि का ध्यान कथा कहने पर ही अधिक रहता है। भाव-पूर्ण स्थलों का वर्णन करने मे उसकी वृत्ति अधिक नहीं रमती इसीलिए यह ग्रन्थ वर्णन प्रधान ही हैं। ग्रन्थान्त मे नायक के चरित के जैन धर्म सम्मत गुण विशेष का उल्लेख कर, उसका अनुकरण करने वाले को सुख एवं आनन्द की प्राप्ति की कामना के साथ ही ग्रन्थ समाप्त हो जाता है।

जैन-साहित्य मे अनुवादित ग्रन्थों की सख्या ही अधिक है। परवर्त्ती जैन-साहित्य के प्रणेता गृहस्थ अथवा जैन नायक ही रहे। उनकी काव्य-रचना का उद्देश्य धर्म की व्याख्या करना ही था। अत. किसी भी धर्म विरुद्ध बात लिखने की आशंका से बचने के लिए उन्होंने अपने पूर्ववर्त्ती आचार्यों का अनुशरण किया और उन्ही चरित्रों का वर्णन किया जो पूर्ववर्त्ती आचार्यो द्वारा ग्रहण किये जा चुके थे।

इन धार्मिक चरित-काव्यों मे चरित-नायक के विशिष्ट गुण बखान करना ही कवि का उद्देश्य होता है। कथा की घटनाओ का चुनाव भी उसी के आधार पर किया जाता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ एव अन्त मे गुण विशेष का स्पष्ट उल्लेख किया जाता है। धनदत्त चरित्र मे शुद्ध व्यवहार का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। श्रीपाल चरित्र मे सिद्ध चक्र व्रत लेने मे उसके कुष्ट रोग से छुटकारा पाने, राज्य प्राप्ति एव पुराणो में उल्लेख होने का वर्णन है। ललितांग चरित्र, एव जम्बू स्वामी चरित ऐतिहासिक चरित्र एव घटनाओं मे सम्बन्धित काव्य है। अत. उनके अनुकरणीय गुणों का इन ग्रन्थो मे वर्णन हुआ है। सुदर्शन चरित्र मे सुदर्शन के शील का वर्णन है। यह चरित्र जैन कवियो को बड़ा प्रिय रहा है। अनेक 'कथा' 'चरिउ', 'चरित' 'प्रबन्ध' अथवा 'रास' संज्ञाओ के साथ विभिन्न शैलियो मे इसका बखान हुआ है। इस कथा से जैनियो मे प्रचलित कथाओं के स्वरूप को समझने मे बडी सहायता मिलेगी, इसलिए इस कथा का सक्षेप मे यहाँ वर्णन किया जाता है—

'मगध देश के राजगृह नामक नगर में श्रेणिक महाराज राज्य करते थे। उनकी पट्टमहिषी का नाम चेलना देवी था। एक समय वर्तमान ऋषि राजगृह

पधारे, उनके आगमन की सूचना पाकर राजा नगर-निवासियों सहित उनके दर्शनार्थ पहुँचा। राजा के प्रार्थना करने पर ऋषि उपदेश प्रारम्भ करते है—"भरत क्षेत्रान्तर्गत अगदेश मे चम्पापुर नामक सुन्दर नगर था, वहाँ महाराज धाडीवाहन राज्य करते थे। उनकी महारानी अभया थी। चम्पापुर मे ऋषभदास नामक एक अत्यन्त समृद्धिशाली श्रेष्ठि रहता था। उसकी पत्नी का नाम अरुहदासी था एक गोपाल श्रेष्ठि का परिचित था। गगा मे स्नान करते समय गोपाल दैवयोग से मर जाता है। मरते समय पंच परमेष्ठि स्मरण करने के कारण उसे ऋषभदास के घर मे जन्म मिलता है और उसका नाम 'सुदर्शन' रखा जाता है। बड़े होने पर सुदर्शन का विवाह सागरदत्त श्रेष्ठि की पुत्री मनोरमा से होता है। सुदर्शन बहुत रूपवान् था। धाडीवाहन राजा की रानी अभया उस पर आसक्त हो जाती है और वह अपनी चतुर परिचारिका पण्डिता के द्वारा सुदर्शन को बुलवाती है। सुदर्शन किसी प्रकार आता है। सब प्रकार अपने को असफल पाकर निराश होकर कुटिल अभया चिल्ला उठती है—'लोगो, दौडो, यह बनिया मुझे मारे डालता है—'कर्मचारी दौडकर आते है और उसे बन्दी बना लेते है। एक वितर (दैवी पुरुष) प्रकट होकर सुदर्शन की रक्षा करता है। धाड़ीवाहन और 'वितर' मे युद्ध होता है, धाडीवाहन परास्त होकर सुदर्शन की शरण मे आता है। यथार्थ समाचार का पता लगने पर धाडीवाहन सुदर्शन को राज्य देकर विरक्त होना चाहता है। सुदर्शन भी विरक्त होना चाहता है। अभया और पडिता दोनो मर जाती है, सुदर्शन मरणोपरान्त स्वर्ग को जाता है।" पच नमस्कार का माहात्म्य कहकर थोडा सा परिचय देकर कवि ग्रन्थ को समाप्त करता है।[1]

जैन धर्म के अधिकाश चरित-काव्यो की कथा के स्वरूप का इससे आभास हो जाता है। चरित-नायक के गुणो का बखान एव उससे शिक्षा ग्रहण करने का उपदेश ही इन ग्रन्थो मे प्रधान रूप मे चित्रित किया गया है। प्रसगवश स्त्री-सौन्दर्य-वर्णन के अन्तर्गत नख-शिख, नायिकाभेद, प्रकृति-चित्रण आदि का विस्तृत वर्णन हुआ है फिर भी कवि ने बीच-बीच मे जैन धर्म के सिद्धान्तो के स्पष्टीकरण द्वारा 'वैराग्य' के सामने 'अनुराग' को उभरने का अवसर नही दिया है। इन कवियो को बीच-बीच मे अनेक उपदेश पूर्ण स्थलो को भी रखना पडा है। इतना सब होने पर भी ये प्रेमकाव्य की कोटि के ग्रन्थ है जिन पर धर्म का पूर्ण आरोप किया गया है।

जैन कवियो के जहाँ हिन्दू-पौराणिक चरित्रो को ग्रहण किया है वहाँ उनमे अपनी मान्यताओ के आधार पर कुछ परिवर्तन भी कर दिया है। आलोच्य

[1] राजस्थान पुरातत्व मन्दिर मे सग्रहीत हस्तलिखित प्रति के आधार पर।

काल में प्रद्युम्न, राम, हनुमान एवं नलदमयन्ती के चरित्र ही कवियों द्वारा अपनाए गए। अग्रवाल कृत 'प्रद्युम्न चरित्र' नामक ग्रन्थ जो आलोच्य-काल की इस प्रकार की सर्वप्रथम रचना है, में जैन कवि द्वारा प्रद्युम्न के जन्म, उसका राक्षस द्वारा अपहरण, शम्बरासुर आदि शत्रुओं का वध, लौटकर माँ-बाप को दर्शन देना तथा जिन की शरण में जाकर मोक्ष प्राप्त करने की कथा का वर्णन है। कथा हिन्दू पुराणों के आधार पर ही है लेकिन उसमें जैन धर्म की मान्यताओं के अनुसार कुछ परिवर्तन कर दिया गया है। प्रत्येक चरित्र-नायक का अन्त में जिन की शरण में जाना, जैन धर्म के आरोप को स्पष्ट करता है। राम के चरित्र-वर्णन के लिए जैन कवियों के समक्ष स्वयम्भूदेव कृत 'पउमचरिउ' ग्रन्थ उपस्थित था। पउमचरित्र (जैन रामायण) की अनेक घटनाओं में 'वाल्मीकि रामायण' अथवा 'रामचरितमानस' की घटनाओं से भिन्नता है। जैनियों के अनुसार दशरथ की पटरानी का नाम अपराजिता था, जो कि पद्म (राम) की माता थी। राम ने जनक को अपनी वीरता से बड़ा प्रभावित किया। राम ने उनके अनेक शत्रुओं को भी पराजित किया। राम की वीरता से प्रभावित होने के कारण जनक ने सीता को राम से ब्याह देने का निश्चय किया। लेकिन सीता पहिले से ही विद्याधर कुमार चन्द्र गति को वाग्दत्ता थी; इसीलिए स्वयंवर किया गया। शेष कथा लगभग मिलती जुलती है। हाँ, जैन-मुनि-दीक्षा का प्रभाव अत्यधिक दिखाया गया है। इसी दीक्षा के प्रभाव से जनक, दशरथ एवं राम ने मोक्ष का अधिकार प्राप्त किया। राम के साथ हनुमान के चरित्र पर भी काव्य ग्रन्थ लिखे गए। इस चरित्र को भी जैनियों ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया। संक्षेप में हनुमच्चरित्र की कथा इस प्रकार है—

'प्रह्लाद की रानी से पवनंजय कुमार का जन्म हुआ। महेन्द्र विद्याधर को अंजना नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। बड़े होने पर दोनों का विवाह होना निश्चित हुआ। जब विवाह के तीन दिन शेष रहे तो पवनंजय अपनी ससुराल पहुँचा और अलक्ष होकर अंजना के महलों में गया। महलों में अंजना की सखियाँ पवनंजय तथा इन्द्रजीत आदि की प्रशंसा कर रही थीं। अंजना मौन होकर बिना किसी हर्ष-विषाद के सखियों की बात सुन रही थी। यह देखकर राजकुमार लौट आया और उसने विवाह न करने का विचार किया। माता-पिता के आग्रह करने पर वह विवाह करने को प्रस्तुत हुआ, लेकिन अंजना को अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगा। अंजना दुखी होकर एकान्तवास में लीन हुई। पवनंजय रावण की सहायता करने के लिए कुबेर से युद्ध करने जाने लगा। अंजना ने उसे वहाँ जाने से रोका। पवनंजय उसकी बात न मानकर घर से चल दिया और मानसरोवर पहुँचा। वहाँ चकवाक मिथुन की वियोगावस्था से विवश होकर घर लौटा और विमान द्वारा अंजना के महलों में जाकर उससे संयोग किया तथा अपना चिन्ह देकर वहाँ से विदा हुआ। अंजना को

गर्भ रह गया। सास-ससुर को जब यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने पुत्र द्वारा दिये हुए चिन्ह को देखकर भी उस पर विश्वास नहीं किया और उसे घर से निकाल दिया। पिता ने भी उसकी सहायता नहीं की। अंजना के पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे अंजना का मामा अपने घर ले गया। मार्ग मे बच्चा विमान से गिर पड़ा, लेकिन बच गया। शिला पर गिरने के कारण उसका नाम शिलाचूर और द्वीप के नाम पर उसका नाम हनुमान पड़ा। उधर पवनंजय लौटकर अंजना को तलाश करने लगा। अनेक कठिनाइयों के पश्चात् दोनों का मिलन हुआ। हनुमान ने अपने पिता के समान कई युद्धों में रावण की सहायता की और तभी उसका विवाह सूर्पणखा की पुत्री अनग पुष्पा एव सुग्रीव सुता पद्मरागी से हुआ। बाद मे उन्होंने राम की सहायता की। जीवन के अन्तिम दिनो में विरक्त होकर इन्द्रिय दमन द्वारा आत्मा को शुद्ध किया और परमपद प्राप्त किया।

जैन कवियो ने हिन्दू पुराणो के उन्ही कथानको को ग्रहण किया जो लोक-प्रचलित थे और जिनके चरित-नायकों के गुण जैन धर्म की मान्यताओ के मेल मे थे। ये समस्त काव्य खंडों मे विभाजित हैं और दोहे-चौपाई की शैली मे लिखे गए है।

(आ) **हिन्दू कवियो के सन्त एवं महात्माओं से सम्बन्धित चरित-काव्य**—आलोच्य-काल के अनेक कवियो ने अपने गुरुओं एव प्रसिद्ध सन्तों अथवा महात्माओ के चरित्रो का वर्णन किया। ये जीवन-चरित हैं। इन ग्रन्थों मे कथा चरित-नायक के जन्म अथवा जन्म के सम्बन्ध मे किए गये उल्लेख मात्र से प्रारम्भ होकर उसकी मृत्यु तक अथवा उसके चरम उत्कर्ष तक चलती है। शिष्य कोटि के कवियो की रचनाएँ होने के कारण इन ग्रथो मे अनेक चमत्कारी तत्त्वो का भी समावेश हुआ है। कुछ सीमा तक ये रचनाएँ चरित-नायको के विषय मे आवश्यक सूचनाएँ देने में भी समर्थ रही हैं। चेतनदास कवि ने अपने ग्रथ 'प्रसग पारिजात' मे गुरु रामानन्द का जीवनचरित लिखा। अज्ञात कवि कृत 'वल्लभाख्यान' वल्लभाचार्य के जीवन-चरित से सम्बन्धित रचना है। बिहारीवल्लभ ने अपने गुरु भगवतरसिक का जीवनचरित लिखा, जिसमें उनके जीवन-चरित से सम्बन्धित अनेक अलौकिक बातो का समावेश किया। कवि ने अपने गुरु को ईश्वर अवतार के रूप मे चित्रित किया है। बेनीमाधव दास कृत 'गुसाई चरित' मे गोस्वामी तुलसीदास का जीवन वृत्त, उनकी रचनाएँ, तथा अनेक अलौकिक प्रसग आदि का वर्णन है।[1] जीवन-चरित लिखने मे सर्वाधिक कार्य 'अनन्तदास' ने किया है। उन्होंने प्रसिद्ध ८ सन्तो की परिचई प्रस्तुत की है। इन ग्रन्थो मे कवि

---

[1] गोस्वामी तुलसीदास परिशिष्ट 'मूल गोसाई चरित' हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग १६३१ ई०।

ने भगवान के गुणों का बखान करने के लिए उनके भक्तों के गुणों का गान किया है--

> माँगू भगति अरु ब्रह्म गियाना। कथू भगति जिन पादि पुराना ॥२॥
> भगत हेत हरि के गुन गाऊँ। गुर परसाद परम पद पाऊँ ॥३॥
> (नामदेव की परची-- हस्तलिखित प्रति)

इन परिचइयों मे कवि के जन्म से कथा का प्रारम्भ करने का आग्रह नही प्रतीत होता। सरस्वती एव गुरु की वन्दना के पश्चात् तुरन्त ही कवि का परिचय देकर उसके गुणों एव भक्ति का वर्णन करते हुए उस पर भगवान के अनुग्रह का वर्णन किया गया है--

> सुणो तिलोचन की अधिकाई। जाकै कैसो अती यौ रहाई।
> बहौत आचार करे विधि पूजा। हरि सूं हेत और नही दूजा ॥१॥
> सेवा करत बौहोत दिन बीना। काया कष्ट सबै तन जीला।
> घर मे सेवक नाहि कोई। त्रिया पुरुष दुष पावै दोई ॥२॥
> प्रीतिभाव भावना देषी। अदि हरि आये चत्र से मेकी।
> भगति विट्ठल ऐक बुधि विचारी। दिन रहै टहल करौ दिन चारी ॥३॥
> (त्रिलोचन की परची-- हस्तलिखित प्रति)

वर्णन का लगभग यही क्रम सभी ग्रन्थों मे प्राप्त होता है। सभी परिचइयो में भगवान के अनुग्रह, भक्तो को दर्शन देना, उनके कार्य करना, उनके दुख दूर करने के लिए तुरन्त उपस्थित होना, उनके यहाँ सेवक बनना आदि अलौकिक बातो का समावेश हुआ है। कबीर की परची मे ऐसी अनेक अलौकिक बातो का समावेश मिलता है--'भगवान के माँगने पर बुना हुआ समस्त कपडा दे देना, भगवान द्वारा कबीर के घर अन्न पहुँचाना, काशी के भक्तो द्वारा भोजन की माँग करने पर भगवान द्वारा उनकी सहायता करना कबीर द्वारा जगन्नाथ के पडे के कपडे मे लगी आग को काशी मे बैठे-बैठे बुझा देना 'सिकन्दर द्वारा कबीर को जंजीरो मे बँधवा कर जल मे डलवाना तथा कबीर का न डूबना, अप्सरा द्वारा उसको फुसलाना,[1] आदि-आदि ;"

ऐसा प्रतीत होता है कि अनन्तदास ने अपनी आठो परिचइयों में भगवान के इन प्रसिद्ध भक्तो के विषय मे जिन चमत्कारी बातो का समावेश किया है, वे सम्भवतया उस काल तक इन भक्तो के सम्बन्ध मे प्रचलित हो चुकी थी। कवि का उद्देश्य

[1] कबीर परिचई--हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशी, प्रति सख्या ६७४ के आधार पर।

भगवान के गुणगान के साथ-साथ उनके भक्तो के अलौकिक कृत्यों एव भगवान के उन पर अनुग्रह का वर्णन करना ही है।

सभी परिचइयाँ विश्रामों मे विभक्त है। कबीर की परिचई सबसे बड़ी है और उसमे ६ विश्राम है। त्रिलोचन की परची सबसे छोटी है जिसमे २ विश्राम है। अनन्तदास के समान ही दादू के शिष्य जनगोपाल ने भी अपने गुरु का जीवन-चरित 'दादू जन्म लीला परची' नाम से लिखा। सभी दृष्टियो से यह ग्रन्थ अनन्तदास की परिचइयो के मेल मे ही है। ये समस्त ग्रन्थ चरित-काव्यो के लिए प्रचलित दोहा-चौपाई शैली मे ही लिखे गए। दोहे-चौपाई का कोई निश्चित क्रम इनमे नही मिलता। कही आठ तथा कही १० या अधिक चौपाइयो के बाद एक दोहा दिया गया है।

(इ) **आत्म चरित**—आलोच्य-काल मे जैन कवि बनारसीदास का 'अर्द्ध-कथानक' इस प्रकार का अकेला ग्रन्थ प्राप्त होता है। कवि ने अपने जन्म से लेकर ग्रन्थ के रचनाकाल (१६९८) तक की घटनाओ का वर्णन किया है। सम्पूर्ण जीवन का वृत्तान्त न होने के कारण ही इसका नाम अर्द्ध कथानक रखा गया है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि ने अपनी त्रुटियो एव कमियों को छिपाने का प्रयत्न न करके उन्हे स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया है। आत्म-चरित के लिए यह अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। अपनी युवावस्था की दशा मे अपने उच्छृङ्खल एव रसिक स्वभाव का वर्णन इन्होने स्पष्ट रूप से किया है। कुष्ट रोग से पीडित होने पर इन्हे कुछ चेत हुआ और इन्होंने अपने जीवन की धारा को धर्म की ओर मोडने का प्रयत्न किया। अपनी शृङ्गार रस पूर्ण प्रारम्भिक रचनाओ को इन्होने नदी मे विसर्जित कर दिया और ज्ञान-उपदेश पूर्ण कविताओ की ओर अग्रसर हुए। यह ग्रन्थ भी दोहा-चौपाइयो वाली प्रचलित शैली में लिखा गया है।

विशेषताएँ—इस रूप के वर्णित-विषय के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लोक-प्रचलित पौराणिक आख्यान एव धार्मिक पुरुषों के चरित्र जिनके प्रति समाज मे भक्ति, श्रद्धा, प्रेम अथवा आदर का भाव था, लोक के समक्ष प्रस्तुत कराने मे इस काव्यरूप ने बडा योग दिया। इस काव्यरूप की कुछ विशेषताओ का वर्णन इसके सामान्य लक्षणो के अन्तर्गत हो चुका है। यहाँ संक्षेप मे इस काव्यरूप की कुछ अन्य विशेषताएँ दी जाती है—

१—सभी चरित-काव्यों मे मगलाचरण एव सरस्वती वन्दना प्राप्त होती है। जैन कवियों ने सरस्वती वन्दना इस कारण की है कि सरस्वती की कृपा के बिना काव्य-रचना सम्भव नही है।

२—सभी चरित-काव्यो मे कथानक रूढियो का निर्वाह हुआ है। जैन कवि का आत्म-चरित्र इसका अपवाद है।

३—इन काव्यो का विभाजन सर्गो मे हुआ है जिनकी सज्ञा काण्ड, खण्ड, विश्राम, प्रकाश, अध्याय आदि दी गई है। सर्गो की सज्ञा उस खण्ड मे वर्णित कथा के आधार पर ही मिलती है। कुछ छोटे-छोटे चरित-काव्यो मे इस विभाजन का अभाव है। नरोत्तमदास कृत सुदामा चरित इसका उदाहरण है।

४—अधिकाश काव्य दोहा-चौपाई शैली मे ही लिखे गये है। राजस्थान के कवियो ने ऐतिहासिक चरित-काव्यो मे सवैया, कवित्त भुजगी, नराइच, दोहा आदि छन्दो का भी प्रयोग किया। नरोत्तमदास का सुदामा चरित कवित्त-सवैया मे लिखा गया है और उसमे कथा प्रसग को जोडने के लिए बीच-बीच मे दोहो का प्रयोग हुआ है।

५—इन चरित-काव्यो के अन्तर्गत प्रसगवश अन्य काव्य-रूपो का समावेश भी हुआ है। अपभ्र श के चरित-काव्यो के समान उच्च कोटि के चरित-काव्यो मे स्तुति एव वन्दना के अनेक स्थलों का समावेश किया गया है जहाँ हिन्दी और सस्कृत दोनो मे स्तुति का विधान है। एकाध ग्रन्थ मे 'बारहमासे' की भी योजना है।

३—रास

रास (रासक) की परिभाषाएँ—रास या रासक के विषय मे अभिनव गुप्त की 'अभिनव-भारती' मे उल्लेख हुआ है। अभिनव गुप्त ने उसे गेय रूपक का एक भेद माना है—

अनेक नर्तकी यौज्य चित्रताल लयान्वितम्।
आचतुष्पष्टि युगलाद्रासक मसृणोद्धतम्।[१]

इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि इस गेय रूपक मे ताल, लय का विशेष स्थान होता था और अधिक से अधिक ६४ जोड़े इसमे भाग ले सकते थे। भरत के नाट्यशास्त्र मे रासक को एक उपरूपक माना गया है और उसके ताल रासक, दण्ड-रासक तथा मण्डल रासक तीन भेद भी बताए गये हैं।[२] भामह के नाटक, शम्या, रासक एव स्कन्धादि को अभिनेयार्थ काव्य माना है।[३] परवर्त्ती आचार्यो ने भी इसी

[१] भरतनाट्यशास्त्र भाग १, पृष्ठ १८३।

[२] 'तालरासक नामस्यात तत्त्रधा रासक स्मृतम्। दण्ड रासकम् कनु तथा मण्डल रासकम्।'

[३] नाटक द्विपदी शम्या रासक स्कन्धादियत, उक्त तद्भिनेयार्थं मुक्तोऽन्यैस्तस्य विस्तर।—२४

विभाजन का स्वीकार किया है। हेमचन्द्र क 'काव्यानुशासन' मे रासक को भी गेय माना गया है—

गेयं डोम्बिका भाण प्रस्थान शिङ्गक भाणिका प्रेरण रामाक्रीड।
हल्लीसक रासक गोष्ठी श्रीगदित रागकाव्यादि।[1]

हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने 'नाट्यदर्पण' में 'रासक' का लक्षण हेमचन्द्र से भिन्न रूप मे तो दिया परन्तु उसके गीत नृत्य तत्त्व को पूर्णत स्वीकार किया—

षोडश द्वादशाष्टौ वा यस्मिन् नृत्यन्ति नायायिका:।
पिंडीबन्धादि विन्यासे रासक तदुदाहृतम् ॥
पिंडनात् तु भवेत् पिंडी गुम्फनाच्छृङ्खला भवेत्।
भेदनाद् भेद्यको जातो लताजालापनोदत:।
कामिनीभिर्भुवो भतुर्श्चेष्टितं यत्तु नृत्यते।
रासाद् वसन्तमासाद्य स ज्ञेयो नाट्यरासक ॥[2]

वाग्भट्ट ने हेमचन्द्र के अनुसार ही उसे अन्य गेय रूपको के समान एक गेय-रूपक स्वीकार किया। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण मे रासक के लक्षणों पर विचार किया और पात्र, वृत्ति आदि का वर्णन करके उसके पूर्ण स्वरूप की व्याख्या करने की चेष्टा की—

रासक पचपात्र स्यान्मुखनिर्वहणान्वितम् ।
भाषा विभाषा भूयिष्ठं भारती कैशिकी युतम् ।
असूत्रधारमेकांक सवीथ्यग कलान्वितम् ।
श्लिष्टनान्दीयुत ख्यातनायिक मूर्खनायकम् ।
उदात्तभावविन्याससंश्रित चोत्तरोत्तरम् ।
इह प्रतिमुख सधिमपि केचित्प्रचक्षते ।[3]

ऊपर दी गई परिभाषाओ के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रासक प्रारम्भ मे लोक-प्रचलित गेयरूपक था, और बाद मे उसकी लोकप्रियता के कारण इसे नाट्याचार्यो द्वारा नाट्य रासक का रूप प्रदान दिया गया।

स्वयभू ने 'स्वयभू छन्दस्' मे रासक नाम के एक छन्द का भी उल्लेख किया है, जो २१ मात्राओ का होता था। डा० हरिवल्लभ भायाणी स्वयंभू छन्दस् के आधार पर रासक को २१ मात्राओ का छन्द मानकर 'सन्देशरासक' मे उस छन्द

---

[1] हेमचन्द्र काव्यानुशासन ८।४।

[2] नाट्यदर्पण, ओरियटल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा १९२९ ई० भाग १, पृष्ठ २१४।

[3] साहित्य दर्पण पृष्ठ १०४-१०५।

के प्रयोग होने की बात कहते है। उनके मत से सन्देशरासक के एक तिहाई छन्द 'रासक' छन्द ही है।[1] स्वयभू के काल मे रासाबन्ध के प्रचलित होने का भी इसमे पता चलता है। स्वयभू छन्दस् के अनुसार रासाबन्ध मे घत्ता, छड्ड्रणिया और पद्धडिया का प्रयोग होता था।[2] इस प्रकार प्राचीन समय मे रासक छन्द एवं रासा बन्ध दोनो के प्रचलित रहने का प्रमाण मिल जाता है।

डा० दशरथ ओझा 'रास' या 'रासक' को सस्कृत नाटको से अपहृत न मानकर इसे देशीय नाटक ठहराते है और इसका सम्बन्ध गोपी-ग्वालो मे प्रचलित रास से मानते है।[3] शारगधर के 'सगीत रत्नाकर' मे दी हुई रास के सम्बन्ध की कथा द्वारा भी रास के मूल रूप पर कुछ प्रकाश पडता है। इस कथा के अनुसार शिव ने तांडव तथा पार्वती ने लास्य नृत्य को प्रकट किया। पार्वती ने इसे बाणासुर की बेटी उषा को सिखाया जो कृष्ण के नाती अनिरुद्ध की व्याही थी। उषा ने उस नृत्य को द्वारावती की गोपियो तथा गोपियो ने सौराष्ट्र की नव-युवतियो को सिखाया, जहाँ से यह समस्त विश्व मे फैला।[4] सौराष्ट्र एवं गुजरात में रासक, रास, गर्भा-गर्भी लोक-नृत्य आज भी प्रचलित है जो उक्त कथा तथा डा० ओझा के मत की पुष्टि करते है। 'श्री मद्भागवत' मे वर्णित गोपीकृष्ण रास स्वच्छन्द विहार के रूप मे है। इस प्रकार के वर्णन आभीरो के ससर्ग के फलस्वरूप हुए है, ऐसा कुछ विद्वानो का मत है। अप भ्रश भाषा आभीरो की भाषा थी एव प्रारम्भिक रास ग्रन्थ अपभ्रंश मे ही लिखे गए। इससे यह समझा जा सकता है कि आभीरो का 'रास' से गहरा सम्बन्ध है। और सम्भवत इसी कारण राधाकृष्ण के नृत्य को रास की संज्ञा दी गई। डा० द्विवेदी सस्कृत की ऐहिकतापरक रचनाओ को आभीरो के संसर्ग के प्रभाव के कारण मानते है।[5] यह भी सम्भव है कि पार्वती द्वारा प्रगट किया गया लास्य नृत्य ही रास की उत्पत्ति का मूल हो जो प्रारम्भ मे सौराष्ट्र मे आभीरों मे प्रचलित होकर बाद मे अन्यत्र फैला हो। रास एव आभीरो के सम्बन्ध का ज्ञान हमें 'रास' शब्द के कोशो में दिये गये अर्थो से भी होता है। हेमचन्द्र के अनेकार्थ सग्रह ग्रन्थ मे 'रास क्रीडासु गोदुहाम भाषा श्रृंखल के', रास के विषय मे दिया है जिसका अर्थ 'ग्वालो की क्रीडा' तथा 'भाषा में श्रृंखलाबद्ध रचना' होता है।

---

[1] सन्देशरासक भूमिका, पृष्ठ ७६-७७।

[2] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ १०० से उद्धृत।

[3] हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृष्ठ ७५-७६।

[4] सिघी जैन सिरीज न० ३३, 'लिटरेरी सर्किल आफ महामात्य वस्तुपाल एड इट्स कन्ट्रीब्यूसन टू सस्कृत लिटरेचर', पृष्ठ १५१।

[5] हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ११३-११४।

इससे रास आभीरो मे प्रचलित गेयरूपक तथा रासक काव्य दोनो होते हैं। अत. इस अर्थ से भी आभीरो मे प्रचलित गेयरूपक अभिनीत होने के लिए उस काल तक काव्य मे प्रयोग होने लगा, ऐसा कहा जा सकता है और यह कथन ऊपर के कथनो के मेल मे है।

अत: यह समझा जा सकता है कि रास का सर्वप्रथम प्रचार आभीरो के प्रदेश (सौराष्ट्र) मे हुआ। धीरे-धीरे उसकी लोकप्रियता बढती गयी और कालान्तर मे यही प्राकृत मे साहित्यिक रूप मे आकर अभिनीत होने लगा। उसका लोक-प्रचलित रूप आज भी गुजरात मे प्रचलित गर्बा नृत्यों मे देखा जा सकता है। उसका साहित्यिक रूप तो आगे चलकर बिलकुल ही बदल गया और उसका नृत्य-तत्त्व पूर्णत समाप्त हो गया।

अपभ्रंश भाषा के प्राचीन रास ग्रन्थों से इस काव्य रूप के तत्कालीन स्वरूप का ज्ञान होता है। रास काव्य जनता के समक्ष अभिनय किये जाने को लिखे जाते थे। इसका प्रमाण 'रेवतगिरि रास' की अन्तिम पंक्तियों से मिलता है—

> रगहि एरमइ जौरासु सिरि विजयसेन सूरि निम्मविउए।
> नेमि जिग्गु तूसइ तासु अविक पूरइ मगि रली ए।

'श्री विजयसेन रचित इस रास को जो उत्साह के साथ खेलेगा, जिननेमि उससे प्रसन्न होगे और देवी अम्बिका उसकी इच्छाओं की पूर्ति करेगी'। इस कथन का तात्पर्य यह है कि रेवतगिरि रास के लिखने के समय तक 'रास' अभिनीत होने लगे थे, लेकिन प्रारम्भिक रास ग्रन्थ भी पढ़ने तथा अभिनय करने को लिखे गए, इस विषय में कुछ कहना कठिन है। मुनि जिनविजय जी के अनुसार प्रारम्भ मे रासक पढने के लिए नही बल्कि नृत्य एवं गान के लिए लिखे गए। प्रारम्भ मे रास लोक-नृत्य एव लोग-गीतो के रूप मे साहित्य मे आया और कालान्तर मे उसके दो भेद हो गए—१ नृत्य तथा गान के लिए, २. पढने तथा अभिनय करने के लिए।[1] निश्चय ही रास का सम्बन्ध प्रथम प्रकार मे है। जैन धर्म के आचार्यो द्वारा अपनाये जाने के कारण इसके नृत्य एव गान तत्त्व समाप्त हो गये। जिनदत्त सूरि कृत 'उपदेश रसायन रास' गेय काव्य है और पद्धडिया बद्ध होने पर भी गीत-कोविदो द्वारा किसी भी राग में गाया जा सकता है। इसमे जैन मन्दिरो मे 'भैरव रास' एव 'ताल रास' का होना वर्जित ठहराया गया है। साथ ही धार्मिक नाटको के अभिनय का विधान किया गया है। नर्तन एव सगीत के विषयो के लिए बलभद्र

---

[1] सिंघी जैन सिरीज न० ३३, पृष्ठ १५०।

एव चक्रवर्तियो के चरित्र एव जिन गुणों के वर्णनो का विधान किया गया है।[१] 'प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह' मे प्रकाशित कवि सोलण की चच्चरी, जो लगभग उसी समय की रचना है, मे भी जिनवल्लभ की स्तुति के प्रसग मे इस बात का उल्लेख हुआ है कि उन्होने जैन मन्दिरो मे प्रचलित अनुचित गीत वाद्यो पर प्रतिबन्ध लगाया था और 'लगुड रास' जिसमें स्त्रियो और पुरुष परस्पर सामूहिक नृत्य करते थे, बद कराया था।[२] १३२८ वि० के लिखे हुए 'सप्तक्षेत्र रास' मे जैन मन्दिरो में प्रचलित दो प्रकार के रासो का वर्णन मिलता है—१. तालरास, २ लकुटरास। जैन मन्दिरो मे इस रास के खेलने का भी इसमे उल्लेख हुआ है।[3] कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी ने अपने ग्रन्थ 'गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर' मे १२०० वि० के कवि लक्ष्मण गणि की रचना 'सुपासना चरित्र' मे भी ताल को हाथ की ताली से बजाने का वर्णन किया है—'केवि उत्ताल ताला उल रासय'।[४] इस विवरण से यह ज्ञात होता है कि विक्रम की बारहवी, तेरहवी तथा चौदहवीं शताब्दी के पूवार्द्ध तक जैन मन्दिरो मे ताल, लकुट आदि रासो का प्रचलन था और उन नृत्यो मे विकृतता आ गई थी जिसे समाप्त करने के लिए जैन आचार्यो ने प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये थे। कालान्तर मे जैन मन्दिरो में से गीत एव नृत्य को समाप्त करके धार्मिक नाटको के अभिनय एव पौराणिक पुरुषो के चरित्रो का गान करने का विधान हुआ। फलत १५वीं शताब्दी से कथा-वस्तु प्रधान बडे-बडे रास रचे जाने लगे, जिनमे कथा-वस्तु का विस्तार मे वर्णन करके अन्त में जैन धर्म का आरोप कर दिया जाता था। ऐसे रास पढने तथा सुनने के लिए लिखे जाते थे।[५] नाहटा जी का मत है कि ऐसे लम्बे कथानक युक्त रास अभिनय के लिए न लिखे जाकर व्याख्यानो आदि में लम्बे समय मे गा-गा कर सुनाये जाते थे।[६] आज भी श्वेताम्बर जैन

---

[१] देवेन्द्र कुमार जैन—अपभ्रंश साहित्य (थीसिस), पृष्ठ १३६।

[२] वही वही वही।

[३] देखिए, 'प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह'—सप्क्षेत्र रास, छद ४८-४६, पृष्ठ-५२।

[४] देखिये पृष्ठ ८८।

[५] अनेक रास ग्रन्थो मे रासो के कहने और सुनने का उल्लेख हुआ है—

रतन विमल ए रचीउ रास भणता सुणतां पूरइ आस।

४६ धर्म बुद्धि मत्री रास

तहनु एहु प्रबन्ध मेणसिह जानिरा।

तासु दुख टलसि सुख मिलि धरहि विलसिह इन्दिरा। ३६।

(राजपाल कृत जम्बू स्वामी रास)

[६] ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८, अक ४—प्राचीन भाषा काव्यों की विविध सज्ञाएँ, निबन्ध।

समाज मे नियमित रूप से दोपहर तथा रात का व्याख्यान इन रासो को गाकर ही किया जाता है। तेरह पंथी सम्प्रदाय मे चातुर्मास्य में रात के समय नियमित रूप से मुनि केशराज रचित 'राम यशो रसायन रास' (ढाल सागर) की ढाले गाकर सुनाई जाती हैं।[1] जैन सिद्धान्तो की महत्ता प्रतिपादित करने एव उनका प्रचार करने के लिए जैन कवियो ने अपने चरित काव्यो के समान रास काव्यों मे भी प्रेम कथानकों को स्थान दिया। यह प्रेम-कथानक जैन धर्म के आरोप के साथ ही वर्णित हुए हैं। यदि इनके आदि अन्त के धार्मिक आरोप को हटा दिया जाय तो उच्चकोटि के प्रेमाख्यानो की कोटि के ग्रन्थ होंगे। प्रारम्भिक रास ग्रन्थो के समान ही आलोच्य काल मे भी कतिपय रास ग्रन्थो में मुख्यत धार्मिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया जाता था। ऐसे ग्रन्थो मे कही कथानक के माध्यम से और कही सम्वाद शैली के द्वारा सिद्धान्त निरूपण किया जाता था।

रास तथा रासो का सम्बन्ध—रासो शब्द कहाँ से आया एव इसका 'रास' से क्या सम्बन्ध है, इस विषय में विद्वानो ने बहुत से मत प्रकट किये है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' मे पृथ्वीराज रासो पर विचार करते समय 'सन्देश रासक' से उसका साम्य दिखाते हुए दोनो का एक ही परम्परा से विकसित होना स्वीकार किया है। उनके मत से सन्देश रासक मसृण गेय-रूपक है। रासो एव सन्देस रासक का प्रारम्भ भी एक ही प्रकार हुआ है। पर रासो के उद्धत प्रयोग प्रधान गेयरूपक होने से उनमे युद्ध वर्णन प्रयोगानुकूल है। युद्धो के साथ प्रेम लीलाओ का मिश्रित प्रयोग वक्तव्य विषय के अनुकूल ही हुआ है। अतः उन्होंने लिखा है—'इससे लगता है कि पृथ्वीराज रासो आरम्भ मे ऐसा कथा काव्य था जो प्रधान रूप से उद्धत प्रयोग प्रधान मसृण प्रयोग युक्त गेयरूपक था।[2] इस कथन से पृथ्वीराज रासो के मूल रूप पर प्रकाश पड़ता है। डा० माताप्रसाद गुप्त हिन्दी-साहित्य कोश में 'रासो काव्य' का वर्णन करते हुए रास एव रासो को दो प्रकार की कृतियाँ ठहराते है। उनके मत से रास 'गीतनृत्य परक' एवं रासो 'छन्द वैविध्य-परक' रचनाएँ है। वह 'रास' सज्ञक रचनाओ को भी रासो काव्य की एक धारा मानते है जो नृत्य गीत परक है और जिसकी उत्पत्ति लास्य नृत्य के चार भेद—शृ खला, लता, पिंडी तथा भेद्यक मे से लता के भेदो (दण्ड रासक, मडल रासक, नाट्य रासक) मे से एक भेद से हुई है।[3] दूसरी धारा का

---

[1] ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८, अक ४—प्राचीन भाषा काव्यो की विविध संज्ञाएँ, निबन्ध।

[2] हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ६०।

[3] हिन्दी साहित्य कोश—सम्पादक—डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि. पृष्ठ ६५६।

विकास अपभ्रंश साहित्य में प्रचलित 'रासा बन्ध', जिसमे रासा छद प्रधान रूप से तथा अन्य छदो का भी प्रयोग होता था और जो रासक कहलाते थे, से हुआ। और बाद मे सभी छद वैविध्य परक रचनाओ को रासा बध या रासक कहा जाने लगा। गीत नृत्य आदि से रहित विविध छदो मे वर्णित यह काव्य धारा ही रासो काव्य के नाम से अभिहित हुई जिसमे पाठ्यतत्त्व ही प्रमुख होता था। इन रासो काव्यो मे वह विषय वस्तु, शैली, रस आदि का कोई भी प्रतिबन्ध स्वीकार नही करते। उनके विषय धार्मिक भी हो सकते है और लौकिक भी। उनमे कथा वस्तु का समावेश भी हो सकता है और अभाव भी।

श्री अगरचन्द जी नाहटा के मत से भी रास एव रासो दोनो एक ही है। वह रस प्रधान रचना को रास मानते है—'राजस्थानी मे उक्त वर्णनात्मक ग्रन्थो की सज्ञा रासो प्राप्त होती है—लेकिन प्राचीन जैन रचनाओं के नामो मे तो रास शब्द का ही प्रयोग हुआ है, रासो का नही। १७वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध एव अठारहवी शताब्दी की कुछ विनोदात्मक रचनाओ मे रास और रासो शब्द भी मिलते हैं।"[1]

ऊपर रास एव रासो के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए तीन विद्वानो के मत उद्धृत किये गए हैं। यहाँ इन मतो की समीक्षा कर लेना आवश्यक है। सर्व प्रथम दूसरे एवं तीसरे मत पर विचार किया जाता है। डा० माताप्रसाद गुप्त के कथन को ध्यान पूर्वक देखने पर तीन प्रश्न सामने आते है—१. रास एव रासो का परस्पर कुछ सम्बन्ध है अथवा नही, यदि है तो वह कब स्थापित हुआ ? २. वह मुख्य रूप क्या था जिसकी 'नृत्यगीत परक' एव 'छन्द वैविध्य परक' दो धाराएँ आगे चल कर विकसित हुई ? तथा ३. यदि एक धारा मे दूसरी का विकास हुआ तो किससे, किसका और किस प्रकार ? स्पष्ट है कि उनके मत मे इन तीनो शकाओ का कोई समाधान नही है। नृत्यगीत परक धारा मे उन्होने जिन ग्रन्थो के नाम गिनाए है वे सब रचनाएँ विक्रम की १३वी शताब्दी से पूर्व की है और उन रचनाओ का परवर्ती काल (विक्रम की १७वी शताब्दी लगभग) मे विकसित 'रासो काव्य धारा' के ग्रन्थो से कोई सम्बन्ध नही है और न उनमें कोई साम्य है। केवल छन्दो की सख्या के आधार पर ही धाराओं का विभाजन भी समीचीन नही ठहरता। साथ ही विषय-वस्तु एवं शैली इन रूपो को समझने के लिए अत्यन्त ही आवश्यक तत्त्व हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने तो 'रास' एव 'रासो' के स्वरूप भेद पर विशेष विचार

---

[1] ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८ अंक ४, प्राचीन भाषा काव्यो की विविध संज्ञाएँ (निबन्ध)।

न करके सज्ञा भेद पर ही विचार किया है । अत उनके मत को विशेष महत्त्व नही दिया जा सकता ।

डा० द्विवेदी के मतानुसार 'पृथ्वीराज रासो' मूल रूप मे ऐसा कथा-काव्य था जो उद्धत प्रयोग प्रधान मसृण प्रयोग युक्त गेय रूपक था । सन्देश रासक एव पृथ्वीराज रासो की पक्तियो को तुलनात्मक रूप मे उपस्थित करके उन्होने इस मत को सिद्ध भी किया है। उन्होने यह विश्वास प्रकट किया है कि यदि रासो पृथ्वीराज के काल की रचना है तो उसमे रास-काव्य के कुछ लक्षण अवश्य रहे होंगे और इस प्रकार प्रारम्भिक रासो सज्ञक रचनाओं मे चरित-काव्य के अतिरिक्त रास काव्य के तत्त्वों का भी समावेश होता होगा। डा० द्विवेदी का यह कथन वास्तविकता के अत्यधिक निकट है। १६ वी शताब्दी के नरपति कवि की 'बीसलदेव रासो' रचना से उनके कथन की पुष्टि होती है। उक्त ग्रन्थ की 'रास' एव 'रासो' दोनो सज्ञाएँ प्राप्त होती है। दोनों सज्ञाओ के साथ यह प्रकाशित भी हो चुका है। इस ग्रन्थ मे कवि ने स्वय लिखा है कि यह गान करने के लिए गीत की भाँति रचा गया है—"नाल्ह रसायन नर भणई। हियडइ हरिष गायण भाई ।" (पृष्ठ ३ खड १) तथा अक्षर-अक्षर जोड कर किसी मडली द्वारा लोगों के बीच रास बनाकर सुनाने की बात भी कही गई है—

सरसति सामणी करउहउ पसाउ ।
खेला पइसइ माडली आखर आखर आणेज जोडि । (पृष्ठ ४)

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इसकी रचना गाने के ध्येय से हुई। कवि आगे भी कहता है—

गायो हो रास सुणै सब कोई ।
सामल्यो रास गंगाफल होई ।

(बीसलदेव रासो—पृष्ठ ५)

कवि ने इस ग्रन्थ की सज्ञा स्थान-स्थान पर 'रास' भी दी है लेकिन इसकी रासो संज्ञक प्रति भी प्राप्त होती है। सम्भव है यह सज्ञा भेद लिपि कर्त्ताओं पर पडे हुए स्थानीय प्रभाव का फल हो। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसकी सज्ञा 'रास' मानी है और इसका वर्गीकरण 'रास' ग्रन्थों की कोटि मे किया है।[1] वैसे जैनेतर कवि द्वारा लिखी हुई ऐतिहासिक चरित्रों के नाम के आधार पर 'रास' सज्ञक रचनाएँ प्राप्त नहीं होती। फिर भी यह ज्ञात होता है कि नरपति के समय तक रासो सज्ञक काव्यों मे गेय तत्त्व रहता था और उनका अभिनय भी सम्भव था। रास और रासो

[1] देखिये—हिन्दी साहित्य कोष, पृष्ठ ६५७।

मे उस काल मे भेद भी नही किया जाता था। पृथ्वीराज रासो मे भी प्रत्येक समय के अन्त मे 'इति चन्द विरचित पृथ्वीराज रास के—समय समाप्त' आता है जिसमे भी 'रास' शब्द का व्यवहार हुआ है। लेकिन रासो अपने वर्तमान रूप मे गेय नही है। इससे यह समझा जा सकता है कि उसके स्वरूप मे परवर्त्ती कथा-काव्यो एव ऐतिहासिक चरित्र-शब्दों के प्रभाव से पर्याप्त परिवर्तन आ गया है। रासो का प्रारम्भिक रूप सन्देश रासक के ही समान उद्धत प्रयोग प्रधान मसृण प्रयोग युक्त गेय रूपक रहा होगा जैसा कि द्विवेदी जी का अनुमान है।

अनेक विद्वान रास एव रासो दोनो मे कोई सम्बन्ध जोड़ना उचित नही ठहराते। एक ओर रास नैतिकता प्रधान एव वैराग्यमूलक एव दूसरी ओर रासो शृंगारमूलक एव युद्ध वर्णन प्रधान, फिर दोनो मे साम्य कहाँ है ?" दोनो का शैली-भेद भी उनके मत का समर्थन करता है। रास गेयरूपक है तो रासो पाठ्य काव्य। दोनो के बीच लक्षित होने वाले भेद का प्रधान कारण यह है कि वह विद्वान रास ग्रन्थों की प्रारम्भिक रचनाओ को लेकर उनकी तुलना परवर्त्ती काल के (१८वी शताब्दी के, जबकि इस रूप का पर्याप्त विकास हो चुका था) रासो ग्रन्थो से करते है। इन दोनों प्रकार की रचनाओ मे लगभग ४०० साल का अन्तर है जो दोनों के स्वरूप भेद का प्रधान कारण है। यदि १७वी शताब्दी मे लिखे गए चरित-प्रधान रास ग्रन्थों के स्वरूप से परवर्त्ती रासो ग्रन्थों की तुलना की जाय तो परिस्थिति बहुत कुछ स्पष्ट हो जायगी। जैन कवियो के रास ग्रन्थो मे शान्त-रस की प्रधानता है। अत उनमे रासो ग्रन्थों के समान उद्धत प्रयोग का अभाव है फिर भी जहाँ 'राम' के पौराणिक चरित्र को लिया गया है वहाँ रासो ग्रन्थों में युद्ध वर्णन भी प्राप्त हो ही जाता है। दो विभिन्न वर्गों के कवियो की रचना होने के कारण ही उनके स्वरूप मे यह भेद हुआ है। यह हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य है कि उसकी बहुत सी अमूल्य सामग्री अप्राप्य है और जो प्राप्त भी है वह विवादास्पद है। यदि प्रारम्भ के रासो-ग्रन्थ अपने मूल रूप मे उपलब्ध होते तो रास एवं रासो ग्रन्थो के सम्बन्ध पर और अधिक प्रकाश पड़ सकता था। अधिकांश रास ग्रन्थ तो आज भी जैन ग्रन्थागारों मे सुरक्षित हैं।

अत. यह कहा जा सकता है कि रास एव रासो एक ही मूल से निकलकर प्रारम्भिक दशा मे एक सी विशेषताओं से समन्वित रहकर कालान्तर मे दो विभिन्न वर्ग के कवियो द्वारा विभिन्न दृष्टिकोणो से अपनाये जाने के कारण एक दूसरे से इतने भिन्न हो गये कि कालान्तर मे उनमें सामजस्य स्थापित करना भी कठिन हो गया। इसका एकमात्र कारण प्रारम्भिक रासो ग्रन्थो का अप्राप्य होना अथवा विकृत रूप में प्राप्त होना ही है। रास के दो साहित्यिक रूपो—(१) नृत्य एव

गान के लिए तथा (२) पढ़ने और अभिनय करने के लिए—में से दूसरे से रासो काव्यो का जन्म हुआ जो बहुत अंशो मे गेय एवं अभिनयात्मक होते हुए भी मध्य-कालीन चरित-काव्यो के प्रभाव से एवं दरबारी कवियो द्वारा अपनाए जाने के कारण पाठ्य काव्यो की तरह विकसित हुए। इस काव्य-प्रकार मे युद्ध, विवाह आदि राजाओ से सम्बन्धित काल्पनिक अथवा वास्तविक घटनाओ का समावेश हुआ। राजाओ की प्रशंसा एवं उनके समक्ष सस्वर पाठ ही उनका उपयोग रह गया। कुछ रासो ग्रन्थ इसके अपवाद भी है जिनमे युद्ध वर्णन न होकर प्रेम वर्णन ही प्रधान है और वह उच्चकोटि के प्रेम-कथाकाव्य कहे जा सकते है। जल्ह कृत 'बुद्धि रासो' रासो संज्ञक रचना होने पर भी एक उच्चकोटि का प्रेमाख्यान काव्य है। आलोच्य काल के रासो अथवा रासा संज्ञक ग्रन्थ उस रासो परम्परा की प्रारम्भिक रचनाएँ है, जिसका पूर्ण विकास १८वी शताब्दी मे हुआ। परवर्त्ती काल के रासा संज्ञक ग्रन्थ प्रकाश, विलास, रूपक आदि संज्ञाओ वाले ग्रन्थो के समान ही चरित-काव्य थे। रासो काव्य-ग्रन्थो की यह धारा चरित-काव्य के एक विशेष अंग के रूप मे ही विकसित होती हुई दृष्टिगोचर होती है। अत आलोच्यकाल की रासो एव रासा संज्ञक रचनाओं को चरित-काव्य के अन्तर्गत रख कर ही विवेचन किया गया है।

आलोच्यकाल के रास ग्रन्थो मे ऐतिहासिक, धार्मिक तथा काल्पनिक तीनो प्रकार की कथाओं का समावेश होने लगा था। ऐतिहासिक कथाओं को आधार मान कर लिखे जाने वाले रास-ग्रन्थो की एक विस्तृत सूची श्री देसाई द्वारा सम्पादित 'जैन गुर्जर कवियो' तथा नाहटा द्वारा सम्पादित 'ऐतिहासिक जैन काव्य' में मिलती है। इन ग्रन्थो मे धर्म कथाओ को रासक रूप मे ढालने की शैली मात्र ही शेष रह गई थी। उनमे वस्तु एवं घटना वर्णन की ही प्रधानता थी। उनमे प्रारम्भिक रास ग्रन्थो के समान लोक गीतो की अनेक देशियो (तर्ज) का समावेश भी होता था, जो ढाल कहलाती थी, परन्तु लय, ताल एवं नृत्य का पूर्ण रूप से तिरोभाव हो चुका था।

रास की विभिन्न परिभाषाओ तथा उसके प्राचीन एवं विकसित स्वरूप पर ऊपर विस्तार से विचार किया जा चुका है। आलोच्यकाल मे प्राप्त रास-ग्रन्थो के स्वरूप के आधार पर इस रूप की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—

परिभाषा—'एक विशिष्ट शैली (गेय शैली) मे ढाली गई जैन प्रभाव से युक्त धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं काल्पनिक कथाओ तथा धार्मिक सिद्धान्तो के वर्णन से युक्त रचनाओं को 'रास' संज्ञा दी जाती थी।'

आलोच्यकाल के रास ग्रन्थों की विविध संज्ञाएँ एवं उनका स्वरूप—रास-काव्यो की इस प्राचीन काल से चली आती हुई पुष्ट परम्परा की विषय-वस्तु पर

विचार करने से पूर्व आलोच्यकाल के रास-ग्रन्थों की सज्ञा तथा स्वरूप पर विचार कर लेना अनुचित न होगा। आलोच्यकाल मे रास-काव्य के अन्तर्गत आने वाले ग्रन्थो की अनेक सज्ञाएँ प्राप्त होती है। कही उन्हे 'चरित' कही 'चौपाई', कही 'कथा' तथा कही 'रास' नाम दिए गए हैं। सबसे मजे की बात यह है कि एक ही कवि की रचना को विभिन्न प्रतियों मे विभिन्न सज्ञाएँ, कही रास कही चरित तथा कही चौपाई दी गई है।[1] लगभग १६वी शताब्दी के अन्त तक समस्त रास-काव्यो की सज्ञा 'रास' के साथ ही प्राप्त होती है। जितनी रचनाओ का मुझे ज्ञान है उन सब मे चौपाई संज्ञक, रचनाकाल के उल्लेख वाली सर्वप्रथम रचना तख्तमल्ल जैन की श्री करकण्डु चौपाई है। यद्यपि उससे पूर्व की देवपाल मुनि कृत 'चन्दनबाला चौपाई' ग्रन्थ प्राप्त है तथापि उसका रचनाकाल अनुमान से १६वी शताब्दी माना गया है, क्योंकि लिपि समय भी अनुमानत १६वी शताब्दी दिया गया है। इस प्रकार राम के लिए चौपाई सज्ञा का विधान तुलसी के रामचरितमानस के पश्चात् प्राप्त होता है। तुलसी के बहुत समय पूर्व ही दोहे-चौपाई का यह बन्ध लोक प्रचलित हो गया था और कथा-काव्यो के लिए बडा उपयोगी ठहराया गया था। यह पहले ही बताया जा चुका है कि १५वी शताब्दी के बाद से रास-काव्यो मे चरित्र वर्णन की परिपाटी चल पडी थी। अत चरित्र-वर्णन युक्त इन रास ग्रन्थो की सज्ञा की उसमे प्रयुक्त उस बन्ध के आधार पर चौपाई दी जाने लगी। समय सुन्दर ने अपने चार 'रास' ग्रन्थों मे से एक को 'कथा' एक को 'प्रबन्ध' तथा चारों को चौपाई बन्ध करने की बात कही है—

> साब पजुनक कथा सरस प्रत्येक बुद्ध प्रबन्ध।
> नलदमयनी मृगावती चउपई चार सम्बन्ध।
>
> —सीताराम चौपाई

इन चारो को उसने चौपाई बन्ध किया है और उनकी संज्ञा चौपाई दी है। लेकिन सांब प्रद्युम्न तो राम के नाम से भी मिलता है। बाद मे चौपाई सज्ञा से उसके बन्ध से भी विशेष सम्बन्ध नही रहा क्योंकि चौपाई संज्ञक रचनाओ मे स्थान-समय पर गाहा, दूहा, रागमलार, राग गौरी, राग सारंग आदि छन्द एव रागो का समावेश होता था। 'सीताराम चौपाई' तथा समय सुन्दर की शेष रचनाएँ इसका उदाहरण है। अन्य रचनाओं मे भी यही बात पायी जाती है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कालान्तर मे रास, काव्यों का स्वरूप चरित-काव्य अथवा कथा-काव्य के समान होने के कारण और हिन्दी मे उनके लिए चौपाई बन्ध के अत्यधिक लोकप्रिय हो जाने के कारण रास ग्रन्थो के लिए भी चौपाई सज्ञा रूढ हो

---

[1] समय सुन्दर की कृतियाँ इसका उदाहरण हैं।

गई । फिर भी अनेक परवर्त्ती ग्रन्थो की सज्ञाएं रास, चरित अथवा 'कथा' के साथ प्राप्त होती है । जो बात चौपाई के सम्बन्ध मे है वही कथा एव चरित के सम्बन्ध मे कही जा सकती है । जैनेतर हिन्दी कवियो मे चरित-काव्य एव कथा-काव्य के लिए आलोच्यकाल में तीनो सज्ञाएं प्रचलित थी । उन्हे चरित, कथा तथा चौपाई तीनो सज्ञाओ से अभिहित किया जाता था । 'रामचरित मानस' के सम्बन्ध मे यह बात पूर्णत. ठीक बैठती है । अनेक चौपाई सज्ञक ग्रन्थो के अन्त में उनकी सज्ञा रास भी प्राप्त होती है । कही-कही रास एवं चरित दोनों संज्ञाएँ साथ-साथ प्राप्त हो जाती है । 'अगडदत्त रास' मे चरित्र वर्णन के लिए रास रचने का कवि ने स्वय उल्लेख किया है—

विरचिउ रास सघलु एकत्र । अगड़दत्त नू एह चरित्र । ८६

(हरचन्द कृत—अगडदत्त रास हस्तलिखित प्रति)

१६वी शताब्दी के बाद से लगभग सभी संज्ञाओ वाले रास-ग्रन्थो मे ढ़ालो का उल्लेख हुआ है । किसी भी रचना के गाने की तर्ज अथवा देशी की सज्ञा ढाल कहलाती है । १६वी शताब्दी के बाद मे जब इन रास ग्रन्थो की रचनाएँ लोकगीतो की देशियाँ मे की जाने लगी तब इनकी सज्ञा भी 'ढालबद्ध' हो गई । ग्रन्थों के आधार के अनुसार ढालो की सज्ञा भी इन ग्रथो मे न्यूनाधिक रहती है । १३वी से १५वी शताब्दी तक की रास रचनाएँ चौपाई, रासा, वस्तु, ठवणी आदि छन्दो मे बनाई जाती थी और एक छन्द के पूरा हो जाने पर एक कडवक पूरा हो जाता था । ढालो के प्रचार के कारण एक ढाल के अन्त मे दोहा या कोई अन्य छन्द देकर उसे पूरा किया जाता था । कुछ रास-ग्रन्थो मे ढालो की सज्ञाएँ भी दी गई है और उस ढाल मे उसकी प्रथम पक्ति की टेक सर्वत्र दुहरती है । इन ढालो को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि उस काल मे सहस्रो प्राचीन लोक गीत प्रचलित थे । अनेक ढालो मे रचे होने के कारण ही गुण सागर सूरि के 'हरिवश रास' की संज्ञा 'ढाल सागर' भी दी गई है ।

अधिकांश रास ग्रन्थ अध्यायो में विभक्त है । ग्रन्थ के आकार के दृष्टिकोण से ही उन अध्यायो की संख्या भी कम तथा अधिक मिलती है । अध्यायो के नाम भी कलिका, आदेश, उल्लास आदि दिए गए है । जैन धर्म के अनुयायी कवियो की रचना होने के कारण ग्रथ के प्रारम्भ मे जिन एव गुरुओ की वन्दनाएँ तथा अन्त मे जैन धर्म का आरोप अवश्य मिलता है ।

विषय-वस्तु—प्राचीन रास ग्रन्थो मे जैन धर्म के सिद्धान्त एव उपदेशो के साथ-साथ जैन ऋषियो एवं तीर्थङ्करो की कथाओ का वर्णन होता था । जैन तीर्थ-स्थानों एवं मन्दिरों के वर्णन के भी अनेक रास ग्रन्थ प्राचीन काल में लिखे गए थे ।

उस समय जैन कवियो के बीच शालिभद्र, स्थूलिभद्र, नेमिनाथ, जम्बू स्वामी एव भरतेश्वर बाहुबली के चरित्र वर्णन बड़े लोकप्रिय रहे। इन चरित्रो पर एकाधिक कवियों ने रास-ग्रन्थो की रचनाएँ की। आलोच्यकाल मे प्राचीनकाल से प्रचलित उन चरित नायकों के अतिरिक्त कुछ अन्य जैन कवियो एव धार्मिक पुरुषो के चरित्रो का भी गान हुआ। दूसरी ओर जैन धर्म के सिद्धान्तों के लिए पौराणिक कथाओ के साथ साथ कल्पित कथाओ की भी अवतारणा की गई और उनमे जैन धर्म विषयक सिद्धान्तो एव रास शैली का ऐसा समावेश किया कि वे काल्पनिक कथाएँ कथा न रहकर रास बन गई। यदि उनमें से कुछ कथाओ के आदि और अन्त का धार्मिक आरोप हटा दिया जाय तो सुन्दर प्रेमाख्यान की कोटि की रचना बन जावेगी। चरित-काव्य के समान 'रास' काव्यो में भी जैन कवियो ने जैन पौराणिक पुरुषो के साथ-साथ हिन्दू पुराणों के चरित्रों को आधार बनाकर रास ग्रन्थ रचे। रामायण एव महाभारत के राम, सीता, रावण, मन्दोदरी, द्रौपदी आदि के चरित्रो को लेकर उन्हे जैन धर्म के आरोप के साथ वर्णित किया गया।

१—**पौराणिक एवं धार्मिक पुरुषों से सम्बन्धित रास ग्रन्थ**—इस काल मे प्राचीन रास ग्रन्थो मे वर्णित सभी पौराणिक चरित्रो—स्थूलिभद्र, जम्बू स्वामी, नेमिनाथ, शालिभद्र, श्रीपाल आदि के अतिरिक्त कुछ नए चरित्रो का भी वर्णन किया गया। जैन कवियों को सर्वाधिक प्रिय 'नेमिनाथ' हुए। 'नेमिनाथ' सम्बन्धी अनेक रास-ग्रन्थ आलोच्य काल मे प्राप्त होते है उनकी सज्ञाएँ भी 'नेमिनाथ शील रास', 'श्री शील रास', 'यादव रास', 'नेमिरास', 'नेमिनाथ रास' आदि प्राप्त होती है। नेमिनाथ-जैनियो के सिद्ध तीर्थकर माने जाते है और जैनियो के पुराणो के अनुसार श्रीकृष्ण नेमिनाथ के तीर्थकाल मे हुए। नेमिनाथ की कथा का सम्बन्ध यादववंश के पौरा-णिक पुरुषो से है। हिन्दू पुराण एवं जैन पुराणो मे वर्णित इस कथा के भेद को समझने के लिए सक्षेप मे जैन कथा को नीचे दिया जाता है—'द्वारावती के राजा कृष्ण थे। उग्रसेन प्रधान राजा था। उनके अन्य १६०० राजा सूर समान थे। समुद्रविजय राजा के घर शुभ नक्षत्र मे पुत्र जन्म हुआ। पुत्र का नाम 'नेमिकुमार' रखा गया। नेमिकुमार धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। द्वारावती मे वसन्त छा गया। जब ऋतु सुहानी थी, वायु वह रही थी, पक्षी बोल रहे थे, रास हुआ। गोपियाँ नाचने लगी। रुक्मिनी ने कृष्ण से नेमिकुमार के विवाह के लिए कहा। उग्रसेन राजा की पुत्री राजमती से विवाह हुआ। राजमती अत्यन्त रूपवती एव गुणवती राजकुमारी थी। लेकिन नेमिनाथ ने उसको छोड दिया और वन मे तपस्या को चल दिया। राजमती विरह से दुखी हुई। उसकी व्याकुलता अत्यन्त बढ़ गई। नेमिनाथ ने दीक्षा ग्रहण की। समुद्रविजय ने पुत्र के व्रत को देखकर उत्सव मनाया।

सत्यभामा तथा रुक्मिनी आदि ने अपने देवर के व्रत का आदर किया, कवि ने उसके महत्त्व का बखान इस प्रकार किया है—

राजपाट छोडी करी, आणी मन वइराग।
नेमिनाथ दीक्षा ग्रहइ जिण थीहुइ सोलाग। १
ब्रह्मचारि चूडामणि निजकुल कमल दिनेश।
जिणि विधि व्रत सामीलियइ सुणता टलइ कलेस। २ —ढाल १२
(कनक कीर्ति—नेमिनाथ रास—हस्तलिखित प्रति)

राजुल एव नेमिनाथ सम्बन्धी अनेक बारहमासे भी इन जैन कवियो द्वारा वर्णित हुए हैं जिनका बारहमासा के अन्तर्गत उल्लेख हुआ है। इस कोटि के रास-ग्रन्थो मे पौराणिक पुरुषो के चरित्रो के श्रेष्ठ गुणो को वर्णित किया गया है। 'जम्बू स्वामी रास' मे जम्बू स्वामी के वैराग्य द्वारा जरा आदि सासारिक दुखो मे रहित होकर अविचल पद प्राप्त करने का ही वर्णन है। 'शालिभद्र चौपाई' मे शालिभद्र की कथा द्वारा उसके श्रेष्ठ गुणो—दान, शील, दृढ़ भावना का महत्त्व वर्णित किया गया है। 'श्रीपाल रास' की कथा सुर सुन्दरी तथा मयण सुन्दरी दो बहिनो की कथा है जिसमे 'श्रीपाल कुष्ठ रोग से ग्रसित हो उठता है और उसकी पत्नी उसे एक ऋषि के आशीर्वाद के अच्छा कर लेती है। मयण सुन्दरी के इस प्रभाव से उसका पिता प्रसन्न होता है और पुत्री-दामाद को घर ले आता है। मयण सुन्दरी ने जिन धर्म के शील धर्म का पालन किया इसलिए उसे शीलवती कहकर धन्यवाद दिया गया है।'

जैन कवियो ने उन्ही हिन्दू पौराणिक चरित्रों को ग्रहण किया जिनके चरित्र मे शील की रक्षा का प्रयास हुआ है। जैन धर्म मे शील की रक्षा का बडा महत्त्व है। शील रक्षक सीता, द्रौपदी, दमयती, अञ्जना एवं मन्दोदरी आदि के चरित्र वर्णन किये गये। इन ग्रन्थो के अन्त मे इनके शील की सराहना की गई है—

धन धन सीलवती सती द्रौपदी पाडवनी वरनारि।
सील प्रभावइ स्यह सामता सिवपुरि सुष अपार। १। धन धन शील :.टेक
(कनक कीर्ति-द्रौपदी चौपाई-हस्तलिखित प्रति।)

धन धन अजना सुन्दरी सुमिरेउ चित्त त्रिकाल रे।
सील भलउ तिण पालियउ जसु गावइ मुनिमाल रे। १५६।
(भाल मुनि कृत अजना सुन्दर रास—हस्त० प्रति।)

इन समस्त ग्रन्थों की कथाएँ पुराणो के आधार पर ही है लेकिन उनमे

कहीं-कहीं जिन आदि की प्रार्थना, उपदेश आदि का समावेश करके जैन धर्म का आरोप कर दिया गया है।

प्रेमाख्यानक रास ग्रन्थ--अपभ्रंश भाषा के जैन कवियों ने 'चरिउ' संज्ञक ग्रन्थों में जैन आरोप के अन्तर्गत प्रेम-कथाओं का समावेश किया है। रास ग्रन्थों में भी अनेक प्रेम-कथानकों को ग्रहण किया गया है। इन ग्रन्थों में से कुछ की कथाएँ तो बड़ी लोक-प्रचलित एवं निजधरी कथाओं से संयुक्त है। मृगावती चौपाई हंसराज बच्छराज चौपाई तथा चन्दन गिरि मलियागिरि चौपाई ऐसे ही कथानकों से सम्बन्धित है। सभी ग्रन्थों में एक प्रेम कथा देकर अन्त में जैन धर्म का आरोप किया गया है हंसराज बच्छराज चौपाई में वर्णित प्रेम-कथा संक्षेप में इस प्रकार है—'जम्बू दीप का नरवाहन राजा था। उसका पुत्र सालिवाहन सुखदायी था। राजा का छोटा भाई शक्तिकुमार था। राजा ने स्वप्न में अतीव सुन्दरी देखी, अत वह बहुत देर तक सोता रहा। अधिक देर होने के कारण मंत्री ने उसे जगा दिया। राजा स्वप्न भंग होने के कारण बड़ा क्रोधित हुआ और उसने उस कन्या को एक माह में लाने की आज्ञा दी। मंत्री घर आया। उसे सन्तोष नहीं हुआ इसलिए परदेशियों को बुलवाया जिनसे ज्ञात हुआ कि हंसाउली कणयापुर की अनुपम सुन्दरी राजकुमारी है। वहाँ का मार्ग तीन माह का है। मंत्री ने बावन वीर को बुलाकर राज्य-कार्य शक्तिकुमार को देकर जोगी बन कर घर छोड़ दिया। कणयापुर पहुँचने पर मालिन मिली। बत्तीस लक्षणों से युक्त देखकर मालिन ने उसे माला दी और अपने घर रखा। मालिन ने हंसाउली से देवी पूजन के लिए मन्दिर जाने की बात कही। वह मन्दिर में जाकर छिप गया और कुमारी को जीव हत्या के लिए धिक्कारा। देवी को कुपित जान कर हंसाउली ने बलि के लिए नर-हत्या बन्द कर देने की शपथ ली। नगर में एक बड़ा चित्रकार आया है, ऐसी घोषणा मन्त्री द्वारा कराई गई। हंसाउली ने उसे बुलाया। राम, कृष्ण आदि के चरित्र देखने के पश्चात् नरवाहन के गुणों को सुनकर कुमरी मोहित हुई। मन्त्री ने एक मास का वचन दिया। राजा से आकर सब हाल कहा। दोनों का विवाह हुआ। कालान्तर में हंसराज, बच्छराज, दो पुत्रों का जन्म हुआ। दोनों का बढ़ना, जंगल में बावन वीर के साथ खेलना, बड़े होने पर राजा की अन्य रानी लीलावती द्वारा हंसराज से प्रणय निवेदन किया जाना। हंसराज के माता कहकर फटकारने पर रानी ने राजा से शिकायत की और राजा ने दोनों पुत्रों को घर से निकाल दिया। मार्ग में बच्छराज जल लेने गया। लौटकर हंसराज को सर्पदंश से मरा हुआ पाया। बच्छराज एक शहर में उसे दाहसंस्कार को ले गया। उस नगर के कोटपाल ने बच्छराज को पुत्र के रूप में घर रखा। नगर के अरिमर्दन राजा की त्रिलोचना नामक पुत्री थी। जब बच्छराज नगर घूमने निकला तो उसे बत्तीस लक्षण युक्त देखकर पुत्री का

विवाह करन का विचार किया वच्छराज नगर छोडकर चला गया । त्रिलोचना विरह मे बडी दुखी हुई । वच्छराज बडी कठिनाइयो के पश्चात् भाई को जीवित करने मे सफल हुआ । अनेक कष्टो के उपरान्त दोनो भाइयों ने अपनी रानियो के साथ नगर प्रवेश किया । लीलावती ने अपराधो की क्षमा याचना की । अन्त मे दिखाया गया है कि जो धर्म पर चलता है, सदा सुखी रहता है—

धर्म प्रसादइ सुष लह्या हंसराज बच्छराज ।
अनुपिमि शिव सुख पामस्यइ दान पुण्इ अनुसार । ५४७
(मान कवि कृत-हंसराज बच्छराज रास)

ऊपर दिये इस प्रेम कथानक मे से यदि धार्मिक आरोप समाप्त हो जाय तो यह शुद्ध भारतीय प्रेमाख्यान हो जाता है । इस कथा मे अनेक कथानक-रूढ़ियों का समावेश हुआ है, यथा—स्वप्न दर्शन द्वारा प्रेम, योगी होकर गृह त्याग, बावन वीर का सहयोग, चित्र दर्शन एव गुण कथन द्वारा नायिका के हृदय मे प्रेम उत्पन्न करना, वेश परिवर्तन तथा मृतक का पुन' जीवत हो उठना आदि । असाइत कृत 'हंसाउली' नामक प्रेमाख्यान मे जिसका उल्लेख कथा-काव्य के अन्तर्गत हुआ है, इसी प्रेम कथा का वर्णन प्रेमाख्यान के ढग पर हुआ है । हंसाउली के नरवाहन से मिलाप के पश्चात् ही कथा का अन्त हो जाता है । रास ग्रन्थो मे जिन-प्रेमाख्यानो का समावेश हुआ है उनमे कथानक-रूढियो का समावेश जैन कवियों द्वारा किया गया है । अत: स्वरूपत: यह एक विशेष शैली मे रचित कथा-काव्य है जिनका उद्देश्य मनोरजन न होकर जैन धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार ही रहा है ।

मृगावती चौपाई ग्रन्थ मे उदयन एव मृगावती की प्रसिद्ध कथा वर्णित है । कथा के अन्त मे मृगावती दीक्षा ग्रहण करती है और उदयन श्रावक व्रत लेता है और अन्त मे कैवल्य को प्राप्त करते है ।[1] समय सुन्दर द्वारा वर्णित 'प्रिय मेलक चौपाई' की कथा को उसने लोक प्रसिद्ध बताया है और उस 'कौतिक धरणी' कथा का उसमे वर्णन किया है—

प्रणमु सद्गुरु पाय सरसति समरू सामिनी ।
दीन धरम दीपाय कहिस कथा कौतिक धरणी । १ ।
\+ \+ \+
पृथ्वी माहि प्रसिद्ध मुणीय इदानीदक कथा ।
प्रिय मेलक प्रसिद्ध सरस धणो सम्बन्ध वै । ५ ।
(हस्तलिखित प्रति)

[1] समय सुन्दर कृत मृगावती चौपाई, कर्त्ता समय सुन्दर—हस्तलिखित प्रति राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर ।

इस कथा मे सिहल के राजा के पुत्र सिहल कुमार के चार राजकुमारियो के साथ हुए विवाहो का वर्णन है। उसके शील को देखकर सभी उस पर मोहित हो उठती है। चार स्त्रियो से विवाह करके वह घर लौटता है। नदी पार करने मे जल में डूब जाता है, नाग कुमार उसकी रक्षा करता है। साधु उसे अपने पिता-माता की सेवा का उपदेश देता है। घर आने पर माँ-बाप उसे राज्य देकर दीक्षा ग्रहण करते है। कुमार समस्त धर्मों का पालन करते हुए राज्य करता है।

'विद्याविलास रास' धनसागर सेठ पुत्र तथा विद्याविलास राजपुत्री की प्रेम कथा तथा विवाह का वर्णन है। धनसागर प्रारम्भ मे मूर्ख था। उसे विद्या-विलास ने चतुर बना कर उसके साथ विवाह किया था। इस कथा ग्रन्थ मे भी 'धर्म पर चलने' की महिमा का गान किया गया है—

धरमहि ऊपरि हुंए चरय जे भणइ जे सुणइ एक मना नरनारि—२१८

(हीराणद—विद्याविलास रास—हस्त० प्रति)

चन्दन मलियागिरि चौपाई मे भद्रसेन कवि ने राजस्थान मे लोक प्रचलित चन्दन राजा मलियागिरि उसकी पत्नी एव सायरनीर उसके पुत्र के बिछुड़ने, अनेक दुख उठाने के पश्चात् पुन मिलने की बडी सुन्दर कथा का वर्णन किया है। पूरा ग्रन्थ ५ अध्यायो—मे जिन्हे 'कलिका' कहा गया है, समाप्त हुआ है। ग्रन्थान्त में धर्म की विजय दिखाई गई है।

इन प्रेमाख्यानो मे कुछ बातें ऐसी है जो सभी प्रेमाख्यानो में प्राप्त होती हैं—१ लोक प्रचलित प्रेम कथानको का प्रयोग, २. विवाह के पूर्व या विवाह के पश्चात् वियोग दुख वर्णन, ३. अधिकाशतः दूर देशो की यात्राएँ, ४. रूढिगत अलौकिक घटनाओं का समावेश, ५. अन्त में मिलन अथवा सुख प्राप्ति एव ६. धार्मिक आरोप। अधिकाशत कथा ग्रन्थ बड़े-बड़े है इसलिए खण्डो मे विभाजित किए गए है।

सिद्धान्त विषयक रास ग्रन्थ—प्राचीन रास ग्रन्थों मे सिद्धान्तो अथवा उपदेशों का ही वर्णन होता था। उपदेश रसायन रास, सप्त क्षेत्र रास, बुद्धिरास, जीवदया रास ऐसे ही ग्रन्थ है। अलोच्य काल मे भी ऐसे अनेक ग्रन्थ रचे गए। नयसुन्दर कृत 'शील रक्षा रास' ग्रन्थ मे शील की महत्ता का वर्णन हुआ है। ग्रन्थ मे 'शील सुगुण सिरि धारया' टेक प्रारम्भ से अन्त तक दुहरती है। समय सुन्दर कृत 'शत्रु जय रास' ग्रन्थ मे सोरठ देश मे स्थित शत्रु जय तीर्थ का माहात्म्य वर्णन किया गया है। उसके समान अन्य कोई तीर्थ नहीं है—

सेत्रु ज तीरथ सारिषउ नहीं छै तीरथ कोय।
स्वर्ग मृत्यु पाताल मह तीरथ सगला जोय। ४।

(हस्तलिखित प्रति)

श्री सार कृत 'आणद सन्धि' ग्रन्थ मे शत्रुंजय क्षेत्र के १४ हजार जैन मुनियो द्वारा कहे गये व्रतो का वर्णन हुआ है। इनमें बारह व्रत एवं दान, शील, तप आदि का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।[1] 'मयणरेहा रास' मे जैन जीवन-चरित का उल्लेख हुआ है। उसमें जैन साधुओ के नियम बताए गये है[2]। समय सुन्दर के अन्य ग्रन्थ 'धनदत्त चौपाई' में कथानक के माध्यम से शुद्ध व्यवहार का वर्णन करके उसका महत्त्व दिखाया गया है। उनके अन्य ग्रन्थ 'दान, शील, तप, भावना सम्वाद' ग्रन्थ मे इन चारों गुणो के महत्त्व का प्रतिपादन हुआ है। ऋसनदास का लिखा हुआ 'दान, शील, तप भाव रासा' ग्रन्थ भी लिखा गया जो समय सुन्दर के ग्रन्थ के समान ही धार्मिक भावनाओ के वर्णन से सम्बन्धित है। हीरानन्द सूरि कृत 'कलिकाल रास', सोमसुन्दर सूरि कृत 'आराधना रास' एवं मुनिसुन्दर कृत 'शातरस रास' उपलब्ध नही हो सके है फिर भी सज्ञा के आधार पर ये इसी कोटि की रचना प्रतीत होते है।

रास-काव्य की विशेषताएँ—संक्षेप मे रास-काव्य की विशेषताएँ ये है—

१—यह प्रारम्भ मे लोकप्रचलित था। गेयरूपक होकर साहित्य मे आया। जैन कवियो के प्रवेश से इसका रूपक तत्त्व समाप्त हो गया और इसमे कथाओं का समावेश हुआ। उस काल मे रास-काव्य की शैली ही शेष रह गई थी जिसके आधार पर रची गई रचनाओ को रास कहा जाता था।

२—इसकी सज्ञाएँ 'चरित', 'रास', 'चौपाई' तथा 'कथा' प्राप्त होती है जो इस रूप पर चरित-काव्य एव कथा-काव्य के पड़े हुए प्रभाव के कारण ही है।

३—रास ग्रन्थ ढ़ालो में बद्ध मिलते है। स्थान-स्थान पर गाये जाने वाली देशी की तर्ज अथवा ढ़ाल का नाम भी दिया गया है। १५वी शताब्दी के पूर्व के रास ग्रन्थो मे ढ़ालो का समावेश नही हुआ था।

४—इन ग्रन्थों मे चरित्र-वर्णन द्वारा चरित-नायक के श्रेष्ठ गुणो का बखान ही प्रमुख रूप से किया जाता था।

५—प्रेम कथाओ को भी जैनियों ने धार्मिक आरोप के साथ वर्णित किया है। इन कथाओ मे से अधिकांश मे कथा-काव्य की रूढियो का समावेश हुआ है।

६—प्राय. सभी रचनाएँ खडों मे विभाजित है। जिन रचनाओ मे उपदेश वर्णन ही मुख्य है उनमे विभाजन का अभाव है।

---

[1] हस्तलिखित प्रति सख्या २१७७, राज० पुरा० मन्दिर, जयपुर।
[2] वही १९४ वही।

७—इनमें प्रयुक्त प्रमुख छंद, दोहा, चौपाई, गाहा सोरठा, ठवणि तथा कुछ राग हैं। दोहा-चौपाई का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है।

८—समस्त रास-काव्यों के कर्ता जैन कवि ही हैं। अत ग्रन्थ के प्रारम्भ में जैन तीर्थंकरों एव गुरुओं की वन्दना तथा अन्त में जैन सिद्धान्तों के अपनाने से सुख, समृद्धि एव कैवल्य प्राप्ति का वर्णन किया गया है। हिन्दू पुराणों के चरित नायक भी जिन की शरण में जाते हुए दिखायी देते हैं।

४—कथा-वार्ता-काव्य

संस्कृत साहित्य में कथा-काव्य का रूप एवं परिभाषा—संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने पद्यात्मक प्रबन्ध को सर्गबन्ध काव्य (महाकाव्य और खण्ड काव्य) कहा है तथा गद्यात्मक प्रबन्ध के दृश्य और श्रव्य या अभिनेय और पाठ्य ये दो भेद मानकर पाठ्य भेद के भी कथा, आख्यायिका, परिकथा, खडकथा, सकल कथा, प्रवह्लिका, मतल्लिका, मणिकुल्या आदि कई भेद किए हैं।[१] इस प्रकार संस्कृत साहित्य में गद्य प्रबन्धों को कथा-साहित्य कहा जाता था। रुद्रट ने तो प्रबन्ध के स्पष्ट दो भेद किए हैं—काव्य और कथा आख्यायिका।[२] उसने कथा के लक्षणों पर विस्तार से विचार किया है—

श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरून्नमस्कृत्य ।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात्स्वं च कर्तृतया ॥
सानुप्रासेन ततो लघ्वक्षरेण गद्येन ।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णकप्रभृतीन् ॥
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपञ्चितं सम्यक् ।
लघु तावत् सधानं प्रक्रान्तकथावताराय ॥
कन्यालाभफलां वा सम्यग् विन्यस्त सकलशृंगारम् ।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन ॥

—रुद्रट का काव्यालंकार, १६-२०-२३

इस परिभाषा के अनुसार 'कथा के प्रारम्भ में देवता तथा गुरु की वन्दना करके अपना परिचय तथा कथा का उद्देश्य बताना चाहिए। सभी शृंगारों से आभूषित कन्या लाभ ही इस कथा का उद्देश्य होना चाहिए। संस्कृत में पद्य में तथा अन्य भाषाओं में गद्य में लिखी जानी चाहिए।' हेमचन्द्र के अनुसार धीरशान्त

[१] हेमचन्द्र—काव्यानुशासन, अध्याय ८ तथा अभिनव गुप्त—ध्वन्यालोक, टीका उद्योत ३, कारिका ७।

[२] सन्ति द्विधा प्रबन्धा काव्य कथा स्थामि कादय, काव्यालंकार १६—

नायक से युक्त कोई भी प्रबन्ध चाहे वह गद्य में हो या पद्य मे कथा कहा जायगा।[1] इससे प्राचीन आचार्यो द्वारा प्रतिपादित इसके महाकाव्य एवं खडकाव्य से भिन्न स्वरूप का कुछ आधार होता है। अभिनव गुप्त ने गद्य प्रबन्ध को कथाबद्ध कर उसे इतिवृत्तात्मक कहा है। (ध्वन्यालोक की टीका, उद्योत ३, कारिका ७)। भामह ने गद्य-पद्य दोनों मे लिखी कथाओ को देखकर उनके लक्षणों का विधान किया। उन्होने गद्य मे लिखी सरस कहानी को आख्यायिका कहा जो उच्छ्वासो मे विभक्त तथा नायक द्वारा कही जावे। 'कन्या हरण, युद्ध और अन्त मे नायक विजय' उसमे आवश्यक होता है। (भामह काव्यालंकार १।२५-२८)। कथा को वह दो व्यक्तियो के वार्त्तालाप के रूप मे तथा विभाजन रहित एव किसी भी भाषा में होने की बात कहते है। हेमचन्द्र ने इसका गद्य तथा पद्य दोनों मे होना स्वीकार किया है।[2] दंडी ने भामह की परिभाषा को देखकर ही काव्यादर्श मे कथा तथा आख्यायिका को एक ही माना है। उसके अनुसार भामह द्वारा दिये गये भेद ऊपरी है उससे कहानी मे कोई अन्तर नही आता—कहानी नायक कहे या कोई और, अध्याय का विभाजन हो या न हो, अध्याय का नाम उच्छ्वास रखा जाय या लम्भ रखा जाय, इससे कहानी मे क्या अन्तर आता है।[3]

सस्कृत साहित्य मे दो प्रकार की कथाएँ प्राप्त होती है और उन्ही को समक्ष रखकर आचार्यो ने उनके लक्षणों का विधान किया है—१ रसात्मक कथा काव्य (गद्य या पद्य मे लिखी गई आख्यायिका), २. अनलंकृत या इतिवृत्तात्मक कथा साहित्य (गद्य या पद्य में लिखी परिकथा, खण्डकथा, सकलकथा, धर्मकथा आदि)[4]। प्रथम कोटि की रचनाओ मे सस्कृत की दशकुमार चरित, प्राकृत की लीलावई कहा आदि है तथा द्वितीय कोटि की हितोपदेश, कथा सरित्सागर, मलय सुन्दरी कथा, भोज प्रबन्ध, बैत्ताल पच्चीसी आदि। द्वितीय कोटि की इतिवृत्तात्मक रचनाओ मे पाठक की चित्तवृत्ति अधिक नही रम पाती वह आगे की घटना को जानने को अधिक उत्सुक रहता है। इस प्रकार की कहानियो मे होने वाला मनोरजन काव्य द्वारा होने वाले मनोरजन से सर्वथा भिन्न होता है इसीलिए आचार्य शुक्ल इस प्रकार की रचनाओं को काव्य से सर्वथा भिन्न मानते है।[5] लेकिन कथा-काव्य के अनेक लक्षणो से युक्त होने के कारण ही प्राचीन सस्कृत आचार्यो ने इसे कथा-काव्य का एक प्रकार

---

[1] काव्यानुशासन, आठवाँ अध्याय।

[2] धीर शान्त नायक (गद्येन पद्येन का सर्वभाषा कथा. काव्यानुशासन अध्याय ८)

[3] काव्यादर्श १।२३-२८।

[4] हिन्दी-साहित्य कोश, पृष्ठ १८३।

[5] जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृष्ठ ७०।

स्वीकार किया है। अतः इस प्रकार की रचनाओं का इसी रूप के अन्तर्गत विवेचन करना समीचीन होगा ।

कथा-काव्य कई बातों में चरित-काव्य से भिन्न होता है। इसमें चरित-काव्यों की सी गम्भीरता, महत् उद्देश्य तथा महत् चरित्र नहीं होते। यह अलकृत शैली युक्त एव रसात्मक होता है। इस दृष्टि से यह इतिवृत्तात्मक कथाओं से भी भिन्न कोटि का प्रतीत होता है। फिर भी इतिवृत्तात्मक कथाएँ कथा-काव्य के इस प्रकार विशेष के रूप मे—रस एव अलकृत शैली से रहित, मनोरजन एवं चमत्कार प्रदर्शन हेतु—स्वीकार की जा सकती है। 'हिन्दी-साहित्य कोश' में कथा-काव्य के लक्षण ये बताए गए है[1]—

१—उनका कोई महान् उद्देश्य नही होता, मनोरजन ही उनका प्रधान लक्ष्य होता है। इस कारण उनमें महानता, गुरुत्व और गाम्भीर्य भी महाकाव्यो जैसा नही होता। उसी तरह उनके चरित्र भी महान् या आदर्श (धीरोदात्त) न होकर प्राय. धीरललित या धीरशान्त होते है।

२—उनका कथानक जीवन्त, प्रवाहमय और आकर्षक अवश्य होता है, किन्तु वह यथार्थ जीवनपर आधारित नही होता और न उसमे नाटकीय सधियो से युक्त अन्विति और सुसम्बद्धता ही होती है। इससे वह प्राय स्फीत, विशृ खल और जटिल (काम्प्लेक्स) होता है। कथा के भीतर कथा करने की प्रवृत्ति होने से उसमे अवान्तर कथाओ की भरमार होती है।

३—उसमे काल्पनिक कथा का चमत्कार बहुत अधिक होता है, क्योकि उसमे असम्भव और अविश्वसनीय बातो, आश्चर्यजनक कार्यो और अप्राकृत या अमानवीय शक्तियो की भरमार होती है। फलत उसमे रोमासिकता और अतिशय भावुकता विशेष रूप से पायी जाती है, साथ ही उसमे युद्ध, प्रेम, भयकर यात्रा, अनहोने कार्यो आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण होता है।

४—उपयुक्त-प्रवृत्तियो के कारण कथाकाव्य लोकतत्त्वो और कथानक-रूढियो से भरा होता है।

५—कथाकाव्यो के नायको का वीर-रूप उनके प्रेमी-रूप मे दबा रहता है। उनकी वीरता या तो नायिका की प्राप्ति के लिए होती है या चमत्कार-प्रदर्शन के लिए, उसका उपयोग देश या जाति की रक्षा जैसे महत् उद्देश्य के लिए नही होता। यह प्रेम भी अतिशय भावुकतापूर्ण सामाजिक दायित्व से रहित, एकान्तिक और प्राय

[1] सम्पादक—डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, पृष्ठ १८३।

स्थूल शारीरिक होता है। सूफी कथाकाव्यों का प्रेम भी यथार्थ नही, आदर्शात्मक (प्लेटोनिक) या प्रतीकात्मक होता है।

६—उसमे रसात्मकता, भावव्यजना और अलकृति तो होती है, किन्तु विचारो और भावो की गम्भीरता, उद्देश्य की महत्ता, बौद्धिक ऊँचाई और भावभूमि की व्यापकता नही होती।

आलोच्यकाल के कथा-वार्त्ता-काव्यों मे उक्त सभी लक्षण प्राप्त नही होते। हाँ, कुछ उच्चकोटि की कथाओं मे उनमे से अधिकाश लक्षण मिल जाते है। जिन कथा-ग्रन्थों मे इतिवृत्तात्मक ढग से कथा कहने का विधान होता है उनमे कथा-काव्य की उक्त समस्त विशेषताओं का प्राप्त होना आवश्यक नही। ऐसे ग्रन्थों मे अलकृत शैली, रसात्मकता एव कही-कही प्रेमपूर्ण कहानी का अभाव होकर, चमत्कार पूर्ण वर्णन, अवान्तर कथाएँ, कथानक-रूढियाँ, अतिमानवीय चित्रण, मनोरजन एव नीति आदि तत्त्वो का समावेश किया जाता है। आलोच्यकाल मे प्राप्त कथा-वार्त्ता-काव्यों की विशेषताओं को ध्यान मे रखते हुए इस रूप की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—

परिभाषा—'पद्यबद्ध, प्रेम-वर्णन-युक्त, काव्यगत रूढियों, लोकतत्त्व एव अवान्तर कथाओ से भरपूर अलौकिक एव अप्राकृत तत्त्वो मे युक्त, मनोरजन, सिद्धात प्रतिपादन एव नीतिकथन के उद्देश्य से लिखी जाने वाली रचनाएँ कथा-वार्त्ता-काव्य के अन्तर्गत आती है।

उक्त परिभाषा मे आलोच्य-काल के कथा-वार्त्ता-काव्यो मे प्राप्त समस्त तत्त्वो का समावेश किया गया है। फिर भी सभी कथा-वार्त्ता-काव्यों में सभी तत्त्वो का समावेश होता हो, ऐसी बात भी नही है। इस काल के कुछ 'बात' सज्ञक ग्रन्थों मे पद्य के साथ गद्य मे लिखी वार्त्ताएँ भी प्राप्त होती है, जो सस्कृत के कथा-काव्यो के प्रभाव के कारण ही है। इस काल की कुछ कथाएँ तो वार्त्ता के रूप में गद्य मे लिखी हुई भी प्राप्त होती है।

इस कोटि की रचनाओ की विशेषताएँ—आलोच्यकाल के कथा-वार्त्ता-काव्य साहित्य को पिछले प्रकरण मे दो भागों मे विभक्त किया गया है—१. रसात्मक कथा-वार्त्ता-काव्य, २. इतिवृत्तात्मक कथा-वार्त्ता-काव्य। रसात्मक कथा-वार्त्ता-काव्य दो रूपो मे प्राप्त होता है—(अ) सूफी कवियो के प्रेमाख्यानो के रूप मे अथवा प्रतीकात्मक कथा-काव्यो के रूप मे तथा (आ) भारतीय लोक-प्रचलित प्रेमाख्यानो की अभिव्यक्ति के रूप मे। सूफी कवियो की कहानियो मे लौकिक प्रेम-चित्रण के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम का चित्रण हुआ है। भारतीय प्रेमाख्यानो मे भारतीय जन-जीवन को प्रफुल्लित कर देने वाले आख्यानो का समावेश हुआ है

मे लिखे गए 'बात' संज्ञक प्रेमाख्यान काव्य इसके एक प्रकार विशेष के रूप मे इसी के अन्तर्गत वर्णित हुए है। 'बात' या 'वार्त्ता' कहानी का ही एक प्रकार है। 'बात' का अर्थ बातचीत होता है। इस संज्ञा से कथा की उस विशेषता का आभास होता है जिसके अनुसार 'कथा नायक द्वारा स्वय न कही जाकर बातचीत के रूप मे ही कही जाय'। ऐसी रचनाएँ राजस्थान एव गुजरात मे ही लिखी गई। गुजराती मे 'बात' या 'वार्त्ता' का अर्थ कहानी होता भी है। गुजराती के बहुत से आख्यानक काव्यो की सज्ञा 'वार्त्ता' प्राप्त होती है। प्रो० मजूमदार ने गुजराती लोक-वार्त्ताओ की जो विशेषताएँ बताई है वह अन्य कथा-काव्यो मे प्राप्त होने वाली विशेषताओ के समान ही हैं।[1] दूसरी कोटि—इतिवृत्तात्मक कथा-वार्त्ता-काव्य के अन्तर्गत आने वाली रचनाएँ भी तीन रूपों मे प्राप्त होती है—(अ) लोक कथा, (आ) नीति कथा, (इ) काल्पनिक कथा। लोक कथा के अन्तर्गत उन रचनाओ को स्थान दिया गया है जिनके नायक भारतीय साहित्य एव लोक जीवन मे अनेक निजन्धरी कथाओ के नायक है और जिन रचनाओं की कथाएँ लोक मे प्रचलित है तथा एक प्रमुख कथा के अन्तर्गत अनेक कथाओ की योजना की गई है। पचतत्र तथा हितोपदेश के अनुवाद रूप मे लिखी गई कहानियो को नीति कथा के अन्तर्गत तथा अन्य कवि-कल्पना-प्रसूत कथाओं को काल्पनिक कथा सज्ञा देकर वर्णन किया गया है।

वर्णित-विषय :—

प्रतीकात्मक कथा-काव्य अथवा सूफी प्रेमाख्यान—सूफी कवियो ने अपने आध्यात्मिक सिद्धान्तो के प्रचार के लिए लोक-प्रचलित कथानको को अपनाया। इन सूफी कवियों से पूर्व 'सपनावती', 'मगधावती', 'प्रेमावती', 'खण्डरावती' आदि अनेक नायिकाओ के नामो को आश्रय करके लिखी गई प्रेम-कथाएँ प्रचलित थी। जायसी ने अपनी पद्मावत मे अनेक कथाओं का उल्लेख किया। इन्ही लोक-प्रचलित प्रेम-कथानको को लेकर सूफी कवियो ने उनमे नया अर्थ भरने का प्रयास किया।

---

[1] इन 'वार्ता' सज्ञक आख्यानक काव्यो की कुछ विशेषताएँ ये है—(१) चक्षु राग अथवा प्रथम दर्शन का प्रेम (२) प्रेम में वर्णाश्रम व्यवस्था की शिथिलता (३) नारी के देवी और आसुरी रूपों का विचित्र चित्रण, विशेष रूप से वेश्या, कुट्टिनी आदि का चित्रण, वेश्या की श्रेष्ठता का वर्णन (४) नारी-पुरुष का वेश परिवर्तन, (५) जादू, मन्त्र-तन्त्र, रत्न परीक्षा, मृत संजीवनी, जादू की छडी, आकाश में उड़ना, पवन पंखी घोडो का वर्णन आदि (६) नीति धर्म की शिक्षा (७) पुनर्जन्म (८) कूट राजनीति, षड्यन्त्र, सद्राज्य की प्रशंसा (९) नगर राज्यों का वर्णन (१०) भयानक तथा अद्भुत रसों का पोषण।

(गुजराती साहित्यनां स्वरूपो 'बडौदा' पृष्ठ १९३ १९९

'मृगावती' की पक्ति 'पुनिहम खोलि अरथ सब कहा' से इन कथाओ मे व्याप्त प्रतीकात्मक अर्थ की ओर सकेत किया गया है। 'मृगावती' मे चन्द्रगिरि के राजा गणपति देव के पुत्र एव कचनगिरि के राजा रूपमुरारी की पुत्री की प्रेम-कथा का वर्णन हुआ है। मंझन की 'मधुमालती' मे मधुमालती की चित्रसारी मे अप्सराओं द्वारा पहुँचाए गए राजकुमार से हुए प्रेम का वर्णन है। इस प्रकार की सर्वश्रेष्ठ रचना 'पद्मावत' है। पद्मावत की कथा बडी लोकप्रिय है। इसमे सिहल की राजकुमारी पद्मावती और चित्तौड के राजा रत्नसेन का प्रेम वर्णन है। 'शुक के मुख से पद्मावत के रूप की प्रशसा सुनकर राजा उसे प्राप्त करने को व्याकुल हो उठता है और घर-बार त्याग कर योगी बन निकल पडता है। अनेक कठिनाइयो को झेलते हुए दैवी शक्तियो के सहयोग से वह पद्मावती को प्राप्त करने मे सफल होता है। चित्तौड लौटने पर अलाउद्दीन रानी के रूप की प्रशसा सुन उसे प्राप्त करने को चित्तौड पर आक्रमण करता है। राजा युद्ध मे मारा जाता है और पद्मावती, नागमती दोनों सती हो जाती है। इस प्रकार इस कहानी मे कल्पना एव इतिहास दोनो का समावेश हुआ है। ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध लोक-प्रचलित एव उत्तरार्द्ध ऐतिहासिकता लिए हुए है। उसमान की 'चित्रावली' मे नेपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान एव रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की प्रेम कहानी है। चित्रावली कथा का जायसी की कथा से बहुत अंशो मे साम्य है। राजकुमार को लगभग वैसी ही परिस्थितियों मे डालकर वर्णन किया गया है जैसा कि जायसी ने किया है। शेखनबी कृत 'ज्ञानदीप' नामक कथा मे राजा ज्ञानदीप एवं रानी देवजानी की प्रेम कथा का लगभग इन्हीं आधारो पर वर्णन किया गया है।

सूफी कवियो द्वारा वर्णित इन प्रेम कहानियो में अनेक बातो की समानता है। प्राय: सभी सूफी कवियो ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में परमात्मा और मुहम्मद की स्तुति करके अपने गुरु का वर्णन किया है। 'शाहेवक्त' की प्रशसा इन सभी रचनाओ मे प्राप्त होती है। यद्यपि कई प्राचीन प्रेमाख्यानो में भी समकालीन राजा की प्रशसा प्राप्त होती है [१] तथापि इस नियम पालन के प्रति भारतीय कवियो मे आग्रह दिखाई नही देता। इन सभी सूफी कवियो ने प्राय उन सभी कथानक-रूढियों का व्यवहार किया है जो परम्परा से भारतीय कथाओ मे प्रयुक्त होती रही है। प्रेम का प्रारम्भ चित्र-दर्शन, स्वप्न अथवा शुक-सारिका द्वारा नायिका के गुण कथन से होता है। पशु-पक्षियो की बातचीत से अनेक रहस्यो के उद्घाटन होने का वर्णन भी अनेक कथाओ मे प्राप्त हो जाता है। इन भारतीय रूढ़ियो के अतिरिक्त कुछ फारसी-साहित्य से

---

[१] लगभग १०वीं शताब्दी की रचना तिलक मजरी मे धनपाल ने धार के परमार राजाओ की स्तुति की है।

आई हुई रूढियो का भी इन प्रेम कथानको मे समावेश हुआ है। नायक एव नायिका को मिलाने मे सहायता करने वाले देव, परियाँ आदि की कल्पना वही से ली गई हैं। कुतुवन की मृगावती मे 'धोखा देकर उड जाने वाली राजकुमारी' का वर्णन भी फारसी मे प्रचलित कथानक-रूढियो के आधार पर ही हुआ है। इन काव्यों मे पुरुष का एकांतिक प्रेम वर्णन रहता है। प्रेम का प्रारम्भ पहले नायक के हृदय मे ही होता है और उसी की ओर से नायिका को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। नायिका को प्राप्त करने मे जिन-जिन कष्टो का सामना करना पडता है वह सभी नायक के लिए ही होते है। इस ऐकातिक प्रेम-चित्रण का कारण इन काव्यो मे निहित सूफी विचारधारा ही है। सूफी कवि अपने प्रेम कथानको मे प्रेमिका को भगवान का प्रतीक मानते है। नायक मन (आत्मा) का प्रतीक है। जिस प्रकार परमात्मा के विरह मे आत्मा व्याकुल रहती है वही दशा इन प्रेम कथानको के नायको की है। जायसी ने तो ग्रन्थ के अन्त मे इस रूपक को पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है। उनने अपने उन समस्त प्रतीकों को सामने रख दिया है जिनके सहारे सम्पूर्ण कथानक आध्यात्मिक अर्थ देता है—

> तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
> गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ?॥
> नागमती यह दुनिया धन्धा। बाँचा सोंइ न एहि चित बंधा॥
> राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू॥
> प्रेम-कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु॥
>
> (जायसी ग्रन्थावली, पृष्ठ २०१)

विषय के साथ-साथ सूफी कवियो द्वारा प्रयुक्त काव्यरूप पर विचार कर लेना भी समीचीन होगा। ये समस्त रचनाएँ अवधी भाषा एव दोहा-चौपाई बन्ध मे लिखी गई। प्रारम्भिक रचनाओ मे पाँच-पाँच अर्द्धालियो के पश्चात् दोहा देने का नियम मिलता है लेकिन जायसी ने सात-सात अर्द्धालियो के बाद एक दोहा का क्रम रखा है। किसी-किसी रचना मे ८ अथवा ६ अर्द्धालियो के बाद भी दोहा देने का नियम मिलता है। इन प्रेम कथानकों मे प्रेम की तीव्र अभिव्यंजना सर्वत्र मिलती है। सयोग एवं वियोग दोनो पक्षो का वर्णन विस्तार से किया गया है। सयोग पक्ष मे नखशिख एव षड्ऋतु वर्णन एव वियोग पक्ष मे बारहमासा की योजना इन सभी प्रेम कथानको मे प्राप्त होती है। सभी कथानक खण्डो मे विभाजित है। खण्ड मे वर्णित कथा के आधार पर ही उसका नामकरण करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

(आ) भारतीय प्रेमाख्यान—लोक-प्रचलित प्रेम-कथानको को लेकर शुद्ध भारतीय शैली में भी प्रेम-कथाएँ लिखी गई। उस काल मे ढोला-मारू, माधवानल

कामकन्दला, पद्मावती एवं नल-दमयन्ती की कथाएँ बड़ी ही लोकप्रिय थी। फलत इन कथाओ को आधार बनाकर आलोच्यकाल मे अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इन कथाओ के साथ ऐतिहासिक पुरुषो के नामो का समावेश भी प्राप्त होता है। ढोला-मारू की प्रसिद्ध कथा को सर्वप्रथम कल्लोल कवि ने ग्रन्थ 'ढोला-मारू रा दूहा' मे वर्णित किया। इस ग्रन्थ मे मारवणी के प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था, स्वप्न मे प्रियतम का दर्शन, विरह से पीडित होकर ढोला के प्रति सन्देश भेजना, ढोला की भी मारवणी की दशा सुनकर व्याकुलता, ढोला का मारवणी के देश जाने को उद्यत होना और उसकी पत्नी मालवणी द्वारा उसे रोकना, एक रात चुपके से ढोला का ऊँट पर चढ कर भाग निकलना और मारवणी से मिलना। मारवणी एवं ढोला का लौटना तथा मार्ग के अनेक कष्टो का वर्णन है। जैन कवि कुशललाभ ने इसमें कथा सूत्र मिलाने के लिए बीच-बीच मे चौपाइयो को जोडकर उसकी सज्ञा 'चौपाई' के साथ दी। अनेक कवियों ने इसी कथानक को आधार बनाकर दोहा-चौपाई अथवा दोहा एव गद्य वार्त्ता में इस कथा का वर्णन किया। पद्मावती की कथा की लोकप्रियता के कारण ही जायसी ने सूफी पद्धति के आधार पर उसका वर्णन किया था। हिन्दू कवियो ने भी इसी कथा को भारतीय ढग से लिखा। कथा मे भी कही-कही भेद किया गया। 'पद्मावती' की कथा के अन्तर्गत आये हुए गोराबादल के प्रसंग को आधार बनाकर लिखी कथा की सज्ञा 'गोराबादल की कथा' दी गई। जटमल कृत 'गोराबादल' की कथा ऐसी ही रचना है।

'माधवानल काम कंदला' एक अन्य अत्यन्त प्रचलित कथानक था जिसको आधार बनाकर इस काल मे अनेक कवियो ने प्रेम-कथाएँ लिखी। सक्षेप मे उसकी कथा इस प्रकार है—'पुहुपावती नगरी मे राजा गोपीचन्द राज्य करता था। उसके राज्य मे माधवानल नामक त्यागी वैरागी ब्राह्मण सुख से रहता था। वीणावादन मे वह निपुण था। एक दिन स्नान समय वीणावादन को सुनकर स्त्रियाँ मोहित हो उठी। स्त्रियाँ एव कुरंग मोहित होकर उसके साथ चल पड़े। नगर निवासियो ने राजा से माधव की शिकायत की। राजा ने पुरजनो का मन रखने के लिए माधव को देश-निकाला दिया। माधव कामावती पहुँचा, जहाँ की कामकदला वेश्या अतीव रूपवती थी। वह राजा के भवन मे नृत्य को गई लेकिन माधव को द्वारपाल ने द्वार-पर ही रोक दिया। नृत्य के समय माधव ने शब्द सुनकर ही लक्ष्य किया कि मृदग बजाने वाली १२वी स्त्री की दाहिने हाथ की एक उँगली कटी हुई है। उसने यह बात द्वारपाल से कही और द्वारपाल ने राजा से। वास्तविकता को जानकर राजा ने माधव को अन्दर बुलाया और अनेक वस्तुएँ देकर सम्मानित किया। तत्पश्चात् राजा की आज्ञा से नृत्य प्रारम्भ हुआ। नृत्य के बीच एक भ्रमर काम-

कन्दला के स्तन के अग्र भाग पर बैठ गया। माधव ने सोचा, अब कामकन्दला इससे घबरा कर अपनी ताल भग कर देगी लेकिन कामकन्दला ने श्वास रोक कर वायु को स्तन के अग्रभाग से निकाल कर भ्रमर को उडने को बाध्य कर दिया। काकमन्दला की कुशलता पर मोहित होकर माधव ने वे सब वस्तुएँ जो उसे राजा मे प्राप्त हुई थी, उसे प्रदान कर दी। राजा यह देखकर बडा अप्रसन्न हुआ और उसे शहर से निकलवा दिया। यही से दोनो का विरह प्रारम्भ होता है। अनेक कष्टो का युगल प्रेमियो को सामना करना पडता है और अन्त मे प्रेम की विजय होती है और राजा कामकन्दला को माधव को सौप देता है।' इस कथा मे विरह वर्णन की ही प्रधानता है। माधव एव कामकन्दला प्रेम मे इतने लिप्त है कि एक दूसरे के मरने की बात सुनकर तुरन्त प्राण त्याग देते है। इस कथा के प्रेम का वर्णन सूफी कवियो के समान एकांगी न होकर उभयपक्षीय है। कामकन्दला की जितनी भी प्रति प्राप्त है सबसे कथा का क्रम लगभग यही प्राप्त होता है। किसी किसी प्रति मे कथा कुछ बढी हुई भी मिलती है जिसमे कामकन्दला के पूर्वजन्म की कथा का भी वर्णन है जो ऋषि के शाप के कारण अप्सरा से वेश्या के रूप मे जन्मी थी।

इस रूप को पूर्णतया समझने के लिए इस काल मे प्राप्त इस कोटि की शेष रचनाओ के कथानको का भी सक्षेप मे उल्लेख करना उचित है। सर्वप्रथम वार्त्ता या बात सज्ञक रचनाओ को लिया जाता है। नारायणदास कृत 'छिताई वार्त्ता' नामक ग्रन्थ मे देवगिरि के राजा की पुत्री छिताई एव अलाउद्दीन के प्रेम प्रसग का वर्णन है। अलाउद्दीन ने छिताई के रूप पर मोहित होकर उसे उडवा कर मगा लिया था। कथा के अनेक स्थल पद्मावत के समान ही है। प्रतापसिंह कवि कृत 'चन्दकुँवर री बात' ग्रन्थ मे अमरावती नगरी के राजकुमार और वहाँ के सेठ की पुत्री चन्द कुवर की प्रेम-कथा का वर्णन हुआ है। यह कथा कवि ने प्रतापसिह खुमान की आज्ञा से गद्य एव पद्य मे लिखी।[१] भद्रसेन कृत 'चन्दन मलियागिरि री बात' ग्रन्थ मे चन्दन राजा और मलियागिरि रानी की कथा है। 'इसमे मलियागिरि को एक सौदागर द्वारा उठाए जाना, उसके पुत्र—शायर का माँ को ढूढने जाना एव नदी मे वह जाना, चन्दन का रानी की खोज मे जाना, उसका चम्पापुरी पहुँचना एव वहाँ के राजा के मर जाने पर वही का राजा बनाया जाना। उधर शायर को एक सारथीपति द्वारा बनाया जाना, उसका बड़ा होना एव चम्पापुरी आना और कोतवाल की नौकरी करना, राजा चन्दन का उसी सौदागर मे अत्यन्त प्रसन्न होना एव शायर को इसे इनाम मे देना, पहरा देते समय सौदागर द्वारा कथा सुनाने की आज्ञा देने पर शायर का आप बीती सुनाना, रानी का सुनना, राजा को समाचार प्राप्त

---

[१] राज० खो० रि० भाग १ पृष्ठ २८

होना, राजा, रानी, एव पुत्र तीनो का मिलन एवं सौदागर को क्षमा करके अपने राज्य को लौटने के साथ ही कथा का अन्त हो जाता है।[1] यह कथानक इतना करुणा विगलित है कि आज भी लोक-गीतो के रूप मे प्रचलित है। जब कोई कुशल गायक—'कित चन्दन कित मलयगिरि कित शायर कितनीर' आदि पक्तियाँ भाव मे भर कर सुनाता है तो हृदय करुणा से द्रवित हो उठता है। जान कवि के 'सतवन्ती री बात' ग्रन्थ मे मन्सूर व्यापारी की स्त्री सतवन्ती के पातिव्रत धर्म का वर्णन है। मन्सूर के बाहर चले जाने पर एक धूर्त उस सती को भाँति-भाति के प्रलोभनो से जब आकर्षित नही कर पाता तो एक तांत्रिक की सहायता से मन्सूर का वेश धारण करके उसके पास जाता है। सतवन्ती को पति के शीघ्र लौट आने मे कुछ शका होती है और वह उसे कुछ समय तक टालती रहती है। अन्त मे मन्सूर आ जाता है और राजा मन्सूर के कहने से उस धूर्त को दण्ड देता है।'[2] दूतियो द्वारा इसमे षट ऋतुओं के उद्दीपन का बडा ही अच्छा वर्णन किया गया है। बात सज्ञक शेष दो ग्रन्थ 'सदैवच्छ सावलिगा री बात' सज्ञा के साथ प्राप्त हुए है जिनमे अमरावती नगरी के राजा शालिवाहन के पुत्र सदैवच्छ एवं राजा के मन्त्री पदमसी की पुत्री सावलिगा की प्रेम-कथा का वर्णन है। इन ग्रन्थो मे गद्य एव पद्य दोनो का समावेश हुआ है।[3]

भारतीत्र प्रेम-कथानकों की अन्य परम्परा की सर्वप्रथम रचना असाइत कृत 'हसाउली' है जिसमे हंसावली एवं नरवाहन के प्रेम का वर्णन हुआ है।[4] इस कथा को और विस्तार देकर 'हंसराज वच्छराज रास' नाम से अनेक जैन कवियो ने वर्णन किया है। नरवाहन एव हसावली के मिलन के पश्चात् उसके दोनो पुत्रो के सयम की कथा ही उन रास ग्रन्थो मे वर्णित की गई है। यह ग्रन्थ चार खण्डो मे विभक्त किया गया है। चतुर्भु जदास कृत 'मधुमालती कथा' एक अत्यन्त ही उच्च कोटि का प्रेमाख्यान है जिसमे लीलावली के चन्द्रसेन राजा की पुत्री मालती एव मन्त्री के पुत्र मनोहर की प्रेम-कथा का वर्णन हुआ है। कवि ने इस प्रेम-कथा की श्रेष्ठता का स्वय बखान किया है—

> बनसपती मे अम्ब फल रस मे औषध सार।
> कथा मध्य मधुमालती आभूषण मे हार।८८७।

(हस्तलिखित प्रति)

---

[1] राज० पुरा० मन्दिर की प्रति।

[2] रा० खो० रिपोर्ट, भाग ३।

[3] रा० खो० रिपोर्ट, भाग १ पृष्ठ १४७ तथा ना०प्र० सभा काशी की हस्त०प्रति।

[4] हस्तलिखित प्रति राज० पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर।

गोविन्दराम कृत 'हाडावती' नामक ग्रन्थ में भी एक प्रेम-कथा है। ईसरदास ने अपनी सत्यवती कथा का प्रारम्भ पौराणिक ढंग से किया है। यह कथा व्यास जनमेजय के सम्वाद रूप मे प्रारम्भ होती है लेकिन कथा पूर्णत काल्पनिक है। इस प्रेम-कथा मे सती की महिमा एव पातिव्रत धर्म के माहात्म्य का ही वर्णन हुआ है। नन्ददास कृत रूपमजरी सूफी कवियों के समान सिद्धान्त निरूपण के लिए लिखी गई भक्त कवि की रचना है। इसमे धर्मधीर राजा की कन्या रूपमजरी के अनुपम सौन्दर्य के वर्णन के अनन्तर कवि ने उसके कृष्ण के साथ हुए प्रेम का वर्णन किया है। स्वप्न मे कृष्ण को देखकर उन पर आकर्षित हुई यह राजकुमारी उन्हीं के वियोग मे व्याकुल रहने लगी। समस्त ऋतुओ की विरह दशा के वर्णन के अनन्तर कवि ने ग्रीष्म की एक रात्रि को स्वप्न मे प्रिय मे हुए उसके मिलन का वर्णन किया है। कलिकाल मे कृष्ण प्रकट नही है इसीलिए कवि ने उन्हे स्वप्न मे मिलाने की व्यवस्था की है। कवि का उद्देश्य यह दिखाने का है कि कलियुग मे निस्तार का एक ही मार्ग है जो रूपमजरी ने ग्रहण किया है। इस प्रेम-कथा मे कवि ने एक सर्वथा नवीन प्रयोग किया है जो प्राचीन कथा-काव्यों में व्यवहृत कथानक रूढियों मे प्राप्त नही होता। जल्ह कवि कृत 'बुद्धि रासो' एक अन्य प्रेमाख्यान है जिसमे चम्पावती नगरी के राजकुमार एव जलधि तरगिनी नामक रूपवती स्त्री की कहानी वर्णित है।[1] 'कुतुबशतक' मे फीरोजशाह के शाहजादे कुतुब और साहिबा के प्रेम की कथा गद्य एवं दोहो मे लिखी गई है। ढाढिनी के प्रयत्न से दोनो का अन्त मे विवाह हो जाता है।[2] 'रूपवती' एव 'कनक मजरी' इसी प्रकार के प्रेमाख्यान है। कनकमजरी मे रत्नपुर के धनधीर शाह व्यापारी की स्त्री कनक मंजरी धर्म की कथा है। पति के विदेश गमन के अवसर पर वहाँ के राजकुमार ने कनक मजरी से प्रेम-याचना की थी लेकिन उसे सफलता नही मिली थी। पुहकर कवि कृत 'रसरतन' में एक रस-युक्त कथा जो रसिको को प्रिय थी, का वर्णन हुआ है—

> रस रचित कथा रसिकन रुचिर रुचित रुचिर नाम रसरतन दिय। २०।
>
> (हस्त० लि० प्रति)

कवि ने एक लोकप्रचलित कथा का नवरसो मे गान किया है। यही नौ रस इस कथा के नौ खण्ड है। इसमे पूर्व दिशा के सोमेश्वर राजा के पुत्र सूरसेन एव चम्पावती नगरी के विजैपाल राजा की पुत्री रम्भा की प्रेम-कथा का वर्णन है। कवि का उद्देश्य कथा कहने के साथ-साथ नवो रसो का वर्णन करना भी था,

---

[1] राज० भाषा और साहित्य, पृष्ठ १२६।

[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ३२३।

अत उसने कथा को नौ खडो म बाट कर एक एक खण्ड मे कथा क अन्तगत एक-एक रस का वर्णन किया है। प्रत्येक रस से हाव-भाव, अनुभव, सचारी भाव आदि सभी का वर्णन हुआ है। सर्वाधिक वर्णन शृगार खण्ड का है जिसमे स्वप्न मे सूरसेन को देखने के कारण रम्भा के हृदय मे उसके प्रति प्रेम हुआ और वह विरह मे व्याकुल रहने लगी। विरह के अन्तर्गत कवि ने ९ दशाओ का वर्णन करके दशवी दशा मरण का आभास भी करा दिया है। कवि ने रचना चातुरी मे प्रेम उत्पन्न होने के लिए रूढ, स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन तथा प्रत्यक्ष दर्शन, तीनो प्रकारो का समावेश किया है। आकाशवाणी, देवताओं का सहयोग, सजीवन से मृत व्यक्ति का जीवित होना, नायक की यात्रा आदि रूढियों का इसमे समावेश हुआ है।[1]

वैरागी नारायण कृत 'नलदमयती आख्यान' एक अन्य प्रेम कथा है जिसमे कवि ने नलदमयती की लोकप्रिय कथा का वर्णन किया है। सुमति हस कृत 'विनोद रस' मे विक्रमादित्य के पुत्र जयसेन एव वहाँ के सेठ श्रीदत्त की पुत्री लीलावती की प्रेम कथा का वर्णन है। जान कवि कृत 'कथा मोहिनी' एव जटमल कृत 'प्रेम विलास' दो और प्रेम-ग्रन्थ इस काल के प्राप्त होते है। इनमे क्रमश. मोहन-मोहिनी एव प्रेमविलास-प्रेमलता की प्रेम कथाएँ वर्णित है।[2]

इन प्रेमाख्यानो की कथाएँ तीन प्रकार की है। पहले प्रकार की कथाएँ वे है जिनमे किसी कथानक-रूढि के माध्यम से नायक-नायिका मे प्रेम उत्पन्न होता है और फिर अनेक कठिनाइयाँ झेलने के पश्चात् दोनो का मिलन होता है। 'माधवानल काम कन्दला', 'मधुमालती', 'लक्ष्मरण सेन पद्मावती', 'छिताई वार्त्ता', 'रूपमञ्जरी', 'रस रतन', 'विनोद रस', 'सदैवच्छ सावलिगा री बात' आदि ऐसी ही कथाएँ है। दूसरी प्रकार की कथाएँ वे है जिनमे कथा के प्रारम्भ से ही नायक-नायिका पति-पत्नी के रूप मे चित्रित किए जाते है और किन्ही कारणो से उनका विछोह हो जाता है। अनेक कठिनाइयो का सामना करके लम्बे समय के विरह के पश्चात् उनका मिलन हो पाता है। 'ढोला मारू की कथा', 'चन्दन मलियागिरि री बात' एवं 'नलदमयंती' की कथाएँ ऐसी ही है। तीसरे प्रकार की कथाएँ ऐसी है जिनमे पति के परदेश चले जाने के कारण नायिका के विरह एव उसके शील और पातिव्रत धर्म की रक्षा करने का वर्णन होता है। 'मैनासत', 'सत्यव्रती कथा', 'सतवन्ती री बात' आदि इसी प्रकार की कथाएँ है।

१—लोक कथाएँ—इस कोटि की कथाएँ बहुत प्राचीन काल से लोक मे प्रचलित रही है। इनके नायक विक्रमादित्य अनेक निजन्धरी कथाओ के नायक रहे हैं। अनेक

[1] ना० प्र० सभा की हस्तलिखित प्रति २३८/४७ तथा ७३६।

[2] देखिए रा० खो० रिपोर्ट भाग २, पृष्ठ ७१-७२, तथा ७६-७८।

लोक-प्रचलित अलौकिक एव अतिमानवीय घटनाओ मे युक्त कथाओ को लेकर विक्रमादित्य के नाम के साथ उन्हे मम्बद्ध कर दिया गया है। संस्कृत काल से ही इस प्रकार की अनेक कथाएँ प्राप्त होती है। 'सिंहासन बत्तीसी' एवं 'बैताल पच्चीसी' दोनो ग्रन्थ सस्कृत मे भी लिखे गए हिन्दी मे भी उन्हीं की कथाओ को दोहे-चौपाई मे अनेक कवियों ने वर्णित किया। इन कथाओ मे कौतूहल जागृत करने का भाव स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। इमी कारण एकाध कवि ने तो उमे 'कौतुक कथा' भी कहा है—

> नँमेहि गुरुतु अनुमन लहा कौतिक कथा कथाम्बर कहा।
> विपुल बुद्धि लुक ग्रानह तगाहं वाचक उदयभानु हम भणाही। ६२
> (उदयभानु—'विक्रम चरित प्रबन्ध'—हस्त०)

किसी-किमी कवि ने विक्रम की इस कथा को 'चरित' भी कहा है—

> विक्रम चरित भणता हुइ पिम पिवत्रि। साभलता माहापण आवति
> कवि नरपति एहनु कहति। ६७१
> (विक्रम पच दड—हस्त० प्रति)

'सिहासन वत्तीसी' तथा 'बैताल पचीमी' मे क्रमश ३२ तथा २५ कथाएँ हैं। 'सिंहासन बत्तीसी' की कथाएँ विक्रमादित्य के सिंहासन की ३२ पुतलियो द्वारा राजा भोज मे कही गई है। एक पुतली नित्य एक कथा के द्वारा विक्रम के किसी विशिष्ट गुण का बखान करके राजा भोज से कहती है कि यदि तुम इस गुण मे युक्त हो तो इस सिंहासन पर बैठने के अधिकारी हो, अन्यथा नहीं। राजा उम कथा को सुनकर निराश होकर घर लौट जाता है और दूसरे दिन फिर जैसे ही सिंहासन पर बैठने को प्रस्तुत होता है, अन्य पुतली उसे रोकते हुए दूसरी कथा कहना प्रारम्भ कर देती हैं। इस प्रकार ३२ दिनों तक वह भोज को उस सिंहासन पर बैठने से रोके रहती है। बत्तीसवी कथा मे पुतली विक्रम के पुत्र के सिहासन पर बैठने की कथा का वर्णन करती है। उस कथा मे कहा गया है कि विक्रम का पुत्र जैसे ही मिहासन पर बैठता है, मूर्च्छित हो जाता है और उसी मूर्च्छावस्था मे विक्रमादित्य उसे उस सिंहासन पर न बैठने, सिंहासन को वही भूमि मे गाड कर अम्वावती मे जाकर राज्य करने का आदेश देते है। इन कथाओ से भोज को भी वैराग्य उत्पन्न होता है और वह उस सिंहासन को उसी गड्ढे मे रखवा कर सन्यास ग्रहण कर लेता है। इन बत्तीस कथाओ मे अनेक लोक प्रचलित कथाएँ है जिनके नायक के लिए विक्रमादित्य की कल्पना की गई है। २१वी पुतली के मुख से कहलाई गई कथा 'माधवानल काम कन्दला' की प्रसिद्ध कथा है जिसमे विक्रम द्वारा राजा से युद्ध करके काम कंदला को प्राप्त करके उसके प्रेमी माधव को सौंप देने का

वर्णन हुआ है कुछ कथाए ता अ य त ही सूक्ष्म है, जिनम किसी व्यक्ति का दुखा देखकर विक्रमादित्य द्वारा उसकी सहायता करने का उल्लेख है। 'बैताल पचीसी' में बैताल द्वारा विक्रम से कही गई २५ कहानियो का सग्रह है। इन कहानियों को प्रारम्भ करने मे पूर्व कवियों ने एक अन्य कथा दी है जिसमे विक्रम के गुणो का बखान करते हुए उन कथाओं के कहने के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। पृष्ठ-भूमि मे दी गई कथा ही विक्रम से सम्बन्धित है। अन्य कथाओं मे विक्रमादित्य का कोई उल्लेख नही है। 'बैताल पचीसी' की पृष्ठभूमि मे दी गई कथा 'सिंहासन बत्तीसी' मे दूसरी पुतली के मुँह से कहलाई गई है। विक्रमादित्य के सम्बन्ध मे प्रचलित लोक-कथाओ का 'सिंहासन-बत्तीसी' मे संग्रह हुआ है। 'विक्रम पच दड' सज्ञा से जो ग्रन्थ आलोच्य-काल मे लिखे गए, उनमे विक्रमादित्य के छत्र के पाँच दण्डों का ही वर्णन किया गया है—

शान्ति जिनेसर पद नमी, विक्रम चरित उदार।
पञ्च दण्ड छत्रह, तणी, कथा कहूँ शुभकार। १।
(मालमुनि—विक्रम पञ्च दण्ड चौपाई)

'विक्रम पञ्च दण्ड' मे विक्रमादित्य के चरित्र के पाँच प्रमुख गुण—साहस, बल, ज्ञान, दान, एव उदारता से सम्बन्धित पाँच कथाओ का पाँच अध्यायों मे वर्णन किया गया है। यही पाँचो गुण विक्रम के अविचल छत्र के पाँच दड हैं। 'विक्रम चरित प्रबन्ध' एव 'विक्रम वापर चरित' मे विक्रमादित्य के चारित्रिक गुणो पर प्रकाश डालने वाली कथाओं का सग्रह है—

कहिसि कथा कवीश्वर सार, विक्रम राज कुली परमार।
तिहनु उद्यत अछइ चरित्र एक मनासा भलु पवित्र। ८।
(उदयभानु—विक्रम चरित प्रबन्ध—हस्तलिखित प्रति।

इस प्रबन्ध की विशेषताओ तथा उससे होने वाले फलों का भी इस ग्रन्थ मे उल्लेख हुआ है—

एह प्रबन्ध चिन्तामणि प्राय। एह प्रबन्ध भणता सुख पाय।
एह प्रबन्ध छइ बुद्धि निवास। सुणता सिद्धनी फलीह आस॥ ६३।
(वही प्रति)

कहना न होगा कि विक्रम से सम्बन्धित इन सभी 'प्रबन्ध', 'चरित', 'विलास' एवं 'पञ्च दण्ड' सज्ञक रचनाओ की कथाओ को सिंहासन बत्तीसी की कथाओ से ही लिया गया है। मालदेव कृत 'भोज प्रबन्ध' इसी नाम के संस्कृत ग्रन्थ के आधार पर रचा गया है। जिसमे भोज के चरित्र से सम्बन्धित अनेक कथाओ का संग्रह है।

२—**नीति कथाएँ**—संस्कृत साहित्य के 'हितोपदेश' एवं 'पञ्च तन्त्र' के आलोच्य काल मे कुछ अनुवाद प्रस्तुत किए गए। ऐसे ग्रन्थ दो ही है। अनुवाद होने के कारण इन ग्रन्थों मे नवीनता का सर्वथा अभाव है। संस्कृत की इन लोक-प्रिय कथाओं को भाषाबद्ध करना ही इन कवियों का उद्देश्य था।

३—**अन्य कथाएँ**—ठकुरसी कृत 'कृष्ण चरित्र' एवं ब्रह्मगुलाल कृत 'कृपण जगवानिक की कथा' दोनों कथाएँ है। इनमे नायकों के इस दुर्गुण से उठाए जाने वाले कष्टों का ही वर्णन हुआ है। ये सामान्य-कोटि की कहानियाँ है और विषय की दृष्टि मे महत्त्वहीन है।

काव्य रूप की विशेषताएँ—इस काव्य-रूप की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसके उन कथाओं को, जो अपनी लोकप्रियता के कारण मुख एवं श्रवण के द्वारा सैकडों वर्षों तक जीवित रह कर जन-जीवन को आनन्दित करती रही, साहित्यिक रूप प्रदान किया। साहित्य मे आकर इस रूप का उद्देश्य रसिकों के मनोरञ्जन तक ही सीमित न रह कर सिद्धान्त निरूपण एवं लोक कल्याण भी हुआ।

इस काव्य-रूप के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली रचनाओं के स्वरूप मे अद्‌भुत साम्य दिखाई देता है। १—चरित-काव्य के समान सभी कथाओं का प्रारम्भ सरस्वती वन्दना तथा मगलाचरण से होता है। २—प्राय सभी रसात्मक कथाएँ नायक-नायिका के जन्म से पूर्व उनके पिता के वर्णन से प्रारम्भ होती है। इति-वृत्तात्मक कथाओं मे इस प्रकार के वर्णनों का अभाव होता है। ३—रसात्मक कथाओं मे प्रेम-प्रसग की प्रमुखता होने के कारण वियोग वर्णन के अन्तर्गत बारह-मासो अथवा सभी ऋतुओं की वेदना का वर्णन किया जाता है। इतिवृत्तात्मक कथाकाव्यों के अन्तर्गत आने वाली लोक-कलाओं मे से कुछ मे विरह वर्णन तो हुआ है लेकिन वह भावात्मक न होकर वर्णनात्मक ही अधिक है। ४—प्राय. सभी कथा वार्त्ता-काव्यो का खण्डों मे विभाजन किया जाता है। खण्डों की सज्ञाएँ, खण्ड, अध्याय, आदेश, कलिका आदि प्राप्त होती है। ५—प्राय सभी काव्य दोहा-चौपाई की प्रचलित शैली मे ही लिखे गए है। पुहकर के 'रस रतन' मे कथा के साथ रसो के वर्णन के कारण ही दोहा-चौपाई के साथ पद्धरी, पण्डक, भुजगप्रयात, कवित्त, सवैया, त्रोटक आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। ६—सभी कथा-वार्त्ता-काव्यो मे कथानक-रूढियो की भरमार है। कथानक-रूढियो के अभाव मे कथा-वार्त्ता-काव्य की कल्पना भी सम्भव नही है। ७—सभी काव्यों का अन्त आनन्द मे हुआ है। ग्रन्थान्त मे ग्रन्थ के पाठ के कल्याणकारी फल का उल्लेख किया गया है।

५—पद, सबद एवं लीला के पद

पद:—परिभाषा एवं व्याख्या—आलोच्य काल मे 'पद' एक प्रमुख काव्य-प्रकार रहा है। विभिन्न राग-रागिनियो मे निबद्ध यह 'पद' गेय होते थे और इनमे भक्ति, धार्मिक सिद्धान्त, ज्ञानपूर्ण उपदेश तथा निज मत मण्डन एव अन्य मतो के खण्डन का प्रयत्न होता था। यह रूप इतना प्रचलित एव सर्वप्रिय है कि 'पद' शब्द सुनते ही उसका वास्तविक स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। संक्षेप में उसकी परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है। 'विभिन्न राग-रागनियो मे गेय मुक्तक छन्द पद कहे जाते है।'

इन गेय पदो की परम्परा नाथ एव सिद्धो के काल से प्राप्त होती है। वहां इन पदों का प्रयोग उपदेश पूर्ण बातो के स्पष्टीकरण के लिए ही किया जाता था। पुराने सिद्ध इन पदो मे 'चर्या' एव सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते थे। सिद्धो मे 'चर्या-पद' अधिकता से प्राप्त होते है। जैसा कि काव्य रूपो के इतिहास के प्रकरण मे कहा गया है आलोच्य काल के सन्त कवियो मे यह रूप सीधा सिद्ध एवं नाथो से आया है इसलिए इस काल मे भी पदो मे वर्णित विषय उपदेश परक एव सिद्धान्त कथन ही रहे। सन्तो की देखादेखी जब इस प्रसिद्ध रूप का प्रचार आलोच्य काल के भक्त कवियो के मध्य हुआ तो धार्मिक विचारो के अन्तर के कारण इन पदो के विषय भी ज्ञान के स्थान पर भक्ति एव उसके सिद्धान्तो का निरूपण ही स्वीकार किए गए।

वर्णित विषय—सन्त कवियो ने पदो मे अपने सिद्धान्तो की व्याख्या, प्राणियो को उपदेश, योग क्रियाओ का वर्णन, खण्डन-मण्डन, साधु सगति की महिमा एव निर्गुण ब्रह्म की व्याख्या आदि विषयो का ही समावेश किया। ब्रह्म एव माया के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए उन्होने कही-कही उलटबाँसियो का भी सहारा लिया। इन उलटबाँसियो मे व्यवहृत शब्द अपना विशिष्ट अर्थ रखते है जिसको जाने बिना पद का भाव स्पष्ट नहीं होता।

> एक अचम्भा देखा रे भाई, ठाढा सिंघ चरावै गाई। टेक।
> पहले पूत पाछे भई माइ। चेला के गुरु लागै पाइ।
> जल की मछरी तरवर ब्याई। पकडि बिलाई मुरगै खाई। पद ११।

(कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ९२)

अनेक पदो मे गुरु की महिमा का गान मिलता है, जिसकी कृपा के बिना ज्ञान उत्पन्न नही होता। कबीर ने अनेक पदो मे अपने सिद्धान्तो की व्याख्या करते हुए पण्डितो के ज्ञानाभिमान को चूर्ण किया है और उन्हे बडी फटकार लगाई है।

कुछ पदो मे शरीर की नश्वरता, तथा ब्रह्म की महत्ता का बार-बार स्मरण दिला कर मन को आनन्दमय ब्रह्म की ओर ले जाने का भाव व्यक्त किया गया है। साधु सगति की महिमा का गान इन पदो मे पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। कुछ पदों मे रहस्य भावना को लेकर माधुर्य की भी अभिव्यक्ति हुई है। कबीर राम को अपना प्रियतम मान कर उनके साथ अपने विवाह होने की बात का वर्णन करते है—

दुलहिन गावौ मगल चार।
मेरे घर आये राजाराम भरतार। पद १। वही।

सन्तो के इन पदों मे सम्प्रदाय के सिद्धान्तो की व्याख्या के अतिरिक्त सरल जीवन, स्पष्ट व्यवहार, सत्य का पालन आदि विषयो का भी वर्णन हुआ है। हिन्दू एव मुसलमानो के पारस्परिक विरोध एव उनमे प्रचलित अध विश्वासो को दूर करने मे भी सन्तो के इन पदो का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

भक्त कवियो ने अपने पदो मे अपने सिद्धान्तो के निरूपण का ही प्रमुख रूप से प्रयास किया। आलोच्य-काल मे भक्ति के अनेक सम्प्रदाय हिन्दी-क्षेत्र मे प्रचलित थे। सभी सम्प्रदायो के भक्त कवियो ने पदों के माध्यम से अपने सिद्धान्तो का प्रचार किया। इसी कारण अनेक भक्त कवियो के पदो की सज्ञा भी 'सिद्धान्त के पद' अथवा 'स्फुट पद' प्राप्त होती है। श्री हितहरिवश जी ने राधावल्लभी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का पदो मे ही वर्णन किया—

रहौ कोउ काहू मनहिं दिये।
मेरे प्राणनाथ श्री श्यामा शपथ करौ तृण छिये।
जे अवतार कदब भजत हैं धरि दृढ व्रत जु हिये।
तेऊ उमगि तजत मर्यादा वनविहार रस पिये। २०।
(श्री हितामृतसिंधु : फुटकर वाणी · पृष्ठ १३)

तुलसीदास जी ने तो पदो मे ही राम-कथा का वर्णन किया। उनकी गीतावली राम कथा से सम्बन्धित पदो का सग्रह है। पदो मे कथा वर्णन करने की कठिनाइयों के कारण ही इसमे प्रबन्धात्मकता नही आ पाई है। मार्मिक स्थलो का तो अनेक पदो मे वर्णन किया गया है जबकि कथा के अन्य अनेक विवरणात्मक स्थलों को छोड दिया गया है। अग्रदास के पदों मे कृष्ण भक्त कवियो के समान ही राम भक्ति के सिद्धान्तो का वर्णन हुआ है।—

भक्त कवियों में मीरा के पदों मे एक नवीनता लक्षित होती है। उन पदो में प्रेम-दीवानी मीरा कृष्ण के साथ अपने अनन्य सम्बन्ध का वर्णन करती है—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई।
छोड़ि दई कुल की कानि कहा करैगो कोई। मीरा पदावली

मीरा ने सन्त कवियो के समान ही अपने पदो मे आध्यात्मिक पीर का भी वर्णन किया है। उनके पदो मे व्यक्तिगत ईश्वर की ही भावना होने के कारण रूप-सौंदर्य एवं प्रेमाभिव्यक्ति की प्रधानता है। संतो के समान ईश्वर की भक्ति का वर्णन करते समय विषय-वस्तु, शैली, शब्दावली एव रूपको का प्रयोग आदि सभी तत्त्व सन्तों के से ही दिखायी देते है—

नैनन बनज बसाऊँरी जो मे साहिब पाऊँ।
इन नैननि मेरा साहिब बसता डरती पलकन नाऊँरी।
त्रिकुटी महल मे बना है झरोखा तहाँ से झाँकी लाऊँरी।
सुन्न महल मे सुरत जमाऊँ सुख की सेज बिछाऊँरी।
प्रेम के प्रभु गिरधर नागर बार-बार बलि जाऊँरी। ७७
(मीरा पदावली)

इस काल के भक्त कवि परुशराम देव ने अपने पदों मे सन्त एव भक्त दोनो प्रकार के कवियो के वर्ण्य विषयो को अपनाया। एक ओर संतो के समान उन्होने छुआछूत, ऊँच-नीच, भेद-भाव का खण्डन करके सत्य आचरण, सत्संगति, साधु सेवा आदि पर बल दिया, तो दूसरी ओर भक्तो के समान प्रभु की दयालुता, नाम जप की महिमा, प्रभु मे विश्वास, प्रेम का महत्त्व, भक्ति की लालसा, अवतार का महत्त्व, भजन की महत्ता, नवधा भक्ति, ईश्वर की भक्त वत्सलता आदि का भी वर्णन किया। प्रारम्भिक भक्त कवि अपने मे ही मस्त रहे, उन्होने लोक की ओर विशेष ध्यान नही दिया लेकिन बाद के भक्त कवि जब लोक कल्याण की कामना से प्रेरित हुए तो उनके पदो मे उपदेशपरक बातों का भी समावेश हुआ। अब तक जो क्षेत्र नाथ एवं सन्तों के लिए ही समझा जाता था, उनमे भक्तो ने भी प्रवेश किया। परुशराम के उपदेश परक अनेक पद एव उनकी शब्दावली सन्त कवियो के समान ही है—

अवगत गति जाणी न जाइ काहू के कीये।
अगम अगोचर निगम नैं जु खोजत मन दीये। १६।
(परुशराम देव—परुशराम सागर हस्त० प्रति)

इन्होंने प्रतीकात्मक शब्दों के माध्यम से उलटवासियाँ भी लिखी है। उनकी नीचे दी हुई उलटबाँसी कबीर की उलटबाँसी से कितना साम्य रखती है—

अवधू उलटी राम कहानी।
उलटा नीर पवन को सोषै यह गति बिरलै जाणी।
पाचौ उलटि एक घर आया तब सर पीवण लागा।
मूरही सिंघ एक सग देख्या दानी कौ सर लागा।
मृगहि उलटि पारधी वेध्या भीवर मछवा सेव्या।
उलटा पावक नीर बुझावै सग मजारी सूवा देख्या। ६३
(परशुराम देव-परशुराम सागर हस्त० प्रति)

ऊपर के वर्णन मे यह स्पष्ट है कि सिद्धों के समय से ही पदों मे जिन विषयों का समावेश किया जाता था वही विषय आलोच्यकाल में लगभग उसी रूप मे सन्तो तथा कुछ परवर्ती भक्त कवियो द्वारा भी गृहीत हुए। अधिकांश भक्त कवियो ने इस प्रमुख रूप को अपने भक्ति सिद्धान्तो के विवेचन के लिए ही अपनाया। हाँ, तानसेन आदि एकाध सगीतज्ञ ने पदो मे ईश्वर, देवी, देवता आदि की स्तुति के साथ-साथ दरबारियो का यशगान एव शृ गार वर्णन भी किया।

सबद—व्याख्या एवं परिभाषा—हिन्दी साहित्य कोश मे 'सबद' की व्याख्या इस प्रकार की गई है—'सबद' शब्द का रूपान्तर है। वेद शब्द परक है और वेद का अर्थ है ज्ञान। अत शब्द का भी अर्थ हुआ ज्ञान। वैदिक ग्रन्थ अपौरुषेय माने गये हैं और सन्त तथा नाथ सम्प्रदाय मे गुरु की प्रतिष्ठा ब्रह्म के समान ही है। अतः गुरु की वाणी का नामकरण-शब्द (सबद) सबदी है।[1] 'चतुर्थ अध्याय में 'सबद' के प्रकरण मे गोरख बानी से एक उद्धरण देकर यह दिखाया गया है कि 'सबद' ही समस्त ज्ञान की कुंजी एव प्रकाश करने वाला है और ऐसे वचन किसी श्रेष्ठ पुरुष अथवा ईश्वर के ही हो सकते है जो स्वय ज्ञान स्वरूप हो। इन सन्तों मे गुरु की प्रतिष्ठा ईश्वरवद् होने के कारण उनके ज्ञानपूर्ण वचनों को 'सबद' सज्ञा दी गई। कबीर के बीजक की पंक्ति 'बानी हमारी पूरबी' की टीका करते हुए कबीर पथी टीकाकारो ने 'पूर्व' का अर्थ 'आदि' शब्द से करके उसका अर्थ आदिकालीन वाणी अर्थात् वेद किया है। 'शब्द स्तोत्र माला' मे भी शब्द को अखण्डित, अगाध तथा सकल घट मे व्याप्त कहा है—

सबद अखण्डित रूप सबदु नहिं पण्डित होई।
जैसा सबद अगाध, सकल घट रह्यो समोई।
सबदु करै आचार सबद सबनि रोये अरु गावै।
निर्गुन सर्गुन बरनि सबद सब निनै गावे॥
(हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ८०८ से उद्धृत)

[1] हिन्दी साहित्य कोश-सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि पृष्ठ ८०७।

इस प्रकार सबद का नाथो एव सन्तो मे वेद के समान स्वीकार किया गया है। सबद के इस प्रारम्भिक रूप को देखते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—

परिभाषा—'ज्ञानस्वरूप गुरुओं के सिद्धान्त निरूपक एव ज्ञानपूर्ण वचनो की सज्ञा 'सबद' दी जाती थी।'

सबद एवं पद का भेद—'सबद' संज्ञक गुरु की यह वाणी सर्वज्ञान सम्पन्न, सब कर्मों का नियन्त्रण करने वाली होती थी, इसीलिए श्रेष्ठ भाव से ग्रहण की जाती थी। 'सबद' सामान्य कोटि के पदो से भिन्न श्रेणी की रचना मानी जाती थी। पद राग-रागनियों मे निबद्ध होते थे लेकिन 'सबद' के लिए यह विधान नही था।[1] सबसे प्रारम्भ के सबद रागो के अतिरिक्त चौपाई जैसे छन्दो मे भी वर्णित मिलते है। गोरखनाथ के सबद-रागो मे निकट पद एव भिन्न रूप मे बद्ध भी प्राप्त होते है—

चेला सब सूता नाथ सत गुरु जागै। दसवै द्वार अवधू मधकरी मागै।टेक।
सहजै खपरा सुषमनि डण्डा। पाच मगाती मिलि वेले नव षंडा॥
गग जमन मधि आसन वालो। अनहद नाद काल मैं टालो।
गगन मण्डल मे रमौ अकेला। उरध मुषि वक नालि समीर सकेला।
कथत गोरखनाथ गुरु उपदेशा। मिल्या सन्त जन मिट्या अन्देशा। सख्या ७।
(गोरखनाथ की सबदी, हस्तलिखित प्रति,)

यह सबदी राग मे निबद्ध है। प्रकाशित गोरखबानी की प्रथम सबदी जो चौपाई जैसे छन्द मे है, यह है—

वसती न सुन्य सुन्यं न वसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिवर मंहि बालक बोलै ताका नाव धरहुगे कैसा।

गोरख के सबदों मे रागो का निर्देश भी हुआ है। इस प्रकार प्रारम्भ मे 'सबद' तथा 'पद' के रूप भेद का कोई प्रधान लक्षण नही अपनाया गया। केवल गुरु कोटि के सन्तो के उपदेशपरक ज्ञानपूर्ण पदो को 'सबद' एव अन्य पदो को 'पद' नाम दिया जाता रहा। कबीर के समय मे भी शायद यह भेद वर्तमान रहा हो। कबीर के वही पद 'सबद' कहलाते है जो बीजक मे सग्रहीत हैं और कबीर पथी साधुओ मे जिनका प्रचार है। अन्यत्र उनके पदों को 'पद' ही संज्ञा दी गई है। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' के समय तक यह भेद पूर्णतया लुप्त हो गया था। क्योंकि सम्प्रदाय का ग्रन्थ होने के कारण इस भेद का उसमे मिलना अत्यन्त आवश्यक था। वहाँ कबीर के 'पद'

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश-सम्पादक डा० धीरेन्द्रवर्मा आदि, पृष्ठ ८०८।

के नाम से ही सग्रहीत है और उनमे रागो का भी निर्देश हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सबद तथा पद का यह भेद शीघ्र ही समाप्त हो गया और बाद के कवियो मे किन्ही भी पदो को 'सबद' सज्ञा देने की प्रथा चल पडी।

वर्णित-विषय— नाथ पथी सन्तो मे यह रूप ज्ञान उपदेश एवं सिद्धान्तपरक उक्तियों के लिए प्रयुक्त होता था। गोरखबानी मे सबद शब्द का प्रयोग भी ज्ञानोपदेश के अर्थ मे हुआ है —

सबद एक पूछिया कहो गुरु दयाल ।
बिरिधि नै क्यू करि होइया बाल ।।
(गोरखबानी —सबदी प्रकरण पृष्ठ सख्या ३०)

इस प्रकार इस रूप का विषय मुख्य रूप से ज्ञान वर्णन था। कबीर के सबद जो 'बीजक' मे सग्रहीत है उनमे माया वर्णन, उससे बचने के उपाय, मन को उपदेश, विनय, भ्रम की प्रबलता, राम रहीम की एकता, धार्मिक एवं सामाजिक पाखण्डो का खण्डन आदि विषयो का ही वर्णन है। इन विषयो के वर्णन का उद्देश्य शिष्यो को उस ज्ञान से परिचित कराना था, जो कबीर ने स्वय प्राप्त किया था। इन सबदो मे सामान्य जन के लिए कही गई बातों का अभाव ही दिखाई देता है। हाँ, प्रसगवश कुछ ऐसे स्थल (राम-रहीम की एकता, खण्डन-मण्डन आदि) भी इसमे आ गए है जिनका कबीर ने अपने पदो मे भी वर्णन किया है। सन्त साहित्य मे कबीर अगुआ थे, अत. परवर्त्ती समस्त सन्तो ने उन्ही के दिखाये मार्ग का अनुसरण किया है। आगे चल कर 'पद' एव 'सबद' का अन्तर भी समाप्त हो गया। परिणामत धर्मदास, सिद्धराम, दादूदयाल आदि सन्तो के 'सबदो' मे भी उन्ही सब बातो का विवेचन हुआ है जिनका कबीर अपने 'पद' एव 'सबदो' मे वर्णन कर चुके थे। कबीर का विवेचन तत्कालीन परिस्थितियो को देखते हुए सर्वागपूर्ण था। फलत वर्णन के लिए मौलिक विषयो का इन परवर्त्ती सन्तो के समक्ष अभाव ही रहा है।

लीला के पद—स्वरूप की व्याख्या—लीला के पद जयदेव के पूर्व से ही लोक प्रचलित रहे होंगे ऐसा अनुमान किया जाता है। इन पदो की लोकप्रियता को देख कर ही जयदेव ने प्रभावित होकर 'गीत गोविन्द' के पदों मे लीलाओ का वर्णन किया। साधारणत इन लीला के पदो के अन्तर्गत कृष्ण की गोपी सम्बन्धित अनेक मनोहारिणी लीलाओ का गान होता था। स्फुट रूप से किसी लीला विशेष के लिए एक या अधिक पदो की रचना कर देना ही पर्याप्त समझा जाता था। आलोच्यकाल मे लीला के पदो का बड़ा प्रचार हुआ और अधिकाश भक्त कवियों ने लीला के पदो की रचना प्रबन्ध अथवा स्फुट रूप से की। इन पदों मे कृष्ण की विभिन्न लीलाओ के वर्णन के साथ-साथ उनके गुणगान एव कीर्तन का भाव ही प्रधान था। कृष्ण-लीला

वर्णन के प्रसग म इन भक्त कवियो ने अन्य अनक काव्य रूपा के विषय से सम्बन्घ रखने वाले पदो की भी रचना की, जिन पर आगे वर्णित-विषय के समय विचार होगा।

सूरदास एव परमानन्ददास ने स्फुट रूप मे लीला के पद न लिखकर प्रबन्ध रूप से लीला गान किया। चतुर्थ अध्याय मे इन रचनाओं को क्रमश 'कीर्तन-काव्य' तथा 'मात्र कीर्तन' दो रूपो मे रखा गया है। नीचे उन दोनो रूपों पर कुछ विचार कर लेना समीचीन होगा।

कीर्तनकाव्य—सूरसागर का स्वरूप—सूरदास कृत 'सूरसागर' पदो का सग्रह है। उसमे कृष्ण की लीलाओ का प्रबन्ध-रूप मे वर्णन किया गया है। इस प्रकार मुक्तक रूप से लिखे जाने वाले लीला के पदो मे यह रूप सर्वथा भिन्न है। इसमें श्रीमद्भागवत का आधार तो ग्रहण किया गया है लेकिन यह उसके अनुवाद रूप मे नही है अतः इसे 'पुराण काव्य' भी नही कहा जा सकता। श्री कृष्ण की लीलाओ के वर्णन के अतिरिक्त इसमे श्री मद्भागवत के अन्य अध्यायो की कथाओ का भी संक्षेप मे निरूपण है। अत यह आलोच्यकाल मे प्रचलित 'लीला काव्यों' से भी भिन्न ठहरता है। प्रबन्ध रूप से वर्णन किए गए लीला के उन पदो को स्वय सूरदास जी ने 'कीर्तन' की संज्ञा दी है।[1]

अब विचारणीय यह है कि 'सूरसागर' सूरदास के स्फुट रूप से किए गए कीर्तनो का सग्रह है अथवा उसमें कथावस्तु का कोई सूक्ष्म निर्वाह भी हुआ है। हिन्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान् डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी इसको सग्रहात्मक मानते है। इस सम्बन्ध मे उनका मत यह है—'सूरदास के नाम पर बहुत से पद चौपाई छन्दों मे बद्ध मिलते है। कई प्रतियो में यह चौपाई वाले छन्द प्राप्त नही होते और कई मे मिल जाते हैं। मुझे लगता है कि भावपूर्ण पदों के बीच, रास लीला आदि के समय कथा सूत्र को जोडने के लिए ये चौपाई बद्ध पद बाद मे जोडे गये होंगे। ढ़ोला के दोहो का कथासूत्र मिलाने मे कुशललाभ ने इसी कौशल का सहारा लिया था''।[2] सूरसागर को सग्रहात्मक ग्रन्थ सिद्ध करने के पक्ष मे निम्न तर्क भी उपस्थित किये जाते है—१. इसके सस्करण सग्रहात्मक ही अधिक प्राप्त होते हैं। २. सबसे प्राचीन प्रति सग्रहात्मक है। ३. सूर ने कीर्तन की आवश्यकतानुसार ही कीर्तनों की रचना की, प्रबन्ध रूप मे नही। ४ सम्प्रदाय मे प्राप्त पद भी सग्रह रूप में ही है। 'सूर-सागर की रचना प्रबन्ध-रूप में हुई।'' इस कथन के समर्थक डा० सत्येन्द्र ने ऊपर के सभी तर्को के समाधान प्रस्तुत किए है।[3]

---

[1] अष्टछाप वार्ता, पृष्ठ १०५।

[2] हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ६७।

[3] सूर की झाँकी, पृष्ठ १४६-१४७।

१—सग्रहात्मक प्रतियों की अधिक सख्या का कारण वह उस प्रकार के सग्रहो की उपयोगिता ही ठहराते है। वह सगीतज्ञ, भक्त एव कीर्तनियाँ तीन प्रकार की कोटियों के लिए तीन प्रकार के सग्रह किये गए, ऐसा मानते है। भक्त एव सगीतज्ञो के लिए कुछ चुने हुए पदो से ही काम चल जाता था। और ऐसे व्यक्ति अधिक थे, अत ऐसी प्रतियाँ भी अधिक है। कीर्तनियाँ कम थे, अत उनके लिए निर्मित प्रतियाँ (प्रबन्धात्मक प्रतियाँ) भी कम है।

२—'प्रथम प्रति सग्रहात्मक है', इस तर्क के सम्बन्ध मे उन्होने कहा कि ऐसी प्रतियो मे पद सख्या अत्यल्प है। जो निश्चिय ही किसी बड़े ग्रन्थ से सग्रहीत है। प्राचीन प्रतियो मे २००-३०० पदो से अधिक नही है जबकि सूर के पदों की सख्या सवा लाख कही जाती है। यदि सम्पूर्ण सूर सागर की प्रति प्राप्त हो और उसका स्वरूप सग्रहात्मक हो तो यह तर्क उचित हो सकता है।

३—तीसरे तर्क के सम्बन्ध मे वह कहते है कि वार्त्ता के प्रसगो के अनुसार दीक्षा के समय ही सूर को भागवत की सचित्र लीला स्फुरित हुई थी। लीला-पदों की रचना करने वाले व्यक्ति को लीलाओ के क्रम का तो ज्ञान होना ही चाहिए। किसी भी लीला के पद किसी भी समय लिखे गये हो लेकिन लीला क्रम के अन्तर्गत तो उसका स्थान निश्चित पहिले से ही था क्योंकि उनके समक्ष भगवत् लीला-वर्णन की योजना प्रस्तुत थी और उसी को दृष्टिगत रखते हुए उन्हे वर्णन करना था।

४—चतुर्थ तर्क के सम्बन्ध मे वह कहते है कि सम्प्रदाय मे प्रचलित सग्रह स्वय सग्रह है, जो अवसरो की दृष्टि से सग्रहीत किए गए है। उनमे सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के एव अन्य कवियों के पद प्राप्त होते है। सूर की रचनाएँ उन सग्रहों में सग्रहीत पदो तक ही सीमित नही कही जा सकती।

प्रबन्ध रूप मे 'सूरसागर' के लिखे होने के विपक्ष मे उपस्थित किए गए तर्कों का ऊपर तर्कपूर्ण ढग से समाधान किया गया है और वह समीचीन भी है लेकिन इससे डा० द्विवेदी के तर्क पूर्ण अनुमान का समाधान नही होता। चतुर्थ अध्याय में दिखाया जा चुका है कि पद्धटिका एक छोटा कथानक छन्द था जो कथानक को जोडने के लिए प्राचीन काल से ही प्रयोग किया जाता था। 'उपदेश रसायन रास' की टीका मे इसके सभी रागो मे गाये जाने का उल्लेख है। अत सूर जैसे गायक द्वारा जिसे प्रबन्ध रूप मे लीला गान करना था, उस बहु प्रचलित कथानक छन्द का कथाक्रम को जोड़ने के लिए उपयोग किया जाना, असम्भव नही है। सूरसागर का 'रागबिलावल' उसी पद्धटिका के ढग का १६ मात्राओं का ही छन्द है। सूर के काल तक इस बन्ध का भाषा साहित्य मे पर्याप्त प्रचार हो चुका था और उसके कुछ समय

पश्चात् तो उस रूप का (चौपाई के नाम से) चरमोत्कर्ष हुआ फिर सूर के काव्य मे उसका प्रयोग अनुपयुक्त नही कहा जा सकता।

सूरसागर कृष्ण लीला सम्बन्धी कीर्तनो से भरा हुआ है और इन कीर्तनो का गान एक निश्चित प्रणाली पर हुआ है। अकबर के राज्य-काल मे इस प्रकार के कीर्तन करने वालो का उल्लेख मिलता है। 'आईने अकबरी' मे अन्य गायको के साथ कीर्तनियो का भी वर्णन हुआ है जो ब्राह्मण होते थे और बालको को सुन्दर स्त्री वेष धारण कराकर कृष्ण की स्तुति एव उनकी लीलाओ का गान किया करते थे।[1] इस विवरण से यह स्पष्ट है कि कीर्तन एव लीला उस काल मे एक ही रूप मे ग्रहण किए जाते थे। इसी समय जैनो की रास परम्परा कृष्ण लीलाओं का सयोग प्राप्त करके रास अथवा कीर्तन के रूप मे मध्य देश मे विकसित होती हुई परिलक्षित होती है। इसमे प्रारम्भिक रासो के समान ही गीत, वाद्य एव अभिनय का प्राधान्य होता था। यह बात सर्वप्रसिद्ध है तथा वार्त्ताओ में भी इसका उल्लेख है कि वल्लभाचार्य ने सूरदास को श्रीनाथ जी के मन्दिर का कीर्तनियाँ नियुक्त किया था। वल्लभाचार्य ने चैतन्य देव से कीर्तन को तो ग्रहण किया लेकिन उन्होने कीर्तन से अधिक 'नित्याचार' को महत्त्व दिया। इसीलिए वैष्णव मन्दिरो मे कृष्ण की दैनिक चर्या की आठ झाकियाँ सजाई जाने लगी। ये झाँकियाँ इस प्रकार थी—जागरण, कलेऊ, दधिमाखन, गौ दोहन, गौचारण, यमुनातट क्रीडा, गृह आगमन और शयन। सम्प्रदाय मे इनकी सज्ञाएँ—मगला, शृगार ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सध्या एव शयन दी गई। अष्टछाप के कवियो को प्रत्येक झाँकी के समय गाने के लिए नियुक्त भी किया गया था। झाँकियो के क्रम से उनकी नियुक्ति इस प्रकार की गई थी—परमानन्द दास, नन्ददास, गोविन्दस्वामी, कुम्भनदास, सूरदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, एव कृष्णदास। इनमे से प्रत्येक कवि नियत झाँकी के समय नित्य नवीन पदो का गान किया करता था।[2] सामूहिक कीर्तन भी नित्य होता था। सूरदास ने कीर्तन रूप मे श्रीमद्भागवत की कथा को पदो मे गाया। श्रीमद्भागवत का आधार होने एवं पदो मे लीलाओ का वर्णन होने के कारण उनमे कथातत्त्व का होना अनिवार्य था अत. यह कीर्तन 'मात्र कीर्तन' न रहकर कीर्तन-काव्य के रूप मे ही प्रस्तुत हुआ। 'कीर्तन-काव्य' के तत्त्वो का वर्णन करते हुए डा० सत्येन्द्र कहते है[3], कथातत्त्व के समावेश द्वारा ही कीर्तन काव्य मे रस परिपाक एव भावोद्रेक सम्भव था। अत कथा विन्दु के समावेश की आवश्यकता के साथ उसको स्पष्ट

---

[1] आईने अकबरी—भाग ३, पृष्ठ २७२।

[2] काव्य-रूपो के मूल स्रोत और उनका विकास, पृष्ठ १८७-१८८।

[3] सूर की झाँकी—कीर्तन काव्य, पृष्ठ १५३।

करने के लिए पूर्व-पीठिका अथवा भूमिका भी अपेक्षित थी। इस प्रकार कीर्तन-काव्य के लिए एक पूर्व-पीठिका, कथाबिन्दु तथा उसके वर्णन के लिए पद-समूह जिसमे निरन्तर भावोत्कर्ष होता चलता है—की आवश्यकता होती है। यह कथापीठिका अत्यन्त ही सक्षिप्त एवं विवरणात्मक होती है। इसके पदो वाले भाग मे लचीलापन रहता है जिससे कीर्तन कहने वाले की इच्छानुसार पदो की संख्या अल्प अथवा अधिक की जा सकती है।'

सूरसागर मे वर्णित लीलाओ का क्रम दशमस्कंध के आधार पर ही रखा जाना आवश्यक था। कृष्ण की लीलाओ मे स्वयं एक क्रम प्राप्त होता है। कृष्ण काव्य के वर्णन से पूर्व 'दशावतार वर्णन' करने की परिपाटी जयदेव के काल से ही प्रचलित थी। अन्य ग्रन्थो मे जिसमे कृष्ण की लीलाओ का गान नही होता था उनमे भी यह वर्णन प्राप्त हो जाता है। डा० द्विवेदी ने इस पर विस्तार से विचार किया है।[1] अत. दशावतार वर्णन उस काल की एक प्रमुख रूढि थी जिसे सूर को भी वर्णन करना था। यही दशावतार वर्णन वाले सूरसागर के प्रथम नौ स्कन्ध भूमिका स्वरूप लिखे गये हैं और अन्त के दो उपसंहारात्मक। पदो की सख्या की अल्पता इसका प्रमाण है। भागवत का दशम स्कन्ध ही सूर के वर्णन का प्रधान विषय था, जिसका उन्होंने विस्तार से वर्णन किया।

सूरसागर 'कीर्तन-काव्य' है। इस काव्य-रूप की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—

परिभाषा—वह काव्य-ग्रन्थ जिसमे कथा-काव्य के स्वरूप मे रस एव भावोत्पादक पदो को विभिन्न लीलाओं के क्रम से सँजोया जाता हो, 'कीर्तन काव्य' कहे जा सकते है।"

मात्र-कीर्तन—परमानन्द कृत 'परमानन्दसागर' मे परमानन्ददास के लीला-विषयक पदों का सग्रह हुआ है। उन्होने अपने कीर्तन के पदो को किसी निश्चि योजना के आधार पर न वर्णित करके स्फुट रूप में ही वर्णित किया। उनके इन वर्णनो मे कथाविन्दु का सर्वथा अभाव मिलता है। यह स्फुट रूप मे किये गये भावत पूर्ण कीर्तनो का सग्रह मात्र है। इस कारण इसकी संज्ञा 'मात्र-कीर्तन' उचित ही है अष्टछाप के अन्य कवियों के कीर्तन 'परमानन्दसागर' के समान संग्रह रूप मे प्राप्त नही होते। अत उनके कीर्तन विषयक पदो का लीला के पदो के अन्तर्गत ही वर्णन किया गया है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि इस काल मे 'कीर्तन' तथा 'लीला'-मे विशेष भेद नही किया जाता था। इन कीर्तनों में भी कृष्ण की लीलाओ, सौन्दर्य एव गुणों का ही वर्णन हुआ करता था।

---

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ११०।

वर्णित विषय स्फुट रूप स गान किए जान वाल लीला क पदा के विषय कृष्ण-राधा-सौन्दर्य वर्णन, मान, विरह, रास, केलि, बशीवादन, गोचारण, माखन-चोरी आदि मनोहारी अवतरण ही रहे है। विद्यापति पदावली मे राधा-कृष्ण के मिलन एव मान-विरह के प्रसग के अनेक पद प्राप्त हो जाते हैं। अष्टछाप के कवियो द्वारा स्फुट रूप से रचे गये पदो मे वर्णन दो रूप मे हुआ करते थे—१ कृष्ण की आठो याम की लीला वर्णन के रूप में, २. वर्षोत्सव के रूप मे। इस अष्टयाम वर्णन मे कृष्ण के मगला से लेकर शयन तक के आठो समय की लीलाओ के वर्णन हुआ करते थे। ये पद कीर्तन रूप मे श्रीनाथ जी के सम्मुख गाये जाते थे। इनमे कृष्ण का सौन्दर्य, शृ गार, दधि माखन, ब्रजबासियो की उत्कण्ठा, माता का प्रेम, केलि, उपालम्भ, स्वप्न सयोग, कलेऊ, छाक, क्रीडा, कु ज शोभा, मान वर्णन, वेणुवादन, गोचारण, वनविहार, दान, भ्रमरगीत प्रसग आदि का वर्णन होता था। पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय मे वरषोत्सवो का बडा महत्त्व था। अत सम्प्रदाय की पद्धति के अनुसार जन्माष्टमी से लेकर रक्षाबन्धन तक के उत्सवो का पदो मे गान किया जाता था। सामयिक होने के कारण इनमे इन विषयों के प्रिय रागो का ही समावेश किया जाता था। अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त अन्य कवि भी लीला के पदो मे इन्ही विषयो का वर्णन करते थे। अन्य लीलाओ की अपेक्षा रासलीला का वर्णन अधिक विस्तार से किया जाता था। यह ऐसा प्रसग था जिस पर सभी कवियो ने पद रचना की। रस-रूप के उपासक राधावल्लभी कवियों ने तो अधिकतर राधा-कृष्ण की केलि-लीलाओ का ही वर्णन किया है—

> आजु छवि औरे तेरे तन की।
> ऊँचे स्वास नासिका नागरि वदन ऊपर कन बन की।
> चकृत चाहनी नैन चहत है कहत प्रीतम के सग सुखन की।
> उरजपास नख बात जनावत भामिनि मनमथ रन की।।संख्या १३।।
> (दामोदर स्वामी—रस के पद, हस्तलिखित प्रति)

केलि वर्णन के प्रसंग मे दोनों की शोभा के साथ-साथ होरी, धमार, जल-विहार, राजभोग, फूलडोल, रास, वसन्त लीला, भाव आदि के पद भी इन कवियो ने लिखे है। राधाकृष्ण की बधाई के भी पद इनमे मिल जाते है। इन पदो मे कृष्ण तथा राधा के जन्म-अवसर पर गाई जाने वाली बधाइयो का वर्णन है—

> बाजन बाजे परम सुहाये।
> भयौ सुत जग मगल जसुमति के सबनि मनोरथ पूरन पाये। पद ११।
> (लाल जी की बधाई, वही प्रति)

कही-कही कवियो ने इन्ही प्रसगो के अन्तर्गत राधा-कृष्ण के विवाह का भी वर्णन किया है और इस विषय के पदो की सज्ञा 'व्याहुलो' दी है।

इस प्रकार आलोच्य-काल में प्राप्त लीला के इन स्फुट पदो मे, अष्टयाम, वरषोत्सव वर्णन, बधाई, स्तुति, भ्रमरगीत प्रसग, रास, फाग, धमार, हिंडोला तथा व्याहलो आदि अनेक काव्यरूपो का समावेश हुआ है। राधा-कृष्ण लीला-वर्णन के प्रसग मे यमुना, कु ज एवं बृन्दावन आदि की शोभा का वर्णन भी अधिक विस्तार से हुआ है। परवर्त्ती काल के नगर-वर्णन काव्यो की परम्परा का मूल इन्ही वर्णनो मे खोजा जा सकता है। पुष्टिमार्गीय भक्ति के अभिन्न अग 'अष्टयाम' सेवा के वर्णन ने हिन्दी साहित्य को एक नया रूप प्रदान किया। 'अष्टयाम वर्णन', जो इन भक्त कवियों में कृष्ण की लीला एव कीर्तन वर्णन तक ही सीमित रहा। आगे चलकर अन्य कवियो द्वारा राजाओ एव आश्रयदाताओ की दिनचर्या के लिए ग्रहण किया गया।

मात्र-कीर्तन एवं कीर्तन-काव्य—'परमानन्द सागर' मे सग्रहीत कीर्तन के पदो के वर्ण्य-विषय अष्टछाप के शेष कवियो के अनुसार ही है। इन सभी कवियो ने एक ही भक्ति-पद्धति को सामने रखकर कृष्ण की लीलाओ का गान किया है। अत. उनके वर्णित-विषय भी एक जेसे है। हॉं, यह अवश्य है कि सूरसागर के वर्णन, अप्टछाप के शेष कवियो के वर्णनो से अधिक विस्तृत, रसानुभूति युक्त एव पूर्ण है। सौन्दर्य, बाल लीला एव शृ गार के दोनो पक्षो—सयोग और वियोग के वर्णन म अष्टछाप के कवि तो क्या, हिन्दी के अन्य कवि भी सूर की तुलना मे खड़े नही हो सकते। पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय स सम्बन्धित होने के कारण सूर ने साम्प्रदायिक आचारो का तो वर्णन किया ही है, लौकिक आचारो को भी नही छोड़ा है क्योकि लौकिक आचार ही कृष्ण की लोकप्रियता के आधार है। लौकिक आचारो मे बधाई, जन्मोत्सव, नामकरण आदि तथा साम्प्रदायिक आचारों मे आठो झाँकियाँ, अष्टयाम, वरषोत्सव आदि का वर्णन किया है।

सूरसागर के दशम स्कन्ध मे वर्णित प्रसग सक्षेप मे ये है—कृष्ण जन्म, बधाई, झूलना, पूतना वध, सकटासुर आदि का वध तृणावर्त्त बध, सौन्दर्य वर्णन, नामकरण, अन्नप्रासन, वर्षगाँठ आदि कर्म, क्रीडा वर्णन, कलेवा, माखन चोरी, उलूखन बन्धन, यमलार्जुन कथा, भोजन वर्णन, गोदोहन, बृन्दावन प्रस्थान, गोचारण, वकासुर आदि का वध, छाक वर्णन, कालीदह लीला, ब्रजशोभा, दावानल पाव, मुरली माधुरी, अग शोभा, राधा-कृष्ण मिलन, रास, मान, प्रेम वर्णन, चीरहरण, गोवर्धन धारण, मथुरा गमन आदि।

'सूरसागर' मे लीला के इन कीर्तनो के अन्तर्गत अन्य अनेक काव्य-रूपो का

समावेश भी मिलता है। 'कीर्तन काव्य' के प्रसंग मे 'सूरसागर' मे हुए 'दशावतार वर्णन' का उल्लेख हो चुका है। अन्य रूप जो प्राप्त होते है, वे वरषोत्सव, अष्टयाम, भ्रमरगीत, बधाई तथा स्तुति है।

सिद्धो एव नाथो ने जिन विषयो का पदो मे वर्णन किया, उनके प्रतिपादन मे यह रूप बडा उपयोगी सिद्ध हुआ। पदो की उस उपयोगिता से प्रभावित होकर ही आलोच्यकाल के सन्त एव भक्त कवियो ने भी लगभग इन्हीं विषयो के निरूपण के लिए इस पूर्व प्रचलित रूप को चुना। भक्त कवियों द्वारा इसमे भक्ति के सिद्धान्त एव कृष्ण लीलाओ का गान किया गया। अब तक स्फुट रूप मे ही वर्णन के लिए प्रयुक्त इस रूप को सूरदास ने प्रबन्ध रूप से वर्णन के लिए स्वीकार किया और 'सूरसागर' मे यह 'कीर्तन-काव्य' का वाहन बना। यह बड़े ही कौशल का कार्य था। सभी कवि ऐसा करने मे समर्थ नही थे इसलिए इस काल का यह सर्वथा नवीन एव अकेला प्रयास है। आलोच्यकाल में पद रूप का उसमे वर्णित विषयो से पूर्ण सामजस्य स्थापित हुआ जो इतना अडिग सिद्ध हुआ कि आज भी 'पद' शब्द सुनते ही आलोच्यकाल के कबीर, तुलसी, सूर एव मीरा आदि प्रमुख कवियो के पदो का ध्यान आ जाता है।

६—स्तोत्र, स्तुति, विनती-काव्य

परिभाषाएँ एवं व्याख्या—सस्कृत साहित्य मे लिखे गए स्तोत्र ईश्वर या देवी-देवताओ की स्तुति के लिए ही थे। दो एक कवियो ने भक्तो के स्तोत्र भी लिखे। आलोच्यकाल में भी यही दो रूप प्राप्त होते है, १. देवी-देवताओं की स्तुति के ग्रन्थ एवं, २. भक्तो एवं गुरुओ की स्तुति के ग्रन्थ। इन ग्रन्थो के विषय एव स्वरूप को ध्यान मे रखकर इस रूप की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—'जिन रचनाओं मे ईश्वर या देवी-देवताओं या भक्तों अथवा गुरुओ की स्तुति एव विनती की गई हो वे स्तोत्र, स्तुति एव विनती काव्यरूप के अन्तर्गत आती हैं।'

आलोच्यकाल मे स्तुति काव्यरूप के दो भेदो का ऊपर उल्लेख हो चुका है। प्रथम रूप की रचनाएँ भी दो कोटियो की प्राप्त होती है—१. स्तुति के रूप में, २. प्रार्थना अथवा विनती के रूप में। स्तुति भी दो प्रकार की है—सकाम एव निष्काम। सस्कृत साहित्य की रचनाओ मे स्तुति के ये दोनों रूप प्राप्त होते है। अपभ्रंश के चरित-काव्यो मे भी सकाम स्तुति के अनेक उदाहरण मिल जाते है। पउम चरिउ में राम-वन-गमन के अवसर पर उनकी जिन मन्दिर में की गई प्रार्थना इसी प्रकार की है—

जमणाह सव्व देवाहि देव। किय णाग नरेन्द्र सुरेन्द्र सेव।
जयति भुवण सामिय तिविह छत्त। अट्ठविह परमगुण रिद्धियन्त।

जय परम परम्पर वीयराय । सुर मउडकोडि मणि थितपाय ।
जय सव्व जीव करुण्ण भाव । जक्खय अणन्त पायहल सहाव ।
(पउम चरिउ, १—पृष्ठ १)

उक्त प्रार्थना में जिन के लोकोत्तर एव विकारनाशक रूप का सुन्दर चित्रण करके, सहायक होने की कामना की गई है । अभयदेव सूरि कृत 'जयति हुअरण स्तोत्र' नामक ग्रन्थ मे कवि की आत्मकल्याण की भावना बड़ी प्रबल हो उठी है । वहाँ वह अपने रोग निवारण के लिए भगवान से करुणा पूर्ण स्वर मे प्रार्थना करता हुआ दिखाई देता है ।

वरिणत विषय—सस्कृत एवं अपभ्रंश साहित्य के स्तुति ग्रन्थों का यही रूप हिन्दी के स्तुतिपरक ग्रन्थो मे दृष्टिगोचर होता है । हिन्दी साहित्य मे प्राप्त सर्वप्रथम स्तुतिपरक ग्रन्थ रामानन्द कृत 'राम रक्षा स्तोत्र' है । इस ग्रन्थ का आधा भाग संस्कृत मे एवं आधा हिन्दी भाषा मे लिखा मिलता है । अनुमान किया जाता है कि संस्कृत वाला भाग रामानन्दी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी रामानन्द एव शेष किसी अन्य रामनन्द द्वारा लिखा गया होगा ।[1] इसमे स्तुति एवं प्रार्थना दोनों रूपों का समावेश किया गया है । ग्रन्थ मे परमात्मा व गुरु की वन्दना, कष्ट पीडादि दूर करने का आदेश, योगिनी आदि का आदेश, खेचरी मुद्रा, चन्द्र, सूर्य का आदेश एवं राम, लक्ष्मण सीता, और हनुमान से रक्षार्थ प्रार्थना है । कबीर ने अपने ग्रन्थ 'ज्ञान स्तोत्र' में सन्त पुरुष के निरूपण के साथ-साथ उसकी गुणावली का वर्णन करके उससे अनुग्रह की प्रार्थना की है । इस कोटि की अन्य रचनाओ में सकाम स्तुति की ही प्रधानता विशेष रूप से परिलक्षित होती है । तुलसीदास जी की विनयपत्रिका में तो सकाम एवं निष्काम दोनों प्रकार की स्तुति दिखाई देती है । संस्कृत की शैली पर लिखे होने के साथ-साथ अनेक स्तोत्रो की भाषा भी संस्कृत बहुल है। सकाम स्तुति का एक उदाहरण देखिए—

श्री रामचन्द्र कृपालु भजुमन हरन भव-भय-दारुणं ।
नवकञ्ज लोचन कञ्ज मुख, करकञ्ज पद कञ्जारुणं ।
कन्दर्प अगणित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दरं ।
मम हृदय कञ्ज निवास करु कामादि खल-दल गंजन ।। पद ४५।।

विनय-पत्रिका मे विनय के पदों का प्राधान्य है । इन पदों में कवि ने एक क्रम का निर्वाह किया है । प्रारम्भ मे अनेक देवी-देवताओं की स्तुति के पश्चात् कवि राम के प्रमुख पार्षदों—भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण और हनुमान—की स्तुति करता

---

[1] खोज रिपोर्ट १६२०-२२-ना० प्र० सभा काशी, पृष्ठ १०० संख्या १५१ ।

लेकिन उसे सबसे अधिक भरोसा माता सीता की उस पत्रिका पर की गइ सस्तुति का है जिसके लिए वह उनसे "अवसर पाकर, करुण प्रसंग के साथ अपनी सुधि दिलाने की" प्रार्थना करता है। और सबसे अन्त मे उसने अपनी दीनता, राम की शक्ति सम्पन्नता, भक्त वत्सलता आदि का वर्णन करते हुए उनसे अपने ऊपर कृपा करने की प्रार्थना की है। अपने दूसरे ग्रन्थ 'हनुमान बाहुक' मे उन्होंने अपने आराध्यदेव के अनन्य भक्त हनुमान से अपने रोग-निवारण के लिए प्रार्थना की है।

कवि अपने दुख की गाथा कहते-कहते ससार के दुख की ओर इंगित करके उसके कल्याण की कामना भी करने लगता है वहाँ उसका दृष्टिकोण और अधिक विस्तृत हो उठता है—

मन्त-सन्तापहर विश्व-विश्रामकर राम कामारि-अभिरामकारी।
सुद्ध बोधायतन, सच्चिदानन्दघन, सज्जनानन्द-वर्धन, खरारी ॥पद ५५॥
(विनय पत्रिका)

सस्कृत साहित्य के समान हिन्दी मे भी स्तुति के लिए 'अष्टक'[1] संज्ञक ग्रन्थ रचे गये। अग्रदास कृत 'रामाष्टक' एवं चतुरदास कृत कई 'अस्टक' सज्ञक रचनाएँ इस कोटि मे आती है। इन रचनाओ मे छन्दो की संख्या ९ होती है। ८ छन्द प्रार्थना अथवा स्तुति के एवं नवाँ छन्द उसके महत्त्व अथवा फल का होता है। ये अष्टक प्रार्थना के समय सस्वर रूप मे पाठ करने के उद्देश्य से लिखे जाते थे। यही कारण है कि इन अष्टकों में एक टेक सर्वत्र दुहरती है। अग्रदास कृत 'रामाष्टक' मे प्रत्येक छन्द के अन्त मे 'श्रीराम पूरन ब्रह्म है' टेक दुहरती है।

अवधपुरी निज धाम कही निकट सरजू गग है।
दशरथ नन्दन असुर गजन श्रीराम जी पूरन ब्रह्म हैं ॥१॥
सत्य सीता भ्रात लछमन धनुषधारी श्रीराम है।
चित्रकूट तप लोक कहिये श्रीराम जी पूरन ब्रह्म है ॥२॥
('रामाष्टक'—हस्तलिखित प्रति)

संस्कृत के स्तुति प्रधान अष्टको का हिन्दी के कवियो पर इतना व्यापक प्रभाव लक्षित होता है कि ज्ञानोपदेश के लिए लिखे गये अष्टको में भी सर्वत्र टेक दुहरती है। सन्त कवि सुन्दरदास की 'अष्टक' सज्ञक अनेक रचनाओं में, जिनका उल्लेख 'संख्यापरक काव्यरूप' के अन्तर्गत हुआ है यह बात देखी जा सकती है।

कृष्ण भक्त कवियो ने फुटकर पदो मे कृष्ण एवं राधा की वन्दना पर्याप्त

---

[1] अष्टक संज्ञक अन्य रचनाएँ जिनमें संख्यात्व ही प्रधान है उनका समावेश संख्यापरक काव्यरूप मे किया गया है।

रूप मे की । कृष्ण की लोकपावन क्रीड़ाओ का केन्द्र होने के कारण बृन्दावन धाम भी भक्तो के लिए उन्ही के समान वन्दनीय एव पूज्य बन गया। फलत. अधिकांश कवियों ने अपने पदो मे एव कुछ कवियो ने स्वतन्त्र ग्रन्थो मे बृन्दावन की महिमा गान करते हुए उसकी स्तुति की। आलोच्य काल मे प्राप्त अज्ञात कवि कृत 'बृन्दावन स्तवन' नामक रचना ऐसी ही है।

राम-कृष्ण एव अन्य हिन्दू देवी-देवताओ की स्तुति के साथ-साथ जैन कवियों ने भी अपने तीर्थकरो एव महापुरुषो की स्तुति मे अनेक काव्य लिखे। पार्श्व-नाथ, समीधर स्वामी, ऐरवत क्षेत्र के चौबीस तीर्थंकर आदि की स्तुति मे कई काव्य ग्रन्थ लिखे गये। जैन कवियो ने भी हिन्दू कवियो के समान सकाम भाव को लेकर ही स्तुति का विधान किया है।

गुरु एवं भक्तों की स्तुति—ईश्वर एवं देवी-देवताओ के समान ही आलोच्य-काल मे भक्त, आचार्य एव गुरुओ को भी वन्दनीय मान कर उनकी स्तुति का विधान किया गया। ईश्वर का साक्षात्कार कराने का गुरुतर कार्य करने के कारण गुरु को कही-कही तो ईश्वर से भी श्रेष्ठ ठहराया गया है—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े किसके लागू पाइ।
वलिहारी गुरुदेव जिन गोविन्द दियो मिलाइ॥ —कबीर

सन्त कवियो मे गुरु की स्तुति को बडा महत्त्व दिया गया है। राधावल्लभी सम्प्रदाय मे भी गुरु का महत्त्व सभी भक्त सम्प्रदायो से अधिक माना जाता है। हरिवंश अली कृत हितास्टक' सज्ञक दो रचनाएँ उस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री हित हरिवंश की स्तुति मे लिखी गई हैं जिनमे गुरु की स्तुति के पश्चात् उनके अनुग्रह की प्रार्थना की गई है। अनेक वैष्णव कवियो ने वैष्णव भक्तो की वन्दना मे काव्य-ग्रन्थो की रचना की। भगवान को वैष्णव प्रिय है अत· भक्त भी वैष्णवो के गुणगान बड़े आदर के साथ, भगवान की अनुग्रह प्राप्ति के लिए करते रहे है। अनेक वार्त्ताएँ ऐसे वैष्णव भक्तो के विवरणों से भरी हुई प्राप्त होती है। इन रचनाओ मे भक्तो के पारलौकिक चरित्रो का उल्लेख, उनके गुणो का बखान, उन पर भगवान की कृपा और उनकी वन्दना ही प्रमुख है। भक्तो के प्रसंग मे भगवान की स्तुति का भी विधान रहता है। जैन कवियो के स्तुति सम्बन्धी ग्रन्थो मे सम्बन्धित भक्त तथा गुरु की स्तुति के पश्चात् उनसे अनुग्रह की प्रार्थना का विधान मिलता है। 'कुशल सूरि स्तोत्र' नामक ग्रन्थ मे कुशल सूरि की स्तुति के पश्चात् उनसे अनुग्रह की प्रार्थना की गई है।

विशेषताएँ—सक्षेप मे इस काव्यरूप की विशेषताएँ ये है—

१—इसमे ईश्वर, देवी-देवता, गुरु, आचार्य एवं भक्तो की महिमा का गान करते हुए उनकी कृपा एवं दया की आकांक्षा का भाव होता है।

२—स्तुति का विधान मुक्तक रूप मे रहता है।

३—स्तुति दो रूपो में प्राप्त होती है—१ सकाम स्तुति, २ निष्काम स्तुति। सकाम स्तुति की ही प्रधानता प्राप्त होती है। सकाम स्तुति मे आत्म-कल्याण एव कही-कही विश्व-कल्याण की आकांक्षा रहती है।

४—गेयरूप मे होने के कारण इन रचनाओ मे सगीततत्त्व का समावेश किया जाता है। अष्टको मे तो टेक सर्वत्र दुहरती है।

५—इसमे प्रयुक्त छन्द, रागपरक पद एव अन्य छोटे दोहा आदि छन्द हैं। बडे छन्दों का व्यवहार अपेक्षाकृत कम हुआ है।

७—सिद्धान्त एवं उपदेशपरक काव्य

काव्यरूप की व्याख्या एवं परिभाषा—सिद्ध एव नाथ सम्प्रदाय के अधिकाश सन्त कविता करते थे। उनकी रचनाओ का प्रधान विषय 'सहज सम्प्रदाय' के सिद्धान्तो का प्रतिपादन एव उनके रहस्यवाद के उद्घाटन से सम्बन्धित था। उन्होने जहाँ उपदेश देने का प्रयास किया वहाँ उनकी रचनाओं मे पाखण्ड खण्डन, सहज सयम, निर्वाण, गुरु सेवा, महासुख आदि निवृत्ति मार्गी बातो का ही समावेश हुआ। इन सिद्धो की विचारधारा का परवर्ती मध्यकालीन सन्तों पर बडा प्रभाव पडा। सिद्धों की रचनाओ के अनेक विषय इन सन्तो मे भी वर्णन के लिए गृहीत हुए। विषय ही नही, कहीं-कही तो शब्दावली भी ज्यो की त्यो ग्रहण कर ली गई। सरहपा सिद्ध का एक दोहा कबीर ने लगभग उसी रूप में ग्रहण कर लिया है—

सरहपा— जहि मण पवण ण सचरइ, रवि ससि णाह पवेश।
नहि वढ चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उऐस[१]॥२५॥

कबीर— जिहि बन सीह न सचरे, पपि उडै नहिं जाई।
रैन दिवस का गमि नही, तहाँ कबीर रह्या ल्यौ लाई[२]॥१॥

आलोच्यकाल के सन्त कवियो को सिद्धो के द्वारा अपनाई गई ज्ञानोपदेश-परक मुक्तको की एक पुष्ट परम्परा प्राप्त हुई। सन्तो ने उसी परम्परा का अनुगमन करते हुए अनेक सिद्धान्त निरूपक एव उपदेशक रचनाएँ थी। इन रचनाओ का उद्देश्य ज्ञान एवं व्यवहार की सामान्य वातो का निरूपण करना ही था।

---

[१] राहुल—हिन्दी काव्यधारा, पृष्ठ ६।
[२] कबीर ग्रन्थावली—'लै कौ अग'।

उच्चकोटि के ज्ञान के लिए उन्होने इस सामान्य रूप को न अपना कर अन्य रूपो को अपनाया। सन्तो की देखा-देखी भक्त एव अन्य कवि भी इस ओर प्रवृत्त हुए और आलोच्यकाल मे इस प्रकार की अनेक रचनाएँ लिखी गई। इन रचनाओं में काव्य रूप के निर्धारक तत्वो—सज्ञा, छन्द एव गीत, सख्या तथा शैली, के आधार पर सामजस्य कम ही दिखायी देता है। हॉ, विषय के आधार पर इनमे सामजस्य स्थापित किया जा सकता है। विषय के साथ-साथ कुछ रचनाओं मे संज्ञा साम्य भी लक्षित होता है। इन रचनाओ मे प्राप्त होने वाली कुछ सज्ञाएँ—ज्ञान, उपदेश, चितावनी, बोध, प्रबोध, सबोध, निरूपण, नामा, विचार, सिद्धान्त, सग्रह अथवा सागर, लीला, विप्रमतीसी एव चरित्र है जो इस काव्यरूप के स्वरूप को स्पष्ट करने मे बड़ी उपयोगी है। अनेक रचनाएँ ऐसी भी है जिनकी सज्ञाओ मे कोई समानता दृष्टिगोचर नही होती, इसीलिए उन समस्त रचनाओ को 'अन्य रचनाएँ' के अन्तर्गत रखकर विवेचन किया गया है। ऊपर की व्याख्या के आधार पर इस काव्यरूप की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—

'सन्त, भक्त एव अन्य कवियो की सिद्धान्त निरूपक एव उपदेशपरक, सामान्य कोटि की फुटकर रचनाएँ जो विभिन्न छन्दो मे लिखी गईं, 'सिद्धान्त एव उपदेश-परक काव्य' की कोटि मे आती है।

वर्णित-विषय—

ज्ञान संज्ञक रचनाएँ—इस कोटि की रचनाओं मे उनकी सज्ञा के पूर्व भाग से सम्बन्धित ज्ञान का उद्घाटन किया जाता है। कबीर की 'उग्रज्ञान' तथा 'निर्भय ज्ञान' संज्ञक रचनाओं मे कबीर द्वारा धर्मदास को अपने जीवन चरित्र के वर्णन के साथ-साथ दिए गये उपदेशों का संकलन है।

उपदेश संज्ञक—इस प्रकार की अनेक रचनाएँ मिलनी चाहिए थीं लेकिन सिर्फ एक रचना प्राप्त होती है, जिसमे सन्त कवि सुन्दरदास ने मन एव इद्रियो को विषयादि से बचाने की विलक्षण उक्तियो का समावेश किया है। कवि ने जिन ज्ञान को अपने गुरु से प्राप्त किया उसे और अधिक रुचिकर (रूपक एवं आख्यायिकाओ के माध्यम से) बनाकर वर्णन किया है।

चितावणी संज्ञक—सामान्य जन को दी गई चेतावनी जिन गुणों मे सग्रहीत हुई उनकी संज्ञा भी उसी के आधार पर रखी गई। इस प्रकार की रचनाओ मे योग, मनुष्य की भूलो का ज्ञान, उसकी अज्ञानता, उसकी अमूल्य देह का सदुपयोग करने का उपदेश एव ससार की अनित्यता का उपदेश आदि का वर्णन ही प्रधान रूप से हुआ है। सन्त सुन्दरदास ने ग्रन्थों की लोकप्रियता को और बढ़ाने के लिए उसमें संगीत तत्त्व का समावेश भी किया। उन ग्रन्थों में सर्वत्र टेक दुहरवी है।

उनके बाल चितावणी ग्रन्थ म प्रत्येक दोहे के अ त म हरिबाल शब्द आता है। शवयात्रा के साथ चलने वाले व्यक्ति इसी नाम का उच्चारण करते है, जिसका तात्पर्य अन्य लोगो को मृत व्यक्ति की मृत्यु से शिक्षा ग्रहण कराने का ही है। उनके अन्य ग्र थ 'विवेक चितावणी' में 'समुझि देखि निश्चय करि भरना' टेक सर्वत्र दुहरती है जो कि व्यक्ति को यह उपदेश देती है कि शरीर नाशवान है, अत. ज्ञान प्राप्त करने का यत्न कर।

बोध, प्रबोध, एवं सम्बोध संज्ञक रचनाएँ—ये तीनो सज्ञाएँ एक ही प्रकार की है। बोध देने के लिए लिखे गए कुछ ग्रन्थो की सज्ञा इस प्रकार की दी गई है। कबीर के ग्रन्थ जन्म बोध मे ज्ञान का एव ज्ञान सबोध में सन्तो की महिमा का वर्णन है। सुन्दरदास के ग्रन्थ 'स्वप्न प्रबोध' मे ससार के पदार्थो को स्वप्न मे दिखाई देने वाले पदार्थों के समान मिथ्या बतलाया गया है जो कि जागृत अवस्था मे (तुरियावस्था मे) पूर्णत: मिथ्या भासते है। इसमे स्वप्न की विविध कल्पनाओ का वर्णन करके ज्ञान देने की चेष्टा की गई है। परुशराम देव कृत 'अमर बोध' ग्रन्थ मे 'गुरु के उपदेशों' की महिमा का गान किया गया है। उसी की कृपा से ईश्वर एवं ससार का सम्बन्ध स्पष्ट होता है। व्यक्ति हरिरस पीकर ही अमर हो जाता है।

निरूपण सज्ञक रचनाएँ—इस प्रकार के रचनाओ मे किसी विशेष वस्तु के स्वरूप के निरूपण का प्रयास हुआ है। कबीर के ग्रन्थ 'ब्रह्म निरूपण' ने सत्पुरुष के स्वरूप निरूपण का, कृष्णदास पयहारी एव कृष्णदास (अष्टछाप) के एक ही नाम के 'प्रेमतत्त्व निरूपण' ग्रन्थो मे कृष्ण के प्रति प्रेम से होने वाले कल्याण के सिद्धान्त का एव तुलसीदास के ग्रन्थ 'कलि धर्माधर्म निरूपण' में कलियुग मे व्याप्त राजनैतिक, धार्मिक एव सामाजिक अनाचारों का वर्णन है।

नामा संज्ञक रचनाएँ—'नामा' शब्द फारसी का है। फारसी मे इस सज्ञा की अनेक रचनाएँ प्राप्त होती है। मुसलमानो के भारत मे आगमन के साथ ही उनकी सभ्यता एव सस्कृति का यहाँ की सभ्यता पर प्रभाव पड़ा। कबीर ने फारसी ज्ञानोपदेश के लिए फारसी मे प्रचलित वर्णनात्मक रचनाओ की संज्ञा 'नामा' को भी अपनाया। उनके ग्रन्थ 'अर्जनामा' में विनय एव प्रार्थनापरक उपदेशो का सग्रह है। कबीर के परवर्त्ती सन्तों में वह रूप प्राप्त होते हैं जो उन्होंने प्रयोग किए। अत: परवर्त्ती सन्तो ने भी 'नामा' सज्ञक रचनाएँ की। जगन्नाथदास एव वाजिद की 'नामा' सज्ञक अनेक रचनाएँ प्राप्त होती है जिनमे गुरु, हरिजन महिमा, गुणों की उत्पत्ति आदि के वर्णन से युक्त उपदेशात्मक एव ज्ञानपूर्ण बातों का समावेश हुआ है।

विचार सज्ञक रचनाएँ—जहाँ कवियो ने प्राचीन बातों एव सिद्धान्तों का

अपने पथ एव मत के आधार पर नए सिरे से निरूपण किया वहाँ उन्होने 'विचार' सज्ञा दी है। सुन्दरदास दादू पथी ने अपने ग्रन्थ 'वेदविचार' मे वेदो को वृक्ष मान कर उनके स्वरूप, शिक्षा एव गुणों का वर्णन किया है। वेद रूपी वृक्ष की कर्म, उपासना एव ज्ञान तीन शाखाएँ मानकर, कर्म को उस वृक्ष का पत्ता, भक्ति को पुष्प एव ज्ञान को फल माना गया है। यह ज्ञान फल ही आत्मज्ञान, अपरोक्षानुभूति एव ज्ञानानन्द है। इस प्रकार उन्होने वेदो के आधार पर ज्ञान को कर्म और भक्ति की चरम परिणति सिद्ध किया है। दूसरे ग्रन्थ 'आयुर्वल भेद आत्मा विचार' मे आयु के परिणामों का दिग्दर्शन कराकर उनकी अस्थिरता दिखाकर आत्मा को अजर-अमर ठहराया गया है। उन्होने आयु को अनित्य एव आत्मा को नित्य मानकर विचार किया है। ध्रुवदास के ग्रन्थ 'सिद्धान्त विचार' मे उपासना के सिद्धान्तो पर विचार किया है लेकिन यह ग्रन्थ ब्रजभाषा गद्य मे लिखा गया है। मोहन कायस्थ ने अपने ग्रन्थ में योग की पवन निरोधक क्रियाओ पर विचार किया है।

सिद्धान्त संज्ञक रचनाएँ—सिद्धान्त संज्ञक रचनाएँ सिद्धान्तों के निरूपण का प्रयास है और उनकी कही-कही सज्ञा भी यही दे दी गई है। कबीर कृत 'मूल सिद्धान्त' ग्रन्थ मे आध्यात्मिक ज्ञान का निरूपण है। माधौदास कृत 'सन्त गुण सागर सिद्धान्त' अपने ढग का अपूर्व ग्रन्थ है इसमे अनेक सन्तों के जीवन चरित्र के प्रामाणिक अध्ययन के लिए यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी है। दादू पथी अनेक सन्तो के जीवन की घटनाओं का वर्णन इतिहास ग्रन्थो में इसी ग्रन्थ के आधार पर किया गया है। वल्लभदास साधु एव दामोदर स्वामी दो भक्त कवि है जिन्होने अपने 'सेवक बानी को सिद्धान्त' एवं 'भक्ति सिद्धान्त' ग्रन्थो मे अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। 'भक्ति सिद्धान्त' मे राधावल्लभी पद्धति पर की जाने वाली राधा की भक्ति के उपदेश के साथ-साथ ससार की असारता, बृन्दावन, यमुना आदि की महिमा एव राधा-कृष्ण की शोभा एवं विलास का वर्णन है। उनके मतानुसार जहाँ बृन्दावन में श्यामा-श्याम का निवास है वहाँ भक्त का हृदय रोग शोक से रहित हो जाता है—

> रोगशोक न काल माया महापरलै नहिं तहाँ।
> हित दामोदर श्याम श्यामा वसहिं बृन्दावन जहाँ।

(फुटकर बानी 'भक्ति सिद्धान्त' हस्त० प्रति)

सग्रह एवं सागर संज्ञक रचनाएँ—अनेक रचनाओ की सज्ञाओं में 'संग्रह' तथा 'सागर' शब्द मिलते है। इस प्रकार के ग्रन्थ 'सग्रह' होने के कारण ही 'सागर' कहे गए है। इन ग्रन्थो मे भी सिद्धान्त एवं ज्ञान आदि का ही सग्रह किया जाता था। कबीर के नाम से प्राप्त होने वाले चारों ग्रन्थो मे ज्ञान एवं आध्यात्मिक प्रेम

का ही वर्णन हुआ है। हितकृष्णचन्द गोस्वामी के 'सार संग्रह' ग्रन्थ मे अनेक भक्तो के पदो मे से 'सार' रूप पदो को छाँट कर उनका सग्रह किया गया है। निपट निरञ्जन कृत 'निरञ्जन संग्रह' ज्ञान, भक्ति एव वैराग्य की उक्तियों का संग्रह है। दादू पिजारा का 'विचार सागर' भी उपदेश पूर्ण उक्तियो से पूर्ण है। जान कवि ने अपने दोनो ग्रन्थों मे उपदेश एव नीति की वातो का सग्रह व्यक्तियो को विद्वान एव चतुर बनने मे सहायक होने के लिए किया है। 'बुधि सागर' की उपयोगिता कवि के शब्दो मे ही, इस प्रकार वर्णित हुई है—

बुद्धि सागर पर जो तुम चलि हौ, नीके मान अरिन के मलि हौ।
बुधि सागर मे जो मन धरि है, ताते कबहू चूक न परि है। २।
(राजस्थानी द्वितीय खोज रिपोर्ट पृष्ठ ७९ सख्या १० मे उद्धृत)

'शिक्षा सागर' मे अनेक प्रकार की नीति पूर्ण शिक्षाओ का कवि द्वारा संग्रह किया गया है।

लीला संज्ञक रचनाएँ—'लीला' संज्ञा देकर इस काल में कुछ ऐसी रचनाएँ भी की गई जिनमें लीला वर्णन का किंचितमात्र भी प्रयास नहीं था। ये रचनाएँ भक्त एवं सन्त कवियो द्वारा उपदेश देने के लिए लिखी गई। इन रचनाओ मे ज्ञान वर्णन कोरे वर्णन के रूप मे न होकर बड़े ही चमत्कार पूर्ण ढंग से किया गया जिससे कि वह लीला के ही समान जन मन को आकर्षित करने मे समर्थ हुआ। 'जन गोपाल' कृत 'गुरु २४ लीला' ग्रन्थ मे दत्तात्रेय के २४ गुरु करने का वर्णन हुआ है। इस ग्रन्थ मे कवि ने दिखाया है कि ज्ञान प्राप्त करने के लिए तुच्छ से तुच्छ प्राणी को भी हेय न मानकर उसके गुणो को ग्रहण किया जाना चाहिए। अन्त मे ग्रन्थ के पाठ का फल भी दिया गया है जो ज्ञान को उत्पन्न तथा अज्ञान को नष्ट करने वाला है—

लीला पढ़े सुनै अरु गावै। पावै ज्ञान अज्ञान नसावै।

(ना० प्र० सभा की १२वी त्रैवार्षिक खो० रि० सख्या ८०५ पृष्ठ ७०८)

मोहन माथुर कृत 'कपोल लीला' ग्रन्थ मे भी जनगोपाल के 'गुरु २४ लीला' ग्रन्थ के वर्णित विषय का ही विवेचन हुआ है। उद्धव के कृष्ण से यह प्रश्न करने पर कि 'पुरुष कौन है, माया क्या है और मनुष्य सुख कैसे प्राप्त करता है ? कृष्ण उत्तर देते है कि—'संसार मुझमे है जो अनन्य भाव मे सेवा करता है उसी का उद्धार होता है। 'प्रसंगवश वह दत्तात्रेय के २४ गुरु करने का वर्णन प्रारम्भ करते हैं। 'यदु के एक मुनि से प्रश्न करने पर कि आपको ससार से विरक्ति कैसे हुई, मुनि अपने २४ गुरु करने की कथा का वखान करता है। उसके २४ गुरु ये है—अगिनि, मारुति जल अग्नि आकाश शशि रवि कपोत (इस प्रसंग मे मुनि ने कपोत

कपोती का आदर्श प्रेम व्यवहार दोनों का मिलकर प्रेम पूर्वक घर बनाना, घर मे पुत्र का उत्पन्न होना, दोनों का आनन्दित होना, उसके लिए भोजन लेने हेतु बाहर जाना, पीछे बालक का जाल मे फँसना, सुत की रक्षा के लिए पहिले कपोती तथा बाद मे कपोत का जाल में फँसने का विस्तृत वर्णन है) अजगर, सायर, भृग कुरंग, मतंग, पतग, मीन, मधुमक्खी, पिगला नारि, कुररी पक्षी, कुमारी की चूड़ी, बालक, भृंगी, सर, भुजगम और चरण कमल से पृथक न होना'। कवि ने उपसहार मे अपनी ईश्वर भक्ति का यही कारण बताया है। ग्रन्थ मे कपोत, कपोती के आदर्श प्रेम का विशद वर्णन होने से ही उसकी सज्ञा 'कपोत लीला' दी गई है। परुशराम कृत 'सांच निषेध लीला' मे बड़े ही चमत्कार पूर्ण ढग से बुराइयों के प्रति अरुचि उत्पन्न कराते हुए भक्ति के प्रति प्रेम करने का उपदेश दिया गया है।

इसमें एक-एक शब्द को लेकर रचना करने का क्रम रखा गया है। शब्दों का यह चमत्कार ही इसमे प्रधान है। भक्ति के बिना ससार के समस्त कार्य व्यर्थ है। परुशराम के अन्य ग्रन्थ 'निजरूप लीला' मे ईश्वर के रूप का वर्णन हुआ है।

'हरि लीला' ग्रन्थ मे भगवान को ही सर्वस्व ठहराया गया है। उसी की आराधना से भव से पार होना सम्भव हो सकता है—

परसराम हरि गुरु बिना जीवन जनम हराम।
गुरते आहरि सरनु बिनु नहीं कहूँ बिसराम। २।

(परुशराम सागर—हरिलीला, हस्तलिखित प्रति)

'हरि लीला' यही है कि वह जीव के कल्याण के लिए 'लीला' करते हैं। इनके ग्रन्थ 'निर्वाण लीला' ग्रन्थ का स्वर कबीर से मिलता-जुलता है। उन्होंने लौकिक कर्मकांड को कबीर के समान ही व्यर्थ ठहरा दिया है—

बिद्या वेद पढ़े जग फूले। कथनी कवि सुमिरन ते भूले। ८।
आपण भर्म जग भर्माया। अफल गये फल राम न पाया। ९।
तप तीरथ व्रत लै बैंसासा। वेद उपाय पुन्य की आसा।१०।
आसा जनि फिरि जनम गमाया। मन थिर राखिन प्रेम समाया। ११।

(वही प्रति 'निर्वाण लीला' प्रथम विश्राम।

'समझणी लीला' में मनुष्य को यह समझाया गया है कि उके जन्म का कारण एवं उद्देश्य क्या है। 'तिथि लीला' एवं 'वार लीला' में 'ग्रन्थ साहिब' मे सग्रहीत सन्तों के उन पदों के आधार पर ही उपदेश दिया गया है। इनमें एक-एक तिथि एवं एक-एक वार के नाम के साथ एक गुण ग्रहण एवं एक-एक अवगुण के परित्याग का उपदेश दिया गया है

'नक्षत्र लीला' ग्रन्थ में २७ नक्षत्रो के नाम के साथ उपदेशो का विधान किया गया है। गदाधर भट्ट कृत ग्रन्थ 'ध्यान लीला' मे कृष्ण एव बृन्दावन की शोभा के वर्णन के साथ कृष्ण के स्वरूप के ध्यान का महत्व वर्णित किया गया है। ध्रुवदास के 'लीला' सज्ञक उपदेश-परक ग्रन्थो मे उनके नामो के अनुसार ही विषयो का प्रतिपादन हुआ है। 'जीव दशा लीला' मे जीव की मूर्खता का वर्णन है जिसके कारण वह हरिजस रूपी अमृत को छोडकर ससार रूपी विष का भोग करता है। ऐसी दशा मे उसकी होने वाली दुरवस्था का वर्णन विस्तार के साथ किया है। 'वैद्यक लीला' ग्रन्थ मे ससार के दुख रूपी रोग की औषधियों—वैराग्य, सन्तोष, करुणा, कोमलता, दया आदि का, रूपक के साथ वर्णन किया गया है—

ससार रूपी दुख की औषधि यह बताई है—

जड बैराग वृक्ष की लावहु। सोंठ सन्तोषहि आनि मिलावहु।
मिरच तीतिक्षिन करना चीता। निस्पृह पीपर मिलवहु मीता। आदि

(ब्यालीस लीला, वैद्यक गान लीला, पृष्ठ ६)

'मन शिक्षा लीला' ग्रन्थ मे मन को कृष्ण के भजन का उपदेश दिया गया है। 'बृन्दावन सत लीला' मे बृन्दावन के माहात्म्य का वर्णन है 'ख्याल हुलास लीला' मे प्रेम के साथ राधा-कृष्ण के रूप-पान का, एव 'भजन सत लीला' मे अपने आराध्य-देव के भजन करने का उपदेश दिया गया है।

विप्रमतीसी—कबीर ने 'विप्रमतीसी' की रचना की। उसी आधार पर परशराम देव की 'विप्रमतीसी' नामक रचना प्राप्त होती है। यह एक रूप तो था लेकिन इसकी प्रसिद्धि का कोई प्रमाण नही मिलता। दोनो की रचनाएँ शैली, भाव भाषा की दृष्टि से समान हैं। इसमें ब्राह्मण की रूढिवादिता एव ज्ञानवान होने के अभिमान का खण्डन किया गया है।

चरित संज्ञक रचनाएँ—इस काल मे दो रचनाएँ 'चरित' संज्ञक भी प्राप्त होती है। ये उपदेशात्मक ग्रन्थ है। दोनों रचनाएँ दो भिन्न कवियों द्वारा रची होने पर भी एक ही नाम एव प्रकार की है। इस 'कलि चरित्र' रचना की प्रेरणा उक्त दोनो कवियों को तुलसी के 'कलिधर्माधर्म' से प्राप्त हुई होगी, ऐसा अनुमान उनके विषयो के साम्य को देखकर किया जा सकता है। इनमे कलियुग मे व्याप्त अनीति एव असंगत बातों का ही फुटकर रूप मे वर्णन हुआ है। बान कबि ने जग मे व्याप्त जैसा कलियुग का चरित्र देखा वैसा ही वर्णन किया है—

कलि चरित्र जब आँखिन देख्यों कलि चरित्र जब कीनों।
कहै सुनै ते पाप न परसे अभै दान करि दीनों।२।

संसार के व्यापार कलियुग में उलट गये हैं उन्हीं का इसमें बड़ा मार्मिक वर्णन हुआ है—

नीचन चितवै नेक जाति में जो ऊचौ सिर नावै ।
गदहा चरै रसीली दाषै गऊ लमेरे पावै ।
घर घर करै मान बायस को कोइल कानन चारी ।
ऐ कलिकाल तमासे तेरे दुख आवै अरु हाँसी ।५।

(हस्तलिखित प्रति)

कलियुग में सब नियम समाप्त हो गये हैं । नीच जाति भक्ति भाव से भगवान की पूजा करती है और ब्राह्मण उनके चरणोदक के लिए लालायित रहते हैं । धन राजा के पास न रह कर सन्यासियों के पास रहता है । ब्राह्मणों एवं मुसलमानो के नामो के परिवर्तन की ओर भी उनकी दृष्टि गई है—

विप्र पूत को नाम मदारी हँसि हँसि माइ बुलावै ।
अटक पार तैं मुगल काविली माधौदास कहावै ।
शिष्य गुरु सौं वादै चरचा हौ पढ़ि आयो कासी ।
ऐ कलिकाल तमासे तेरे दुख आवै अरु हाँसी ।२३।

(वही प्रति)

प्रत्येक छन्द में अन्तिम टेक दुहराती है । सभाचन्द के कलि चरित्र का विषय भी यही है । उन्होंने भी कलियुग की इन्ही अनियमितताओं का वर्णन किया है ।

ऊपर जितनी रचनाओं का उल्लेख हुआ है उनको उनकी संज्ञा के आधार पर कोटियों में विभक्त किया गया है । विषय की दृष्टि से और भी अनेक ऐसी रचनाएँ हैं जो उन कोटियों में रखी जा सकती हैं । ऊपर वर्णित संज्ञाएँ नए काव्यरूप खड़े करने के लिए किए गए कुछ प्रयोग मात्र हैं, जिनमें से एकाध को छोड़कर शेष की परम्परा दृष्टिगोचर नहीं होती । नामा' फारसी का प्रचलित काव्यरूप है लेकिन हिन्दी में उसका स्वरूप भी बदला हुआ मिलता है । आलोच्यकाल में 'नामा' संज्ञक ग्रन्थ उपदेश एवं सिद्धान्त वर्णन के लिए परवर्ती काल के ग्रन्थ फुटकर विषयों से सम्बन्धित हो गए हैं । जान कवि के 'कबूतर नामा', 'बाज नामा' आदि नामा संज्ञक ग्रन्थ ऐसे ही हैं । सन्त कवियों ने कुछ अन्य भाषाओं में प्रचलित काव्यरूपों एवं काव्य-संज्ञाओं को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया लेकिन उनके ये प्रयोग प्रयोग मात्र ही रहे, उनकी परम्परा न बन सकी । उड़िया साहित्य में प्रचलित 'पांजी' संज्ञक रचनाओं के आधार पर कबीरदास की 'पांजी' संज्ञक भी दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं ।

अन्य रचनाए—वे रचनाए जो सज्ञा के आधार पर बनाई गई कोटियो मे नही रखी जा सकी है, उनके विषय का विवेचन यहाँ किया जायगा । इन रचनाओ के अन्तर्गत किन-किन विषयो को स्थान दिया जाता था, इस बात को भली-भाँति समझने के लिए इस कोटि की कुछ प्रमुख रचनाओ पर विस्तार पूर्वक विचार करना आवश्यक है।

कबीर की अनेक रचनाएँ इस प्रकार की प्राप्त होती है। इन रचनाओ मे उपदेशपरक कुछ बातो का ही बदले हुए शब्दो मे वर्णन मिलता है। कबीर के इन ग्रन्थों मे आध्यात्मिक ज्ञान, योग की क्रियाओं, राम नाम से रक्षा करने की विधि, यश हवन आदि क्रियाओ का खडन स्वरो का विचार एव ज्ञान, अनेक व्यक्तियो को ज्ञानोपदेश देने आदि का ही वर्णन हुआ है। कबीर के शिष्यो के द्वारा लिखे गये ग्रन्थों में इन्ही बिषयों का प्रतिपादन किया गया। विषय की साम्यता होने के कारण ही कबीर के अनेक शिष्यो की रचनाएँ कबीर की रचनाओं में मिल गई है। सन्त कवि सुन्दरदास जी की रचनाओ मे विभिन्न विपयो का प्रतिपादन हुआ है। 'सुन्दर बिलास' ग्रन्थ मे गुरु महिमा, उपदेश, ईश्वर पर विश्वास. शारीरिक सौन्दर्य की असारता, नारी निन्दा, दुष्ट स्वभाव, सन्यासियो के ढोग एव ज्ञान की महत्ता, निर्गुण उपासना, विरह, ज्ञानी, सूर आदि के गुणो का, वर्णन, हुआ है। 'सर्वांगयोग-प्रदीपिका' मे चार अध्यायो मे भक्तियोग, हठयोग एवं साख्य योग के भेदो के वर्णन के साथ उन्हे ही मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन ठहराया गया। 'सुख समाधि' मे ब्रह्मानन्द का एव 'उक्त अनूप' मे माया के तीनो रूप—सत, रज, तम का वर्णन हुआ है। 'पच प्रभाव' मे भक्ति, भक्त, माया, जगत एव ज्ञानी—इन पाँचो के प्रभाव का एक सुन्दर रूपक के साथ वर्णन किया पया है। इस रूपक में भक्ति को परमात्मा की प्रिय पुत्री एव माया को उसकी दासी माना है। भक्ति अपनी शादी सन्तो से करती है और माया भी साथ जाती है। अब वही ज्ञानी है जो माया का तिरस्कार कर सके। 'गुरु सम्प्रदाय' मे किसी प्रतिस्पर्धी को सन्तोष देने के लिए उन्होने अपनी गुरू परम्परा का वर्णन किया है जो प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। 'त्रिविध अन्तःकरण भेद' मे मन, बुद्धि, चित्त एवं अहकार के बाह्य, अन्त एव परस तीन-तीन भेदो का प्रश्नोत्तर शैली मे वर्णन हुआ है। 'सहज ज्ञान' में दादू पथ के सिद्धान्तों का संक्षेप मे वर्णन है। इसमें कांडों का निषेध करके 'सहजेनाम निरजन लीजै' ही सुलभ उपाय बताया गया है।

सन्त कवियो के अतिरिक्त भक्त एवं अन्य कवियो ने इस कोटि की रचनाओ मे, योग, भक्ति, प्रेम, वैराग्य आदि के सिद्धान्तो के प्रतिपादन का ही प्रयास किया है। अनेक रचनाओ का विषय उनकी सज्ञा से ही स्पष्ट हो जाता है। कुछ प्रमुख रचनाएँ ही यहाँ विवेच्य है। चतुर्भुजदास राधावल्लभी ने अपने ग्रन्थ' द्वादशयश'

मे शिक्षा सकल समाज यश, धर्म विचार यश, भक्ति प्रताप यश, सन्त प्रताप यश, शिक्षासार यश, हितोपदेश यश, श्री पतितपावन यश, मोहिनी यश, आनन्द भजन यश, राधा सुप्रताप यश, श्री मगलसार यश, एव विमुख मुख मजन यश का वर्णन किया है। इसमें उक्त शीर्षकों के अन्तर्गत उपदेशों का विधान है। 'शिक्षा सकल समाज यश' मे सासारिक मोह, विषय आदि को तोड़कर एव तीर्थों को हेय ठहरा कर भगवान के भजन का उपदेश किया है—

तीरथ पथ अवगाहत चाहत, हरि बिनु मूढ़ पयारहिं गाहत ।
कामधेनु तजि अजा बिसा है, सुरद्रुम छाड़ि बहेरौ चाहै ।
(हस्तलिखित प्रति)

'धर्म विचार यश' में ब्राह्मण आदि के कर्तव्यों का तथा 'राधा प्रताप यश' में अपने उम्प्रदाय के आधार भूत सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार अन्य 'यशो के अन्तर्गत भी शीर्षकों मे दिए विषयो का वर्णन हुआ है। 'भगवति रसिक' ने अपने ग्रन्थों मे अपनी आराधना पद्धति के सिद्धान्तो का ही प्रतिपादन किया है। उनमे उपदेशक का रूप ही प्रधान है। तुलसी कृत 'वैराग्य सन्दीपनी' मे ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य का वर्णन है। कवि ने इसके विषय का स्वयं वर्णन किया है—

तुलसी वेद पुरान मत, पूजन शास्त्र विचार ।
यह विराग संदीपनी अखिल ज्ञान को सार ।७।
(वैराग्य सदीपनी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २)

'रामाजाप्रश्न' मे यद्यपि राम कथा है तथापि यह शकुन विचार के लिए लिखा गया ग्रन्थ है। इसकी रचना के विषय मे एक कथा प्रचलित है जो ग्रन्थ मे आए 'गोगन गगाराम' नाम के आधार पर ही प्रचलित हुई है। प्रत्येक दोहा राम कथा के साथ-साथ शुभ या अशुभ फल भी प्रदान करता है। अग्रदास कृत दो 'मंजरी' सज्ञक रचनाएँ सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से ही लिखी गई है। 'राम ध्यान मजरी' मे राम सीता, अयोध्या, सरयू आदि की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने उसके ध्यान करने की बात कही है—

यही ध्यान उर धरै स्वयम् तन सुफल करै ।
वामन चतुरानन आदि चरण वन्दहि सब देवा ।७२।
(हस्तलिखित प्रति)

दूसरी रचना 'भजन मंजरी' मे राम के भजन का माहात्म्य वर्णन है। ईश्वरदास ने 'हरिरस' ग्रन्थ में चौबीस अवतारो के वर्णन के साथ हरि के भक्तो का माहात्म्य गाया है। अनेक भक्तो के उदाहरण द्वारा भक्ति की महत्ता का गान किया गया है :—

हर गुरा गाइ। बोहोत सुप पाय। अवत जुई गगा हर भाव।
ध्रुविरा अटल जु वो हरि ध्याय। ध्रुह रमे रतरो सिर धरय।
हरनांव पाचु पांमु उधरिया। हरि विसरी पति विसरीया।
हररं नाव परा नर तीरीया। पॉच कोड पै है जादउ धरीया।

(हस्तलिखित प्रति)

इनके अन्य ग्रन्थो मे भी उपदेश एव सिद्धान्तो का निरूपरा है। केशवकृत 'विज्ञान गीता' शास्त्रोनुमोदित दार्शनिक विचारों का संकलित रूप है। इस ग्रंथ के अन्तर्गत अनेक स्तुतिपरक पचक एव अष्टको का भी समावेश हुआ है—यथा गगा-ष्टक, विश्वनाथ पचक आदि। बनारसीदास के ग्रन्थ 'नाटक समयसार' की सज्ञा नाटक है लेकिन यह योग का ग्रन्थ है। इसमे जैन धर्म के नियम एवं सिद्धान्तो का विभागो मे, जिनको ग्रन्थ मे 'द्वार' कहा गया है, वर्णन हुआ है। ग्रन्थ के विषय में कवि स्वय कहता है—

कहौ सुद्ध निहचै कथा, कहौ सुद्ध विवहार।
मुकति पथ कारन कहौं अतुसों का अधिकार।

(हस्तलिखित प्रति)

इस ग्रन्थ मे उपदेशपरक छन्दों की भरमार है। षट-द्रव्य-वर्णन मे कवि ने आकाश, काल, पुन्य पदार्थ, पाप पदार्थ, समरतत्त्व, बन्ध पदार्थ, मोक्ष तत्त्व आदि की परिभाषाएँ दी हैं। इसी प्रसग मे आकाश, काल, ईश्वर, पुण्य आदि के नामो की माला कोश ग्रन्थों के समान ही प्रस्तुत की है—

मुनि के नाम—मुनि महन्त तापस तथा, भिक्षु कचारित धाम।
जती तपोधन सयमी व्रती साध ऋषि नाम।४६।
सत्य के नाम—सम्यक सत्य अमोघ सत निसन्देह निरधार।
ठीक यथारथ उचित तथ, मिथ्या आदि उकार।४६।

(जीव द्वार—वही प्रति)

अनेक खण्डो मे विभक्त होने के कारण ही ग्रन्थ की संज्ञा 'नाटक' दी गई है। वस्तुत यह ग्रन्थ नाटक नही है। जैन सिद्धान्तो के निरूपरा का ही इसमे प्रयास है। 'कल्यारा मन्दिर भाषा' मे मन को भगवान की ओर ले जाने का आदेश है, उसी से कल्यारा सम्भव है। इनके अन्य ग्रन्थो मे भी सिद्धान्त एव उपदेशपरक बातो का समावेश है। जान कवि के ग्रन्थ 'ज्ञानदीप' मे अनेक सांसारिक उपदेश दिए गए हैं।

इन प्रमुख ग्रन्थो के अतिरिक्त और भी ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं जिनमे इसी प्रकार की बातो का वर्णन मिलता है। पौराणिक आख्यानों के आधार पर लिखे गए जन-गोपाल के 'शुक सम्वाद' एव 'मोह मर्द राजा की कथा' तथा मोहनमाथुर कृत 'अष्टा-

बक ऐसे ग्रन्थ है, जिनमें कथा के माध्यम से ज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित कराना कवि का उद्देश्य रहा है। इन ग्रन्थों में कथा कहना अभीष्ट न होकर उस ज्ञान का उपदेश देना ही अभीष्ट है जिसका इन पौराणिक आख्यानों में वर्णन किया गया है। इस प्रकार की अधिकांश रचनाओं के विषय से सम्बन्धित होने के कारण इस रूप का इस काल में बड़ा प्रचार हुआ। इन रचनाओं में सुनी सुनाई वार्ता का सीधे-सादे ढंग से वर्णन कर देना भर ही अभीष्ट मान लिया गया है। कुछ रचनाएँ उच्चकोटि की भी प्राप्त होती हैं। प्राचीन परम्पराओं का पालन करते हुए भी इस काल के कवियों ने जिस स्वतन्त्र मनोवृत्ति का परिचय दिया वह इस काव्यरूप से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। इसी मनोवृत्ति के कारण इस रूप की रचनाओं में छन्द, शैली, सख्या, सज्ञा आदि तत्त्वों की समानता कम ही दृष्टिगोचर होती है।

विशेषताएँ—इस काव्य की कुछ विशेषताएँ ये हैं—

१—इस रूप का सम्बन्ध विषय से है। इसमें छन्द शैली, सज्ञा सख्या आदि का सामजस्य अत्यल्प है।

२—इस रूप की रचनाएँ ज्ञान, उपदेश, सिद्धान्त निरूपण, प्रेम, भक्ति, योग, आदि विषयों से सम्बन्धित है।

३—अधिकांश रचनाएँ मुक्तक है। जिन ग्रन्थों में पौराणिक आख्यानों के आधार पर ज्ञान का वर्णन किया गया है वे प्रबन्ध रूप में लिखे गए है।

४—इस रूप की रचनाओं के अन्तर्गत अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया। सर्वाधिक व्यवहृत छन्दों में दोहा, दोहा-चौपाई, कवित्त एवं सवैया प्रमुख है।

८—प्रशस्ति-काव्य

काव्य-रूप की व्याख्या एवं परिभाषा—वैदिक स्तोत्रों में प्रशस्ति-वर्णन का भाव प्राप्त हो जाता है। वैदिक देवताओं की स्तुति में ही हमें लोकनायकों की प्रशस्ति के सकेत प्राप्त होते है। देवताओं की गौरव-गाथा के पश्चात् मानवों की गौरव-गाथा के गान का संस्कृत साहित्य में प्रचार होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। मानव में भी देवत्व का आरोप कर इस प्रकार की गौरवगाथाएँ लिखी गईं। शिला लेखों पर खुदी हुई अनेक प्रशस्तियाँ इसी प्रकार की गौरव गाथाएँ है। इन गौरव-गाथाओं के गान करने वाले कवियों को भी परवर्ती काल के 'भाषा' कवियों के समान राज्याश्रयप्राप्त था। आलोच्यकाल से पूर्व के काल में जिसे हिन्दी-साहित्य का आदिकाल कहा जाता है, राजस्तुतिपरक रचनाएँ बड़ी मात्रा में प्राप्त होती हैं। ये फुटकर रूप में ही है। 'प्राकृत पैंगलम्' में उदाहरण रूप में उद्धृत पद्यों से इस प्रकार की रचनाओं की बहुलता का आभास होता है। इन रचनाओं में कवि का उद्देश्य,

अपने आश्रयदाता की वीर-गाथाओं का बखान न होकर उसकी स्तुति करके उसे प्रसन्न करना ही होता था, जिसके लिए उसे कल्पना एवं अतिरंजना का आश्रय ग्रहण करना पड़ता था। इस प्रकार के वर्णनों के लिए आश्रयदाता में अनेक काल्पनिक गुणों का आरोप भी किया जाता था। राज्याश्रित कवि चरित्रकाव्य अथवा ऐतिहासिक-काव्य लिखने की अपेक्षा प्रशस्ति-काव्य लिखना ही अधिक पसन्द करते थे। जो एकाध चरित-काव्य भी प्राप्त होते हैं उनमें भी राजस्तुति का भाव स्पष्ट लक्षित होता है। स्वरूप की दृष्टि से ये प्रशस्ति-काव्य क्रमबद्ध नहीं हुआ करते थे। आलोच्यकाल में प्राप्त इस कोटि के ग्रन्थों में क्रमबद्धता का अभाव है। इन ग्रन्थों में आश्रयदाता की वीरता, दान, शौर्य, प्रताप, सैन्य बल, रानियाँ एवं पुत्रों के अतिरंजित वर्णनों से युक्त छन्दों का संकलन हुआ है। केशवदास कृत 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' एवं कवीन्द्राचार्य सरस्वती कृत 'कवीन्द्र कल्पलता' दोनों ही इस प्रकार के संग्रहात्मक ग्रन्थ हैं।

ऊपर की व्याख्या से प्रशस्ति काव्य के स्वरूप पर कुछ प्रकाश पड़ता है। इस काव्यरूप की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—'राज्याश्रित कवियों द्वारा आश्रयदाता के वास्तविक एवं काल्पनिक गुणों की स्तुति रूप में की गई अतिरंजित प्रशंसा के वर्णनों से युक्त छन्दों के संकलन वाले काव्य-ग्रन्थ, 'प्रशस्ति-काव्य' कोटि की रचनाएँ हैं।

वर्णित-विषय—आलोच्यकाल की प्रारम्भिक शताब्दियों में कवियों को राज्याश्रय प्राप्त नहीं हुआ। अतः इस कोटि की रचनाओं का भी अभाव रहा। राजपूताने में जहाँ चारणों को राज्याश्रय सुलभ था, ऐसी रचनाएँ इन शताब्दियों की भी प्राप्त होती हैं, लेकिन वे फुटकर छन्दों के रूप में ही हैं। विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में जब हिन्दी-कवियों को भी शाही दरबारों में मान प्राप्त होने लगा तब इस प्रकार की रचनाएँ भी लिखी जाने लगीं। कुल तीन रचनाएँ इस प्रकार की प्राप्त होती हैं जिनमें से एक राजपूताने के चारण कवि की एवं शेष दो दिल्ली के मुगल बादशाहों के दरबार से सम्बन्धित कवियों की है। केशवदास चारण के ग्रन्थ 'राव अमरसिंह जी रा दूहा' ग्रन्थ में नागौर के राव अमरसिंह की वीरता का ही प्रधान रूप से अतिरंजित वर्णन हुआ है। यह ग्रन्थ देखने को प्राप्त नहीं हो सका, इसीलिए इसके विषय में अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में दिए इसके विवरण के आधार पर इसे इसी कोटि की रचना कहा जा सकता है। केशव कृत 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' के प्रारम्भ में खानखाना के पुत्र एलिच खाँ की प्रशंसा ३० छन्दों में की गई है। इसी प्रसंग में कवि ने दरबारी कवियों की परिपाटी पर 'कर्म और भाग्य', 'भाग्य एवं उद्यम' की महत्ता के लिए उनका तुलनात्मक वर्णन किया है।

जहाँगीर की प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है—

जहाँगीर दुई दीन को साहिब प्रगट प्रमान।
छाजति जाके छत्र की छाया सकल जहान ।।३१।।

(केशव ग्रन्थावली, जहाँगीर जस चन्द्रिका)

जहाँगीर के यश, प्रताप आदि का वर्णन करते समय कवि उसके सैन्य-बल का वर्णन करना भी नहीं भूला है। सेना के हाथियों, दान दिये जाने वाले घोड़ों तथा दरबार के कलाकार और पहलवान आदि का वर्णन भी बड़े विस्तार के साथ किया गया है। दरबार में बैठे हुए सरदारों का वर्णन कवि ने उद्यम और भाग्य के प्रश्नोत्तर रूप में किया है—

प्रश्न–(उद्यम)—शोभित आनन अरुणता अति गम्भीर प्रभाव।
समागत सभे सूर सो भाग्य कौन उमराव ।।

उत्तर–(भाग्य)—केशवदास जे त्रास भजे नृप भूतल भूप समान बखाना।
जहाँगीर सकलादि के काज भिरेरण में उपमा उग आनो।
घोरे चढ्यो शिशु पड्डु सौं सोभित हाथी चढ्यौ भगवन्त सो मान्यो।
देषहु भाग पान आजम को मिरजा समरदीन मरदानो ।।६७।।

(वही)

रामचन्द्रिका में राजा दशरथ के वर्णन में केशव ने जो छन्द दिया है उसी को जहाँगीर जस चन्द्रिका में जहाँगीर की प्रशंसा में दे दिया गया है केवल अन्तिम पंक्ति में दशरथ के स्थान पर जहाँगीर का नाम रख दिया गया है।[1]

जहाँगीर के दरबार में केशव को जो आदर प्राप्त हुआ था, उसके वर्णन के साथ, आश्रय दाता के प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए, उन्होंने ग्रन्थ को समाप्त किया है।

केशवदास के समान ही कवीन्द्राचार्य सरस्वती ने 'कवीन्द्र कल्प लता' में बादशाह शाहजहाँ, उसकी बेगमों और उसके दारा आदि पुत्रों की प्रशंसा की है। कवि दरबार से सम्बन्धित था अतः इस ग्रन्थ में इन प्रशंसात्मक छन्दों के अतिरिक्त रस, अलंकार, नायिका भेद आदि विषयों के छन्दों का भी समावेश कर दिया गया है। ये विषय उस काल तक दरबारों में वर्णन किए जाने के लिए स्वीकृत हो चुके थे। शाहजहाँ की प्रशंसा में कवि ने अत्युक्ति का खूब प्रयोग किया है—

---

[1] देखिये जहाँगीर जस चन्द्रिका, छन्द ११०।

दलदल सूखि जात सूखी दलदल होति, मेदिनी दहलि जाति जाकी भारी फौजतें ।
साहिजहाँ भुजालखि लाजत भुजंगराज, भाजत है भारे भूप परताप ओज ते ।
अनगने गाँव देत परगने मुवा देत, देस देत दिसा देत निसा देत रोज ते ।
हाँसी ही मे कामी देत पल मे पयोग देत ऐसी ऐसी दैनि कहीं कहीं भई भोजतें ।

(राज० खो० रि० भाग १ सं० २५ से उद्धृत)

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त स्फुट रूप से अनेक कवियो ने राजाओ एवं सरदारो की स्तुति एवं प्रशसा से युक्त छन्द रचना की । राजस्थान के चारण कवियो द्वारा रचे गए ऐसे छन्द बहुत बडी सख्या मे प्राप्त होते है । सामान्यतः अकबरी दरबार के सभी हिन्दी कवियों ने एवं मुख्यतः तानसेन और गंग ने अकबर तथा उसके दरबार के सरदारों की वीरता, दान, शौर्य, प्रताप आदि का एकाधिक छन्दो मे वर्णन किया । गग ने सबसे अधिक छन्द खानखाना की प्रशसा मे लिखे । तानसेन ने अकबर, शेख सफदर जग, मानसिंह, गौस मुहम्मद आदि का यश-गान अनेक पदो मे किया ।

इस काव्यरूप का प्रधान सम्बन्ध विषय एवं वर्णन शैली से है । अतः इसमें छन्दो के प्रयोग का कोई बन्धन नही है । फिर भी छन्द ऐसे अपनाए गए जो इस प्रकार के वर्णनो के लिए उपयुक्त थे । दोहा, कवित्त, सवैया एवं पद इस रूप के अन्तर्गत आने वाले वर्णनों के लिए प्रयुक्त हुए । परवर्त्ती काल में भी इस काव्यरूप का सम्बन्ध वर्णन के इन्ही प्रकारो एव लगभग इन्ही छन्दो से जुड़ा हुआ दृष्टिगोचर होता है ।

विशेषताएँ—

१—यह काव्यरूप प्रशसात्मक स्फुट वर्णनो का सकलित रूप है ।

२—इसका विषय आश्रयदाता की प्रशंसा एवं गुण-गान ही हुआ करता था । प्रशसा स्तुति के ढग पर की जाती थी । इन वर्णनों मे अतिरजना का प्राधान्य होता था । आश्रयदाता मे अनेक कल्पित गुणों का आरोप भी किया जाता था ।

३—इस प्रकार की रचना करने वाले कवि चरित-नायक के समकालीन होते थे एव उसके आश्रय में रहते थे ।

४—इस रूप के अन्तर्गत प्रधानतः गृहीत छन्द, दोहा, कवित्त एव सवैया ही थे जो इस प्रकार के वर्णनो के लिए उपयुक्त थे । यद्यपि इसके अपवाद भी मिलते है लेकिन उनकी संख्या अत्यल्प है ।

९—पुराण

परिभाषा—'विष्णु पुराण' में पुराण का लक्षण इस प्रकार दिया हुआ है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरित चयत् ।

विष्णु पुराण ३-६-२४

हिन्दी विश्व-कोष मे पुराण का लक्षण इस प्रकार है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।
वशानुचरितञ्चैव पुराण पच लक्षणम् ।

(भाग १३ पृष्ठ ६५८)

ऊपर की दोनो परिभाषाओं मे पुराणो के लक्षण एक से ही है । उक्त लक्षण कुछ पुराणों को देखकर ही निर्धारित किये गए होगे । 'विष्णु पुराण' मे उक्त समस्त लक्षण मिलते है । बाद मे कुछ अन्य विषय भी पुराणो मे सग्रहीत किए गए । 'नारद पुराण' मे पृथ्वी, प्रार्थना, उपवास, तीर्थ-यात्रा, पर्व आदि एव 'गरुड पुराण' मे ज्योतिष, औषधि, व्याकरण आदि विषयो का समावेश किया गया । भारतीय दृष्टिकोण से पुराणो मे इन पाँच बातों का होना आवश्यक है—१. सृष्टि की उत्पत्ति, २. सहार, ३. देवों की वशावली, ४ मन्वन्तरो का वर्णन तथा ५ सूर्यवशी एव चन्द्रवशी राजाओं का वर्णन ।[1]

व्याख्या—जैन आचार्य एव मुनियों ने जैन पुराणो की रचना की । जैनियों ने अपने धर्म की मान्यता के आधार पर उसकी परिभाषा भी भिन्न रूप से दी । जैन पुराणो का जो लक्षण उनके 'आदि पुराण' मे दिया गया है, इस प्रकार है—

तीर्थेशमापि चक्रेशा हलिनामर्द्धचक्रिणाम् ।
त्रिषष्टिलक्षण वक्ष्ये पुराण तद्विदामपि ।
पुरातन पुराण स्यात्तन्महन्महदाश्रयात् ।
महद्भिरुपदिष्टत्वान्महाश्रेयो नुशासनात् ।
कवि पुराणमाश्रित्य प्रसृतत्वात् पुराणता ।
महत्व स्वमहिम्नैव तस्येत्यान्यैर्निरुच्यते ।
महापुरुष सम्बन्धि महाभ्युदयशासनम् ।
महापुराणमाम्नातमत एतन्महर्षि भि ।१।२०-२३

(हिन्दी विश्व कोश, भाग १४ से उद्धृत)

इस लक्षण के आधार पर जैन पुराणो मे २४ तीर्थङ्करो, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ नारायण (अर्द्धचक्रवर्ती) और ९ प्रति नारायण—इस प्रकार ६३

---

[1] राजशेखर-काव्य मीमासा अध्याय २, पृष्ठ ३ ।
राजेन्द्र द्विवेदी-साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्द कोश, पृष्ठ १४५ ।

शलाका पुरुषो के चरित्र का वर्णन आवश्यक है। जैन पुरातन को ही पुराण कहते है। २४ तीर्थङ्करो की आख्यायिका प्रसग मे ही २४ पुराण लिखे गए। इन २४ पुराणो के अतिरिक्त २५ वॉ पुराण 'अरिष्ट नेमि पुराण' अथवा 'हरिवश पुराण' है जिसमे जिन के वर्द्धमान रूप की कथा का वर्णन है। इसी पुराण मे कृष्ण की कथा भी है। प्रत्येक जैन पुराण मे प्रधानत ६ अधिकार देखे जाते है[1]—१. लोक सस्थान, २, राजवशोत्पत्ति, ३ जिनेन्द्र का पच कल्याण, ४ गमनागमन, ५, दिग्विजय और साम्राज्य तथा ६. तत्परिनिर्वाण।

आलोच्यकाल मे हिन्दी कवियो द्वारा रचित पुराण सस्कृत की पुराण परम्परा के अनुसार नही लिखे गए। कवियो ने नए पुराणो की रचना न करके सस्कृत के पुराणो को हिन्दी भाषा मे लिखा। इन कवियो के समक्ष लक्षण अथवा परिभाषा का तो कोई प्रश्न ही नही था, उन्हे तो अपनी रुचि के अनुसार उसे भाषा-बद्ध कर देना था। फलत. इस कोटि के काव्य-ग्रन्थों मे पुराण शैली का ही प्रयोग हुआ। पुराणो मे प्रयुक्त होने वाली पौराणिक रूढियो का भी इन ग्रन्थो मे अभाव नही है। पुराणो मे और इन ग्रन्थो मे आकार के अतिरिक्त भाषा एव छन्दो का ही अन्तर है शेष सब बाते लगभग एक जैसी ही है। जैन कवि शालिवाहन कृत 'हरिवश पुराण' इसी नाम के सस्कृत के जैन पुराण का अनुवाद है। उसका स्वरूप आलोच्यकाल के हिन्दू पुराणो के अनुसार ही है।

संस्कृत मे लिखे होने के कारण पुराण जन-साधारण को सुलभ नही थे। पुराणो की विषयवस्तु-विशेष रूप से कृष्ण एव राम के लोक-पावन चरित्रो की झाँकी[2], प्रार्थना, उपवास, व्रत, दान, तप, ज्योतिष, औषधि आदि से सामान्य मानव को अवगत कराना एवं अमृत रसपान ही इनका उद्देश्य था। इस प्रयत्न का प्रभाव हिन्दी साहित्य मे एक और रूप मे विकसित हुआ। राम, कृष्ण, नल, ध्रुव, प्रह्लाद आदि पौराणिक चरित्रो को लेकर अनेक कवि स्वतन्त्र रूप से कथा-काव्यो की रचना में सलग्न हुए। कुछ पौराणिक चरित्रो को लेकर कवियों ने उच्चकोटि के काव्य लिखे और उनका कथानक पौराणिक होने के कारण उनका नाम भी 'पुराण' ही रखा। १४५३ विक्रम मे लिखा गया कवि नारायणदेव का 'हरिचन्द पुराण कथा'

---

[1] हिन्दी विश्वकोश, भाग १४, पृष्ठ ५५-५६।

[2] परम विचित्र मित्र इक रहे, कृष्ण चरित सुन्यो सो चहै।
तिन कही 'दशमस्कन्ध' जु आहि, भाषा करि कछु बरनो ताहि।
सबद्ध सस्कृत के है जैसे, मोपै समुझि परत नहि तैसे।
तातै सरल सुभाषा कीजै, परम अमृत पीजै सुख जीजै।
(नन्ददास—'दशमस्कन्ध' पक्ति-३६)

ऐसा ही काव्य है। यद्यपि ग्रन्थ के नाम मे कर्त्ता ने पुराण शब्द का प्रयोग किया है। तथापि यह पुराण न होकर 'चरित-काव्य' है। वस्तुत: चरित-काव्यों को 'पुराण' सज्ञा देने का कारण अपभ्र श के चरित-काव्यो का प्रभाव ही है। स्वरूप की दृष्टि से अपभ्र श के चरित-काव्य एव पुराणो मे कोई भेद नही है। 'पउमचरिउ' की भूमिका मे डा० हरिवल्लभ भायाणी ने उक्त मत को स्पष्ट किया है। उनकी दृष्टि मे दोनो मे सिर्फ सन्धियो की सख्या का ही अन्तर है। पौराणिक काव्यो मे व्यवहृत शैली अपनी विशिष्ट प्रकार रखती है। नीचे उस शैली की विशेषताओ पर विचार किया जाता है जो पुराणो को चरित्र काव्यो से भिन्न करती है—

१—पुराणो का कथासूत्र सम्बद्ध एव धारावाहिक न होकर तथा असमानुपातिक होता है। कोई कथा अत्यन्त अल्प तथा कोई बहुत बडी होती है। उनको जोडने की कोई आवश्यकता नही समझी जाती इसीलिए उसमें क्षेपक की सम्भावनाएँ अत्यधिक होती हैं।

२—चरित्र एव पात्रों के वर्णन के आधार पर उसे अनेक स्वतन्त्र खण्डो मे विभक्त किया जा सकता है और यह नूतन विभाजन सर्वथा समीचीन भी ठहराया जा सकता है।

३—इस शैली मे कथा के विकास पर ध्यान न देकर पुराण कहने पर ही ध्यान रहता है। अत कथा वर्णनात्मक ही बन पाती है। भावानुभूति की कोई सम्भावना नही रहती।

४—रूढियो का प्रयोग आवश्यक होता है। पुराण-काव्यो मे काव्यगत एव पौराणिक दोनो प्रकार की रूढियो का प्रयोग किया जाता है, कुछ काव्यगत रूढ़ियाँ ये हैं—मगलाचरण, ग्रन्थ रचना का उद्देश्य, आत्म लघुता, सज्जन-दुर्जन वर्णन, देव स्तुति, (कथा के प्रारम्भ अथवा मध्य में) श्रोता-वक्ता शैली, कवि परिचय, आदि, कुछ पौराणिक रूढियो—सृष्टि प्रक्रिया वर्णन, लोक विभाजन, धर्म प्रतिपादन, दार्शनिक मतो का खण्डन-मण्डन, पूर्वजन्म का स्मरण, स्वप्न दर्शन, पात्रों मे अलौकिक तत्वो की अवतारणा, देव दर्शन, अवान्तर कथाओं की भरमार आदि है।

वर्णित विषय—आलोच्यकाल मे कोई नया पुराण प्रस्तुत नही किया गया अपितु पुराणो को भाषा मे (हिन्दी मे) पद्यबद्ध किया गया। इस काल मे सबसे अधिक प्रचार 'भागवत' का हुआ। कृष्ण भक्ति का आन्दोलन सारे देश मे चल रहा था। 'भागवत' का दशम स्कन्ध कृष्ण लीलाओं का उद्गम स्थल होने के कारण भक्त एवं कवियों में बहुत ही लोकप्रिय हुआ। 'भागवत' के दशम् स्कन्ध को दशाधिक कवियो ने हिन्दी में अनुवाद किया। एकादश स्कन्ध के भी एक-दो अनुवाद हुए अधिकाश कवियों ने भावानुसरण से ही सन्तोष किया है। अन्य लोकप्रिय ग्र॰

महाभारत, जो कि पुराणों का भी उद्गम स्थल है, की भी अनेकों पर्वों का हिंदी में पद्यबद्ध किया गया। एकाध भक्त ने महाभारत की पूरी कथा को पद्य मे लिखा अन्यथा स्वर्गारोहण, डंगौ पर्व, द्रोण पर्व, भीष्म पर्व, अश्वमेध पर्व आदि का ही वर्णन अधिक हुआ। अन्य पुराण जो भाषा मे लिखे गए उनमे जैमिनि पुराण एवं गरुड पुराण, ही प्रमुख है। महाभारत का प्रिय प्रसग होने के कारण 'भगवत गीता' को भी भाषा मे लिखने का प्रयत्न किया गया। जैन कवि शालिवाहन का 'हरिवंश पुराण' उसी नाम के संस्कृत पुराण का अनुवाद है जिसमे जिन के वर्द्धमान रूप की कथा के वर्णन के अतिरिक्त कृष्ण की कथा भी है। कृष्ण की मृत्यु, पाण्डवो का बन-बास तथा नेमिनाथ की प्रव्रज्या के साथ ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। आलोच्यकाल के ये सब ग्रन्थ उसी शैली मे लिखे गए, जो पुराण लिखने के लिए रूढ हो चुकी थी। इन ग्रन्थो मे उस शैली के विकास का कोई क्रम दृष्टिगोचर नही होता।

१०—ऐतिहासिक-काव्य

काव्यरूप की व्याख्या एवं परिभाषा— आलोच्य काल से पूर्व मे ही ऐतिहासिक व्यक्तियो से सम्बन्धित तीन प्रकार के काव्य-ग्रन्थों की रचना होने लगी थी, जिनका उल्लेख चतुर्थ अध्याय मे इसी प्रकरण के अन्तर्गत हो चुका है। ऐतिहासिक चरित-काव्य एवं प्रशस्ति-काव्य-कोटि के ग्रन्थो पर विचार हो चुका है। यहाँ ऐतिहासिक-काव्य के अन्तर्गत आने वाले ग्रन्थ ही विवेच्य हैं। चरित-काव्य मे नायक के सम्पूर्ण जीवन का अथवा उसके जीवन की एक से अधिक प्रमुख घटनाओ का चित्रण होता है। उन ग्रन्थों में कथा सामान्यत नायक के जन्म से प्रारम्भ होकर उसकी मृत्यु तक अथवा जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना पर जाकर समाप्त हो जाती है। जीवन की सभी दशाओ का चित्रण इसके लिए आवश्यक होता है। प्रशस्ति-काव्य स्फुट रूप से किए गए प्रशंसात्मक वर्णनों का सकलन होता है जिसमे प्रबन्धात्मकता का पूर्ण अभाव रहता है। ऐतिहासिक काव्य मे चरित नायक के जीवन की किसी प्रसिद्ध घटना के आधार पर उसके किसी इतिहास प्रसिद्ध गुण का प्रशस्ति रूप मे वर्णन किया जाता है। इस प्रकार के काव्यो मे चरित नायक, घटना एवं चरित-नायक का गुण तीनो ही इतिहास प्रसिद्ध वस्तुएँ होती है। हाँ, उस गुण के वर्णन मे कवि को कल्पना के प्रवेश का पर्याप्त अवसर रहता है। चरित नायक के जन्म, उसके जीवन की अन्य घटना आदि के वर्णन से कवि को कोई सम्बन्ध नही होता। उसका मुख्य उद्देश्य तो नायक के गुण विशेष को ही प्रकाश मे लाना है। इसमे घटना-वर्णन होने के कारण प्रबन्धात्मकता का निर्वाह करना आवश्यक होता है। यह आवश्यक नही है कि कवि नायक का समकालीन हो अथवा उसके आश्रय में रहता हो।

काव्यरूप की ऊपर की गई व्याख्या के आधार पर उसकी परिभाषा इस

प्रकार दी जा सकती है—'ऐसे प्रबन्धात्मक काव्य जिनमे किसी एक इतिहास सम्मत घटना को लेकर किसी इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति के किसी ऐतिहासिक गुण का वर्णन प्रशस्ति-रूप मे किया जाता हो, ऐतिहासिक-काव्य कहे जाते है।' ऐसे चरित-नायको के चरितों की विशेषताओ पर प्रकाश डालने मे यह रूप अत्यन्त ही सफल रहा जिनके चरित अपनी लघुता के कारण चरित-काव्य के विषय नही बन सकते थे।

वर्णित-विषय—इस प्रकार की सर्वप्रथम रचना श्रीधर कृत 'रणमल छन्द' है जिसमें राठौड़ राजा रणमल की वीरता का वर्णन हुआ है। ग्रन्थ मे पाटन के सूबेदार जफर खाँ और रणमल के बीच हुए युद्ध का वर्णन है जिसमे जफर खाँ की हार हुई थी। रणमल की वीरता एव यह युद्ध दोनो इतिहास प्रसिद्ध है। शिवदास कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' मे माडू के बादशाह होशगशाह और गांगरौनगढ के खीची राजा अचलसिंह के युद्ध का वर्णन है। अचलदास वीरता प्रदर्शित करते हुए युद्ध मे मारे गए थे। इसके वर्णन एव घटनाएँ भी इतिहास सम्मत है। इस ग्रन्थ मे गद्य एव पद्य दोनो का समावेश है। अचलदास खीची की स्वतन्त्रता-प्रियता का वर्णन करने के लिए कवि ने बड़े रचना कौशल का सहारा लिया है—

एकणि वनि वसन्नडा एवड अन्तर काइ।
सीह कबड्डी नाल है, गैवर लक्खि विकाइ।

एक वन मे वसने वाले दोनो हाथी और सिंह, फिर दोनो मे इतना अन्तर क्यों? हाथी लाखों का और शेर कौडी का भी नहीं। अगले दोहे मे कारण भी दिया है—

गैवर गलै गलथीयो जह खंचचे तहं जाइ।
सीह गलथ्थण जे सहै तो दह लक्ख विकाइ।

(राज० भाषा और साहित्य से उद्धृत, पृष्ठ १००)

हाथी बन्धन सह लेता है। वह जिधर खींचा जाय उधर ही चला जाता है। यदि सिंह भी बन्धन सह ले तो दस लाख मे विके। अचलदास एव मुल्तान के अन्य सरदारो मे सिंह और हाथी का ही अन्तर है। सूजाजी कृत 'राव जैतसी रो छन्द' नामक ग्रन्थ मे बीकानेर नरेश राव जैतसी एवं बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। ग्रन्थ मे जैतसी की वीरता का विशद वर्णन है। इस युद्ध मे कामरान को परास्त होना पडा था। अमोलक कवि कृत 'खान खवास की कथा' (खवास खाँ की कथा) नामक ग्रन्थ में बयाना के सूबेदार खवास खाँ की सत्यता, वीरता एव वचन-पालन-गुणो का बखान हुआ है। ग्रन्थ में खवास खाँ एव शेरशाह के पुत्र सलेम के बीच हुए युद्ध का सविस्तार वर्णन है। युद्ध का कारण भी कवि ने ग्रन्थ मे दिखाया है। सक्षेप मे कथा इस प्रकार है शेरशाह के पुत्र सलेम के दरबार

मे राजा जगदेव नौकर था। बादशाह की स्त्री ने उससे अनुचित सम्बन्ध रखना चाहा। जगदेव के विरोध करने पर बादशाह की स्त्री ने जगदेव के विरुद्ध बादशाह के कान भरे। बादशाह के क्रोध से बचने के लिए जगदेव भागकर बयाना पहुँचा और वहाँ के सूबेदार खवास खाँ से शरण चाही। खवास खाँ ने बादशाह की चिन्ता किये बिना उसे आश्रय दिया और अन्त तक अपने वचन का पालन किया। बादशाह द्वारा जगदेव को माँगने पर उसने देने मे इन्कार कर दिया, फलत युद्ध हुआ। खवास खाँ मारे गये और उसकी स्त्री ने जगदेव को अपना पुत्र मान कर उसे बयाना की गद्दी पर बिठाया। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ही कवि खवास खाँ के गुणो की प्रशसा करते हुए कहता है—

सषियो सषी खवास खां सब सतियन पर तू मती।
मुष अवल कहे पाले सोई वचन जहर सो धरपती।
सिर धड दियो समेत कियो हीयो जगदेव को।
चल्यौ सुजस के हेत खाँ खवास सब आस तजि।

(ना० प्रा० रि० १३ संख्या ६ से उद्धृत)

केशवदास कृत 'रतन बावनी' ग्रन्थ मे बावन छन्दों मे ओडछा नरेश मधुकर शाह के पुत्र रतनसिह एव अकबर के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध मे रतनसिह मारे गए थे। कवि ने ग्रन्थ के प्रारम्भ मे उसकी रचना का उद्देश्य स्पष्ट वर्णन कर दिया है।[1] रतनसिह को इस ग्रन्थ मे सच्चे वीर के रूप मे चित्रित किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ब्राह्मण एव रतनसिह मे नीति को लेकर हुए बाद-विवाद मे रतनसिह के गुणों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। ब्राह्मण रतनसिह को नीति समझाता हुआ युद्ध से विरत करने के लिए प्रेरित करता है। लेकिन रतनसेन युद्ध से पीठ दिखाने को प्रस्तुत नही होता और युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। युद्ध मे उसकी मृत्यु होती है। उसके साथी उसकी मृत्यु पर धर्म की रक्षा करते हुए, युद्ध मे प्राण त्यागकर उसके नमक से उऋण होने की प्रतिज्ञा करते है[2] और ४००० सेना के साथ रतनसिह सुरपुर को प्रस्थान करता है।

आशानन्द कृत गोगाजी री पैडी की प्रति तो देखने को प्राप्त नही हुई लेकिन इतिहास में हुए उल्लेख से वह इस कोटि की रचना प्रतीत होती है।[3] जान कवि कृत 'अलिफ खाँ की पैडी' नामक ग्रन्थ मे नगरकोट के राजा सूरजमल पर दिल्ली के बादशाह के सेनापति द्वारा किए गए आक्रमण का वर्णन है। न्यामत खाँ उर्फ जान

१ देखिए-केशव पचरत्न-रत्नावली, छन्द २-३।

२ देखिए-केशव पचरत्न-रतन बावनी, छन्द ३७।

३ राज० भाषा और साहित्य, पृष्ठ ११४।

कवि के पिता नवाब अलिफ खाँ इस युद्ध में बादशाह की ओर से सम्मिलित हुए थे। युद्ध में सूरजमल की हार हुई थी और कागड़ा तथा नगरकोट पर बादशाह का आधिपत्य स्थापित हुआ था। अलिफ खाँ की वीरता ही ग्रन्थ का मुख्य वर्ण्य विषय है। अलिफ खाँ का पूरा जीवन वृत्त नहीं दिया गया लेकिन अन्तिम दोहे में उसका मृत्यु सम्वत् दे दिया गया है। इस घटना का वर्णन अनेक पाश्चात्य इतिहासकारो के ग्रन्थों मे मिलता है। इलियट एण्ड डाउसन कृत 'हिस्ट्री आफ इण्डिया' भाग ६ मे पृष्ठ ५१८ से ५३१ तक इस युद्ध का वर्णन है।

इन ग्रन्थो की एक विशेषता यह है कि यदि चरित-नायक की युद्ध मे जीत होती है, तो कवि ससार मे उसकी प्रशसा होने की बात कहता है और यदि युद्ध मे वह मारा जाता है तो उसके स्वर्ग जाने की बात सभी ग्रन्थो मे पाई जाती है। मुसलमान कवि जान भी अलिफ खाँ के बैकुठ जाने का वर्णन करते है—

सम्वत हुआ तिआसिया लेखै परवाणा।
बैंकुठ पहुँचे अलिफ खाँ छड्ड दिया जहाणा।१००।
(अलिफ खाँ की पैड़ी)

इस काव्यरूप के अन्तर्गत आने वाले ग्रन्थो मे वीरता का वर्णन ही प्रमुख रूप से हुआ है। एकाध ग्रन्थ मे वीरता के साथ-साथ वचन-पालन गुण का भी वर्णन हुआ है। इन ग्रन्थो के नायकों मे ऐतिहासिक पुरुष होने के कारण इसी एक गुण का मुख्य रूप से वर्णन होना स्वाभाविक भी है। इस गुण के प्रकाशन मे यह काव्यरूप पूर्णतया सफल हुआ। परवर्ती काल के वीरता के भावों से युक्त अनेक 'ऐतिहासिक काव्य', आलोच्यकाल मे इस काव्यरूप को इस वर्णन मे मिली सफलता के द्योतक है। वीर रस एव वीरतापूर्ण भावो के प्रकाशन के लिए दूहा, कवित्त एव छप्पय छन्दों का प्रयोग भी समीचीन ही था।

विशेषताएँ—

१—इसमे किसी ऐतिहासिक घटना के आधार पर किसी ऐतिहासिक पुरुष के ऐतिहासिक गुण का वर्णन होता है। गुण के वर्णन मे अत्युक्ति को भी स्थान दिया जा सकता है।

२—घटना का आधार होने के कारण इसमे प्रबन्धात्मकता रहती है।

३—कवि का राज्याश्रय मे रहना अथवा घटना का समाकालीन होना आवश्यक नही है।

४—अधिकाश वर्णन नायकों की वीरता के ही हुए है। अत: वीरतापूर्ण वर्णनो के प्रकाशन में समर्थ दोहा, कवित्त एव छप्पय छन्दों का ही प्रयोग मिलता है।

११—मगल काव्य

व्याख्या एवं परिभाषा—भारतीय सस्कृति मे विवाह कार्य को परम मागलिक कृत्य माना जाता है। विवाह की मुख्य क्रिया के समान ही उस अवसर पर किए जाने वाले अन्य कार्य भी मागलिक कृत्य समझे जाते है। इसीलिए विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले गीत भी गीत न कहला कर मगल ही कहे जाते है। जिन काव्यो मे इस परम मागलिक अवसर पर होने वाले उल्लासपूर्ण कार्यों का वर्णन होता है उन्हे 'मगल-काव्य' कहा जाता है। मगल-काव्य की यह एक परिभाषा हो सकती है जो उन ग्रन्थों को ध्यान मे रखकर दी गई है, जिनमे विवाह का वर्णन होता है। इस परिभाषा के आधार पर मगल-काव्यो मे विवाह की ही प्रधानता ठहरती है। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मगल काव्य का उद्गम मगल (गीत) से है, जो विवाह के अवसर पर गाए जाते है।[1] मंगल गाने योग्य अवसर होने से ही विवाह भी मागलिक कृत्य माना गया और उसका वर्णन करने वाला काव्य 'मगलकाव्य' हुआ। इससे यह अनुमान किया जा सकता है, कि प्रारम्भिक 'मगल काव्य' एवं मगल छन्द मे कुछ सम्बन्ध अवश्य रहा होगा। आलोच्यकाल के कुछ कवियो ने इस सम्बन्ध को निवाहने का सफल प्रयास किया है। नरहरि तथा तुलसी ने अपने मगल काव्यो मे मगल छन्द के प्रयोग का प्रयास किया है। तुलसी ग्रन्थावली की भूमिका मे उसी छन्द को सोहर कहा गया है।[2] वास्तव मे यह अरुण छन्द है जिसमे ११,६ के विश्राम से २० मात्राएँ होती है। डा० रामकुमार वर्मा ने इस छन्द को मगल छन्द भी कहा है।[3] मंगल छन्द एवं मगल काव्य का यह सम्बन्ध सब रचनाओ मे प्राप्त नही होता। अधिकांश रचनाओं की विषय के आधार पर ही मगल सज्ञा दी गई है।

आलोच्यकाल के कुछ ग्रन्थ ऐसे भी है जो न विवाह काव्य है और न विवाह के अवसर पर गाए जाने के लिए मगल छन्द ही से लिखे गए हैं फिर भी उनकी सज्ञा मगल दी गई है। इन ग्रन्थों पर बगला के मगल-काव्यो का प्रभाव है। बंगला के मंगल काव्य विवाह काव्य न होकर देवी-देवताओं के चरित एव यश वर्णन, व्रत कथाओं,

---

[1] गुजरात मे विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले गीत 'धवल' कहलाते हैं। यह एक लौकिक गीत है। इस छन्द में लिखे गए विवाह काव्यो की संज्ञा वहाँ 'धवल बन्ध' भी दी गई है।
(नाहटा का लेख—प्राचीन भाषा काव्यो की विविध सज्ञाएँ—ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८ अंक ४, पृष्ठ ४२६।

[2] तुलसी ग्रन्थावली, भाग २, पृष्ठ ३।

[3] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ३७८।

धरम निरूपक एव उपखान मूलक आदि विषयो से सम्बन्धित होते है। बगला का प्रसिद्ध मंगल-काव्य 'मनसा मगल' है जिसमे विहुला की करुण कथा का वर्णन है। विहुला साँप के द्वारा काटे गए अपने पति को बचाने की युक्ति नेतिया नाम की धोबिन से पूछती है और उसी के अनुसार कार्य करने पर उसे सफलता प्राप्त होती है। 'मनसा मगल' के गीतों का गान मनसा देवी (बगाल मे यह सर्पो की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है) की पूजा के अवसर पर किया जाता है। 'मनसा मगल' के इस स्पष्टीकरण से बगाल के मगलकाव्यो के स्वरूप पर कुछ प्रकाश पडता है। बगाल मे उपखान मूलक मगल-काव्य भी लिखे जाते थे जिनमे सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन होता था। कबीर के मगल सज्ञक ग्रन्थ इन्ही बगला के मगल ग्रन्थो से प्रभावित है।

विवाह के अवसर पर होने वाली अन्य मांगलिक क्रियाओं के वर्णन से युक्त रचनाएँ भी मगल-काव्य की कोटि मे आ जाती है। उत्तर भारत मे विवाह के अवसर पर भात पहिनाने की प्रथा सभी हिन्दुओं मे प्रचलित है। भात का अवसर भी मागलिक होता है। भात मागने जाते समय तथा भात पहनते समय मगल गान किया जाता है। अत भात के वर्णनो से युक्त काव्य ग्रन्थ जिनकी संज्ञा गुजराती प्रभाव के कारण माहेरो (गुजराती के मामेरा का अशुद्ध रूप) प्राप्त होती है, मगल काव्य की कोटि मे आते है।

इस प्रकार आलोच्यकाल में प्राप्त मगल-काव्य चार रूपों मे प्राप्त होते है —

१—विवाह वर्णन वाले काव्य जिनकी सज्ञा मगल, विवाहला, व्याहलो आदि मिलती है। २—मगल छन्द मे लिखी हुई रचनाएँ जो विवाह आदि मांगलिक अवसरो पर गाई जाती थी। ('जानकी मगल', 'पार्वती मगल' को उपवीत तथा विवाह आदि के अवसर पर गाने के लिए भी रचा गया।) ३—विवाह से सम्बन्धित किसी अन्य क्रिया के वर्णन वाली रचनाएँ यथा नरसी कौ माहेरौ, तथा ४—बंगला से प्रभावित उपखान मूलक मगल-काव्य। क्षेत्रीय प्रभाव मे प्रभावित होने के कारण कबीर की मंगल सज्ञक रचनाओं को छोडकर शेष तीनों प्रकार की रचनाओ के स्वरूप मे अद्भुत साम्य दिखाई देता है। इन सभी काव्यो के प्रारम्भ मे मगलमय कथा का नाम, कही-कही उसके वर्णन करने का कारण एवं अन्त में उसके पाठ से मिलने वाले फल का निर्देश अवश्य मिलता है। यह बात सभी मगल, हरण, व्याहलो एव माहेरो सज्ञक रचनाओं मे प्राप्त होती है।

ऊपर आलोच्यकाल के मंगल-काव्यों के स्वरूप की व्याख्या दी गई है। ऊपर दी गई परिभाषा एकागी होने के कारण इस काल की सभी रचनाओ की विशेषताओ पर प्रकाश नही डालती। अत. इस रूप की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—'आलोच्यकाल की वह रचनाएँ १. जो विवाह या विवाह के समय होने वाली

किसी क्रिया के वर्णन से युक्त हो, अथवा २ जो विवाह आदि मांगलिक अवसर पर गाने के लिए मंगल छन्द में लिखी गई हो, अथवा ३. जो क्षेत्रीय (बंगाल के) प्रभाव से प्रभावित होने के कारण प्रक्रिया, अथवा धर्म-निरूपण के प्रयास से मुक्त हो, 'मंगल-काव्य' की कोटि मे आती है।'

वर्णित विषय—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस काव्य रूप का प्रमुख तत्त्व उसका वर्णित विषय है। प्रारम्भ मे उसका सम्बन्ध छंद से रहा होगा लेकिन कालान्तर में वह सम्बन्ध छन्द से टूट कर विषय में जुड गया और विवाह आदि मंगल कार्यों के वर्णन से युक्त रचनाओं की संज्ञा मंगल, विवाहुला, विवाह, व्याहलो, धवल आदि दी गई। गुजरात के जैन कवियो द्वारा लिखे गए मंगल-काव्यो मे भाव प्रकार के विवाहो का वर्णन हुआ है। जैनाचार्यो के ब्रह्मचारी होने के कारण कवियो ने उनके दीक्षा लेने के समय को लेकर 'दीक्षा कुमारी' व 'संयम श्री' को कन्या मान कर उनके साथ अपने प्राचीन धार्मिक पुरुषो के विवाह को रूपक के माध्यम से वर्णित किया। लेकिन जैनेतर कवियो ने आलोच्य काल के अन्य कवियो के समान विवाह-काव्य ही रचे और उनमें विवाह जैसे मंगलमय अवसर का ही वर्णन किया।

विवाह-काव्य या 'मंगल-काव्य' आलोच्य काल में रुक्मिणी सम्बन्धित ही अधिक मिलते है। इस काल के ९ ग्रन्थ रुक्मिणी के विवाह वर्णन के प्राप्त होते है। इसके अतिरिक्त तुलसीदास ने जानकी मंगल एवं पार्वती मंगल तथा राधावल्लभी कृष्ण भक्त कवियो ने रुक्मिणी के स्थान पर राधा को प्रतिस्थापित करके राधा-कृष्ण के 'व्याहलो' का वर्णन किया। इन पौराणिक प्रसंगो के अतिरिक्त लोक प्रचलित प्रसंगो पर भी मंगल काव्य लिखे गए। 'माहेरा' संज्ञक दोनों रचनाएँ लोक प्रचलित कथानक नरसी मेहता के भात देने की कथा पर ही आधारित है। भक्तो पर भगवान के अनुग्रह को स्पष्ट करने एवं भगवान की भक्त वत्सलता के दिग्दर्शन कराने वाले कथानक के कारण ही यह इस श्रेष्ठ रूप के कथानक रूप मे स्वीकार किया गया। अधिकांश रुक्मिणी मंगल संज्ञक रचनाओं का कथानक एक जैसा ही है, नन्ददास के रुक्मिणी मंगल की कथा यह है— भीषम कुंडिनपुर का राजा था। उसकी कन्या रुक्मिणी थी। कृष्ण से विरोध होने के कारण उसके भाई रुक्म ने पिता की इच्छा के विरुद्ध उसे शिशुपाल को देना निश्चित किया। रुक्मिणी को इससे अत्यन्त दुःख हुआ। वह दिन रात कृष्ण के चिन्तन में दुःखी रहने लगी। प्रेम एवं कुलकानि के लिए उसके हृदय मे संघर्ष होने लगा। अन्त में गोपियो के पथ का अनुगमन कर उसने एक ब्राह्मण के हाथो एक पत्र कृष्ण के पास भिजवाया ब्राह्मण निर्विघ्न कृष्ण के पास पहुँचता है और कृष्ण उसका स्वागत करके उससे आने का कारण पूछते है। ब्राह्मण रुक्मिणी का पत्र देता है। कृष्ण पत्र को प्रेम पूर्वक ग्रहण कर पढ़ने के लिए ब्राह्मण को लौटा देते है। ब्राह्मण पत्र पढ़ता है जिसमे

रुक्मिणी का आत्म समर्पण एव शिशुपाल से रक्षा की प्रार्थना की गई थी। तुरन्त कृष्ण ब्राह्मण के साथ रथ पर सवार होकर कुंडिनपुर की ओर प्रस्थान करते है। कुंडिनपुर के निवासी कृष्ण की अपूर्व शोभा देखकर आनन्दित होते है। रुक्मिणी देवी की पूजा हेतु नगर से बाहर आई और देवी से कृष्ण प्राप्ति का वर लेकर आनन्दित हुई। कृष्ण ने उसे शीघ्रता से रथ पर चढा लिया और द्वारिका की ओर प्रस्थान किया। शिशुपाल के साथ आये राजाओ में युद्ध होता है जिसमे उनकी हार होती है। कृष्ण विधिवत् रुक्मिणी के साथ विवाह करते है। रुक्मिणी हरण की कथा का स्रोत भागवत है। लेकिन भागवत की कथा को कुछ परिवर्तित रूप से ही नन्ददास द्वारा ग्रहण किया गया है। 'मगल-काव्य' लिखने की भावना से उन्होने हरण के पश्चात् होने वाले युद्ध के अमंगल पूर्ण प्रसग का उल्लेख मात्र छोड दिया है। भागवत के समान कृष्ण का रुक्मिणी के समक्ष ही रुक्म को मारने के लिये उद्यत होना एवं भाई के अपमान से रुक्मिणी के क्षुब्ध होने के प्रसग को भी अमांगलिक मान कर छोड दिया गया है। कहना न होगा कि परवर्त्ती सभी रुक्मिणी मंगलो की कथा कुछ थोड़े हेर फेर के साथ इसी रूप मे प्राप्त होती है। युद्ध को अमंगलकारी मानने के कारण अधिकाश ग्रन्थों मे उसका संकेत भर किया गया है। एक ग्रंथ मे युद्ध का विस्तृत वर्णन भी मिलता है। हीरामनि दीक्षित के ग्रंथ 'रुक्मिणी मगल' में रुक्म के द्वारा कृष्ण को युद्ध के लिए ललकारने पर कृष्ण रुक्मिणी की ओर देखते है लेकिन रुक्मिणी कृष्ण को 'क्षत्री का धर्म युद्ध करना है' शब्द कहकर युद्ध को प्रेरित करती है। और तब भीषण युद्ध होता है। यद्यपि उसका वर्णन संक्षिप्त ही है। इस प्रकार के प्रयोग एकाध ही हैं। कुछ ग्रन्थों मे विवाह के पश्चात् कृष्ण एव रुक्मिणी की केलि का विस्तृत वर्णन भी मिलता है। पृथ्वीराज कृत 'बेलि' इसका सुन्दर उदाहरण है। इस प्रकार कवि की रुचि के अनुसार कथा मे यदाकदा हेर-फेर अवश्य मिलता है फिर भी कथा का मूल भागवत कथा ही है। आलम ने स्याहलो ग्रन्थ को और अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए विवाह के अवसर पर गाली दिलाने का भी विधान किया है।

तुलसीकृत पार्वती मगल मे गौरि गिरीश के पावन विवाह तथा शंकर-चरित्र का वर्णन है। पार्वती का हिमवान के घर जन्म लेना ब्रह्मादि देवताओ द्वारा उनके

---

१ विवाह काव्यों मे द्रव्य तथा भाव दो प्रकारके विवाहो का वर्णन होता है। द्रव्य विवाह मे पति पत्नी का सम्बन्ध तथा भाव विवाह मे आध्यात्मिक रूपको की प्रधानता होती है।

(अगरचन्द नाहटा-मगल काव्य, भारतीय साहित्य, जनवरी १९५६)

२ देखिए—पार्वती मंगल, छन्द २-३

भाग्यकी प्रशसा करना, कन्या का विवाह योग्य देखकर माँ-बाप की चिन्ता, नारद आगमन, शकर की आराधना का उपदेश, पार्वती की भयकर तपस्या, शंकर का बटुवेष में जाकर परीक्षा लेना, पार्वती की दृढता, प्रसन्न होकर शकर का दर्शन देना, पार्वती को पत्नी रूप में ग्रहण करने का वचन देना, विवाह की तैयारी, बरात की विविधता का वर्णन, विवाह की क्रियाओं के वर्णन के साथ शकर पार्वती का कैलाश आगमन आदि इसमे वर्णित है। 'जानकी मगल' मे राम-सीता के विवाह का वर्णन है लेकिन इसमे 'मानस' की कथा मे कुछ भेद किया गया है—१. इसमे पुष्पवाटिका मे प्रत्यक्ष दर्शन का प्रसग नही है। कथा धनुष यज्ञ से ही प्रारम्भ होती है। २. इसमे जनक के सदेह करने पर तथा विश्वामित्र द्वारा राम की महिमा कहने पर ही राम ने धनुष तोडा है। लक्ष्मण के क्रोध का प्रसंग नही है। ३. परशुराम का आगमन विदा के पश्चात् मार्ग मे होता है। इस ग्रन्थ मे भी रामचरित मानस के समान धनुष टूटने से पूर्व उपस्थित स्त्रियों के हृदय की भावनाओ का सुन्दर चित्रण हुआ है। कही-कही तो पूरी उक्तियाँ रामचरित मानस की ही रख दी गई है—

> एक कहहि कुवर किसोर कुलिस-कठोर सिव धनु है महा।
> किमि लेहि बाल मराल मदर नृपहि नहि काहुन कहा।६३।
>
> (जानकी मगल)

> सो धनु राजकुंवर कर देही बाल मराल कि मदर लेही।
>
> (रामचरितमानस)

गोस्वामी जी ने नहछू के समान ही इन दोनो मगलो को विवाह तथा यज्ञोपवीत के अवसरो पर पाठ करने के लिए ही रचा था जिससे कि इस परम मागलिक कार्य मे कोई व्याघात उपस्थित न हो। दोनो के अन्त मे उन्होने इसे स्पष्ट कहा है—

> उपवीत ब्याह उछाह जे सियराम मगल गावही।
> तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनु दिन पावही।।२१६।।
>
> (जानकी मगल)

> कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहै।
> तुलसी उमाशकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइ है ।।१६४।।
>
> (पार्वती मंगल)

नरहरि ने भी उसके पाठ के फल मे ब्याह काज से होने वाले कल्याण की बात कही है।

राधा को परम पूज्य एव परम शक्ति मान कर उपासना करने वाले कृष्ण भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण के विवाहों का वर्णन किया। इन ग्रन्थों मे कृष्ण

एवं राधा के उबटन, स्नान, वस्त्राभूषण, विवाह मण्डप आदि के साथ-साथ राधा-कृष्ण के विवाह एवं केलि का वर्णन हुआ है। ये काव्य रागों मे लिखे गये है और उन्हे मंगल छन्द कहा गया है—

राग सूहौ— मंगल छन्द— आजु सखियन मंगल गायो।
पिय प्यारी उबटि अन्हवाये, तन भूषण अम्बर साजे,
सोभा निधि युगल विराजे।
भूषण साजे युगल विराजै मौरी मौर बनायौ।
गह्वर फूलनि कुंज विराजत शोभा मंडप छायौ।
हरखी सखी विशाखा बेली अद्भुत रंग बढायौ।
प्रेम सुचौक पुराइ सुबेदी सखियन मंगल गायौ।
(दामोदर स्वामी कृत हस्त० प्रति 'फुटकर बानी')

ध्रुवदास कृत ब्याहलो ग्रन्थ भी पदो मे ही लिखा गया है। चतुर्भुजदास राधावल्लभी के 'हितजू का मंगल' एवं लाल स्वामी कृत 'मंगल' दोनों ग्रन्थों मे राग-रागिनियों के अन्तर्गत मंगल छन्द से महाप्रभु हितहरिवंश जी के प्राकाट्य, उत्कर्ष एवं स्वरूप का वर्णन किया गया गया है जो परम मंगल कारक है। छन्द, विषय एवं फल सब मंगल कारक होने के कारण ही उक्त दोनों ग्रन्थो की संज्ञा मंगल दी गई है।

'माहेरौ' संज्ञक ग्रन्थो मे कृष्ण के परम भक्त नरसी का अपनी पुत्री को भात पहिनाने का वर्णन किया गया है। आज भी विवाह पर भात माँगने जाने के अवसर पर अथवा भात पहनने के अवसर पर नरसी द्वारा दिये गये प्रसिद्ध भात की चर्चा से युक्त गीतो का गान स्त्रियाँ करती है। इसी लोक-प्रचलित भक्ति भावना से ओत-प्रोत मंगलमय प्रसंग का इनमे वर्णन हुआ है। भगवान को अपने भक्त की कितनी चिन्ता रहती है, उनके इसी विरुद का इनमे वर्णन है—

श्री गुरु चरण कमल चित राखूँ भक्ति प्रभाव-बिड़द जस भाखूँ।
बन्दू भक्त भक्त बुधि पाऊँ नरसी को इतिहास सुनाऊँ ।।३।।

ग्रन्थ के अन्त मे ग्रन्थ के पाठ का महत्त्व भी दिया गया है—

भक्ति उपजै भय मिटै अस स्वामी सभी काज।
नृपता सकल निहजसी सावलसा महाराज ।।१५।।

(रतनखाती कृत नरसी मेहता को माहेरो— राज० मे हिन्दी हस्त० ग्रन्थों की खोज भाग ३, पृष्ठ १७६)

'आर्द्रकुमार' धवल मे आर्द्र कुमार की एक प्रेम कथानक के द्वारा इन्द्रिय

निग्रह एव पञ्च विषय को जीतने की कथा का वर्णन किया गया है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, धवल गीत विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीतो को कहते है। आर्द्र कुमार पञ्च विषयो को जीत कर सयम श्री को वरण करने मे समर्थ रहा अत जैन धर्मावलम्बियों के विवाह आदि के अवसर पर गाये जाने के लिए इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया। आर्द्र कुमार के इस यश का बधावा सर्वत्र व्याप्त हुआ—

> गाई सु आर्द्रकुमर रिषि राया, जिन मुनि पाली प्रवचन माया।
> सकल सुहावा होइ बधावा। आर्द्र कुवर मुनिक गुण गावा ॥१॥
>
> (कनक सोम कृत आर्द्र कुमार धवल, हस्तलिखित प्रति)

विशेषताएँ—इस काव्यरूप की कुछ सामान्य विशेषताएँ ये है—

१—(अ) इसमे या तो विवाह का वर्णन होता है, (आ) या विवाह के अवसर पर गाने के लिए लिखा जाता है, (इ) इसका छन्द मंगल छन्द होता है और इसमे वर्णित विषय प्राणियो का मगल कारक होता है। लेकिन इसके अपवाद भी है। कबीर मे मगल सज्ञक ग्रन्थो मे सृष्टि प्रक्रिया एव उपखान मूलक धरम निरूपण का प्रयास है, जो हिन्दी क्षेत्र के लिए नवीन विषय है।

२—इसमे मगल छन्द के अतिरिक्त अन्य छन्दो का भी विधान हुआ है। कही वह दोहा चौपाई मे तथा कही रागो मे निबद्ध प्राप्त होते हैं।

३—इनमें अमंगलपूर्ण अवसरो का सर्वदा बहिष्कार किया जाता है। कही-कही अपवाद भी प्राप्त होते है।

४—कथा क्रम का निर्वाह रखने का प्रयास होता है। लेकिन जहाँ पदो में वर्णन है वहाँ स्फुटता स्पष्ट लक्षित होती है।

५—इसकी अनेक संज्ञाएँ प्राप्त होती है।

६—इस रूप का प्रधान तत्त्व विषय है।

१२—लीला-काव्य

व्याख्या एवं परिभाषा—'लीला-काव्य' आलोच्यकाल के भक्त कवियो की देन है। डा० दशरथ ओझा बारहवी शताब्दी मे विरचित श्रीमद्भागवत मे वर्णित रासलीला के प्रमाण से एव राजस्थानी रास की उपलब्धि से भक्त कवियो से पूर्व भी कृष्ण-रासलीला के वर्तमान होने का अनुमान करते है।[1] चतुर्थ अध्याय मे उद्धृत 'प्राकृत पैंगलम्' के नौका लीला विषयक छन्द से भी उनके इस अनुमान की

---

[1] हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृष्ठ १०१।

पुष्टि होती है। लीला के पदो के साथ लीला-काव्य का भी प्रादुर्भाव हुआ लेकिन वह आलोच्यकाल से पूर्व तक उसी रूप मे रहा, जिस रूप मे कि 'प्राकृत-पैंगलम्' के छन्द में प्राप्त होता है। कृष्ण की किसी लीला को लेकर उसका एकाध छन्द मे वर्णन कर देना भर ही उस काल तक अभीष्ट समझा जाता रहा। यद्यपि विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम दशक की रची हुई एक कृष्ण-लीला-विषयक रचना प्राप्त है तथापि इस रूप का पूर्ण विकास भक्त कवियो द्वारा विक्रम की १६वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ही हुआ।

कृष्ण की लीलाओ का गान दो रूपो मे किया जाता था—१ पदो मे, २ अन्य छन्दों में। पदो मे लीला गान जिन रचनाओं में किया गया उनका उल्लेख 'लीला के पद' प्रकरण मे हो चुका है। यहाँ दूसरे प्रकार की रचनाओ पर ही विचार होगा। इन रचनाओ मे कृष्ण की प्रेम वर्णन युक्त अनेक मनोहारी लीलाओं का प्रबन्ध रूप मे वर्णन किया जाता था। जैसा कि 'लीला के पद' प्रकरण मे कहा जा चुका है, प्रबन्ध रूप से लीला गान करने के लिए 'पद' उपयुक्त न थे, इसीलिए लीला वर्णन के लिए अन्य छन्दो का व्यवहार कवियों द्वारा किया गया। आलोच्यकाल में विभिन्न छन्दो मे कृष्ण की 'श्रीमद्भागवत' मे वर्णित प्रेम वर्णन युक्त अनेक लीलाओं की रचना हुई। कृष्ण की इन लीलाओ के गान की परम्परा बगाल मे पर्याप्त प्रच-लित हो रही थी। जयदेव के 'गीत गोविन्द' को अभिनय के साथ गाया जाता था और चैतन्य देव कृष्ण की लीलाओ का अभिनय करके जन सामान्य को मुग्ध कर रहे थे।[1] वृन्दावन मे भी महारास मण्डल की स्थापना हो चुकी थी।[2] अत इन लीला-काव्यों की रचना के समय कवि का उद्देश्य उनका गान एव अभिनय दोनों ही रहते थे, इसलिए इनमे नृत्य एव गीत की प्रधानता रहती थी।

ऊपर दी गई व्याख्या के आधार पर इस काव्य-रूप की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—

"वे रचनाएँ, जिनमे प्रबन्ध रूप मे नृत्य-गीत युक्त शैली मे गोपी-कृष्ण-प्रेम-प्रसग का गान एव अभिनय के लिए विविध छन्दो मे वर्णन मिलता है, 'लीला-काव्य' की कोटि मे आती है।"

वर्णित-विषय—इस रूप के अन्तर्गत आने वाली रचनाओ मे कृष्ण की विभिन्न लीलाओ का ही वर्णन किया गया। 'श्रीमद्भागवत' मे वर्णित कृष्ण की अनेक लीलाओं को भक्त कवियो द्वारा हिन्दी मे लिखा गया। जिन लीलाओ का

---

[1] हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास, पृष्ठ ९७।

[2] वही पृष्ठ ९९।

वर्णन किया गया, उनमे दानलीला, मानलीला रासलीला, दधिलीला, नागलीला, वसन्तलीला, वनविहार लीला, सनेहलीला आदि प्रमुख है। इनमे से दानलीला, मान-लीला, रासलीला, सनेहलीला एव वनविहार लीला अधिक लोकप्रिय हुई और उनका वर्णन अनेक कवियों द्वारा किया गया। वृन्दावन में 'महारास मण्डल' की स्थापना हो जाने के कारण रासलीला का महत्त्व बहुत बढ गया और सभी भक्त कवियो ने गोपी-कृष्ण के रास का या तो 'लीला-काव्य' के रूप मे या फुटकर रूप मे वर्णन किया। जिन कवियो ने रास का वर्णन लीला के रूप मे किया, उन्होंने उसकी सज्ञा 'रासलीला' न देकर 'रास पंचाध्यायी' दी। 'रास पचाध्यायी' सज्ञा इस लीला के मूल स्रोत से सम्बन्ध रखती है। 'श्री मद्भागवत' के दशम स्कन्ध मे रासलीला का वर्णन अध्याय २६ मे लेकर अध्याय ३३ तक ५ अध्यायों मे हुआ है। 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित इस लीला के आधार पर वर्णन करने वाले इन कवियो ने इसकी सज्ञा भी 'रास पंचाध्यायी' दी और उसे मूल स्रोत के आधार पर पाच अध्यायों मे विभक्त भी किया। विभाजन का यह नियम सर्वत्र मान्य नही हुआ। 'रासलीला' के स्वरूप को भलीभाँति समझने के लिए आलोच्यकाल मे प्राप्त इस प्रकार की सर्वप्रथम रचना नन्ददास कृत 'रास पचाध्यायी' का थोड़ा विवेचन आवश्यक है।

'रास पचाध्यायी' मे पाँच अध्याय है, प्रथम अध्याय के प्रारम्भ मे शुकदेव का नखशिख एव गुणगान करते हुए कवि इस कथा के मूलस्रोत का वर्णन करता है। तत्पश्चात् वृन्दावन की शोभा के वर्णन के साथ-साथ शरद की मनोहर रात्रि का वर्णन किया गया है। उस मनोहर स्थल एव मनोहर समय मे कृष्ण अपनी मुरली बजाते हैं सभी गोपियाँ कृष्ण की मुरली के मधुर आह्वान को सुनकर घर से निकल पडती है। कृष्ण के पास पहुँचकर उनकी अपूर्व शोभा से प्रेम-वश हुई इन गोपि-काओ को जब कृष्ण स्त्री धर्म की शिक्षा देकर घर लौट जाने के लिए कहते है तो गोपियों की दशा बडी विचित्र हो जाती है। गोपियों के प्रेम को देखकर कृष्ण उन्हे साथ ले कुंजों मे घूमते हुए यमुना तट पर पहुँचे। तभी कामदेव आया और कृष्ण के मन को मथने लगा। कृष्ण ने उसके मन को ही मथकर उसे विह्वल बना दिया और रति उसे गोद मे लेकर भाग गई। कृष्ण गोपियों के हृदय मे उत्पन्न हुए गर्व को चूर्ण करने के लिए लीला मे ही अन्तर्ध्यान हो गये।

दूसरे अध्याय मे कृष्ण के वियोग मे गोपियो की हुई दशा का वर्णन है। गोपियाँ लताओ एवं वृक्षो से कृष्ण का पता पूछती फिरती है और उन्मत्त की भाँति अपने आप को कृष्ण मानकर उनकी लीलाओं का अनुकरण करती है।

तीसरे अध्याय मे गोपियों का प्रलाप है। गोपियाँ अत्यन्त ही व्याकुल होकर कृष्ण को पुन: दर्शन देने की याचना करती हैं।

चौथे अध्याय मे कृष्ण प्रकट होते है। प्रेमपूर्वक गोपियो से मिलकर अपने अपराधो की क्षमा माँगते है।

पाँचवे अध्याय मे उस रासलीला का वर्णन हुआ है जिसकी प्रथम चार अध्यायो मे भूमिका बाँधी गई है। रास के साथ-साथ जल-क्रीडा आदि का भी विस्तृत वर्णन है। यह रास प्रातःकाल तक चलता रहता है। रात्रि भी बहुत लम्बी हो जाती है। पूर्ण तृप्त हो जाने पर प्रातःकाल गोपियाँ अपने-अपने घर लौटती है। कथा के अन्त मे उसका माहात्म्य कहकर नन्ददास ने 'उस उज्ज्वल रस-माल' को अपने कण्ठ मे बसने की प्रार्थना की है।

रासलीला मे कृष्ण एव गोपियो के जिस प्रेम व्यापार का चित्रण हुआ है, उसका वर्णन करते समय इन भक्त कवियो का दृष्टिकोण आध्यात्मिक ही था, लेकिन जब इस प्रकार की लीलाओ से सासारिक प्रेम का आरोप करके उनकी आलोचना होने लगी तब कवियो को उसका खण्डन भी करना पडा। नन्ददास ने अपनी 'सिद्धान्त पचाध्यायी' मे 'रास पचाध्यायी' को लेकर हुई आलोचना का उत्तर दिया है। यह ग्रंथ 'रास पचाध्यायी' की महत्ता स्थापित करने के उद्देश्य से लिखा गया प्रतीत होता है। इसमें 'रास पचाध्यायी' की कथा को दुहराते हुए कवि ने कृष्ण के देवत्व पर विशेष बल दिया है। 'रासविहार' की अलौकिक महिमा का बखान करते हुए कवि पाठकों को बारबार यह चेतावनी देता है कि रास की कथा मे सासारिक प्रेम का आरोप करना भूल है, गोपियाँ और कृष्ण का प्रेम आत्मा और परमात्मा के समान शुद्ध पारलौकिक है। इस ग्रंथ की कथा का अध्यायो मे विभाजन नही किया गया है। कृष्ण-लीला का वर्णन करने वाले भक्त कवियो मे से अकेले नन्ददास ने ही सिद्धान्तो की व्याख्या करने का प्रयत्न किया, अन्य कवियो ने इस ओर कोई ध्यान नही दिया।

'दामोदर स्वामी' के ग्रंथ 'रास पचाध्यायी' मे कथा का क्रम तो लगभग यही प्राप्त होता है लेकिन प्रारम्भ मे मूलस्रोत का उल्लेख न होकर कृष्ण की वन्दना के पश्चात् शोभा वर्णन एवं मुरली वादन से ही ग्रंथ का प्रारम्भ हो जाता है—
कवित—

सुन्दर सरोज नैन हरन मनोज ओज कौ जु कवि कहै छवि सावरे किशोर की।
झलक कपोल कल कुण्डल जमल मल नील जल मध्य मानो झाँई रवि भोर की।
प्रगट्यो बंधूक कोष मानो नील कन्ज ऐसे लाल पागपर चन्द्रिका सुमोर की।
कीन्हो कलगान कान्ह मुनि तान-बान नैनी चौकि भई लई बाट मुरली की ओर की।

(दामोदरस्वामी रास पचाध्यायी—हस्त० प्रति)

ग्रंथ में विभाजन नही है। एक ही क्रम से कुल ३१ कवित्त-सवैये एवं दोहों

म पूरी कथा का वर्णन कर दिया है। प्रारम्भिक चार अध्यायो की कथा का सक्षेप मे एवं पाँचवें अध्याय की कथा का अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन हुआ है।

'रासलीला' के पश्चात् अन्य प्रसिद्ध लीलाएँ जिनका अनेक कवियो द्वारा वर्णन किया गया, दानलीला एव मानलीला है। अष्टछाप के कृष्णदास एव परमानन्द दास के 'लीला' सज्ञक ग्रथ अप्राप्त है। नन्ददास ने 'मान मजरी' मे 'मानलीला' का वर्णन किया है। यह लीला कवि ने दो रूपो को लक्ष्य करके लिखी है। कवि ने 'अमर कोश' के आधार पर नाममाला प्रस्तुत करते हुए राधा द्वारा किए गए मान का वर्णन किया है।

> समुझि सकत नहि संसकृत, जान्यो चाहत नाम।
> तिन लगि 'नन्द' सुमति जथा, रची नाम की दाम।२।
> गुथिनि नाना नाम की, 'अमरकोस' के भाइ।
> मानवती के मान पर, मिलै अर्थ सव आइ।३।
> (नन्ददास ग्रथावली—मान मजरी नाममाला, पृष्ठ ६१)

मानिनी राधा के मान का वर्णन करते हुए कृष्ण द्वारा उसे मनाने का इस मे वर्णन हुआ है। ग्रंथान्त मे दोनो का मिलन करा दिया गया है। दो रूपो को लक्ष्य करके लिखी जाने के कारण ही ग्रंथ की सज्ञा लीला के साथ नही दी गई है। हितकृष्ण चन्द्र गोस्वामी का ग्रन्थ 'राधानुनय विनोद' भी मानलीला ही है। ध्रुवदास जी ने सबसे अधिक कृष्ण लीलाओ का गान किया है। उनके ग्रन्थ 'मान-लीला' मे कुन्ज मे बैठे हुए राधाकृष्ण के शोभा देते समय राधा अपना प्रतिबिम्ब देखकर भ्रम से उसे अन्य स्त्री समझ कर मानकुञ्ज में जा बैठी—

> देखि प्रिया प्रतिबिम्ब छवि चकित ह्वै रही लुभाइ।
> तेहि छिन बैठी लाडिली, मानकुञ्ज मे जाइ।२।
> (ब्यालीस लीला—मानलीला)

राधा के मान से कृष्ण दुखी होते है और सखी से अपनी व्याकुलता का वर्णन करते है। सखी कृष्ण के दुख से दुखी होकर राधा के पास जाती है और राधा के विरह मे हुई कृष्ण की व्याकुलता का वर्णन करती है। राधा को कुछ अनुकूल जान कर वह कृष्ण को उसके पास ले जाती है। कृष्ण अपने प्रेम एव उसके मान से हुई दुरवस्था का वर्णन करते हुए उससे मान छोड़ने की प्रार्थना करते है— कृष्ण के बचनों को सुनकर राधा अपना मान तोड़ कृष्ण को अपने हृदय से लगा लेती है।

'मानलीला' के समान 'दानलीला' भी बड़ी लोकप्रिय हुई। इसमें राधा

द्वारा कृष्ण के माँगने पर दिए गए प्रेम के दान का वर्णन किया गया है। ध्रुवदास तथा माधुरीदास दोनो भक्त कवियों ने कृष्ण की अनेक लीलाओं का गान किया है। उन रचनाओं के नाम से ही उनमें वर्णित लीला का आभास हो जाता है।

कृष्ण के मथुरा प्रवास के पश्चात् उद्धव के ब्रज आगमन पर उद्धव-गोपी सम्वाद के वर्णन वाले ग्रन्थों की सज्ञा कवियों ने 'भ्रमरगीत' या 'भँवरगीत' दी है, जिनका आगे 'भ्रमरगीत' के प्रकरण मे उल्लेख हुआ है। 'भ्रमरगीत' मे भ्रमर के व्याज मे कृष्ण एव उद्धव को खूब खरी-खोटी सुनाई गई है। एकाध कवि ने कृष्ण के मित्र उद्धव की गोपियों के द्वारा दुर्गति न कराकर उनके मुख से संयोग काल के प्रेम-प्रसगो का ही वर्णन कराया है। विष्णुदास कृत 'सनेहलीला' एव मोहन माथुर कृत 'सनेहलीला' ग्रन्थों मे गोपियाँ कृष्ण के विरह में हुई अपनी अवस्था का वर्णन करती हुई, उन लीलाओं का वर्णन करती है, जो उन्होने कृष्ण के साथ की थी।। वह उन प्रेमलीलाओं का वर्णन करती हुई प्रेमविभोर हो उठती है। इन ग्रन्थों का आधार तो वही प्रसग है जो 'भ्रमरगीत' की सज्ञा एव विशिष्ट शैली ग्रहण कर 'लीला-काव्य' से इतर श्रेणी का रूप बन गया, लेकिन इनमें भ्रमर के व्याज से कृष्ण और उद्धव को खरी-खोटी सुनाने की वह विस्तृत योजना न होकर गोपियों की दशा एव कृष्ण की लीलाओं का वर्णन ही प्रमुख रूप से हुआ है। कृष्ण-लीला-वर्णन युक्त इन ग्रन्थों की सज्ञा भी 'सनेहलीला' ही दी गई है। अन्य लीलाओं के साथ कृष्ण की सगाई का भी वर्णन किया गया है। नन्ददास कृत 'श्यामसगाई' ग्रन्थ मे कृष्ण एव राधा की सगाई का वर्णन है। यशोदा द्वारा भेजे गए सगाई के प्रस्ताव को राधा की माँ यह कहकर अस्वीकार कर देती है कि मेरी राधा बडी भोली और कृष्ण बडा नटखट है। कृष्ण यह जानकर बरसाने के एक बाग मे पहुँच कर मुरली बजाते हैं। मुरली की ध्वनि से आकर्षित होकर जब राधा वहाँ आती है, तो कृष्ण की शोभा को देखकर आकर्षित हो जाती है। कृष्ण के लौटने पर राधा विरह मे व्याकुल होकर संज्ञाहीन हो जाती है। चेतना लौटने पर सखियाँ उसे कृष्ण मिलन की यह युक्ति बताती है कि तू माँ से जाकर इस अवस्था का कारण साँप द्वारा काटा जाना बतलाना। ऐसा ही बतलाए जाने पर राधा की माँ बडी चिन्तित हुई। सखी के द्वारा साँप का विष उतारने के लिए कृष्ण की प्रशसा किए जाने पर कृष्ण बुलाए गए। उनके दर्शन से ही चेतना पुन लौट आई। राधा की माँ ने प्रसन्न होकर कृष्ण के साथ राधा की सगाई कर दी। नन्ददास ने तो कृष्ण की सगाई का ही वर्णन किया परन्तु परवर्ती कवियों ने उनके विवाह का भी वर्णन किया। १८ वीं शताब्दी के रसिक बिहारीदास कवि का 'ब्याहुलो' ऐसी ही रचना है।

इस काल मे कृष्ण की उन्ही लीलाओं का वर्णन किया गया जिनमे प्रेम-प्रसगों का समावेश था। माधुर्य भाव के उपासक इन भक्त कवियों को कृष्ण के पौरुष से सम्बन्धित लीलाओं का वर्णन करना अभीष्ट भी न था। किंतु जहाँ 'भागवत' के दशम स्कन्ध के आधार पर सम्पूर्ण लीलाओ का वर्णन किया जाता था, वहाँ तो उनके पौरुप से सम्बन्धित लीलाओं का भी वर्णन होता था। नन्ददास कृत 'भागवत दशमस्कन्ध' मे सग्रहीत 'गोवर्धनलीला' की एक प्रति अनेक खोजों मे प्राप्त हुई है, जिसका नन्ददास की स्वतन्त्र कृति के रूप मे अनेक इतिहासकारो ने उल्लेख किया है। वास्तव मे यह उनकी स्वतन्त्र कृति नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती काल के किसी भक्त कवि ने इस प्रसग को 'भागवत दशम स्कन्ध' से अलग करके स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में लिपिबद्ध किया है। इस प्रयास से परवर्ती कवियों मे इस प्रकार की लीलाओं के प्रति होने वाली रुचि का आभास होता है। परवर्ती कवियों की इस प्रकार की कुछ रचनाएँ प्राप्त भी होती है।[1] आलोच्यकाल की सायाजी कृत 'नाग-दमण' ऐसी ही लीला है जिसमे कृष्ण की कालियदमन लीला का वर्णन हुआ है। यह रचना इस काल मे हुआ इस प्रकार का एक प्रयोग मात्र है। परवर्ती कवियो ने भी प्रेम वर्णन युक्त लीलाओं के वर्णन मे ही अधिक रुचि दिखायी।

कृष्ण की विभिन्न लीलाएँ स्वतन्त्र रूप मे महाकाव्य अथवा चरित-काव्य का विषय तो बन नहीं सकती थी, इसीलिए आलोच्यकाल मे इन लीलाओं के गान के लिए इस काव्यरूप का जन्म हुआ। इस प्रकार के वर्णनो से युक्त इन काव्य ग्रन्थों को शुक्ल जी ने 'वर्णनात्मक प्रबन्ध की सज्ञा दी है।[2] जिस आवश्यकता की पूर्ति हेतु इस काव्यरूप का जन्म हुआ, उसे पूरा करने मे यह इतना सफल रहा कि परवर्ती काल के अनेक कवियो को भी आकर्षित करने मे सफल रहा। कृष्ण की प्रेमवर्णन युक्त लीलाओ का, जो अभिनय एव गान के लिए लिखी जाती थीं, जितना अच्छा चित्रण इस अभिनय, नृत्य, गीत युक्त काव्यरूप द्वारा हुआ उतना अन्य किसी प्रचलित रूप द्वारा होना सम्भव नही था।

विशेषताएँ—

१—इसका सम्बन्ध कृष्ण की प्रेमरस पूर्ण लीलाओ से है, इसी कारण इसमे मधुर प्रेम-विरह और सयोग दोनो का ही समावेश मिलता है। शृंगार के साथ-साथ भक्ति का भी समावेश किया जाता है। इसका एक अपवाद भी है जिसमे गुण-कथन एव भक्ति का प्राधान्य है।

---

[1] ब्रजवासीदास के ब्रजविलास मे इस प्रकार की अनेक लीलाएँ हैं।

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-२९८।

२—अभिनय के लिए लिखे जाने के कारण इन रचनाओं में सभाषण शैली का समावेश किया जाता है। नृत्य एवं गीत तत्त्व की भी प्रधानता रहती है।

३— कथातन्तु का समावेश होने के कारण रचनाओं में प्रबन्धात्मता रहती है।

४ – इसमें ऊपर की विशेषताओं की पूर्ति में सहायक छन्द विधान किया जाता है। मुख्य छन्द दोहा, चौपाई, रोला, कवित्त एवं सवैया है।

१३—साखी

व्याख्या एवं परिभाषा— सिद्ध और नाथ योगियों ने उपदेश-परक दोहों की रचना की थी। उन दोहों में उन्होंने अपने गुरु एवं धर्म प्रवर्त्तकों से सुने हुए ज्ञान को सामान्य-मानव या शिष्यों के लिए वर्णन किया। अपने उपदेश अथवा वर्णित ज्ञान के महत्त्व को और अधिक बढ़ाने के लिए उसका गुरु-वचनों या धर्म प्रवर्तकों के मत द्वारा समर्थन कराने का भी उन्होंने प्रयास किया। गुरु या धर्म-प्रवर्त्तकों के मतों को उन्होंने अपने मत के 'साक्षी के रूप' में उपस्थित किया। कण्हपा सिद्ध ने जालन्धर पाद के वचनों को साक्षी के रूप में उपस्थित किया था—'साखि करब जालन्धर पाएँ।' गुरु वर्ग के सन्त जिस ज्ञान का प्रतिपादन कर चुके थे, उससे पूर्ण वचन उनके शिष्यों के लिए उपदेश देते समय उसके सत्य की 'साक्षी' होते थे। वही 'साक्षी' शब्द घिसपिट कर साखी बन गया। अत साखी की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—'प्राचीन धर्म प्रवर्त्तकों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को शिष्यों द्वारा साक्षी रूप में उपस्थित करते समय जिस काव्य-प्रकार का जन्म हुआ वह साखी कहलाया।'

सिद्धों के उपदेश दोहों में थे, फलतः अन्य सन्तों ने भी उपदेश देने के लिए दोहों का ही प्रयोग किया। सत्य के साक्षात्कार का जिनमें प्रयत्न किया गया ऐसे सब दोहे साखी के नाम से अभिहित किए गए। यह अनुमान किया जा सकता है कि पहिले पहिल गुरु के उपदेशपरक दोहों के लिए ही 'साखी' शब्द का प्रचार रहा होगा। कालान्तर में उसके रूप का और विकास हुआ और समस्त सन्तों के उपदेश परक दोहों को 'साखी' संज्ञा दे दी गई। प्रारम्भ में उपदेशपरक दोहे 'साखी' कहे जाते थे इसीलिए साखी और दोहे समानार्थक शब्द मान लिए गए। आज भी साहित्य में जहाँ भी साखी शब्द आता है उसका सामान्य अर्थ 'दोहा' ही ग्रहण किया जाता है। साखी का वास्तविक अर्थ बहुत कम ही ग्रहण होता है। सन्त साखी को साक्षात् गुरु स्वरूप मानते थे। इसीलिए अन्य दोहों से इसे भिन्न मानकर उपदेश एवं ज्ञान पूर्ण दोहों को ही साखी संज्ञा देते थे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है। 'साखी' गुरु का स्वरूप मानी गई इसीलिए उनका अंगों में विभाजन भी हुआ। सम्वत् १५६१ की लिखी हुई जिस प्रति के

अ गार पर डा० श्यामसुन्दरदास ने कबीर ग्रन्थावली का सम्पादन किया है उसमें कबीर की ८०६ साखियाँ है जो ५६ अगो मे विभाजित है । उस प्रति की फोटो प्रतिलिपि के आधार पर भी इस बात की पुष्टि होती है।[1] कबीर से पूर्व रैदास तथा नामदेव की साखियो के अग विभाजन का यह क्रम नहीं मिलता । उनकी साखियाँ बाणियो मे सग्रहीत है । सम्भव है उन्होंने इसे साक्षी नाम भी न दिया हो । परवर्ती लिपिकर्त्ता ने उपदेशपरक दोहो को देखकर उस काल की परिपाटी पर उनका नाम साखी कह दिया हो । सन्त कवियो के अतिरिक्त भक्त कवि परशराम ने भी साखियो का विभाजन अगों मे किया। लेकिन वहाँ उनका नाम 'जोडौ' रखा गया—गुरु को जोडौ, गुरुस्मर को जोड़ौ, गुरु बिचार को जोडौ आदि । कुछ ऐसे भी जोडे है जो भक्त कवि की भावना के अनुकूल है और कबीर मे सर्वथा भिन्न है यथा—रघुनाथ चरित को जोडौ, भक्त बछल को जोडौ, आतुर भजन को जोडौ, जीत को जोडौ, रामकृष्ण को जोड़ौ आदि। बिहारिन दास तथा दामोदर स्वामी ने साखियो का विभाजन नहीं किया, उन्होंने तो 'सिद्धान्त की साखी' के अन्तर्गत ही अपने धार्मिक सिद्धान्तो का वर्णन किया।

वर्णित विषय—आलोच्यकाल के प्रारम्भ की साखियो का वर्णित-विषय वही रहा जिसके लिये इस रूप का जन्म हुआ था। नामदेव एवं रैदास ने भक्ति उपदेशपरक उक्तियों को साखियो मे स्थान दिया है। ये साखियां उनकी 'बाणी' के अन्तर्गत संग्रहीत है और 'बाणी' के प्रकरण में उन पर विचार हो चुका है। कबीर ने भक्ति को न लेकर ज्ञान को लिया और अपनी साखियो मे प्रेम और ज्ञान को लेकर अनूठी उक्तियों का समावेश किया। विषय की दृष्टि से इनकी साखियो को तीन भागों मे बाँटा जा सकता है—(१) रहस्यवादी (२) ज्ञान सम्बन्धी, (३) नीतिपरक। कबीर के रहस्यवाद का मूल इन पक्तियो मे मिल जाता है—

अकथ कहानी प्रेम की, कछू कही न जाइ।
गूगे केरी सरकरा बैठा मुसकाइ।

(कबीर ग्रन्थावली—रस कौ अग साखी ३, पृ० १६)

कबीर की साखियो के वे स्थल अत्यन्त ही मार्मिक एव हृदय स्पर्शी हो उठे है जहाँ कवि की विरहिणी आत्मा क्रन्दन कर उठी है। उनकी उक्त प्रकार की साखी 'बिरह कौ अग' शीर्षक के अन्तर्गत आती है। इन्हीं रहस्यवादी साखियों के अन्तर्गत हठयोग की प्रक्रियाओं का वर्णन मिलता है—

अनहद बाजै नीझर झरै उपजै ब्रह्म गियान।
अवगति अतरि प्रगटै लागै प्रेम घियान ॥४४॥

[1] पृष्ठ ८-६, सस्क० १६२८।

आकाशे मुख औंधा कुवाँ पाताले पनिहार।
ताका पाणी कौं हंसा पीवैं बिरला आदि विचारि ॥४५॥
(वही-परचा कौ अंग)

ज्ञान सम्बन्धी साखियों मे कबीर ने अपनी साधना में आवश्यक सभी अंगों का विवेचन किया है। गुरु महिमा सत्संग महिमा, माया, भेष, निष्काम कर्म, चितावणी, साध, असाध, आदि अंगों से विभक्त साखियाँ इस कोटि में रखी जा सकती है। इनमे उपदेश देने की प्रवृत्ति ही अधिकांश में परिलक्षित होती है। साधना के लिए वह गुरु के महत्व को सर्वाधिक मानते हैं। गुरु साक्षात् गोविन्द स्वरूप है। भेद तो आकार जन्य है—

गुरु गोविन्द ना एक है दूजा यहु आकार।
आपा मेंट जीवन मरैं तौ पावै करतार ॥२६॥
(वही, गुरुदेव कौ अंग)

गुरु के बिना शिष्य की शिक्षा अधूरी ही रहती है लेकिन गुरु का मिलना भी सहज नहीं। गोविन्द की कृपा से ही मिल सकता है। अत उसे विस्तार नहीं देना चाहिए।

धार्मिक खण्डन-मण्डन के लिए तो कबीर ने एक व्यंग्य का ही आश्रय लिया है। उनकी खण्डन-मण्डन सम्बन्धी उक्तियाँ नीति परक साखियों के अन्तर्गत आ जाती है। जहाँ कबीर व्यवहार, कर्तव्य, शिष्टाचार, भेष आदि का उपदेश देते है वहाँ नीतिपरक उक्तियों द्वारा उनका समर्थन भी कराते चलते है। पण्डित एवं मुल्लाओं के ढोंगी भेष का उन्होंने खूब मजाक बनाया है—

बैसनो भया तौ का भया बूझा नहीं बवेक।
छापा तिलक बनाइ करि दगध्या लोक अनेक ॥१६॥
(वही, भेष कौ अंग)

कबीर के परवर्त्ती सन्तो ने कबीर के दिखाए पन्थ का ही अनुसरण किया। उनकी साखियों मे भी साधनापरक उक्तियाँ, ज्ञानोपदेश एवं धार्मिक खण्डन-मण्डन का ही प्रयास है। इन साखियों मे उपदेशों की ही प्रधानता है। विषय के साथ-साथ भाव भी लगभग कबीर के ही ग्रहण किये गये हैं।

भक्त कवियों की साखियों मे उपदेश तत्त्व ही प्रधान है। सन्त कवियों के ही समान उन्होंने भी गुरु की महिमा को स्वीकार किया है—

श्री गुरु सत समान हरि जौ उपजै बैसास।
दरसन परस्या परम सुख परसा प्रेम निवास ॥
(परशुराम सागर हस्तलिखित प्रति)

इन कवियो ने भक्ति के लिए आवश्यक तत्त्व प्रेम, सत्संग ज्ञान, नाम स्मरण, भजन आदि एवं भक्ति मे बाधक कायरता, भय, अज्ञान, अहं, कनक, कामिनी, काम, क्रोध आदि विषयों पर ज्ञानोपदेश पूर्ण साखियाँ लिखी है। उपदेश-परक उक्तियों के साथ-साथ अपनी भक्ति के सिद्धान्तों का भी इन्होंने स्थान-स्थान पर निर्देश कर दिया है। सन्तो के समान ही भक्तों ने भी अपनी साखियो मे 'सती' एवं 'सूरमा' आदि के महत्त्व को स्वीकार किया है। भक्ति की अनन्यता एवं तन्मयता का भी उनमे अभाव नही है उनके जीवन का चरम लक्ष्य निम्न पंक्तियो मे प्रगट होता है—

व्यास बसेरौ कुंज मे बंशीवट की छाँह।
हरि भक्तन कौ आसरौ, राधावर की बाँह॥
(व्यास जी कृत साखी व्यास-वाणी अन्तर्गत, पृष्ठ १८३)

ज्ञान एवं उपदेश का प्रतिपादन करने के लिए प्राचीन सिद्धो ने इस रूप को अपनाया था। ज्ञान-कथन मे इस रूप को इतनी सफलता प्राप्त हुई कि इस विषय के वर्णन से युक्त दोहे, दोहे न कहला कर साखी कहे जाने लगे, जहाँ साखी का तात्पर्य विषय विशेष के वर्णन से युक्त दोहे होता था। आलोच्य काल के सन्तो की साखियो मे इस रूप का विषय के साथ पूर्ण सामंजस्य स्थापित हुआ दिखाई देता है। कबीर आदि उच्चकोटि के सन्तो के पश्चात् जब अन्य सन्त कवियो ने अपनी साखियों मे ज्ञान की अपेक्षा उपदेश को ही प्रमुखता देना प्रारम्भ कर दिया तो उन्ही की देखा-देखी भक्त कवियो की साखियो मे भी उपदेश-कथन को ही प्रमुखता मिली। हाँ, प्रसगवश भक्ति के सिद्धान्तो का भी इनमे समावेश किया गया। इस काल मे इस रूप के अन्तर्गत वर्णन के लिए ज्ञान, उपदेश एवं भक्ति तीन विषय ही चुने गये। इन विषयो का इस रूप द्वारा सफलता पूर्वक प्रतिपादन हुआ।

विशेषताएँ

संक्षेप मे इस काव्यरूप की विशेषताएँ निम्न है—

१—प्रारम्भ मे गुरु की ज्ञानपूर्ण उक्तियो के लिए जो दोहे मे वर्णन की जाती थीं 'साखी' कहा जाता था। कालान्तर मे सभी सन्तो के उपदेश परक दोहे को साखी कहा जाने लगा।

२—इसमें प्रयुक्त छन्द दोहा है लेकिन विषय विशेष के समावेश के कारण इस प्रकार के दोहो का एक अलग प्रकार बन गया जो दोहो के नाम से प्रसिद्ध न होकर 'साखी' नाम से अभिहित हुआ।

३—प्रारम्भ मे यह ज्ञानपूर्ण उपदेशों के लिए प्रयुक्त हुआ लेकिन कालान्तर मे इसमे भक्ति के सिद्धान्त एवं उपदेशों का समावेश हुआ।

१४—छन्द गीत परक काव्यरूप

दोहा—यह मात्रिक छन्द है। इसमे चार चरण होते है। पहले और तीसरे चरण मे १३-१३ और दूसरे और चौथे चरण मे ११-११ मात्राएं होती है। हिन्दी में दोहा छन्द एक ही प्रकार का होता है जबकि राजस्थानी (डिगल) मे उसके पाँच भेद बताये गये है—(१) दुहौ, (२) सोरटियो दूहौ, (३) वडौ दूहौ, (४) तू वेरी तथा (५) खोडौ दूहौ[1]। इन प्रकारों मे मात्राओं की सख्या का अन्तर न होकर चरणों का स्थान परिवर्तन होता है। सोरठियो दूहौ हिन्दी का सोरठा है जो दोहे का उलटा होता है। दोहे के प्रथम एव तृतीय चरण सोरठे के द्वितीय एव चतुर्थ चरण तथा दोहे के द्वितीय एव चतुर्थ चरण सौरठे के प्रथम एव तृतीय चरण होते है। बडौ दूहौ जो सांकलियो दूहौ भी कहा जाता है, पहले और चौथे चरण में ११-११ एव दूसरे और तीसरे चरण में १३-१३ मात्राएँ होती है। 'तू वेरी दूहौ' के पहले एव चौथे चरण मे १३-१३ एवं दूसरे और चौथे मे ११-११ मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार यह बडौ दूहौ का उलटा होता है। खोडौ दूहे के प्रथम तथा तृतीय मे ११-११ तथा दूसरे और चौथे चरण मे क्रमश. १३ और ६ मात्राएँ होती है। कहना न होगा कि दोहे के अन्तिम तीन प्रकारो का प्रयोग डिगल साहित्य मे ही हुआ है सोरठे का प्रयोग हिन्दी मे भी हुआ है। यहाँ यह स्वतन्त्र रूप से तथा दोहो के साथ, दोनो ही रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

दूहा अपभ्र श का अपना छन्द था। वहाँ उसका प्रयोग फुटकर विषयों के प्रतिपादन के लिए ही किया जाता रहा। कथा-काव्य के लिए उसका प्रयोग या तो किया ही नही गया और यदि हुआ भी तो अन्य किसी कथानक छन्द के साथ ध्रुवक के रूप में हुआ। अपभ्र श के पश्चात् सिद्ध एव नाथ योगियों ने निवृत्तिवादी मुक्तक दोहो की रचना की। उनके इन दोहो मे जहाँ एक और तान्त्रिक आडम्बर की प्रतिक्रिया है वहाँ दूसरी ओर समस्त बाह्य प्रवृत्ति और धार्मिक कर्मकाण्ड का विरोध है। जैन कवियों के मुक्तक दोहो मे भी निवृत्ति की यह उग्रता दिखाई पड़ती है। कुछ जैन कवि प्रवृत्ति मार्गी भी मिल जाते है। 'सावय धम्म दोहो' के कर्त्ता ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ मे सज्जन-दुर्जन का वर्णन करके श्रावकों के गुण, दान की महिमा, शरीर की सार्थकता, उपवास एव धर्म साधना का ही विशेष वर्णन किया है। उन्होंने धन से धर्म एव धर्म से ऐहिक सुख प्राप्ति को ही जीवन का चरम लक्ष्य ठहराया है। इस प्रकार अपभ्र श काल मे निवृत्ति मार्गी एव प्रवृत्ति मार्गी दोनो

---

[1] डा० मोतीलाल मेनारिया— राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ६७।

प्रकार के मुक्तक दोहों के उदाहरण मिल जाते है। अपभ्रंश के 'दूहा' सज्ञक ग्रन्थो के प्रधान विषय शृङ्गार, वीर, धर्म एव उपदेश ही रहे है।

सिद्धो के उपदेशपरक दोहो के अनुसरण पर लिखे गये ज्ञान एव खण्डन-मण्डन प्रधान दोहे आलोच्य काल के प्रारम्भ से ही 'साखी' के नाम से अभिहित हुए, इस रूप पर पीछे विचार हो चुका है। इन साखियो के अतिरिक्त 'धरम निरूपन' के दोहे और भी लिखे जाते थे। सिद्ध, नाथ एव अन्य सन्त कवियो मे धरम निरूपन के इस प्रकार विरोध का प्रचलन देखकर ही तुलसीदास ने यह कहा है--

साखी सबदी दोहरा अरु कहनी अपखान।
धरम निरूपहि कलि भगति निदहि वेद पुरान॥

जो हो, आलोच्य काल के प्रारम्भ से ही इस प्रकार के दोहों की परम्परा अवश्य चल रही होगी जो साखी कहलाने वाले दोहो से भिन्न रही होगी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दोहो मे धार्मिक उपदेश, शृङ्गार, वीर एव नीति आदि विषय अत्यन्त प्राचीन काल से ही वर्णन किये जाते थे। आलोच्य काल मे भी इस छन्द मे इन्हीं विषयों का प्रतिपादन हुआ है।

विषय—कबीर के नाम से प्राप्त होने वाली रचनाओं--'कबीर के दोहे' तथा 'रामसार सोरठा' मे सिद्धान्त प्रतिपादन एव राम की महिमा का कथन ही प्रधान है। छीहलकृत 'पच सहेली रा दूहा' मे कुँए पर पानी भरती हुई माली, तबोली, छीपी, कलारिन एव सुनार जाति की पाँच स्त्रियो का कवि के समक्ष की गई विरह व्यथा का चित्रण है। कवि ने किसी अन्य दिन उनके पति के आगमन के पश्चात् उनकी प्रसन्नता के वर्णन के साथ ही ग्रन्थ को समाप्त कर दिया है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य मे वियोग-वर्णन के लिए दोहे का सर्वप्रथम प्रयोग हमे छीहल के इस ग्रन्थ मे प्राप्त होता है। रसखान कृत ग्रन्थ 'प्रेमवाटिका' मे प्रेम की महत्ता का चित्रण तो हुआ है लेकिन वह प्रेम लौकिक न होकर ईश्वरोन्मुख है। वह प्रेम ही मे प्रिय के निवास की बात कहते है। प्रेम मे बलिदान होकर ही प्रेमी अमर हो जाता है। 'प्रेमवाटिका' मे श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम की अनुभूति अत्यन्त ही मार्मिक है। तुलसीदास कृत दोहावली मे नीति, भक्ति, राम महिमा, नाम माहात्म्य, तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों व भक्ति में प्रेम की अनन्यता पर लिखे गये दोहो का सग्रह हुआ है। दोहों की सख्या ५७३ है जिनमे २२ सोरठे है। भक्ति के आवश्यक अंग 'प्रेम' के लिए तुलसी चातक को आदर्श ठहराते है। उनके मत से चातक ही सच्चा प्रेमी एव नेह का निर्वाह करने वाला है--

बध्यौ बधिक पर्‌यौ पुण्य जल उलटि उठाई चोच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहु लगी न खोच॥

(तुलसी ग्रन्थावली, दोहावली)

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन करते हुए उन्होंने निर्गुणिये सन्तों की, जो वेदों की रचना करते फिरते थे, खबर ली है—

साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान
भगत निरुपहि भगति कलि निन्दहि वेद पुरान ।।५५४।।

(वही)

तुलसी के नीति के दोहों के समान ही इस काल मे नीति के दोहे लिखने मे सर्व प्रसिद्ध रहीम थे। उनके इस प्रकार के दोहो का संग्रह 'सतसई' नाम का है जिसका उल्लेख अन्यत्र हुआ है। उनके 'शृंगार सोरठा' नाम के ग्रन्थ मे सोरठो मे शृंगार की उक्तियों का संग्रह है। रहीम के आधार पर ही नीति के दोहे लिखने का काम व्यास जी मथुरा द्वारा हुआ। उनके दोहों मे नीति की सामान्य बातों का वर्णन हुआ है। ये दोहे इनकी 'वाणी' मे संग्रहीत हैं। करुण एवं वीर रस के दोहे भी लिखे गये। आशानन्द कृत 'बाघा रा दूहा' ग्रन्थ अपने मित्र बाघा कोटडिया की मृत्यु पर लिखा, जिसके दोहे अत्यन्त ही करुणा पूर्ण है। वीर रस पूर्ण अनेक दोहे इस काल के लिखे हुए राजस्थान मे प्राप्त है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि शृंगार, वीर, नीति, उपदेश आदि के वर्णन जो इस छन्द विशेष मे अपभ्रंश काल से वर्णित होते चले आ रहे थे, इस काल में भी वर्णित हुए। मुक्तक रचना के लिए यह छन्द खूब प्रयुक्त हुआ। कुछ कवियों ने मुक्तक रचना के इस प्रिय छन्द मे 'कथा' लिखने का प्रयास भी किया। कल्लोल कृत 'ढोला मारु दा दूहा' एवं साधन कृत 'मैनासत' ऐसे ही प्रयोग है। छोटे-छोटे कथानकों को इस छन्द मे वर्णित किया गया और उनमें सम्बन्ध लाने के लिये बीच-बीच में चौपाई जैसे कथानक छन्द अथवा वार्ता का प्रयोग आवश्यक समझा गया और कालान्तर मे दोहा चौपाई बन्ध कथा-काव्यों के लिए पर्याप्त प्रचलित हुआ।

दोहा चौपाई बन्ध (रमैनी)—चौपाई १६ मात्रा का छोटा छन्द है।[1] अनेक

---

[1] प्राचीन पिंगल ग्रन्थो मे चौपाई तथा चौपई दो भिन्न छन्द माने गये है। यह मात्रिक सम छन्द है चौपई 'प्राकृत पैंगलम्' मे वर्णित चउपइया छन्द के समान है (१·९७)। भिखारीदास के 'छन्दार्णव पिंगल' के अनुसार इसके प्रत्येक चरण मे १५ मात्राएँ और अन्त में ग ल (ऽ।) का विधान होता है। चौपाई के प्रत्येक चरण मे १६ मात्राएँ होती है। भानु ने चौपाई के १६ मात्रा के चरण मे न तो चौकलो का कोई क्रम माना है और न लघु गुरु का। उन्होने सम के पीछे सम और विषम के पीछे विषम को अच्छा माना है तथा अन्त मे जगण (।ऽ।) और तगण (ऽऽ।) को वर्जित माना है। कवियो ने चौपई और चौपाइ मे विशेष भेद नहीं किया है हिन्दी साहित्य कोश पृष्ठ २९९

चौपाइयो के बाद एक दोहा देने की पद्धति का नाम आलोच्य काल से 'दोहा-चौपाई बन्ध' दिया गया। अपभ्रंश के काल तक इस बन्ध को पद्धडिया बन्ध कहा जाता था। अनेक पद्धडियो के पश्चात् दोहा या अन्य किसी छन्द के ध्रुवक को एक कडवक कहा जाता है। 'रामचरित मानस' मे उसी 'कडवक' को 'अट्ठा' कहा जाता है। सिद्धो ने अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए दोहा छन्द का ही प्रयोग अधिकता से किया है, लेकिन जहाँ उन्हें सामान्य जन के समक्ष इस विषय को अधिक विस्तार मे रखने की आवश्यकता अनुभव हुई, वहाँ उन्होंने चौपाई छन्द के साथ दोहे का प्रयोग किया। सिद्धों मे प्रयुक्त इस बन्ध को बाद मे कबीर ने उसी विषय के प्रतिपादन के, लिए अपनाया।

दोहे-चौपाई की एक अन्य परम्परा भी आलोच्य काल मे प्राप्त होती है जो अपभ्रंश के चरित-काव्यो की कडवक शैली से प्रभावित है। यह रूप 'दोहा-चौपाई बन्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसका प्रयोग प्रधानत सूफी प्रेमाख्यान काव्यो मे हुआ। प्रारम्भ के दोनो सूफी कवि, कुतुवन एव मझन ने पाँच-पाँच अर्द्धालियो के पश्चात् एक दोहे का क्रम रखा है। बाद मे जायसी कृत पद्मावत् मे सात-सात चौपाइयो के बाद एक-एक दोहे का क्रम है। बाद के अधिकाश सूफी कवियो ने जायसी का अनुकरण किया है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस इसी बन्ध मे लिखा लेकिन उन्होंने आठ-आठ चौपाई के बाद एक-एक दोहे का क्रम रखा है। आलोच्य काल के 'श्रीमद्भागवत' के अधिकाश अनुवाद इसी बन्ध मे हुये लेकिन उनमे किसी विशेष क्रम का निर्वाह कम ही हुआ है। जैन कवियो के रास, चरित, चौपाई संज्ञक ग्रन्थ इसी शैली मे रचे गये। कथा काव्यों के लिए इस बन्ध की लोकप्रियता इसी बात से सिद्ध है कि आलोच्य काल के अनेक कथा काव्यों की सज्ञाएँ चौपाई के साथ प्राप्त होती है।

इस प्रकार इस रूप की दो धाराएँ आलोच्यकाल के प्रारम्भ से ही अजस्र रूप से चलती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। कथा-काव्यों मे प्रयुक्त इस शैली को 'दोहा-चौपाई बन्ध' सज्ञा दी गई तथा सन्तो द्वारा सिद्धान्त निरूपण के लिये प्रयुक्त इसी शैली को 'रमैनी' की संज्ञा दी गयी। नीचे 'रमनी' शब्द के प्रयोग के समय एवं इस रूप के विषय पर विचार होगा।

कबीर के बीजक मे कुछ रमैनियाँ सग्रहीत है। उनकी 'रमैनी' सज्ञक कुछ स्वतन्त्र रचनाएँ भी खोज मे प्राप्त हुई है। लेकिन यह कहना कठिन है कि कबीर के समय में इस 'बन्ध' की संज्ञा 'रमैनी' थी या कुछ और। डा० द्विवेदी 'रमैनी' शब्द को बाद का शब्द मानते है।[1] 'कबीर ग्रन्थावली' के अतिरिक्त 'रमैनी'

---

१ हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ १०५।

शब्द का सर्वप्रथम अधिकृत एवं विश्वसनीय प्रयोग हमे 'भक्तमाल' मे मिलता है। नाभादास ने कबीर के सम्बन्ध मे लिखे छप्पय मे इसका उल्लेख किया है—

> भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो।
> जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
> हिन्दू तुरक 'प्रमान' रमैनी सबदी साखी।
> पच्छपात नहि वचन सबहि के हित की भाखी॥
> आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर, मुख देखी नाहिन भनी।
> कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी॥५५॥

इससे यह स्पष्ट है कि उक्त रूप विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के मध्यकाल मे प्रयुक्त होता था और कबीर के नाम के साथ 'रमैनी' संज्ञक रचनाओं का योग हो चुका था। आलोच्य काल मे कबीर के अतिरिक्त अन्य रमैनी संज्ञक रचनाओं का अभाव है।

वर्णित-विषय—रमैनियों का प्रचार कबीर पंथी साधुओं मे ही अधिक है। ऐसा ज्ञात होता है कि 'रमैनी' मे पन्थ के सिद्धान्तो का दिग्दर्शन होने के कारण ही यह रूप अधिक प्रचलित न हो सका। कबीर पन्थ के अनुयायियो के लिये यह नित्य पाठ की वस्तु थी। रमैनियों मे माया जीव, संसार आदि का रूपको की सहायता से विस्तृत वर्णन किया गया है—

> कहन सुनन को जिहि जग कीन्हां, जग भुलान सो किनहुँ न चीन्हा।
> सत रज तम थे कीन्ही माया। आपण माझै आप छिपाया।
> ते तो आहि अनन्द सरूपा, गुन पल्लव विस्तार अनूपा।
> साखा तत थे कुसुम गियानां, फल सो आछा राम का नामा॥
> सदा अचेत चेत जीव पंखी हरि तरवर करि बास।
> झूठे जगि जिनि भूलसि जियरे, कहन सुनन की आस।
>
> (कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २२५-२२६)

कही अनेक जातियों को उनके नीच कार्यों के लिये फटकार भी बताई गयी है -

> पंडित भूले पढ़ि गुन्य वेदा, आप न पावे नाना भेदा॥
> संध्या तरपन अरु षट करमा, लागि रहे इनके आसरमा॥
> गायत्री जुग चारि पढ़ाई, पूछो जाइ कुमति किनि पाई॥
> सब में राम रहे ल्यौ सींचा, इन थे और कहाँ को नीचा॥
>
> (वही पृष्ठ २३९-४०)

आचार-विचार एव पाखड के खंडन का प्रयास भी कम नही है। 'ग्रन्थ साहिब' मे सग्रहीत रमैनियो के सग्रह को 'बावन अाखरी' कहा गया है। बीजक मे इसी प्रकार की रचना 'ज्ञान चौतीसा' है। इन रचनाओ को रमैनियो मे ही लिखा गया है। ऐसी ही तिथियो का लेकर लिखी रचनाओ को 'तिथि' तथा दिनो को लेकर लिखी रचनाओ को 'वार' कहा गया है। रचनाएँ भी ग्रन्थ साहिब मे संग्रहीत है जिनमे प्रत्येक तिथि एव वार के नाम के साथ उपदेश दिये गये है। इनके ग्रन्थ 'चौका घर की रमैनी' मे उनके पन्थ के महत्त्व पूर्ण कृत्य चौका विधि का वर्णन है। यह कृत्य प्रत्येक रविवार को नही तो प्रतिपूर्णिमा को अन्यथा फाल्गुन एव भाद्रपद की पूर्णिमा को मनाया जाता है। उस दिन उपवास के पश्चात् एक आटे का समकोण बना कर उसमे कुछ मागलिक क्रियाओ के साथ एक नारियल को फोड कर उसके टुकडे, बतासे, पान आदि के साथ उपस्थित भक्तो को विभक्त किये जाते है जिसे वह प्रसाद के रूप मे ग्रहण करते है। महथ के प्रवचन के साथ क्रिया सम्पन्न समझी जाती है। कबीर पन्थ में व्याप्त इस क्रिया की रहस्यपूर्ण व्याख्या ही इसमे हुई है। नारियल का तोडना अहिंसात्मक बलिदान माना जाता है, जिसे कबीर पन्थ अपने निरजन के उपलक्ष मे सत्यलोक प्राप्ति के लिये करते है। नारियल का ऊपरी कटु भाग कालस्वरूप है जिसके भीतर मधुर एव कोमल कल्याण रूपी गिरी छिपी रहती है।[1]

सिद्धो एव नाथो के समान ही कबीर ने सिद्धान्तो एव कर्मकाण्ड की क्रियाओ की व्याख्या के लिए ही इस शैली को अपनाया। विभिन्न क्रियाओ एव सिद्धान्तों के विवेचन के लिए यह बन्ध प्राचीन काल से ही उपयोगी सिद्ध हो चुका था। अन्य रूपों के समान इसके प्रयोग मे भी कबीर सफल रहे। विषय एवं बन्ध का समन्वय आगे के सन्त कवियो मे भी परिलक्षित होता है।

छप्पय— छप्पय सस्कृत के 'षटपद' शब्द का हिन्दी रूप है। अपभ्रश मे इसे 'छप्पय' कहा जाता था। विक्रम की दसवी शताब्दी से पूर्व इस छन्द के प्रयोग का सधान मिल जाता है। स्वयभू के ('श्री स्वयभू छन्द') प्राकृत ग्रन्थ मे छप्पय का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

पढम चउत्थे तिण्णि छआरआ।
दो छा पचमवीये होन्ति दौण्णि छआरआ तम्सि।
अवरे चै पै पवरे त सुह सुह जण ज।
तं छप्पअस्तस लक्खणम् ॥३८॥[2]

---

1 परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ २८३।

2 विशाल भारत—अक्टूबर १९५० ई०।

१२वीं शताब्दी के आचार्य हेमचन्द ने छन्दोनुशासन में इस छन्द के लक्षण देते हुए इसे काव्य और उल्लाला छन्द का योग बताकर मिश्रित छन्द माना। लेकिन हिन्दी मे इसे रोला[1] और उल्लाला[2] का योग माना जाता है। १८वी शताब्दी मे भिखारीदास ने अपने ग्रन्थ 'छन्दार्णवपिंगल' मे इसका लक्षण इस प्रकार दिया है—

> रोला मे लघु रुद्र पर काव्य कहावे छन्द।
> ता आगे उल्लाल है जानहु छप्पै छन्द ।।३४।।
>
> (सातवीं तरंग)

इस प्रकार हेमचन्द का लक्षण ही यहाँ ठीक माना गया है, अन्तर इतना है, कि भिखारीदास ने 'काव्य' छन्द का नाम 'रोला' दिया है। इस प्रकार रोला के चार तथा उल्लाला के २ पद मिलकर इससे छ: पद होते है।[3] हिन्दी के आदिकाल के वीरगाथात्मक ग्रन्थो में इस छन्द के व्यापक प्रयोग के कारण इस छन्द का सम्बन्ध वीररस से हुआ। छप्पय शैली वीरगाथात्मक रचनाओ की प्रधान शैली बन गई। चन्द के मूल 'पृथ्वीराज रासो' के जो पाँच छन्द 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' मे है, वे छप्पय छन्द ही है। 'पृथ्वीराज रासो' मे जिस छन्द को 'छप्पय' कहा गया है वह ऊपर के छन्द से सर्वथा भिन्न है, वह हिन्दी का कवित्त अथवा घनाक्षरी छन्द है, जिसका वर्णन आगे हुआ है।

द्वित्व एव परुष वर्गों के अधिकाधिक प्रयोग के कारण यह छन्द वीररस पूर्ण कविताओ के लिए बडा उपयुक्त समझा गया। अपभ्रश मे फुटकर रूप से छप्पय छन्द के अधिक प्रयोग एव उस भाषा की द्वित्व वर्ण प्रधान शब्दावली के योग ने इस छन्द के स्वरूप एव प्रयोग का बहुत कुछ मार्ग दर्शन किया। हिन्दी के

---

[1] रोला मे चार पाद तथा ११, १३ पर यति होती है।

[2] उल्लाला मे दो पाद तथा १५, १३ पर यति होती है। उल्लाला के एक भेद के अनुसार छप्पय की पाँचवी तथा छठी पंक्ति मे २६ तथा २८ मात्राएँ हो सकती है। २८ मात्राओ का प्रयोग ही अधिक मिलता है।

[3] डिंगल साहित्य मे छप्पय तीन प्रकार का होता है—१ कवित्त जिसमे छह चरण होते है पहले चार रोला के तथा शेष दो दोहा के। २. सुध कवित्त—यह हिन्दी का छप्पय है इसमे रोला एव उल्लाला का योग होता है। ३. ढ़ाढो कवित्त जिसमे आठ चरण होते है पहले छह रोला के और अन्तिम दो उल्लाला के।

(डा० मोतीलाल मेनारिया—राज० भाषा और साहित्य पृष्ठ ६८)

प्रारम्भिक काल से लेकर तुलसी के समय तक उसका वही रूप एवं प्रयोग काव्य मे प्रचलित रहा।

विषय—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जन्म के साथ ही इस छन्द का सम्बन्ध वीररस पूर्ण उक्तियो से हो गया था। वीरो की गाथाओं के ओजपूर्ण वर्णन मे इस छन्द के अधिकाधिक प्रयोग मे छप्पय पद्धति ही वीरगाथा-काल (आदिकाल) की पद्धति बन गई। लिखित या मौखिक दोनो रूपो मे तुलसी के समय तक इस छन्द का विषय से सामजस्य बना रहा। तुलसीदास जी ने भी वीररस पूर्ण उक्तियो के लिए इस छन्द का प्रयोग किया। वीररस के वर्णन के साथ-साथ उन्होंने इस छन्द मे शब्द भी द्वित्व वर्ण प्रधान ही, जैसा कि आदिकाल मे रखे जाते थे, रखने का सफल आयोजन किया—

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, विकल दिगपाल चराचर।
दिग्गयद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख भर।
सुर विमान हिमभानु सघटित होत परस्पर।
चौंके विरचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खण्ड कियो चण्ड धुनि जबहि राम सिवधनु दल्यौ।[१४।][१]

केशव का सम्बन्ध राजदरबार से था। उन्होंने युद्ध वर्णन के प्रसंगों मे छप्पय पद्धति को अपनाया। उनके 'रतनबावनी' एव 'वीरसिंह देव चरित्र' ऐसे छप्पयों से भरे पड़े है।

राजस्थान के चारण कवि आशानन्द ने 'उमादे भटियारी रा कवित्त' मे जोधपुर नरेश राव मालदेव की भटियारी रानी 'उमादे' द्वारा उसके पति की मृत्यु पर हुए चितारोहण का छप्पय छन्दो मे सुन्दर वर्णन किया है। 'रानी अग्नि मे प्रवेश कर राख हो गई। उसने चौरासी योनियो को यहीं भस्म कर दिया। हजारो मुखो से यह ध्वनि ध्वनित हुई कि सती उमादे सूर्यदेव के समक्ष दोनों हाथ जोड राव मालदेव का मरना सुन अगारे होकर राख हो गई'—

पैस मज्झ पावक्क, हुई जमहर नख सख जल।
क्रम चौरासी तणा, करे तण्डल भूमण्डल॥
झल माला बिच होम, देह बाली दावानल।
धुकै होम भडहडण, बात मुख सहंस बलोबल॥
सामहा जोड़ ऊमा सती, देव भाण दिस हाथ द्रुव।
माल राव चौ सांभल मरण, होय अंगारा राख हुव।

(राज० भाषा और साहित्य पृ० ११४ से उद्धृत)

---

[१] कवितावली—तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड २, पृष्ठ १९५।

राजस्थान में प्रचलित वीरता के वर्णनों से भरे छप्पय किसी वीर की असाधारण वीरता के वर्णन के निमित्त लिखे जाते थे। इस प्रकार के छप्पय अथवा अन्य गीतों को 'साखरी कविता' कहा जाता था क्योंकि ये किसी प्राचीन घटना अथवा वर्णन के सत्य होने का प्रमाण होती थी। इस प्रकार की वीर रस-पूर्ण रचनाएँ चारणों द्वारा वीरों मे जोश भरने के लिए लिखी जाती थी। इस कोटि की अधिकाश रचनाएँ मौखिक होती थी। एक ही छन्द अथवा गीत मे पूरी घटना का सक्षिप्त वर्णन एव वीर के बलिदान एव उसके यश का वर्णन हुआ करता था। अत. ऐसे छन्द कण्ठस्थ रख कर विशेप अवसरो पर साक्षी के रूप मे उपस्थित किये जाते थे।

छप्पय छन्द मे शृ गार वर्णन का प्रयास भी आलोच्य काल मे हुआ। केशव ने बारहमासे की पद्धति पर किये शृ गार वर्णन के लिए इसी छन्द का व्यवहार किया। 'कविप्रिया' का प्रसिद्ध 'बारहमासा' छप्पय छन्द मे ही लिखा गया है। आगे चल कर इस छन्द का सम्बन्ध भक्ति, नीति तथा शृ गार वर्णन के साथ जुडता हुआ दिखाई देता है। अग्रदास के छप्पयो मे भगवान के चौबीस अवतार एव भक्तो के गुण-गान का प्रयास है—

जै जै मीन वराह कमठ नरहरी बली बावन।
परशुराम रघुवीर कीस्नु कीरति जगपावन।
बुध कल्की व्यास पृथु हरी हन्स मन्वन्तर।
जज्ञ रिषभ हे ग्रीव ध्रुव बरदै नयनन्तर।
बद्रिपती दत कपिलदेव सनकादि करुना करो॥
चौबीस रूप लीला रुचिर श्री अगरदास गुरुपद धरौ।१।

(छप्पय-हस्त०प्रति,)

नाभादास का 'भक्तमाल' ग्रन्थ इसी छन्द मे लिखा गया। निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त कवि तत्त्ववेत्ता ने अपने छप्पयो मे ईश्वर की व्यापकता, उसकी महत्ता, ध्यान एव भक्ति आदि पर बल दिया है।

अकबरी दरबार के कवियो ने नीति आदि विषयो के वर्णन के लिए छप्पय का प्रयोग किया। महापात्र नरहरि बन्दीजन, जो अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कवि थे, इस छन्द के प्रयोग मे बड़े कुशल थे। कहा जाता है कि उनके इस छप्पय पर रीझ कर अकबर ने गोवध बन्द करा दिया था—

अरिहु दन्त तिनुधरै ताहि नहिं मार सकत कोइ॥
हम सन्तत तिनु चरहिं. बचन उच्चरहिं दीन होइ॥

अमृत पय नित स्रवहि, बच्छ महि थमन जावहि ।।
हिंदुहि मधुर न देहि, कटुक तुरकहि न पियावहि ।।
कह कवि नरहरि अकबर सुनो बिनवति गउ जोरे करन ।।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुएहु चाम सेवइ चरन ।।
(डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि के परिशिष्ट से उद्धृत)

लोक-नीति के वर्णन के लिए इस छन्द का प्रयोग आलोच्य काल मे पर्याप्त हुआ। नरहरि एवं केशव को इस छन्द मे लोक-नीति वर्णन मे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई।

इस प्रकार आलोच्य काल मे इस छन्द का सम्बन्ध वीररस-पूर्ण उक्तियो के साथ-साथ, नीति, भक्ति एव शृ गार आदि विपयो से भी जुडता हुआ दिखाई देता है फिर भी इसका सम्बन्ध मुख्यत वीररस मे ही होने के कारण अन्य विपयो का समावेश कम ही हुआ। राजस्थान मे लिखी गई डिंगल की वीररस-पूर्ण रचनाओ मे इसका प्रयोग निरन्तर होता रहा। वीररस पूर्ण उक्तियो के अनन्तर इस छन्द मे लिखी गई नीतिपूर्ण उक्तियो को भी सफलता मिली। परवर्तीकाल के अनेक कवियों के नीतिपरक छप्पय उक्त कथन की साक्षी मे उपस्थित किए जा सकते है।

कवित्त सवैया—कवित्त मे, जिसे 'घनाक्षरी' भी कहा जाता है और जिसे 'चन्द ने पृथ्वीराज रासो' मे छप्पय कहा है, मे ३१,३२ अक्षर होते है। इसमे आठ, आठ, आठ, सात अथवा आठ, आठ, आठ, आठ, के पश्चात् यति होती है। किन्तु इस यति क्रम मे न्यूनाधिक्य भी मिलता है। इसमें गण का ध्यान प्रमुख न होकर लय एव सम-विषम का ध्यान रखा जाता है। यदि सम-विषम मे तनिक भी हेर-फेर किया जाय तो इस छन्द का सौन्दर्य पूर्णत. नष्ट हो जाता है।

वन्दीजन का छन्द होने के कारण वीरगाथाओ के युग मे इस छन्द का प्रचार रहा होगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। इस काल मे यह मौखिक रूप से प्रयुक्त होता होगा क्योकि साहित्य मे इसका लिखित क्रम विक्रम सम्वत् १६०० के लगभग से पूर्व प्राप्त नही होता। इससे पूर्व यह राजदरबारो मे राजाओं की स्तुति में पाठ किया जाता रहा होगा। 'पृथ्वीराज रासो' मे वीरता एव यशगान के अनेक स्थलो पर 'कवित्त' का प्रयोग हुआ है लेकिन वहाँ उसे 'छप्पय' कहा गया है। राज दरबारो से सम्बन्धित होने के कारण इसका विषय भी स्तुतिगान, वीर एवं शृ गार वर्णन ही रहा होगा।

सवैया—'सवैया' की व्युत्पत्ति करते हुए विद्वान् इसका सम्बन्ध 'सपादिका' शब्द से मानते हैं। इस छन्द के प्रारम्भ काल मे इस छन्द के पढ़ने की शैली विशेष

के आधार पर ही इसका यह नाम पड़ा।[1] भाट और चारण अपने इस प्रिय छन्द को अनोखी रीति से पढ़ते थे। छन्द की अन्तिम पंक्ति को प्रथम दो चार बार पढ़ा जाता था और पुन चौथे चरण बाद इसे दुहराया जाता था। यह पाठन विधि सवाये के रूप मे होती थी। अत सवाये के संस्कृत रूप 'सपाद' से 'सपादिका' और उसी से सवैया शब्द का जन्म हुआ।[2] विक्रम की तेरहवी शताब्दी के लगभग 'प्राकृत पैंगलम्' की रचना हुई जिसमे 'सवैया' छन्द के दो भेदो—'किरीट' एव 'दुर्मिल' का उल्लेख हुआ है[3], जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राकृत मे इस छन्द का प्रयोग हुआ होगा। लिखित रूप मे इस छन्द का सन्धान १६०० विक्रम के लगभग से पूर्व निश्चित रूप से प्राप्त नही होता तथापि यह कहा जा सकता है कि वीरगाथाकाल मे यह मौखिक रूप मे अवश्य रहा होगा।

सवैया छन्द मे २२ से लेकर २६ तक अक्षर होते है। इसकी यह विशेषता है कि इसमे एक ही गण प्रारम्भ से अन्त तक चलता है। इस छन्द मे सगीत तत्त्व एक निश्चित लय के आधार पर विद्यमान रहता है। तुक का ध्यान रखा जाने के कारण सगीत तत्त्व और भी अधिक प्रभावपूर्ण एव मधुर बन जाता है। 'भगण' 'सगण' और 'जगण' के अनुसार लिखे गये सवैयो मे तीन विभिन्न प्रकार के लय की उत्पत्ति होती है। कवित्त की अपेक्षा इसमे सगीत तत्त्व अधिक होता है। अत. प्रारम्भ मे इस वीररस-पूर्ण उक्तियो का दरबारो मे गाकर सुनाने के लिए प्रयोग होता होगा। शृगार एवं वीररस के वर्णनो के लिए इस छन्द का स्वरूप पूर्णरूपेण उपयुक्त भी था।

वर्णित-विषय—यह अनुमान किया गया है कि मौखिक रूप में प्रचलित कवित्त एवं सवैया छन्दो के विषय शृगार एवं वीररस से सम्बन्धित हुआ करते थे। कवि राज दरबारो मे राजाओ के समक्ष वीर एव शृगार रसो की उक्तियो का पाठ अथवा गान किया करते थे। आलोच्यकाल मे स्फुट रूप से लिखे गए कवित्त एव सवैयो के विषय वीर एव शृगार पर तो रखे ही गए, साथ ही इस छन्द का चरित वर्णन के लिए भी प्रयोग किया गया। कथानक को जोडने के लिए दोहा आदि छोटे छन्द का प्रयोग बीच-बीच मे किया गया। नरोत्तमदास कृत 'सुदामा चरित' इन्ही छन्दों में लिखा गया चरित-काव्य है। तुलसीदास ने अन्य समस्त प्रचलित रूपो के समान इस रूप को भी 'राममय' करने के विचार से अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कवितावली' की इन्ही छन्दों मे रचना की। इस ग्रन्थ मे राम के ऐश्वर्य और शक्ति के चित्रण

---

[1] डा० नगेन्द्र—रीतिकाल की भूमिका तथा देव और उनकी कविता, पृष्ठ २३६।
[2] वही।
[3] प्राकृत पैंगलम्, पृष्ठ ५७५-७६।

की ओर ही कवि की प्रवृत्ति अधिक रही। राम के चरित्र से सम्बन्धित परुष स्थलो का सुन्दर चित्रण ही कवि को अभीष्ट था। इसमे न कथा का विस्तार नियमित रूप से है और न उसका काण्डों मे नियमित विभाजन है। मगलाचरण, प्रस्तावना एव कथा का भी पूर्ण अभाव है। उत्तरकांड की कथा असम्बद्ध है, उसमें व्यक्तिगत घटनाएँ तत्कालीन परिस्थितियाँ और विविध भावो के छन्दो का सग्रह ही हुआ है। अत सभी दृष्टियो से यह एक संग्रह है जिसमे वीर एव शृ गार इन्ही दो रसों का वर्णन मुख्य रूप से हुआ है।

गोस्वामीजी ने छन्दो की क्षमता पर पूर्ण ध्यान रखा है, वीर, भयानक, रौद्र आदि रसो के वर्णनो मे कवित्त तथा शृ गार, करुण आदि के विषय मे सवैया छन्द का उपदेश बडा ही मधुर बन पडा है। शृ गार वर्णन के लिए सवैया छन्द की उपयोगिता प्रमाणित हो चुकी थी, अतः नरहरि कवि ने अपने प्रसिद्ध 'बारहमासे' मे सवैया छन्द को ही अपनाया है। उनके फुटकर कवित्तो मे नीति, उपदेश, युद्ध, सौंदर्य वर्णन, प्रेम एव विरह वर्णन के साथ-साथ ऐतिहासिक घटनाओ एव दान आदि का वर्णन मिलता है। तुलसी के समान ही वह भी भक्ति के क्षेत्र मे समन्वय को श्रेष्ठ ठहराते थे इसी कारण राम और शिव दोनो की उपासना का उपदेश आपकी रचनाओं मे समान रूप से ही परिलक्षित होता है। अकबर के दरबारी कवि होने के नाते उनके धार्मिक विचारो पर अकबर की धार्मिक नीति का प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था। अकबरी दरबार से सम्बन्धित कवि गंग ने भी अनेक विषयो को लेकर कवित्त सवैयो की रचना की। उनके भक्ति, शृ गार, वीर, नीति उपदेश आदि सभी विषयों के कवित्त प्राप्त होते है। कवि ने सर्वाधिक वर्णन शृ गार का ही किया है। सयोग वर्णन के प्रसग मे काम चेष्टाओं, हाव-भाव आदि का चित्रण भी हुआ है। रूप वर्णन के प्रसग मे नखशिख का चित्रण अभूतपूर्व है। उनका नखशिख भक्ति का अग न बनकर रीतिकालीन परिपाटी की पूर्व परम्परा के रूप मे हुआ। भक्ति के छन्दो में कृष्ण की महिमा, यमुना महात्म एव राम नाम की महिमा का ही वर्णन है। उनके उपदेशपूर्ण कवित्तो मे अधिकाश मे 'गग कहै सुनि शाह अकबर' पक्ति मिलती है। अकबरी दरबार के प्रमुख-प्रमुख सरदारो के दान, वीरता आदि का वर्णन बड़े उत्कृष्ट है। सर्वाधिक वर्णन रहीम खानखाना का किया गया है।

इन दरबारी कवियों ने अनेक कवित्त एव सवैया समस्या पूर्ति के लिए रचे। दरबार में रखी गई एक समस्या 'बिन पल्लव पेड़ बढी लकडी' की पूर्ति गंग कवि द्वारा इस प्रकार हुई है—

एक समै प्रभु भावन बावन सन्त उपावन देह धरी।
बलि को छलि के प्रभु राज लियो तिहु लोक की तीनहि पैड़ करी।

तिनके करदण्ड हुतो सो बढ्यो भुव दान दियो लियो माँग हरी ।
कवि गग कहै ये अचभ लखौ बिन पल्लव पेड़ बढी लकरी ।।१८८।।
(अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट पृष्ठ ४४७)

इन्ही के समान अन्य दरबारी कवियो ने भी समस्या पूर्ति के लिए अनेक कवित्त सवैयो की रचना की । बीरबल उपनाम ब्रह्म के अनेक छन्द समस्या पूर्ति के लिए लिखे प्राप्त होते है । इन कवियो द्वारा जिन समस्याओ की पूर्ति की गई उनमे से कुछ समस्याएँ ये है—'यहि कारन गात जरै चिनगारी', 'चचल नैन छिपै न छिपाये', 'बारहौ बाँधि समुद्र मे बोरौ', प्रात बफात है पानी' आदि-आदि । इन पूर्तियो के अतिरिक्त इन कवियों ने इन छन्दों मे रूप, सौन्दर्य एव नायिका भेद का वर्णन भी किया है । कृष्ण की लीला के आधार पर मुरली माधुरी, राधा-कृष्ण केलि, रास, मथुराप्रवास, गोपी विरह आदि का वर्णन किया गया है । उपदेश देने की प्राचीन परिपाटी को अक्षुण्ण रखते हुए इन्होने ससार की माया को छोडकर भक्ति की ओर उन्मुख होने का उपदेश दिया है ।

शृ गार एव हाव-भाव वर्णन मे इनकी कुछ उपमाएँ एव उद्‌भावनाएँ बिल्कुल अछूती है । टोडरमल ने अपने कवित्तो मे नीति-कथा की ओर अधिक ध्यान दिया है । आलम के कबित्त शृ गार रस से पूर्ण है । उसमे नायिका भेद के उदाहरण कवित्तो मे दिए गए है इन कवित्तो की सबसे बडी विशेषता यह है कि इनमे 'भ्रमरगीत' प्रसंग का भी वर्णन किया गया है जिसका उल्लेख आगे 'भ्रमरगीत' के प्रसग मे हुआ है । रसखान कृत 'सुजान रसखान' प्रेम प्रधान भक्ति के कवित्त एव सवैयों का सग्रह है । उनके सवैये इतने मधुर एव हृदयग्राही है कि बड़े ही लोकप्रिय हो गए हैं । इन सवैयों मे कृष्ण की रूप माधुरी, कीडाएँ एव प्रेम की महत्ता का ही सर्वत्र वर्णन हुआ है ।

परशराम देव ने सवैयो मे अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थों की रचना की । 'दशावतार' मे दशो अवतारों का १३ सवैयो मे, रघुनाथ चरित्र मे लंकाकाण्ड की कथा का १७ कवित्तो में, सुदामा चरित्र में कथा का ११ सवैयों मे, परबोध को जोडो मे जीवन को सफल बनाने का उपदेश सवैयों मे, द्रौपदी को जोड़ों में कथा २ छन्द मे, गज-ग्राह को जोडों मे ३ छन्द में तथा प्रह्लाद चरित में कथा के १०५ सवैये मे वर्णन किया गया है । भक्त कवि होने के नाते इन्होंने भक्तो के चरित्रो के वर्णन द्वारा भगवान की महत्ता का प्रकाशन किया है ।

आलोच्यकाल के सन्त कवियो मे सुन्दरदास ही ऐसे कवि हुए है जिन्होने बड़ी सफलता के साथ कवित्त-सवैयो मे रचना की है । इनके ग्रन्थ 'सवैया' (सुन्दर विलास) मे सन्तों के सभी वर्ण्य विषय यथा—उपदेश, चेतावनी, शरीर की असारता

नारी निन्दा, मन की कुटिलता, ढोग, ईश्वर पर विश्वास, आत्मानुभूति आदि का समावेश किया गया है। इसमे दृष्टि तत्त्व का वर्णन भी कबीर आदि के समान उटपटाग न होकर शास्त्र विहित है। नीचे के बध मे दिया क्रम 'साख्यशास्त्र' के अनुकुल ही है—

ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई, प्रकृति ते महत्तत्व पुनि अहंकार है।
अहकार हूतें तीन गुण सत रज तम तमहूँ ते महाभूत विषय पसार है।
रजहूते इन्द्री दस पृथक पृथक भई, सत्तहूँ ते मन आदि देवता विचार है।
ऐसे अनुक्रम करि शिष्य सूं कहत गुरु सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रमजार है।
(सुन्दर ग्रन्थावली—सुन्दर विलास)

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन छन्दो का विषय इसके मौखिक रूप मे वर्त्तमान रहने के समय के अनुकूल ही रहा। कवित्त एवं सवैया छन्द की प्रवृत्ति के अनुरूप ही उनमे वीर एव शृ गार, भक्ति, नीति, उपदेश आदि विषयो का समावेश किया गया। इन विषयो के वर्णन के लिए ये छन्द इतने उपयोगी सिद्ध हुए कि आगे के २०० सालों का साहित्य इन्ही छन्दो मे लिखा गया। आलोच्यकाल की एक प्रमुख विशेषता जो, इस छन्द के प्रयोग मे दिखाई देती है, वह इन छन्दो का 'समस्या पूर्ति' के लिए प्रयोग है। रीतिकाल की राज्याश्रयो मे पनपने वाली कविता मे इस प्रवृत्ति का पर्याप्त विकास लक्षित होता है।

कुण्डलिया—यह मिश्रित छन्द है। दोहा और रोला को मिला देने से कुण्डलिया छन्द बनता है। दोहे के २ एव रोला के चार चरण मिल जाने से इसमे छ. चरण हो जाते हैं। इसमे सर्वत्र दोहा का अन्तिम चरण ही रोला का प्रथम चरण होता है। प्राय जिस शब्द से इस छन्द का प्रारम्भ होता है उसी शब्द के साथ इस का अन्त भी किया जाता है। प्रत्येक पक्ति में २४ मात्राएँ होने के कारण इस छन्द मे कुल १४४ मात्राएँ होती है।

विद्वानो का यह अनुमान है कि 'मौखिक रूप से यह छन्द वीरगाथा काल से प्रचलित रहा होगा।'[१] लेकिन तुलसी के समय से पूर्व तक इसका कोई सधान प्राप्त नही होता। तुलसी ने उस काल मे प्रचलित समस्त रूपो मे राम-कथा का गान किया लेकिन कुण्डलिया मे राम-कथा का वर्णन नही किया शायद इसी कमी को पूरा करने के लिए किन्ही परवर्त्ती महानुभावो ने 'कुण्डलिया रामायण' लिखकर तुलसी के नाम से विख्यात् करने का प्रयत्न किया। नया काव्यरूप होने के कारण इसका वर्ण्य विषय आलोच्यकाल से पूर्व क्या रहा होगा, कहना कठिन है।

---

१ प्राकृत पेंगलम् मे ।१।१४६। इस छन्द का लक्षण दिया गया है। अपभ्र श छन्द ग्रन्थों में भी इसका परिचय मिलता है।

वर्णित विषय— आलोच्यकाल मे इसका सर्वप्रथम प्रयोग नीति, उपदेश वर्णन के लिए हुआ। आगे चलकर छप्पय के समान इसका प्रयोग शृंगार, वीर, भक्ति आदि के वर्णन के लिए भी हुआ। अग्रदास की कुण्डलिया जिसका दूसरा नाम 'हितोपदेश उपाख्यान बावनी' भी है, नीति एव उपदेशों से युक्त है। इनमे अनेक उदाहरणो द्वारा ससार की असारता एव अनित्यता दिखाते हुए मन को ईश्वर की ओर उन्मुख करने का प्रयास है। उदाहरण समस्त दैनिक जीवन के दिये गए है—

नदी किनारे रूखडा जब कब होइ विनास।
जब तक होइ विनास देह कागद की छागर।
आयु घटत दिन रैन सदा आमै को आगर।
जरा जोर धर स्वान प्रान को काल शिकारी।
भूख ककह निरसक मृत्यु की रही मजारी।
अग्र भजन आतुर करन जौ लौ पंजर स्वास।
नदी किनारे रूखरा जब तब होइ विनास ॥६॥

(हस्तलिखित प्रति)

यद्यपि इस ग्रन्थ का नाम 'बावनी' भी मिलता है लेकिन इसमे ६६ कुण्डलियाँ है। 'हालाँ झालाँ रा कुण्डलियाँ' ग्रन्थ मे 'हालाँ झाँला' की वीरता का वर्णन है जो बडा ही ओजपूर्ण एव स्वाभाविक है। ध्रुवदास जी ने कुण्डलिया छन्द का खूब प्रयोग किया। उन्होंने इसी छन्द मे एक ग्रन्थ लिखा, जिसका नाम भी इसी छन्द के आधार पर रखा गया। ग्रन्थ मे राधा-कृष्ण के वृन्दावन विहार एव उनकी रूप माधुरी का वर्णन है। कवि मानुष तन पाने वालो से इस अवसर से लाभ उठाने का उपदेश देता है। ग्रन्थ में एक कुण्डलिया के बाद एक दोहे का क्रम रखा गया है।

आलोच्यकाल के कुछ अन्य कवियो ने शृंगार, नीति, उपदेश आदि के फुटकर वर्णनो के लिए इस छन्द का प्रयोग किया। इन कवियो मे अकबरी दरबार के नरहरि, गग आदि प्रसिद्ध हैं। उनकी कुण्डलियाँ उनके कवित्तों के साथ ही प्राप्त होती है। अहमद ने अपने ग्रन्थ 'बारहमासी' मे एक-एक माह की दशा का वर्णन करने के लिए कई-कई छन्दो का विधान किया है। उन छन्दो मे से एक छन्द कुण्डलिया भी है। इस प्रकार शृंगार रस वर्णन के लिए इस छन्द का प्रयोग आलोच्यकाल मे यहाँ सर्वप्रथम प्राप्त होता है। आसाढ मास की वियोग दशा का वर्णन कुण्डलिया छन्द मे इस प्रकार है—

आहि काहि बूझौ सखी कत मिलन कब होइ।
पिय-पिय रटि रसना थकी, नैन थके मग जोइ।
नैन थके मग जोइ होइ पीतम बिनु मरना।
सुष सपति धन प्राण कहा ले मेरे करना

जा बिनु बौरी हूँ भई चित में उपज्यौ चाव ।
ता बालम को प्रीति करि कब जो वहूँगी आव।।५।।

(हस्तलिखित प्रति)

यद्यपि आलोच्यकाल मे इस छन्द मे श्रृंगार एव भक्ति परक उक्तियो को भी सँजोया गया, तथापि इस छन्द में सर्वाधिक सफलता नीति एव उपदेश वर्णन को ही प्राप्त हुई । छन्द की प्रकृति एवं उसके पढ़ने का ढग बस विषय के प्रभाव को द्विगुणित करने मे पूर्णत- सफल रहता है, इसीलिए परवर्त्ती काल मे कुण्डलिया छन्द मे अन्योक्ति के माध्यम से नीति एवं उपदेश का विधान किया गया जोकि बडा ही लोकप्रिय सिद्ध हुआ ।

चर्चरी या चांचर—परिभाषा एवं व्याख्या—"रास की भाँति ताल एव नृत्य के साथ विशेषत उत्सव आदि के अवसर पर गाई जाने वाली रचना को चर्चरी सज्ञा दी गई है ।"[1] टीकाओ में चांचरी शब्द का अर्थ खेल बताया गया है । गीत के साथ-साथ नृत्य भी चलता है । इसीलिए इसका अर्थ टीकाकारो ने खेल किया है । 'धमार', 'होली' एव 'चांचर' तीन शब्द प्राय साहित्य मे एक ही अर्थ में प्रयोग होते है लेकिन उनके स्वरूप मे कुछ थोड़ी सी भिन्नता है । धमार शास्त्रीय रूप होने के साथ-साथ प्रधानत गीत है । होली लौकिक है और प्रधानत· गीत है लेकिन चांचर लौकिक गीत है जो नृत्य के साथ गाया जाता है । 'फागु' भी इन्हीं से मिलता-जुलता रूप है जिसके स्वरूप पर आगे विचार किया जावेगा । नाहटा जी के अनुसार 'प्राकृत पैगलम्' मे चर्चरी नामक छन्द का उल्लेख हुआ है जिसमे यह गान लिखा जाता था ।[2]

इस गीत विशेष का सम्बन्ध वसन्त ऋतु से है । विक्रमोर्वशी में चर्चरी गान का उल्लेख वसन्त के अवसर पर हुआ है । बारहवी शताब्दी के सोमप्रभ ने बसन्त-काल मे ही चर्चरी गान सुना था ।[3] जिनदत्त सूरि कृत 'चच्चरी' जो अपभ्रंश मे लिखी गई, के टीकाकार जिनपाल उपाध्याय ने उसकी टीका के प्रसग मे लिखा है कि यह भाषा निबद्ध गान नाच-नाच कर गाया जाता था ।[4] यह चर्चरी 'रासक' छन्द मे लिखी गई है जो प्रारम्भ मे 'रास' ग्रन्थों मे प्रयुक्त होता था । गीत, वाद्य एव नृत्य प्रधान उक्त दोनो रूपों के लिए इस छन्द का प्रयोग इनके प्रारम्भिक कालो मे खूब हुआ । आलोच्यकाल के कबीरदासजी ने अपने 'चांचर' मे इसे खेल प्रधान

---

१ अगरचन्द नाहटा—प्राचीन भाषा काव्यो की विविध सज्ञाएँ—ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८, अंक ४ (२०१०) ।

२ वही ।

३ 'पसरन्तु वारु चच्चरीव मालु'—आदिकाल से उद्धृत, पृष्ठ १०७ ।

४ डा० द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल से उद्धृत- पृष्ठ १०८ ।

मानकर माया द्वारा खेली गई होली का ही वर्णन किया है। जायसी ने 'पद्मावत' मे 'नागमती वियोग खण्ड' में नागमती द्वारा अन्य सखियो का अपनी-अपनी जोडी से चाचर गाती हुई फागु खेलने का वर्णन किया है—

फागु करहि सब चाचरि जोरी। मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी।

(पद्मावत, पृष्ठ १५५)

चर्चरी गान का कोई निर्दिष्ट छन्द नही था। अत. समयानुसार यह विभिन्न छन्दो मे रचा जाता रहा। यद्यपि चर्चरी छन्द का उल्लेख प्राप्त होता है, तथापि साहित्य मे यह गान इसी छन्द मे लिखा गया इसके विषय मे निश्चय पूर्वक कह सकना कठिन है। यह सम्भव है कि यह लोक प्रचलित गान चर्चरी छन्द मे निबद्ध किसी समय प्रचलित रहा हो।

वर्णित विषय—अपभ्रंश की 'चर्चरी' सज्ञक रचनाएँ जैन साधुओ द्वारा लिखी गई अत उनमे जैन गुरुओ की स्तुति एवं जैनाचार्यो का वर्णन ही प्रमुख है। जिनदत्त सूरि की 'चर्चरी' मे जिनवल्लभ सूरि की स्तुति है। इसमे यह भी बताया गया है कि उन्होने जैन मन्दिरो के अनुचित गीत वाद्यो पर प्रतिबन्ध लगाया था। जैन साधु उक्त आचार्य की स्तुति मे इस चर्चरी का गान करते थे।[1] जैनाचार्यो की चर्चरी सज्ञक रचनाएँ धार्मिक भावनाओ से ओत-प्रोत होने के कारण इस प्रसिद्ध रूप के वास्तविक विषय का पूर्ण प्रतिपादन न कर सकी। उस काल मे लोक मे प्रचलित इस रूप का प्रधान विषय शृंगार था जिसमे होली खेलने के साथ नृत्य, गीत एव वाद्य का वर्णन होता था। कबीर ने उसी लोक प्रचलित रूप को लेकर उसके प्रिय विषय शृंगार का प्रतिपादन करते हुए उसमे आध्यात्मिक उपदेश देने का प्रयत्न किया—

खेलति माया मोहिनी जिन्ह जेर कियो संसार।
रच्यौ रगने चूनरी कोइ सुन्दरि पहिरै आय॥

इस प्रकार उन्होने चांचर (फाग) में सलग्न रहने वाले दोनों दलो को माया और ससार मानकर खेल का सागोपांग वर्णन किया है। कबीर को आधार मानकर रचना करने वाले सन्त कवियों की वाणियो में भी रूपक के माध्यम से इस खेल का वर्णन प्राप्त हो जाता है। निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्त कवि हरि व्यास देव की महा-वाणी में राधा-कृष्ण की केलि वर्णन के प्रसग मे जहाँ उत्सवो का वर्णन किया गया है वहाँ होली का वर्णन बड़े विस्तार से है उसी प्रसग मे एकाध चर्चरी भी दी गई है। सखियाँ राधा-कृष्ण के होली खेलने की शोभा का वर्णन करती हुई चर्चरी गान गाती हैं। साधन कृत मैनासत में भी चर्चरी गान का उल्लेख हुआ है।

[1] अपभ्रंश साहित्य देवेन्द्र कुमार जैन थीसिस पृष्ठ १३६

फागु—विभिन्न परिभाषाए एव व्याख्या— फागु काव्य की विद्वानो द्वारा विभिन्न परिभाषाएँ की गई है। 'सिरि थूलिभद्द फागु' पर विचार करते समय[1] श्री अक्षयचन्द्र शर्मा ने विभिन्न विद्वानो द्वारा दी गई अनेक परिभाषाओ पर विचार करके अपनी परिभाषा निश्चित की है। नीचे उन विभिन्न विद्वानो द्वारा दी गई परिभाषाएँ दी जाती हैं—

१—'फागु' शब्द सस्कृत फाल्गुन—अपभ्रश फागु—फागु इस प्रकार बना है। यह फागु प्रधानत वसन्त ऋतु के आनन्द उल्लास से सम्बन्ध रखता है इसलिए फागु कहलाता है।"

(श्री कान्तिलाल जी व्यास 'वसन्त विलास' प्राक्कथन—पृ० ३७-३८)

२—'फग्गू मुहच्छगो' (फागु वसन्तोत्सव है।)

(हेमचन्द्र देशी नाममाला ६।८२)

३—"विषय शृ गारिक होने के कारण इसे फागु कहा गया है।"

(केशवराम काशीराम शास्त्री आपणा कविओ खण्ड १, पृष्ठ २३३)

४—"वसन्त होलीना शृ गारी गीतो के बोलता अपशब्द।"

(सार्थ गुजराती जोडणी कोश, पृष्ठ ७८४।)

५—"फागु काव्यों मे मूलत. वसन्त ऋतु एव शृगार का वर्णन रहता है।"

(केशवलाल हर्षदराम ध्रुव, हाजी मुहम्मद स्मारक ग्रन्थ)।

६—फागु गीत है, न छन्द है और न काव्य (प्रकार) का नाम। ऐसा प्रतीत होता है कि फागु शब्दालकारवाची अनुप्रासात्मक रचना है। सस्कृत मे जिस प्रकार यमकबद्ध अनुप्रासमय काव्य होते है वैसी रचना को भाषा मे 'फाग बन्ध' कहा जा सकता है।

(अम्बालाल प्रेमचन्द शाह श्री जैन सत्यप्रकाश वर्ष १२ अक ५-६, पृष्ठ १६५७)

७—वसन्तोत्सव से सम्बन्ध रखने वाली, ऋतु के अभिनव उत्साह को प्रगट करने वाली और जीवन को अभिनव भाव से भर देने वाली यह विशिष्ट वर्णनात्मक रचना फागु है जिसमे विशिष्ट शब्द छटा से युक्त एव अर्थ गम्भीर यमक, अनुप्रास आदि की अलंकारी शोभा हो—(श्री लालचन्द गाधी, श्री जैन सत्यप्रकाश वर्ष ११ अक ७, पृष्ठ २१२)।

निबन्ध लेखक ने इन सब परिभाषाओ की आलोचना की है। उसके मत से प्रथम दोनो परिभाषाएँ अव्याप्ति दोष से युक्त है क्योंकि फागु ग्रन्थ मे वसन्त के प्रकृत रूप का वर्णन न होकर चौमासे का वर्णन है। ३,४,५ फागु रूप को प्रगट नही कर पाती।

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५६ अक १, सम्वत् २०११, पृष्ठ १६।

उन परिभाषाओ के विचार से जैनाचार्यो के फागु ग्रन्थ जिनमे श्रृंगार तथा ऋतु सुषमा का सर्वथा अभाव है और जो शान्त रस प्रधान है वह फागु काव्य नही हो सकती। छठी परिभाषा मे इसे शैली मात्र माना गया है। उन्होने अपने कथन के प्रमाण मे अनेक ग्रन्थो की शैली को उपस्थित किया है और इस शैली के अभाव मे अनेक फागु सज्ञक ग्रंथो को इस प्रकार के अन्तर्गत नही माना है। लेकिन प्रारम्भ के एव अन्त के फागु ग्रन्थों मे इस शैली का सर्वथा अभाव है। अत यह फागु काव्यो का सामान्य लक्षण नही माना जा सकता। यह मध्य युग की अलकरण प्रवृत्ति का प्रभाव है। सातवी परिभाषा इस प्रकार के काव्यों की समस्त विशेषताओ का सकलन है अत: इसे परिभाषा नही कहा जा सकता।

निबन्धकार ने विषय को छोडकर इस रूप की परिभाषा यह की है—

८—'फागु वह गेय रूपक है जो मधु महोत्सव मे गाया और खेला जाता हो।' उनके विचार से विषय का सम्बन्ध कवि एव युग की रुचि से है। बसन्त से सम्बन्धित होने के कारण इसका श्रृंगार की ओर झुकना स्वाभाविक है। फिर भी जैनो के प्रवेश के कारण इसका विषय शमप्रधान हो गया लेकिन जन कवि इसमे श्रृंगार प्रधान रचनाएँ करते रहे।

श्री अगरचन्द जी नाहटा 'फागु काव्य' की विशेषताओ का वर्णन करते हुए कहते है 'जिसमे वसन्त ऋतु के उल्लास का कुछ वर्णन हो और जो बसन्त ऋतु मे गाई जाती हो ऐसी रचनाएँ फागु कहलाती है।'[1] वह फागु बन्धी शैली की इस रूप की एक विशेषता मानते है आवश्यक तत्त्व नही। 'सिरि थूल भद्दफागु' की निम्न पक्तियाँ फागु काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालती है—

खरतर गच्छि जिण पदम सूरि किय फागु रमेवउ।
खेला नाचइ चैत्र मासि रगिहि गावेवउ॥

इन पक्तियो से फागु काव्य की 'रमेवउ', 'खेला नाचई', 'चैत्र मासि' तथा 'रगिहि गावेवउ' चार विशेषताएँ बतलाई गई है। फागु 'रमण' अर्थात् खेलने से सम्बन्ध रखता है। नाटक के समान यह भी 'क्रीडानीयक' है। इसमें खेलने एवं नाचने की प्रधानता रहती है। 'रत्नावली नाटिका' मे विदूषक द्वारा नाच-गा-कर मदनोत्सव मनाने की बात कही गई है।[2] यह बसन्त से सम्बन्धित है। प्रारम्भ मे इनमे

[1] प्राचीन भाषा काव्यो की विविध संज्ञाए, ना० प्रचा० पत्रिका वर्ष ५८ अंक ४ सं० २०१०।

[2] भो व अस्स अहपि एताण मज्झे गदुअ णच्चन्तो 'अन्तो मअण महूसवं माण इस्सम्'।

रत्नावली नाटिका अक प्रथम

बसन्त वर्णन एव बाद में बसन्त मे गाने के लिए अन्य वर्णन गृहीत हुए होगे। यह रग पूर्वक उमंग के साथ गाया जाने वाला गेय काव्य है। 'रत्नावली नाटिका' मे भी समवेत स्वर से द्विपदी गाने का उल्लेख हुआ है। आलोच्यकाल की बसन्त सज्ञक रचनाएँ इसी रूप की है। उनके स्वरूप एवं विषय को देखते हुए इस काव्य-रूप की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है, 'बसन्त ऋतु मे गाने के लिए रची गई बसन्तोल्लास से पूर्ण रचनाओं को 'फागु' धमार' अथवा 'बसन्त' की सज्ञा दी गई है।' उक्त तीनों सज्ञाएँ इस रूप की प्राप्त होती है। तीनों का सम्बन्ध एक ही विषय से है और तीनो ही होली के आसपास बसन्त ऋतु के आगमन पर नाच-नाच कर गाई और खेली जाती है। प्रारम्भ मे उनके छन्द एव रागिनी मे अन्तर रहा होगा लेकिन बाद मे वह समाप्त हो गया।

वर्णित-विषय—जैन कवियो के फागु-काव्य आदर्श को लेकर चलते है इसीलिए वह 'शमप्रधान' हो गये है दूसरी ओर जैनेतर कवियो के फागु-काव्य शृगार प्रधान है। जैनो ने अपने किसी प्रधान मुनि अथवा आचार्य को लेकर उसके पावस अथवा बसन्तोल्लास का वर्णन किया है लेकिन वह वर्णन शमप्रधान है उनमे शृगार एव ऋतु वर्णन का सर्वथा अभाव है, वह तो लोक मे आदर्श उपस्थित करने की कामना से ही रचे गए थे। आलोच्यकाल के प्रसिद्ध सन्त कवि कबीर के 'फगुआ' एव 'बसन्त' सज्ञक रचनाएँ जैनो के समान ही शान्त रस प्रधान है। उनमे आत्मरूप-सदाबसन्त एव मायारूपी श्री बसन्त के फाग का रूपक के माध्यम से वर्णन हुआ है। सन्तो मे बसन्त वर्णन इसी रूप से मिलता है। दादू एवं सुन्दरदास ने विपर्यय अर्थ के माध्यम से सरस बसन्त का वर्णन किया है। बसन्त की क्रीड़ा के बीच आत्मारूपी स्त्री परमात्मा रूपी पति मे इस प्रकार लीन हो जाती है जिस प्रकार नदी समुद्र मे लीन हो जाती है और फिर उनमे भेद करना असम्भव हो जाता है।

सरिता मिलहि समुद्रहि भेद न कोइ।
जीव मिलइ पर ब्रह्महि ब्रह्मइ होइ।१६।

(सुन्दर ग्रन्थावली, पूर्वी भाषा बरवै)

भक्त कवियो ने राधा-कृष्ण की केलि वर्णन प्रसग मे उत्सवो का वर्णन किया है और उसी के मध्य उन्होने बसन्त शोभा, होरी, धमार आदि का वर्णन किया है—

नवकिशोर नवनागरी, नव सब सौज अरु साज।
नव बृन्दावन नव कुसुम नव बसन्त ऋतुराज।३।

(बसन्तोत्सव)

विविध भाँति सब सौज सजि सुखद सरोवरि रूप।
हो हो होरी खेलही श्यामा-श्याम अनूप ।१।
(होरी वर्णन-युगलशत—श्री भट्टदेव, हस्त० प्रति०)

इस प्रसग मे कवियो ने बसन्त शोभा, बृन्दावन शोभा, प्रकृति शोभा, कृष्ण-राधा का होली खेलना तथा सखियों द्वारा उनके होली खेलने का नृत्य के साथ गान आदि का वर्णन किया है। 'रितु आई सुहाई फागुन की' आदि पंक्तियाँ दुहराती हुई सखियों के माध्यम से बसन्त की पूर्ण शोभा एवं उल्लास का चित्रण, इन कवियों ने कराया है।

यह काव्य परम्परा हिन्दी क्षेत्र से दूर गुजरात आदि के जैन कवियो मे ही पर्याप्त रूप से विकसित होती रही। कबीर ने इसे लोकप्रचलित रूप होने के कारण अपनाया। भक्त कवियों ने प्रसगवश उत्सव वर्णन मे इसे ग्रहण किया। अन्य कवियों ने इस ओर कोई ध्यान नही दिया तथापि लोक मे यह उसी प्रकार प्रिय रहा। आज भी वह होली एव धमार के रूप मे लोकजीवन को जागृत करता रहता है।

विशेषताएँ—

१—इसका सम्बन्ध बसन्त ऋतु के उल्लास वर्णन से है। कही-कही अपवाद भी है।

२—यह बसन्त के उल्लासपूर्ण अवसर पर गाने के लिए लिखा जाता था।

३—इसमे नाट्य एव वाद्य का समावेश होता था।

४—'होली', 'धमार', 'बसन्त', एव 'फागु' सब एक ही प्रकार की रचनाओं के लिए प्रयुक्त शब्द है।

५—इसका कोई निश्चित छन्द नही था।

६ शृंगार रस का प्रयोग इसमे आवश्यक था तथापि शान्तरस प्रधान रचनाएँ भी लिखी गई।

सोहर—सोहर २२ मात्राओं का छन्द है जिसमे १२-१० के विश्राम से मात्राओं का विधान किया जाता है। यह लोक प्रचलित छन्द है। यह छन्द विवाह, कर्ण छेदन, नहछू, पुत्र जन्म आदि आनन्द के अवसरो पर स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। यह मंगल प्रधान छन्द है, अत. यह विश्वास किया जा सकता है कि यह अत्यन्त प्राचीनकाल मे ही लोकप्रचलित रहा होगा और आज भी उसी प्रकार प्रचलित है। इसे 'सोहिले' या 'सोहिला' भी कहा जाता है। आलोच्यकाल में इस लोक प्रचलित

रूप को राममय करने का तुलसी ने प्रयास किया । उन्होने 'रामलला नहछू' की रचना इसी छन्द में की ।

वर्णित-विषय— इस ग्रन्थ में राम के 'नहछू' का वर्णन किया गया है । यह नहछू किस अवसर का है, इस पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है । अवध मे विवाह के अवसर पर बरात के पहिले चौक पर बैठने के समय नाइन द्वारा नहछू करने की रीति है । यज्ञोपवीत के पुनीत अवसर पर भी नहछू की क्रिया होती है । डा० बडथ्वाल एव श्यामसुन्दरदास इस नहछू को विवाह के अवसर का एव प० रामगुलाम द्विवेदी यज्ञोपवीत के अवसर का ठहराते है । प० रामगुलाम के मत से राम का विवाह मिथिला मे एकाएक स्थिर हो जाने के कारण अवध मे नहछू की क्रिया का अवसर ही नही मिला । गोस्वामी जी ने इसे विवाह के नहछुओं के स्थान पर गाने के लिए बनाया है ।[1] उक्त दोनों मतों एव ग्रन्थ मे किए गए वर्णन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह नहछू अवधपुर मे हुआ जबकि राम दूल्हा बने हुए कौशिल्या की गोद मे बैठे थे —

गोद लिए कौशिल्या बैठी रामहि वर हो ।
सोभित दूलह राम सीस पर ऑचर हो ।६।
आज अवधपुर आनन्द राम क हो ।
चलहु नयन भरि देखिय शोभा धाम क हो ।१३।

(तुलसी ग्रन्थावली—भाग २,—रामलला नहछू)

रामायण की कथा से इसका मेल न होने के कारण यह कहा जा सकता है कि यह नहछू वास्तव मे राम का न होकर विवाह के अवसर पर गाने को रचा गया। इसमे कथा प्रधान न होकर प्रथा की प्रधानता पर ही कवि की दृष्टि रही है । वर के लिए राम, उसके पिता के स्थान पर दशरथ एव माता के स्थान पर कौशिल्या नाम प्रयुक्त कर दिए गये है । कुछ अन्य उदाहरणो मे यह बात प्रमाणित हो जाती है—

कौशिल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो ।
नहछू जाय करावहु वैठि सिहासन हो ॥१॥

(वही प्रति)

कौशिल्या की जेठि उसे उसी प्रकार आज्ञा देती है जिस प्रकार साधारण बडी-बूढी स्त्रियाँ वर की माता को दिया करती हैं जबकि कौशिल्या के कोई जेठी न थी । दशरथ का नाइन के रूप पर मुग्ध हो उठना, तुलसी को स्वीकार नही हो

---

[1] गोस्वामी तुलसीदास (बा० श्यामसुन्दरदास, डा० पीताम्बरदत्त बथड्वाल) पृष्ठ ९६ ।

सकता । अत यहाँ दशरथ के रूप मे वर के पिता की ओर सकेत है । नहछू का अति शृ गारिक वर्णन भी उसे उस लोकप्रचलित प्रथा के अति निकट ला देता है और यह विश्वास उत्पन्न करा देता है कि यह सर्वसाधारण के लिए विवाह आदि के अवसर पर गाई जाने के लिए ही रची गई रचना थी । यह नहछू लोक-रूप को राममय करने का प्रयास है जो किसी भी मागलिक अवसर पर गाया जा सकता है ।

कहरा—यह एक प्रकार का गीत है । इसका सम्बन्ध 'कहारो के गीत' से या 'कहर' से या अवधी के प्रसिद्ध गीत 'कहरवा' से है, इस विषय मे और अधिक खोज की आवश्यकता है । बीजक के टीकाकार ने कबीर के 'कहरा' शब्द का अर्थ कहारो का गीत एव 'कहर' दोनो किया है ।[1] जायसी कृत 'कहरानामा' का स्वरूप भी उक्त दोनो अर्थों के लिए ठीक बैठता है अत: इन दो रचनाओ के आधार पर इसके वास्तविक स्वरूप का सधान नही हो सकता । डा० द्विवेदी की यह सम्मति है कि उक्त दोनों रचनाओं का स्वरूप एक ही है और अन्य सन्तो के काव्य मे भी यह रूप मिलना चाहिए ।[2]

वर्णित विषय—कबीर ने इस लोकप्रचलित गीत के माध्यम से ज्ञानोपदेश देने का प्रयास किया । जायसी के 'कहरानामा' मे ससार रूपी समुद्र एव नदी से पार उतरने के लिए ईश्वर भक्ति को माध्यम बताया गया है । जिस प्रकार नदी से पार

---

[1] 'बीजक' मे जो कहरा सग्रहीत है उसकी कहरा वाली पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

ताल-झाझ भल बाजत आवे, कहरा सम कोई नाचै हो ।
जेहि रग दुलहि वियाहन आये, दुलहिनि तेहि रग राचै हो ।।

(पृष्ठ २५७)

टीकाकार ने मन को कहार बतलाया है (पृष्ठ २५६) । बीजक के कहरा की अन्य पक्ति मे महरा शब्द का भी प्रयोग हुआ है—

दास कबीर कीन्ह यह कहरा, महरा माँहि समाना हो ।

(पृष्ठ २५६)

इसमें कहरा के दोनो अर्थ किये गये है तथा महरा का अर्थ 'महरमी' किया गया है । 'कहरानामा' (जायसी कृत) में भी यही महरा शब्द बार-बार आया है और इसमे २२ गीत थे इसीलिए पहले इसका नाम महरीबाईसी दिया गया था ।

[2] ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५८, अक ४, स० २०१० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का जायसी कृत 'कहरानामा' सज्ञक लेख ।

उतरने के लिए केवट की आवश्यकता होता है उसी प्रकार यह कहरा है जो दुनिया के क्लेशों से बचने का उपाय बताता है। दोनों कवियों द्वारा यह लोकप्रचलित गीत उपदेश के लिए काव्य में प्रयोग किया गया।

बरवै—यह अवधी भाषा का विशिष्ट छन्द है। इसमे १२ और ७ के विश्राम से कुल १६ मात्राएँ होती है। इसके अन्त में जगण होता है। अवधी भाषा पर पूर्ण अधिकार रखने वाले एव उसमे रचना करने वाले कतिपय कवियों द्वारा ही इस छन्द का व्यवहार किया गया।

वर्णित विषय—इस छन्द का प्रिय विषय शृंगार है। रहीम ने इसके वर्णित विषय के कारण ही बरवै को 'रसकन्द' कहा है—

कवित्त कह्यौ दोहा कह्यौ तुले न छप्पय छन्द।
विरच्यौ यहै विचारि के यह बरवा रसकन्द॥

(रहीम रत्नावली, पृष्ठ ४०)

रहीम द्वारा इस छन्द मे नायिका भेद का निरूपण किया गया। रहीम का यह नायिका भेद रीतिकालीन नायिकाभेद की परिपाटी से सर्वथा भिन्न है। रीति-कालीन आचार्यों के समान रहीम ने शृंगार रस के वर्णन के अन्तर्गत नायिकाभेद का निरूपण करते हुए उनके लक्षण एव उदाहरण नही दिये। उन्होंने तो भारतीय प्रेम-जीवन के मनोरम चित्र उपस्थित करने का ही प्रयत्न किया है। उनके बरवै नायिकाभेद के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते है। कोयल के प्रति कही गई विरहिणी नायिका की उक्ति कितनी मार्मिक है—

भोरहिं बोलि कोइलिया बढ़वति ताप।
घरी एक भरि अलिया! रहु चुपचाप॥

(वही)

प्रियतम के साथ परिश्रम करते हुए अभावपूर्ण जीवन व्यतीत करना भी प्रेमिका को अच्छा लगता है उसी अभाव मे वह अपने जीवन को उल्लासपूर्ण ढग मे व्यतीत कर देना चाहती है—

लैके सुघर खुरपिया प्रिय के साथ।
छइबै एक छतरिया बरसत पाथ॥

(वही)

उक्त उदाहरण भारतीय-प्रेम-जीवन का सर्वश्रेष्ठ चित्र कहा जा सकता है। तुलसी ने अन्य काव्यरूपो के साथ इस छन्द को भी राममय किया। उन्होंने इसी छन्द में रामायण लिखी। इस ग्रन्थ में वर्णित राम-कथा संकेत रूप मे ही है। कही-कहीं तो पूरी काण्ड की कथा को केवल एक ही छन्द मे कह दिया गया है—

विविध वाहिनी विलसत, सहित अनन्त ।
जलधि सरिस को कहै, राम भगवन्त ।।
(बरवै रामायण—तुलसी ग्रन्थावली, लका काण्ड)

शृ गार एव शान्त रस का ही वर्णन प्रधानत. होने के कारण लंका काण्ड के वीररस पूर्ण स्थल को चलता करना पडा है । ग्रन्थ के उत्तर काण्ड मे कोई कथा क्रम नही है, ज्ञान एव भक्ति का वर्णन ही प्रधान है । प्रारम्भिक भाग शृ गार प्रधान एव अन्तिम भाग शान्तरस प्रधान है । ग्रन्थ के कुछ प्रारम्भिक छन्द तो अलकार निरूपण के लिए ही लिखे प्रतीत होते हैं । सीता-सौन्दर्य के वर्णन-प्रसंग के दो बरवै नीचे दिये जाते हैं—

सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर ।
सीय अग सखि ! कोमल कनक कठोर ।।१।।
सिय मुख सरद कमल जिमि, किमि कहि जाइ ।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाइ ।।२।।
(तुलसी ग्रन्थावली भाग २—बरवै रामायण)

यह ग्रन्थ समय-समय पर लिखे स्फुट बरवै छन्दो का सकलन है । इसमे प्रबन्धात्मकता का सर्वथा अभाव है । कवि ने ग्रन्थ मे इसके प्रिय विषय शृ गार का पूर्ण निर्वाह किया है । सन्त कवियो ने भी जहाँ इस छन्द का व्यवहार किया वहाँ इसके विषय की मर्यादा का निर्वाह किया । दादू पंथी सुन्दरदास ने 'पूर्वी भाषा बरवै' सज्ञक ग्रन्थ मे रूपक के माध्यम से बसन्त का वर्णन करते हुए आत्मा एव परमात्मा के मधुर फाग का वर्णन किया है । प्रेम की वहाँ चरम परिणति होती है जब आत्मतत्त्व परमात्मा मे लीन होकर अभेद हो जाता है ।[1]

यह देखा जा चुका है कि आलोच्यकाल मे यह छन्द शृंगार एवं शान्तरस-पूर्ण वर्णनो के लिए प्रयुक्त हुआ । अवधी भाषा तथा शृ गार एव शान्त रसो के वर्णन के साथ इस छन्द का योग अत्यन्त ही सुन्दर बन पडा है ।

बेलि—इस काव्यरूप का सबसे प्राचीन प्रयोग जैन कवियो मे प्राप्त होता है । उसके पश्चात् राजस्थानी डिंगल भाषा एवं राजस्थानी गुजराती मे 'बेलि' सज्ञक अनेक रचनाएँ प्राप्त होता है लेकिन उन रचनाओ से इस रूप के नाम-करण पर कोई प्रकाश नही पडता । आलोच्यकाल की कुछ रचनाओ के आधार पर इसके रूप पर कुछ विचार किया जा सकता है । 'कबीर' के बीजक मे सग्रहीत 'बेलि' सज्ञक रचना मे इसका लता से रूपक बाँधा गया है । पृथ्वीराज राठौड ने भी 'बेलि

---

[1] देखिए—सुन्दर ग्रन्थावली पूर्वी भाषा बरवै छन्द संख्या १९

क्रिसन रुक्मिनी री' मे इसका भक्तिलता से रूपक बाँधा है और सांगरूपक की पद्धति पर इसके विभिन्न अगो का वर्णन किया है।[1]

लेकिन इस रूपक से भी इसके स्वरूप पर प्रकाश नहीं पडता। हाँ, परवर्ती हिन्दी कवियो मे जहाँ भी इस रूप का 'वल्लरि' या 'वेलि' नाम से प्रयोग मिलता है वहाँ इस रूपक का सर्वत्र निर्वाह किया गया है। उनके लिए इस रूप का आवश्यक अग यही रूपक था। नरोत्तम स्वामी पृथ्वीराज राठौड की 'वेलि' के छन्द का नाम 'बेलियो' बतलाते हैं जो 'साणोर' छन्द का एक विशेष प्रकार है। 'गुजराती साहित्य का स्वरूप' मे प्रो० मंजुलाल मजूमदार द्वारा 'बेलि' छन्द का लक्षण इस प्रकार किया गया है---

मुहरावली तुक मही मुहरा माँहि गुणन्त।
वणे गीत इस बेलियो आठ गुरु लघु अन्त।

इस छन्द के चारो चरण क्रमश १६-१५-१६-१५ मात्राओ के होते है। 'साणोर' छन्द में प्रथम चरण मे दो मात्राएँ बढ़ी हुई मिलती है वहाँ प्रथम चरण मे १६ के स्थान पर १८ मात्राएँ होती है।[2] पृथ्वीराज की इसी रचना के आधार पर डिंगल मे अनेक 'बेलि' सज्ञक रचनाएँ लिखी गई जिनमे इसी छन्द का प्रयोग हुआ। १७७६ विक्रमी मे हमीर कवि ने तो 'नाममाला बेलियो' नामक एक कोष ग्रन्थ की भी इसी छन्द मे रचना की। लेकिन जैन कवियो द्वारा प्रयुक्त इस काव्यरूप का क्या स्वरूप था ? उसके विषय मे कुछ भी कहना कठिन है। यह अभी और अधिक अनुसन्धान का विषय है।

वर्णित-विषय---यह काव्यरूप तीन स्थानों पर तीन भाषाओ मे एव तीन प्रकार के कवियो के बीच प्रचलित रहा इसीलिए इसके वर्णित-विषय मे भी विविधता प्राप्त हो ी है। राजस्थानी-गुजराती भाषा मे जैन कवियों द्वारा रचे गए 'बेलि' सज्ञक ग्रन्थों मे उपदेश एव जैन पुरुषों के चरित्रों का वर्णन है। डिंगल भाषा के बेलि ग्रन्थ जो चारणो द्वारा ही अधिकतर लिखे गए, मुख्य रूप से चरित काव्य है और उनकी सज्ञा भी उन्ही चरित नायको के नाम के साथ बेलि शब्द जोड़कर दी गई है। ब्रजभाषा एव मिश्रित हिन्दी मे लिखे गए कवियो के बेलि सज्ञक ग्रन्थ या तो आध्यात्मिक उपदेशो मे पूर्ण है या उनमे भी जन कवियो के समान हिन्दू धर्म के आचार्य अथवा पौराणिक पुरुषों का गुणगान हुआ है।

---

[1] देखिए नरोत्तमस्वामी द्वारा सम्पादित---क्रिसन रुक्मिणी री बेलि, छन्द २९१-९४।

[2] पृष्ठ २७६।

'चहुंगति वेलि' प्राचीन राजस्थानी की रचना है। इसमे मनुष्य, देव, तिर्यक एव नारकी इन चार गतियो का वर्णन किया गया है। 'जम्बू स्वामी वेलि' एव 'नेमि वेलि' मे इन दोनो कवियो के तप एव त्याग प्रधान जीवन चरित्र का वर्णन है। वैष्णव सम्प्रदाय से प्रभावित कवियो की रचनाओ मे सीता आदि के चरित्र एव वल्लभाचार्य के कुल के गौरव तथा यश का गान हुआ है। डिंगल भाषा की 'वेलि' सज्ञक रचनाओ मे से पृथ्वीराज कृत 'वेलि' मे रुक्मिणी हरण की कथा का वर्णन है। विवाह काव्य होने के कारण कवि ने इसे 'मगल काव्य' भी कहा है। लेकिन इस शैली मे ऐसी भी रचनाएँ है जिनमे विवाह का कोई उल्लेख नही है। डा० मेनारिया ने ऐसी अनेक रचनाओ का राजस्थानी भाषा और साहित्य मे उल्लेख किया है[1], जो स्पष्टत चरित काव्य है। सम्वत् १६४३ की लिखी जसवन्त कृत 'त्रिपुर सुन्दरी री वेलि' का नरोत्तमदास स्वामी ने भी उल्लेख किया है।[2] ब्रजभाषा एव मध्यदेश मे लिखी गई वेलि सज्ञक रचनाओ मे कबीर कृत 'वेलि' या 'वेली' है जो बीजक मे सग्रहीत है। इस रचना मे 'हौरमैया राम' टेक सर्वत्र दुहरती है। इसमे भक्ति का वेलि से रूपक बाँधा गया है। कबीर की साखियों मे भी 'वेलि' का अग है उसमे भी उन्होने कुछ साखियाँ इसी प्रसग की लिखी है। दादू जी ने 'कामा वेलि' मे शरीर का वेल से रूपक बाँध कर आध्यात्मिक उपदेश परक उक्तियाँ कही हैं। कबीर के पश्चात् के समस्त सन्तों ने कबीर का अनुकरण ही किया है। अतः उनके द्वारा यह रूप उसी विषय के प्रतिपादन के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैन कवि ठक्कुरसी कृत ब्रजभाषा मे लिखी गई रचनाओ मे उसी विषय का प्रतिपादन हुआ है, जो जैन कवियो को अभीष्ट था। 'पचेन्द्रिय बेलि' मे पाचो इन्द्रियो के गुण कार्य एव उनके कर्त्तव्य भ्रष्ट हो जाने पर होने वाले कष्टो का तथा 'नेमि राजमती बेलि' मे 'नेमि' तथा उनकी पत्नी राजुल के प्रेम प्रसग एव विरह आदि का वर्णन हुआ है।

इस प्रकार यह काव्यरूप तीन वर्गो के कवियो द्वारा अपनाया जाकर तीन विभिन्न प्रकार के विषयो के प्रतिपादन का महत्त्वपूर्ण साधन बना।

बिरहुली—यह लोकप्रचलित काव्यरूप है। साँप का विष उतारने वाले आज भी देहातो मे इसी गीत का गान करते हुए देखे जा सकते है। यह 'गरुड़ मन्त्र' का लोकप्रचलित नाम है। इसका प्रयोग साहित्य मे कबीर द्वारा ही हुआ है। इसके लोक प्रचार को देखकर ही कबीर ने उसके द्वारा अपने उपदेशो का प्रचार किया।

वर्णित-विषय—कबीर ने इसके उसी लोकप्रचलित विषय का निर्वाह किया है। उन्होंने एक सुन्दर रूपक द्वारा विषय रूपी सर्प के विष को उतारने का विधान

---

१ पृष्ठ ५०।

२ 'बेलि क्रिसन रुकमिनी री' की भूमिका पृष्ठ २३

किया है। उन्होंने आध्यात्मिक पक्ष में उन्हें विरहिनी बनाया है, जो अन्य पुरुषों की उपासना करने के कारण 'सत्य पुरुष' के विरही बन गए हैं। ऐसे व्यक्तियों को जब मन रूपी सर्प डँस लेता है तब वह व्याकुल होकर अपने गुरु को पुकारते हैं। उनका गुरु ही वह गारुडी है जो मन्त्र द्वारा उस विष से उसका उद्धार करा सकता है—

'गुरु मेरे गारुड़ी मै विषय के हो माता'

तब गुरु दया करके तत्त्वोपदेश रूपी गारुड मन्त्र सुनाते है, जिनके प्रभाव से मन रूपी सर्प का विष उतर जाता है।

गजल—यह काव्यरूप हिन्दी साहित्य पर पड़े मुस्लिम प्रभाव का द्योतक है। गजल का हर शेर स्वयं पूर्ण होता है। हर शेर के दो बराबर के टुकड़े होते है, जिन्हे 'मिसरा' कहा जाता है। पाँच से सत्रह तक के शेरो के संग्रह को गजल कहा जाता है। गजल मे 'काफिया' तथा 'रदीफ' का विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक पंक्ति का अन्तिम साम्य 'रदीफ' तथा उसमे पहिले वाले एक ही आवाज के शब्द काफिया कहलाते है।[१] फारसी के समान हिन्दी मे भी गजले लिखी गई। इस प्रकार की प्रारम्भिक रचना करने वाले कवि मुसलमान ही थे, परन्तु कालान्तर मे यह रूप हिन्दू कवियो द्वारा भी अपनाया गया। स्वतन्त्र रूप से गजले लिखी एव पढ़ी जाने लगी। धीरे-धीरे इसमे ग्रन्थो की रचना होने लगी।

वर्णित-विषय—आलोच्यकाल के गजल ग्रन्थ नगर वर्णन से युक्त है। जटमल नाहर ने अपनी 'झीगौर गजल एव लाहौर गजल' मे इन नगरों के वर्णन के साथ-साथ वहाँ की वस्तुओं, नर-नारियो आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। 'झीगौर गजल' का प्रारम्भ इन पंक्तियो से होता है—

झीगौर कोटा खूब देखी नारी एक सुनार की।
मन लाइ साहिब आप सिरजी पत सिरजण हार की।
मूल चन्द मुँह निसाण चाढ़े नैन घासी सार की।
अति मस्त आछी नाजि नखरा कली जानि अनार की।
(राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज भाग १ पृष्ठ १०५)

'लाहौर गजल' के प्रारम्भ मे लाहौर मे होकर बहने वाली नदी के सुन्दर सौन्दर्य का वर्णन किया गया है—

देख्या साहिर जब लाहौर, बिसरे सहिर सगले और।
रावी नदी नीचे वहै, नावा खूब ढाली रहे ।१।
(वही प्रति, पृष्ठ ११३)

---

[१] हिन्दी साहित्य कोश—सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, पृष्ठ २५२।

आलोच्यकाल मे इस काव्यरूप का प्रचार राजस्थान तक ही सीमित रहा। परवर्ती काल मे इस छन्द से इसके विषय का सम्बन्ध और परिपुष्ट हो गया और इसीलिए इस रूप की अनेको रचनाएँ आज खोजो मे प्राप्त हुई है।

रेखता—यह एक छन्द विशेष का नाम है, जो फारसी से प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य में सन्त कवियो द्वारा प्रयुक्त हुआ है। इस छन्द की रचना बहुत कुछ कवित्त-सवैयो के ढग पर की जाती है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग कबीर मे प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह छन्द उस काल मे लोकप्रचलित था।

वर्णित-विषय—कबीर ने इस रूप को योग सम्बन्धी उक्तियो के वर्णन के लिए अपनाया। उनकी इस रचना मे सुरति, निरति, अनहद नाद, आदि बातो का वर्णन मिलता है।

कही-कही देववाद का प्रचण्ड खण्डन भी है—

गुरुदेव की नारी सो तो हरि लई चन्द्रमा को ता कुवारे संजोग कीना।
पारासर गमन बुआ सो जो कीया, तब गग मे कोप मन्छोदरी स्राप दीन्हा।
अहिल्या ब्राह्मणी छल कियौ इन्द्र पति कृष्ण गोपिन के रग भीना।
सुग्रीव की नारि सो तो छीडि लई बालि ने पाप और पुन्य दोऊ और पीना।
कहे कबीर ए देव सब अन्यायि इनो को कह्या सब सृष्टि कीना।
(चौदहवाँ त्रैवार्षिक खोज विवरण, ना० प्र० सभा काशी, पृष्ठ ३६८)

किसी अज्ञात जैन कवि ने इसी छन्द मे 'नेमिनाथ एव राजमती' के जैनो मे प्रसिद्ध कथानक का वर्णन किया है। इसमे कथा क्रम की अपेक्षा छन्द की महत्ता पर ही ध्यान दिया गया है। कुछ मार्मिक स्थलों का कुल ४२ छन्दो मे चित्रण करके कथा को चलता करने का प्रयास है। कथा का प्रारम्भ यादव वश के समुद्र विजय राजा की रानी के स्वप्न से होता है। राधावल्लभी के कवि दामोदार स्वामी ने अपने ग्रन्थ 'रेखता' मे राधा-कृष्ण की रस केलि एव उनसे भक्तो मे मिलने वाले आनन्द का ही वर्णन किया है।

इस छन्द का सम्बन्ध किसी एक विषय से नही जुड सकता। लोकप्रचलित होने के कारण अनेक मत एवं सम्प्रदायों से सम्बन्धित व्यक्तियों ने इसे अपने सिद्धान्त प्रचार का साधन बनाया। परवर्त्ती सन्तो मे कबीर की देखा-देखी इस रूप का अच्छा प्रचार हुआ। वहाँ इस छन्द मे योग की बातों का ही वर्णन किया गया।

नीसाणी—यह २३ मात्राओ का छन्द होता है जिसमे १३-१० मात्राओ पर यति होती है तथा अन्त मे दो गुरु होते है। यह छन्द राजस्थान का प्रचलित छन्द है।

वर्णित-विषय—आलोच्यकाल की नीसाणी सज्ञक रचनाएँ सन्त कवि की लिखी हुई है। अतः उनका विषय ज्ञान कथन एव गुरु-महिमा वर्णन से सम्बन्धित है। 'गुन उत्पत्तिनीसानी' ग्रन्थ मे गुरु की कृपा से प्राप्त ज्ञान को ही कवि द्वारा 'यथामति' नीसानी छन्दो मे वर्णन किया गया है—

गुरु गोविन्द प्रसाद तें प्रगटी मुख वांनी।
जैसो बुद्धि प्रकाश है वरनै नीसांनी।१।
(सुन्दर ग्रन्थावली—गुन उत्पत्ति नीसानी)

इस ग्रन्थ में सत, रज, तम से सृष्टि की उत्पत्ति, प्रसार, विभाग, भेद आदि का वर्णन है। निरजन ने पाँच तत्त्व एव तीन गुणो के योग से सृष्टि की रचना की। सत्य से विष्णु, रज से ब्रह्मा और तप से शकर की उत्पत्ति हुई। इन्द्र, विद्या-धर, निशाचर आदि उत्पन्न हुए। चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, पर्वत आदि की रचना करके चार प्रकार के जीव एव चौरासी लाख योनिया, वैकुण्ठ आदि १४ लोक बनाए। उन्होंने ग्रन्थ मे यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि जड पदार्थ में चेतन सर्व-व्यापी है। जड़ ही उपजता एव नाश होता है। 'सदगुरु महिमा नीसानी' मे इसी छन्द मे अपने गुरु दादू की महिमा, प्रभाव, गुण चरित्र आदि का सुन्दर वर्णन किया है। दादू के उपदेशो का अपने ऊपर प्रभाव वह इस छन्द मे स्वीकार करते हैं—

राम नाम उपदेश दै भ्रम दूर उड़ाया।
ज्ञान भगति बैरागहू ये तीन दृढाया।
(सुन्दर ग्रन्थावली—सद गुरु महिमा नीसानी)

गुरु महिमा वर्णन के साथ उनके माध्यम से प्राप्त ब्रह्मानन्द का वर्णन भी अत्यन्त श्रेष्ठ बन पडा है।

आलोच्यकाल के अन्त मे यह कथा-काव्यो मे प्रयुक्त होने लगा। राजस्थानी भाषा के अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियो के चरित्र काव्य लिखे गए जिनकी सज्ञा चरित नायक के नाम के साथ 'नीसाणी' के साथ प्राप्त होती है। डा० मेनारिया ने राज-स्थानी भाषा और साहित्य मे ऐसी अनेक रचनाओं का उल्लेख किया है।[1]

गीत—

(१) **लौकिक**—लौकिक गीत अत्यन्त प्राचीन काल से लोक मे बड़े प्रचलित रहे है। समय-समय पर लोककल्याण की कामना से प्रेरित होकर सन्तो एव भक्तों ने इस लौकिक गीतो को साहित्यिक रूप देकर अपने उपदेशो अथवा सिद्धान्तो के प्रचार के लिए अपनाया। होली, हिंडोरा आदि ऐसे लोकप्रचलित गीत है, जो अत्यन्त

---

[1] पृष्ठ ५०।

प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय समाज को प्रभावित करते रहे है और आज भी कर रहे है। इन गीतो का सम्बन्ध इसके वर्णित विषय मे है। होली के अवसर पर आज भी होली गाई जाती एवं श्रावण मे स्त्रियाँ झूला झूलते समय हिंडोरे गाती है। इन सभी गीतो मे आनन्द एवं उल्लास का प्राधान्य रहता है। उत्सव विशेष मे सम्बन्धित होने के कारण इनके विषय प्राचीन काल से लेकर आज तक उसी रूप में रहते चले आए है। सन्तो ने इन रूपो के अपनाते समय इसमे उस उल्लास का तो वर्णन किया है लेकिन उनका ध्यान इस रूप में व्याप्त उस रूपक की ओर अधिक रहा है, जिसका निर्वाह उनके लिए अत्यन्त आवश्यक था। हाँ, भक्त कवियो ने जहाँ इन रूपों को अपनाया, वहाँ उन्होने इन्हे कृष्णामय करके ग्रहण किया और उन गीतो में राधा एव कृष्ण के द्वारा उल्लास पूर्ण ढग से उक्त उत्सव विशेष को मनाने का वर्णन ही हुआ है। उनमें उपदेश का आग्रह न होकर उल्लास वर्णन का प्रयास ही अधिक है।

(२) **शास्त्रीय राग**—लोक रुचि के अनुसार लौकिक गीतो के स्वरूप एव लय आदि मे परिवर्तन होता रहता है, लेकिन शास्त्रीय रागो मे परिवर्तन होना अत्यन्त कठिन है। कोई बहुत उच्चकोटि का कलाकार अथवा संगीतज्ञ ही किसी नई 'गायकी' का जन्मदाता हो सकता है। अत. इन रागो का स्वरूप अधिकांशत- प्राचीन काल से लेकर आज तक अपरिवर्तनीय ही रहा है। प्रत्येक राग एव रागिनी में एक भिन्न लय, ताल एव स्वर आदि का विधान किया गया है।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, साहित्य मे शास्त्रीय रागो का प्रयोग पर्याप्त प्राचीन है। स्वतन्त्र रूप से उन्ही के आधार पर ग्रन्थ रचना का प्रयास सर्व-प्रथम कबीर में ही लक्षित होता है। उनके पश्चात् अन्य किसी कवि ने वैसा प्रयास नहीं किया। इससे ऐसा अनुमान होता है कि कबीर के विभिन्न राग वाले पदो को लिपिकार अथवा कबीर पंथी साधुओ ने स्वतत्र ग्रंथ के रूप में सग्रहीत करके उनमें प्रयुक्त रागो के आधार पर ही उनका नाम करण कर दिया। कबीर के नाम से आज प्राप्त होने वाले इन ग्रंथों के विषय कबीर के पदों के मेल में ही है, जिसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है। इस प्रकार की रचनाओ के अभाव का एक कारण सामान्य जनता की शास्त्रीय सगीत के प्रति अरुचि ही कहा जा सकता है।

कुछ अन्य ग्रन्थ—प्रमुख छन्द, लौकिक गीत एव रागो का ऊपर विवेचन हो चुका है। कुछ ऐसे भी छन्द अथवा गीत है, जिनका एकाध कवि ने प्रयोग किया, लेकिन उनकी कोई परम्परा नहीं बन सकी। इनमे पाँच ग्र थ छन्दो से सम्बन्धित तथा शेष गीतो से सम्बन्धित हैं। छदों मे झूलना पवगम, अडिला तथा मडिला एवं षटपदी जिसका दूसरा नाम त्रिभंगी छद है, प्रयोग हुआ है। झूलना वर्णिक और मात्रिक दोनो

प्रकार का छंद होता है। मात्रिक मे १०, १०, १७ की यति से ३७ मात्राएँ होनी चाहिए भानु ने १०, १०, १०, ७ की यति से ३७ मात्राएँ एव अन्त मे 'य' गण का निर्देश किया है। वर्णिक झूलना 'मजजय रस' एव लघु के योग से बनता है। यह मात्रिक से भिन्न होता है। पवंगम २१ मात्राओं का छंद होता है जिनमे ८, १३ पर यति होती है। अडिला १६ मात्राओ का चौकलिया छद होता है तथा मडिला १६ मात्राओं का छन्द होता है जिसमे अन्त मे दो गुरु होते है। इन रचनाओं मे या तो ज्ञान पूर्ण उपदेशो का विधान है अथवा भक्ति, वैराग्य, नीति आदि का वर्णन किया गया है। जैन कवियो की ऐसी रचनाओ मे उनके धार्मिक सिद्धान्तो एव उनके प्रसिद्ध पुरुषों का वर्णन मिलता है। वीर एव शृ गार पूर्ण वर्णनो के अनेक गीत एव छंद राजस्थानी भाषा मे लिखे हुए, उस काल के आज भी प्राचीन ग्र थकारों में उपलब्ध होते हैं। यह गीत एव छद, प्रभाव एव वर्णन की सजीवता के लिए बेजोड़ है।

१५—माला या माल काव्य

व्याख्या एवं परिभाषा—माल या माला शब्द साहित्य मे दो अर्थों मे प्रयुक्त होता है—१. एक ही प्रकार की अनेक वस्तुओं को एक मे पिरोकर बनाई गई माला के अर्थ में, २ सग्रह या समूह के अर्थ मे। कवियों ने जब सस्कृत के कोश ग्रथो के आधार पर हिन्दी मे कोश ग्र थ रचे या एक ही प्रकार की अनेक वस्तुओं का अपने काव्य मे वर्णन किया, तो उन ग्र थो की सज्ञा भी 'माल' या 'माला' दी, जो उन काव्यों की शैली और स्वरूप को प्रकट करने मे समर्थ थी। आलोच्यकाल मे इस प्रकार के अनेक ग्रंथ मिलते है। उनके स्वरूप को ध्यान मे रखते हुए इस काव्यरूप की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—समानार्थक एव नानार्थक शब्दो का विवरण देने वाले कोष ग्र थ, एक ही प्रकार की अनेक वस्तुओं के सग्रह ग्र थ, कई शब्दो के लिए एक ही शब्द का विधान करने वाले ग्रंथ एव एक ही वस्तु के अनेक नामों के संग्रह वाले ग्रन्थ 'माल या माला', काव्यरूप के अन्तर्गत आते है।

चतुर्थ अध्याय मे इस काव्यरूप के अन्तर्गत आने वाले आलोच्यकाल के ग्रन्थो को तीन कोटियों मे विभक्त किया गया है। नीचे तीनो प्रकार की रचनाओं के विषय पर क्रम से विचार किया जाता है।

वर्णित विषय—(१) **कोश ग्रन्थ**—सस्कृत मे प्राप्त अनेक कोश ग्रन्थो की सज्ञा 'माला' मिलती है। उन्ही ग्रन्थो के समान हिन्दी मे भी कोष ग्रन्थ लिखे गए। नन्ददास कृत 'नाममाला' का नाम 'मान मञ्जरी नाम माला' भी बताया जाता है। कवि ने इसे सस्कृत के प्रसिद्धकोश ग्रन्थ 'अमरकोश' के आधार पर प्रस्तुत किया है।

उसने इस ग्रन्थ मे संस्कृत के कुछ पर्यायवाची शब्दो को दोहो मे सग्रहीत करके उसमे राधा के मान की कथा को गूथा है। ग्रथ दोनो प्रसगो मे अर्थ देता है। अपने दूसरे ग्रन्थ 'अनेकार्थ मजरी' मे उन्होने ग्रन्थ का नाम तथा उसकी रचना का उद्देश्य बताते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है—

उचरि सकत नहिं ससकृत अरु समभन असमर्थ।
तिनहित नन्द सुमति जथा भाख्यौ अनेका अर्थ ॥२॥
(नन्ददास ग्रन्थावली, भाग १, पृष्ठ ६८)

इस ग्रन्थ मे नानार्थक शब्दो का सग्रह है। भक्त होने के कारण कवि ने भगवत भजन के रूप मे कृष्ण, गोविन्द, हरि आदि शब्दो का भी समावेश कर दिया है। 'नाममाला' संज्ञक शेष रचनाएँ भी नन्ददास की 'नाममाला' की शैली पर ही लिखी गयी है। सामान्यजन के लिए विषय को सुलभ करने के लिए ही ये ग्रन्थ प्रस्तुत किये गये थे। भीपजन कृत 'भारती नाममाला' मे दिया गया ग्रन्थ की रचना का कारण नन्ददास के ही समान है—

नाममाल गुन सहस क्रिति दुगम लखी जीय जानि।
इह उपजी जनु भीख जीय रचिजु भाषा आनि ॥१६॥
(राज० में हिन्दी के हस्त० ग्रन्थो की खोज भाग २, सख्या ६)

उक्त समस्त ग्रन्थ दोहा छन्द में ही लिखे गए। 'भीपजन' ने तो इसे दोहा बन्ध में लिखने की बात कहकर दोहे छन्द का लक्षण भी दिया है—

तेरह मत्ता प्रथम पद, ग्यारह दुतिय करति।
तेरह ग्यारह साजि के, दोहा नाम धरति ॥१८॥
(वही प्रति)

एक अन्य प्रकार के कोश ग्रन्थ रचने की चेष्टा भी आलोच्यकाल के एकाध कवि मे दिखाई देती है। राधावल्लभी सम्प्रदाय के दामोदर स्वामी ने 'मध्यक्षरी' नामक एक ग्रन्थ की रचना की, जिनमे अनेक शब्दों का उत्तर एक ही शब्द मे दिया गया है। कवि ने ४० 'मध्यक्षरी' देकर उसके अर्थ को अन्तिम शब्द मे इस प्रकार स्पष्ट किया है—'मध्य अक्षर को अर्थ यह बदरीनाथ विकार हरि' कुछ उदाहरण देखिए—

'शशिधर कौ धन कवन' —कैलास
चीर नैनन कौ को है —पलक
बृह्मापितृ —कमल
'हस्तलिखित प्रति'

(२) **संग्रह ग्रन्थ**—इस प्रकार की रचनाओं में एक ही प्रकार की वस्तुओं का वर्णन किया जाता है। आलोच्यकाल की इस कोटि की अधिकांश रचनाओं की संज्ञा 'माल' या 'माला' दी गई है। कबीर कृत 'विचार माल' अनेक उपदेशों का संग्रह है। नरोत्तमदास कृत 'विचारमाल' ग्रन्थ अभी तक अप्राप्त है। हरिदास स्वामी कृत 'केलिमाल' उनके पदों का संग्रह है जिसमें कृष्ण की केलि के अनेक पदों को सजोया गया है। नाभाजी का 'भक्तमाल', भगवत रसिक एवं ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली' तीन ऐसी रचनाएं है जिनमें भक्तो के विषय में प्रकाश डाला गया है। 'भक्तमाल' तो भक्त कवियो के विषय में प्रामाणिक सूचनाएँ देने के लिए प्रसिद्ध है। इसमें २०० के लगभग भक्तो का परिचय ३१६ छप्पयो मे दिया गया है। भगवत रसिक ने अपने 'रसिक अनन्य माला' ग्रन्थ मे उन भक्तो का परिचय दिया है जो हितहरिवंशजी के उपदेश का आश्रय लेकर संसार सागर से उद्धार पा गये थे। उन्होंने लिखा है—

चरन सरन हरिवंश की आइ भये नर सिद्ध।
गई अविद्या कुमति सब भई प्रेम की वृद्धि ॥३॥
जे आये हरिवंश पथ सिद्ध भये जु अनन्य।
भगवत तिनकी परचई बरनौ होइ सुधन्य ॥४॥

(रसिक अनन्य माला— हस्त० प्रति)

इसमे राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त कवियो एव अन्य भक्तों का परिचयात्मक विवरण दिया गया है। ध्रुवदास के ग्रन्थ मे सभी वैष्णव भक्तों का वर्णन है। इन्होंने भक्तमाल का आश्रय अधिक लिया है लेकिन 'भक्तमाल' मे वर्णित कबीर आदि निर्गुणिये सन्तो को छोड दिया गया है। उन्होने अनादिकाल के भक्तों से प्रारम्भ किया है—

शुक नारद उद्धव जनक प्रहलादिक सनकादि।
ज्यो हरि आपुन नित्य हैं त्यों ये भक्त अनादि।
प्रगट भयो जयदेव मुख अद्भुत गीत गोविन्द।
कह्यौ महा सिगाररस सहित प्रेम मकरंद।

(ब्यालीस लीला—भक्त नामावली पृ० २८)

बोधा कवि कृत 'फूलमाला' एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमे श्लिष्ट योजना द्वारा अनेक फूलों के नाम के साथ शृंगार का वर्णन किया गया है। १५वीं त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ का विवरण प्राप्त होता है।

(३) **नाम स्मरण ग्रन्थ**—संस्कृत मे भगवान के नामों का स्मरण करने के लिए 'विष्णु सहस्र नाम' जैसे स्तोत्रों की रचना की गई थी। ऐसे ग्रन्थ प्रमुख रूप

मे भक्तो के पाठ के लिए ही होते थे। आलोच्यकाल मे भी ऐसे ग्रन्थ प्राप्त होते है। इस प्रकार के ग्रन्थों मे परशराम देव कृत 'नामनिधि लीला' ग्रन्थ सर्व प्रथम है। इसमे अक्षर क्रम से (बारहखडी के क्रम से) ईश्वर के नामो का सग्रह किया गया है। 'च' अक्षर पर आये हुए ईश्वर के नाम यह गिनाये है —

> चक्र बधरिण चक्रदेस, चक्रपाणि चलि चक्रवति।
> चतुराननचाव चतुर्भुज चिन्तामनि चतुरागति।
> (परशुराम सागर हस्तलिखित प्रति)

दूसरे ग्रन्थ 'नाथलीला' मे ईश्वर के 'नाथ' वाले नामो का सग्रह किया गया है—

> काशीनाथ अयोध्यानाथ। सीतानाथ मत्ति रघुनाथ ॥५॥
> श्री जगन्नाथ जै नीलिगिरिनाथ। प्राणनाथ प्राणेश्वरनाथ ॥६॥
> धर्मनाथ धरनीधरनाथा। चतुरनाथ चिन्तामणिनाथा ॥७॥
> (वही प्रति)

ध्रुवदासजी ने 'लालजी की नामावली' एव 'प्रियाजी की नामावली' मे क्रम से कृष्ण एव राधा के नामों का स्मरण करने के लिए सग्रह किया है। कवि ने कहा है—

> प्रेम सिन्धु के रतन द्वै ये अद्भुत कुवरि के नाम।
> जाकी रसना रटै ध्रुव सो पावै विश्राम ॥१॥
> ललित नाम नामावली, जाके उर झलकत।
> ताके हिय मे बसत रहैं स्यामा स्यामल कंत ॥
> (ब्यालीस लीला—प्रियाजी की नामावली, पृ० १८४)

एक विशिष्ट शैली मे लिखी जाने वाली रचनाएँ ही इस काव्यरूप के अन्तर्गत आती है। शैली की प्रमुखता होने के कारण ही आलोच्यकाल मे इस काव्य-रूप का सम्बन्ध किसी एक विषय से जुडता हुआ दृष्टिगोचर नही होता।

१६—सम्वाद, वार्ता, गोष्ठी एवं बोध संज्ञक-काव्य

काव्यरूप की व्याख्या—महाभारत एव पुराणों मे 'सम्वाद' वर्णन की एक विशिष्ट शैली थी। काव्य को गति देने और उसमे सजीवता लाने के लिए इस शैली का उस काल मे प्रयोग किया जाता था। नाटकों मे इस शैली का प्रयोग इसकी इसी विशेषता के कारण हुआ। तथ्य को अधिक प्रभावोत्पादक ढंग से उपस्थित करने की क्षमता वाली इस शैली को इसीलिए नाथ योगियो ने अपनी उपदेशपरक रचनाओ मे ग्रहण किया था। अनेक समसामयिक अथवा प्राचीन सन्तो एव पौराणिक पुरुषों

क साथ सम्वाद अथवा गोष्ठियों के आयोजन द्वारा उन्होंने उनके मत का खण्डन एव अपने मत का मण्डन अपनी उन गोष्ठी संज्ञक रचनाओं में किया। गोरखनाथ 'गोरख गणेश गोष्टी', 'महादेव गणेश गोष्ठी' तथा 'दत्त गोरख सम्वाद'[1] सज्ञक ग्रन्थो मे इसी शैली मे गणेश आदि को उपदेश देते दिखाई देते है। इन उपदेशो मे उनके सिद्धान्तो के प्रतिपादन का प्रयास ही अधिक है।

इस रूप के अन्तर्गत प्राप्त विविध सज्ञाओं पर भी विचार कर लेना यहाँ समीचीन होगा। कबीर की दो रचनाएँ 'गोष्ठी' सज्ञक है जिनमे कबीर रामानन्द तथा धर्मदास का वाद-विवाद हुआ है। गोष्ठी का सामान्य अर्थ, विचार विमर्श हुआ करता है। अतः यह प्रश्न-उत्तर के रूप मे विचार-विमर्श कहा जा सकता है। दोनों ग्रन्थो में गुरु एव शिष्य के बीच मर्यादापूर्ण ढग से यह गोष्ठियाँ हुई है। 'वाद' का तात्पर्य झगडे से होता है और इसका सम्बन्ध किसी विवादास्पद विषय से ही हो सकता है। धर्मदास ने 'शब्द रैदास को बादु' ग्रन्थ मे कबीर रैदास का वाद-विवाद निजमत मण्डन तथा परमत खण्डन के रूप मे दिखाया है और इसी-लिए उसकी सज्ञा 'बादु' दी गई है। नरहरि कृत 'बादु' ग्रन्थ उक्त मत का ही समर्थन करता है उसमे भी लोहु-कनक, तेल-तमोल, नैन-कान आदि के मध्य अपनी-अपनी उपयोगिताओ को लेकर झगडा होता है। अत उसकी सज्ञा भी बादु उचित है। 'सम्वाद' सज्ञा का प्रयोग कुछ भ्रम मे डालने वाला है। कबीर के 'सम्वाद' सज्ञक ग्रन्थ 'सुरति सम्वाद' मे धर्मदास के प्रश्न करने पर कबीर द्वारा कृष्ण एव धर्मराज के बीच हुए सम्वाद का वर्णन किया गया है। वहा शका के समाधान के लिए धर्म-राज एवं कृष्ण का सम्वाद प्रमाण माना गया है। इसी प्रकार 'दान शील तप भावना सम्वाद' ग्रन्थ मे इनके मध्य उठे विवाद को दूर करने के लिए महावीर-स्वामी के मत को प्रमाण माना गया है। जन गोपाल के 'मोह विवेक सवाद' ग्रन्थ मे कवि मोह एवं विवेक के बीच होने वाले युद्ध का वर्णन करके विवेक की श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है। दोनो पक्षों की उपयोगिताओं को समान-रूप से स्वीकार कर लेने वाले 'गृह वैराग्य बोध' ग्रन्थ की सज्ञा 'बोध' दी है। दोनो अपने वास्तविक स्वरूप को भूले हुए है। यह गुणीजनों का ही कार्य है कि उन्हे उनके वास्तविक स्वरूप का बोध करावे। 'दान शील तप भाव रासा' ग्रन्थ मे कवि ने उसमे चारों भावनाओ के झगडे का वर्णन किया है और उसे 'रासा' सज्ञा दी है।

---

[1] डा० बडथ्वाल इनमे से प्रथम दो को तथा मिश्र बन्धु तीसरी रचना को प्रामा-णिक मानते हैं—देखिये डा० बडथ्वाल द्वारा सम्पादित गोरख बानी (जोगेसुरी बानी भाग १) हिन्दी सा० सम्मेलन प्रयाग १९९९ तथा मिश्र बन्धु विनोद भाग १, पृ० २४१।

लडाई झगडे के लिए रासा शब्द राजस्थान मे आज भी प्रचलित है। अतः ऊपर के विवेचन द्वारा 'सम्वाद' को छोडकर अन्य समस्त सज्ञाओं का प्रयोग समीचीन कहा जा सकता है। 'सम्वाद शली' की प्रधानता होने के कारण इस प्रकार की रचना करने वाले कवियो ने वर्णित विषय के अनुरूप सज्ञा न देकर शैली के अनुसार ही 'सम्वाद' सज्ञा दी। अन्य सज्ञाओं के प्रयोग मे विषय एवं शैली दोनो का पूर्ण ध्यान रखा गया है। कबीर के 'सुरति सम्वाद' ग्रन्थ को छोडकर शेष 'सम्वाद' सज्ञक ग्रन्थो की सज्ञाओ को तो उचित कहा जा सकता है।

वर्णित-विषय—आलोच्यकाल की इस रूप की रचनाओं मे दो प्रकार के विषयो का समावेश हुआ है—१. आध्यात्मिक, २ सामान्य। प्रथम कोटि मे सब रचनाएं आ जाती है जिनमे आध्यात्मिक ज्ञान पूर्ण विपयो का प्रतिपादन हुआ है। दूसरी कोटि की रचनाओ मे सामान्य वस्तुओ के गुण-दोषों का विवेचन हुआ है। नरहरि कृत 'बादु' मनोहर कृत 'प्रश्नोत्तरी' तथा सुन्दरदास कृत 'गृह वैराग्य बोध' दूसरी कोटि के अन्तर्गत आती है। इस रूप की रचनाओ का शैलीगत विभाजन चतुर्थ अध्याय मे हो चुका है।

कबीर की 'गोष्ठी' सज्ञक रचनाओं मे कबीर एव धर्मदास तथा कबीर और उनके गुरु रामानन्द के बीच हुए विचार विमर्श का वर्णन है। इन ग्रन्थो मे ज्ञान-वर्णन का प्रयास है। 'सुरति सम्वाद' ग्रन्थ मे धर्मदास के यह जिज्ञासा करने पर कि पाण्डवो ने यज्ञ किया, उनके कर्म कटे कि नही, कबीरदास ने उनकी शका के समाधान के लिए कृष्ण एवं युधिष्ठिर के मध्य हुए सम्वाद को उद्धृत करके सुरति योग का वर्णन किया। इसमे ब्रह्म प्रशसा, आत्म महिमा एव नाम महिमा का ही मुख्यत वर्णन है। कबीर की कई रचनाएँ इस शैली की प्राप्त होती है लेकिन उनमे शैली को प्रधानता न दी जाकर विषय को प्रधानता दी गई है। 'ज्ञान स्वरोदय' 'उग्र गीता' आदि ऐसे ही ग्रन्थ है जिन पर 'सिद्धान्त एव उपदेश परक काव्य रूप' के अन्तर्गत विचार हो चुका है।

कबीर द्वारा व्यवहृत यह रूप अन्य मतो मे भी मिलता है। कबीर के शिष्य धर्मदास ने 'शब्द रैदास को बादू' नामक ग्रन्थ मे कबीर एव रैदास के बीच वाद-विवाद की व्यवस्था कराके कबीर द्वारा रैदास को उपदेश दिलाने का प्रयास किया है। इन रचनाओ के स्वरूप, उनके पात्र एव वर्णित विषय को देखकर यह अनुमान होता कि अपने गुरु के महत्व को स्थापित करने एवं उनके द्वारा वर्णित ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ ठहराने के लिए, यह उन गुरु कोटि के सतो के परवर्त्ती शिष्यो की रचनाएँ है। कबीर के नाम से प्राप्त होने वाली 'कबीर गोरख गोष्ठी' 'मुहम्मद बोध' दो रचनाएँ उनके इस प्रकार के प्रयत्न की साक्षी के रूप में उपस्थित की ज सकती हैं

समय सुन्दर एवं कृष्णदास दोनों ने 'दानशील तप भाव' इन चारों भाव-तत्वों को लेकर उनके मध्य विवाद की व्यवस्था की। चारों तत्व अपनी महत्ता प्रतिपादन के लिए आपस में झगड़ते हुए महावीर स्वामी के पास जाते हैं। महावीर स्वामी उनके विवाद को सुनकर उन चारों के महत्त्व को स्वीकार करके उनमें समझौता करा देते हैं। दोनों ग्रन्थों का विषय पूर्णत. समान है लेकिन प्रथम कवि ने ग्रन्थ की संज्ञा 'सम्वाद' के साथ तथा दूसरे ने 'रासा' के साथ दी है और यहाँ रासा शब्द को युद्ध अथवा झगड़े के अर्थ में प्रयोग किया है। इन दोनों ग्रन्थों में जैन धर्म में प्रमुख रूप से गृहीत इन चारों भाव-तत्वों की उपयोगिता एवं श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। जनगोपाल कृत ग्रन्थ 'मोह विवेक सम्वाद' में मोह विवेक लोभ-सन्तोष, काम तथा इन्द्रिय दमन आदि के बीच सम्वाद की योजना न होकर युद्ध की योजना की गई है। दोनों ओर के योद्धा अपने-अपने मोर्चे सम्भाले हुए हैं। वाण वर्षा हो रही है। एक ओर ससार है दूसरी ओर ईश्वर। एक ओर माया है, दूसरी ओर विवेक। अब मन को यह निर्णय करना है कि वह किस पक्ष में मिलकर उसे विजयी बना दे। कवि अन्त में 'नाम स्मरण' का महत्त्व वर्णन करते हुए विवेक की श्रेष्ठता स्वीकार करता है—

> कलिजुग केवल नाम अधारा। जो सुमिरै सो उतरे पारा।
> मोह विवेक सुनै अरु गावै। निहचै राम भगति फल पावै।
> भव सागर सुपनि करि लेषै। पूरण पार ब्रह्म तब लेषै।
> गुरु गोविन्द प्रसाद तें मोह विवेक सुनाइ।
> वकता सुरता भगति फल जन गोपाल गुन गाइ।
>
> (हस्तलिखित प्रति)

उपदेश परक रचनाएँ जिनकी संज्ञा 'बोध' मिलती है, का अन्यत्र उल्लेख हुआ है। 'गृह वैराग्य बोध' बोध सज्ञक होते हुए भी इस रूप के अन्तर्गत आती है। इसमें उपदेश देने का विधान न होकर गृही एवं वैरागी के बीच उठने वाले विवाद का वर्णन है। दोनों अपनी-अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए वाद-विवाद में सलग्न होते हैं और अन्त में कवि दोनों की श्रेष्ठता को स्वीकार करने के साथ-साथ दोनों की एक दूसरे के लिए उपयोगिता को भी स्वीकार करता है।

सामान्य वस्तुओं के गुणों के प्रतिपादन के लिए नरहरि ने अपने ग्रन्थ 'वादु' में उन निर्जीव पदार्थों में भी विरोध एवं विवाद उपस्थित कर दिया है, जिसमें विवाद हो ही नहीं सकता। 'वादु' में 'कनकु और लोहु को', 'तेल तमोल को', मगन दानि को', नैन कान को' तथा 'लज्जा और भूख को' वादु वर्णित हुए हैं। इनमे एक के द्वारा अपने गुणों की महत्ता तथा उपयोगिता तथा दूसरे की हीनता

एवं अनुपयोगिता वर्णन की गई है। कवि ने इन निर्जीव पदार्थों को मूर्तिमत्ता प्रदान करके प्रतीक रूप मे उपस्थित किया है।

अकबर के दरबारी कवि मनोहर ने 'शत प्रश्नोत्तरी' नामक ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ प्रयत्न करने पर भी देखने को उपलब्ध न हो सका। अत. उसके स्वरूप एव विषय के बारे मे कहना कठिन है। 'प्रश्नोत्तरी' नाम से तो ग्रन्थ प्रश्न तथा उत्तर के रूप मे लिखा प्रतीत होता है। सम्भव है कि उसमे सौ प्रश्न एव उनके उत्तरों का समावेश किया गया हो। जहाँ तक कवि द्वारा वर्णित-विषय का सम्बन्ध है—'उन्होंने दोहों मे नीति एव शृ गार का वर्णन किया है'—ऐसा डा० रामकुमार वर्मा ने उल्लेख किया है।[1] 'शत प्रश्नोत्तरी' मे भी यही विषय है या कोई अन्य इसका उल्लेख उन्होने भी नहीं किया है।

ऊपर आलोच्यकाल की इस रूप की समस्त रचनाओ के स्वरूप एव उनके वर्णित-विषय पर विचार हो चुका है। इनके रूप एव वर्णित विषय को देखते हुए नीचे उस रूप की परिभाषा दी जाती है।

परिभाषा—'सम्वाद, बादु, गोष्ठी आदि सज्ञाओं वाली ऐसी रचनाएँ, जिनमे सम्वाद शैली के माध्यम से आध्यात्मिक विषय का विवेचन अथवा सामान्य वस्तुओ के गुण-दोष कथन का विधान किया जाता हो, इस काव्य-रूप के अन्तर्गत आती है।

कहना न होगा कि उक्त दोनो प्रकार के विषयों के विवेचन के लिये यह रूप अत्यन्त ही उपयोगी रहा। इस शैली की उपयोगिता पुराण काल से ही स्वीकृत थी। नाथों के समय में इस शैली का सम्बन्ध एक विषय विशेष से जुड गया और यह रूप आध्यात्मिक विषय विवेचन का एक प्रमुख प्रकार बन गया। कालान्तर मे सामान्य विषय भी इस रूप के वर्ण्य विषय बनाये गये।

विशेषताएँ—

१—इसमे शैली एव विषय दोनों की प्रधानता होती है। विषय आध्यात्मिक तथा सामान्य दोनो प्रकार के हो सकते हैं।

२—इसमे प्रबन्धात्मकता का अभाव है।

३—सम्वाद शैली होने के कारण अधिकाशतः छोटे-छोटे छन्दो का प्रयोग हुआ है।

४—इस रूप की रचनाओ की संज्ञाएँ गोष्ठी, सम्वाद, बादु, बोध आदि के साथ प्राप्त होती है।

---

[1] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ५६६

१७—बारहखडी या बावनी

परिभाषा—"क्रम पूर्वक वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर (स्वर और व्यजन) से प्रारम्भ करने के लिए छन्दो की शैली वाले काव्यों को बारहखडी (बाराखडी या बावनी) की सज्ञा दी जाती है।" हिन्दी मे इस शैली को बारहखडी के अतिरिक्त, 'ककहरा', 'कवक', 'चौतीसा' तथा 'छत्तीसी' सज्ञाएँ भी दी गई है। फारसी मे इसी पद्धति पर होने वाली रचनाओ को 'अलिफनामा' कहा गया है। गुजराती मे इस शैली की रचनाओ को 'कवक' तथा 'मातृका' सज्ञाएँ दी गई हैं।[1] गुरुमुखी म अधिकतर व्यजनो के साथ स्वरो को लेकर 'बावनी आखरी' लिखने की प्रथा मिलती है।

व्याख्या— इस शैली की रचनाओ की विभिन्न सज्ञाओ के विषय में विचार करना आवश्यक हो जाता है। बारहखडी छोटे बच्चों को मात्राओ का ज्ञान कराने का एक प्रकार है। वर्णमाला सीख जाने के पश्चात् इसी प्रकार के द्वारा उसे विभिन्न मात्राओं से सयुक्त वर्ण के उच्चारण का ज्ञान कराया जाता है। यह बारह-खडी 'क' मे (क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, क, क) इस रूप मे प्रारम्भ होकर 'ज्ञ' तक चलती है। कवियो ने उसे मात्रा क्रम से न अपना कर अक्षर क्रम (क, ख, ग, घ, ङ) से अपनाया लेकिन उसका नाम उन्होने 'बारहखड़ी' ही रखा। बालकों की शिक्षा (ककहरा) प्रारम्भ करते समय जिस प्रकार एक अक्षर के लिए एक वस्तु का नाम लिया जाता है उसी प्रकार एक अक्षर के लिए एक पक्ति या छन्द प्रयोग करने को भी 'ककहरा' कहा गया। जब अक्षर क्रम से पद्य रचने की यह शैली पुष्ट हुई तो अक्षरों की सख्या के आधार पर नाम रखने की परिपाटी का विकास हुआ। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, रि (ऋ) री, लि, (लृ) ली, ए, ऐ, ओ औ, अ, अ, (१६ स्वर) क, ख, ग, घ, ङ; च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, ढ, ण; त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म; य, र, ल, व, श; ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ, (३६ व्यंजन) इस प्रकार ५२ अक्षरो के क्रम मे रचना का नाम 'बावनी' रखा जाने लगा। परशु-राम देव कृत 'बावनी लीला', सुन्दरदास दादू पथी कृत 'बावनी' एव जटमल कृत 'बावनी' मिलती है। इनमे से प्रथम तथा तृतीय तो ऊपर बताए क्रम पर ही रची गई है लेकिन दूसरी मे अक्षरो का क्रम बदला हुआ है उसमे ओ नम शिव के पाँच अक्षर, ऋ, लृ को छोड़कर १२ स्वर, क से ह तक ३३ व्यजन तथा 'क्ष' और 'ज्ञ' दो सयुक्ताक्षर इस प्रकार ५२ अक्षरो पर चौपाइयाँ है। बावनी सज्ञक ग्रन्थो का एक

---

[1] देखिये गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज नं० १३—प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह सम्पादक चीमनलाल दलाल 'सालिभद्द कक्क', दूहा मातृका तथा मातृका चौपा संज्ञक रचनाएँ।

और प्रकार है जिसमे यह शैली प्रधान न होकर छन्दो की सख्या ही प्रधान है। इस प्रकार की रचनाओ का उल्लेख अन्यत्र किया गया है।

'छत्तीस' व्यजनो पर ही रची गई रचनाओ को 'छत्तीसी' सज्ञा दी जाती है।[1]कबीर ने 'क' से 'ह' तक ३३ व्यजन तथा 'ऊँ' को लेकर ३४ अक्षरों पर रचना की और उसका नाम 'ज्ञान चौतीसा' रखा। चौतीसा लिखने की यह परम्परा बगाल मे बडी लोकप्रिय थी। कबीर के नाम से प्राप्त 'अलिफनामा' फारसी शैली की रचना है जिसमे फारसी के अक्षरो के क्रम मे छन्द लिखने का विधान किया जाता है। परवर्त्ती सन्त कवियो की भी 'अलिफनामा' सज्ञक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। कबीर के नाम से 'बावनी' तथा 'अखरावती' दो ग्रन्थ और प्राप्त होते हैं जो इसी शैली के हैं। कबीर के 'ज्ञान चौतीसा' को जो 'ग्रन्थ साहिब' में संग्रहीत हुआ है, 'बावन आखरी' कहा गया है। इस शैली मे लिखी रचना के लिए बावनी सज्ञा का प्रयोग कबीर मे पूर्व तक प्राप्त नही होता। कबीर की 'बावनी' मे अक्षरो का वह क्रम भी दिखाई नही देता जो परवर्त्ती 'बावनी' संज्ञक रचनाओं मे दिखाई देता है। 'अखरावती' का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की १४ वी खोज रिपोर्ट मे हुआ है। इसमे 'क' से लेकर 'ह' तक के अक्षरो से प्रारम्भ करके रमैनियाँ लिखी गई है। उनकी 'अखरावती' मे अक्षरो का यह क्रम जायसी की 'अखरावट' के समान ही है हाँ, सयुक्ताक्षरो (क्ष, त्र, ज्ञ) को कबीर ने छोड दिया है।

इसी शैली मे लिखी सूफी कवि जायसी की रचना 'अखरावट' है जो फारसी के 'अलिफनामा' संज्ञक रचनाओं की परम्परा मे आती है। उसे उसने 'ज्ञान कक-हरा' कहा है—

कहौं सो ज्ञान ककहरा सब आखर महं लेखि।
पडित पढि अखरावटी, टूटा जोरेहु देखि।
(जायसी ग्रन्था० पृ० ३०३)

इसके अन्त मे अक्षरों का क्रम नही मिलता। 'अखरावट' का तात्पर्य 'अक्षर वृत्त' से है। अखरावट वह रचना है जिसके अन्तर्गत अक्षरो के क्रम से रचना का विधान किया गया है।

---

[1] इस प्रकार की रचनाओ मे सन्तदास कृत 'गोपी सनेह बाराखडी' है। उसमे ३६ व्यंजनो पर ही लिखा गया है लेकिन उन्होने भक्त कवियो की परिपाटी के आधार पर उसका नाम 'चौतीसा' या 'छत्तीसी' न रखकर बाराखडी ही रखा है। कुछ 'बत्तीसी, संज्ञक रचनाए' भी इसी शैली की प्राप्त होती है— देखिए राज० खो० रिपोर्ट ४ पृष्ठ ६७। (अक्षर बत्तीसी)

वर्णित-विषय—हिन्दी में इस शैली की रचनाओं का श्रीगणेश कबीर ने ही किया। उन्होने अज्ञानी वालको को ज्ञान का कहकरा बढ़ाने का प्रयत्न किया। फलतः परवर्त्ती सन्तो एव कवियो ने भी इसे इसी विषय के प्रतिपादन का माध्यम बनाया। आलोच्यकाल मे धार्मिक एव नैतिक उपदेशो का यह एक प्रचलित प्रकार बन गया। जायसी ने 'अखरावट' मे सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन किया है। सुन्दरदास दादू पथी एव परशुराम देव की 'बावनी' सज्ञक रचनाएँ आध्यात्म वर्णन एवं उपदेशो से युक्त है। भीपजन की बारहखडी मे ससार की असारता एव ईश्वर की महत्ता का वर्णन है। सन्तदास की रचना मे उपदेश देने का प्रयास न होकर गोपियो द्वारा उद्धव के समक्ष अपनी विरहावस्था का वर्णन कराया गया है। अकेले यही कवि ऐसे है, जिन्होने इस काव्यरूप के सर्व-स्वीकृत विषय को लेकर रचना न करके इसमे नए विषय का प्रतिपादन किया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ कृष्ण के चले जाने पर गोपियो की दशा से होता है—

कका कमल चैन जब से गए तब से चितहि न चैन।
व्याकुल जल बिन मीन ज्यौ पल नहिं लागत नैन ।१।
खखा खबरि न पाई स्याम की रहे मधुपुरी छाइ।
पीतम बिछुरै हे सखी, कीजै कौन उपाइ ।२।

(सन्तदास कृत गोपी सनेह बाराखडी हस्तलिखित प्रति ६३६ ना० प्र० सभा)

ज्ञ के साथ ही उनका विरह वर्णन समाप्त हो जाता है और उद्धव मथुरा को गमन करते है—

ज्ञ ज्ञा इच्छरी कृष्ण की बाल रही होइ मौन।
सन्तदास ऊधौ गये करि प्रनाम निज गौन ।३६।

(वही प्रति)

ग्रन्थ मे ३६ दोहे अक्षरो के, एक पाठ के फल का तथा अन्तिम कृष्ण की प्रतिज्ञा का इस प्रकार कुल ३८ दोहे है।

परशुराम देव कृत 'नाम निधि लीला' भी इसी शैली मे लिखा गया है लेकिन उसमे कवि ने ज्ञानोपदेश न देकर अक्षर क्रम से भगवान के नामो का सकलन प्रस्तुत किया है—'अ' पर आने वाले नामो का विवरण देखिए—

अगुन अगोचर अगह निगम आगम से न्यारा।
अजम अजौनी अजर अमर अपने आकारा।
अनघड अनड अजोड़ असगि आकास असारा।
अटल अडिग, अगडोल आप आपै के अधारा।

अजपाजाप अनूप अवनि बूचों असमाना ।
अधर अलिप्त अन्तरीक्ष असलि आसन औताना ।
(परशुराम सागर—हस्त० प्रति०)

इस प्रकार इसमे 'अ' से 'ह' तक के अक्षरो को लेकर बारहखडी के रूप मे 'राम' के नाम एव विशेषणो का सग्रह किया गया है । कुल २८ विश्राम हैं । उन अक्षरो को छोड दिया है जिन पर 'नामो' का अभाव है । चौपाइयो की संख्या भी प्रत्येक अक्षर के लिए समान नही है । कही-कही तो इनकी सख्या १४ तक पहुँच गई है ।

छन्द के प्रयोग मे भी अक्षरों की संख्या के समान ही कवियो ने स्वतन्त्रता दिखाई है । कबीर ने इस एक अक्षर के लिए दो-दो चौपाइयो का क्रम रखा है ।

जायसी ने प्रत्येक अक्षर के लिए ७ चौपाई एक दोहे तथा सोरठे का क्रम रखा है । सुन्दरदास दादू पथी एव परशुराम देव की बावनियों में एक अक्षर के लिए एक-एक चौपाई का क्रम है । भीपजन की बारहखडी छप्पय छन्द मे है । 'ट' पर लिखा छप्पय यह है ।

टेक काज सिव कण्ठ अजौं विष नाहिन त्यागत ।
टरी न अजहूँ टेक सिधु बडवानल ।
अजो सेस सिर भार नाहि डारत मति ऐसी ।
चुगै अगार चकोर टेक तजी न तैसी ।
तरुनतपति लीये रहै सो, व्रत नेक न षडिये ।
यू जानि भीषजन साँच की गही टेक क्यो छडिये ।३२।
(हस्तलिखित प्रति)

आगे चलकर इस शैली मे होने वाली रचनाओ मे छन्द को भी प्रधानता दी जाने लगी । अनेक बावनी सज्ञक रचनाएँ छन्दो के नाम के साथ भी लिखी गईं । इसी प्रकार कवि के नामो के साथ एव विषय के साथ भी बावनी शब्द लगा-कर रचनाएँ हुई जिनका उल्लेख परम्परा के प्रकरण मे किया जावेगा ।

विशेषताएँ—

१—वर्णमाला के अक्षर क्रम से रचना की जाती है । स्वर एवं व्यजन दोनो को मिलाकर, (५२), व्यंजनो पर ही (३६), सयुक्ताक्षर छोड़कर व्यजन (३४), या अ, इ, ए, ओ, अं पाँच स्वर एव सब व्यंजन (४१) पर अक्षरो का क्रम रहता है ।

२ वर्ण्य विषय नीति ज्ञान एवं आध्यात्मिक उपदेश रहता है । यद्यपि अप-वाद भी प्राप्त होते हैं लेकिन बहुत कम

३—छन्द एवं आकार का कोई बन्धन नहीं। चौपाई जैसे छोटे छन्द से लेकर छप्पय एवं कुण्डलियाँ जैसे बड़े छन्दों तक का प्रयोग किया जाता है।

४—साधारणतः बावनी संज्ञक रचनाओं में ५४ छन्द, 'चौंतीसा' संज्ञक में ३६ तथा 'छत्तीसी' में '३८' छन्द होते हैं। इसके अपवाद भी हैं सम्वरावट इसका उदाहरण है।

१८—बारहमासा

परिभाषा एवं व्याख्या—शृंगार के उद्दीपन पक्ष के लिए बारह महीनों में होने वाले ऋतु-परिवर्तन, स्थिति-परिवर्तन और भाव-परिवर्तन के लिए जिन रचनाओं का विधान किया जाता है वे 'बारह मासा काव्य' के अन्तर्गत आती हैं।

कालिदास से पूर्व संस्कृत साहित्य में प्रकृति के अभीष्ट वर्णन के अन्तर्गत षट ऋतु-वर्णन किया जाता था। कालिदास ने 'ऋतु-संहार' की रचना द्वारा 'षट्ऋतु-वर्णन' को स्वतन्त्र रूप से वर्णन करने की परिपाटी का श्रीगणेश किया। 'बारह-मासा' लिखने या पढ़ने का उस काल में भी प्रचलन रहा हो इस सम्बन्ध में ठीक से नहीं कहा जा सकता। तेरहवीं शताब्दी की एक रचना 'जिन धर्म सूरि कृत बारह नावउ' इस शैली की प्राप्त है। बारहमासे के समान ऋतु-वर्णन भी फुटकल पद्यों के रूप में पढ़ा जाने लगा था ऐसा शुक्लजी का मत है।[1] 'प्राकृत पेंगलम्' में ऋतु सम्बन्धी कुछ छन्द हैं भी, लेकिन यह ऋतु-वर्णन काव्य के अन्तर्गत नायिकाओं की शृंगार भावनाओं के उद्दीपन के लिए ही चित्रित किया जाता था। स्वतन्त्र रूप से इस पर काव्य लिखने की चेष्टा नहीं हुई। षट्ऋतु-वर्णन को संयोग शृंगार के अन्तर्गत ही स्वीकार किया गया। फिर भी कवि की कल्पना तो स्वतन्त्र है इसीलिए इसके दो-एक अपवाद भी प्राप्त हो जाते हैं। अब्दुर्रहमान के 'संदेश रासक' में ऋतु-वर्णन विरहिणी नायिका के दुःख-वर्णन के लिए एवं पृथ्वीराज रासो में विरह की आशंका से जनित हृदय की पीड़ा का, प्रत्येक ऋतु के आधार पर चित्रण किया गया है। यह ऋतु वर्णन प्रथम ग्रन्थ में विरहिणी की ऋतु विशेष में होने वाली कातरता का चित्रण करता है एवं द्वितीय ग्रन्थ में संयोग जन्य आनन्द में उद्दीपन का भाव भरता है।

प्रारम्भ में 'बारहमासा' विरह भाव की अभिव्यक्ति का ही माध्यम था। अपभ्रंश में लिखित विनयचन्द्र सूरि की 'नेमिनाथ राजमती' के अन्तर्गत नेमिनाथ के वैराग्य ग्रहण के अवसर पर राजुल का वियोग वर्णन इसी पद्धति पर हुआ है। कहीं-कहीं षट्ऋतु-वर्णन के समान 'बारहमासे' का प्रयोग भी संयोग के आनन्द को

[1] चिन्तामणि भाग २, सं० २००२, पृष्ठ २१।

उद्दीप्त करने के लिए किया गया है। इस प्रकार की रचनाओं मे १५वी शताब्दी की साधन कृत 'मैनासत', केशव कृत 'कविप्रिया का बारहमासा' एवं सुन्दर कवि (ग्वालियर) के 'बारहमासे' रचे गये। साधन ने सयोग तथा वियोग दोनों पक्षों के बारहमासे अपने ग्रन्थ मे दिये है – वियोग का बारहमासा आषाढ से शुरू होता है। दूती मैना को ऋतु की उद्दीप्तता का वर्णन करती है—

चौपाई—रितु असाढ वरिषा वैसारा। सब काहू परवार सभारा।
दीपग ऐसे आवन हारा। तोर पिय ने रित देखि उबारा।
मास असाढ गये नहि जाई। भुई बादर लागे बरसाई।

सोरठा—बोल छांडि देहि माहि, मनु मैना सांची कहौ।
आनि मिलावै तोहि, मालति कौ भौरा जिसै।

दोहा—जिहि नत ऊपर चाउ, सुपने असत न रुच्चई।
इहु सिर जाइ तौ जाउ, माधन सतु न छाडिये।

(ग्रन्थ वीथिका—साधन कृत 'मैनासत' नाहटा द्वारा सम्पादित, पृष्ठ १११)

प्रत्येक मास की दशा का वर्णन करके मालिन मैना को ललचाती है। पाँच चौपाई, एक सोरठा एवं एक दोहा के क्रम से मालिन का वर्णन एव उसी क्रम से मैना का उत्तर है। वह ऋतु परिवर्तन का आनन्द तभी लेना चाहती है जब उसका प्रियतम लोरिक घर आ जाय। कवि ने एक छोटे से प्रेम-कथानक के माध्यम से बारहमासा वर्णन करने का प्रयास किया है। जेठ वर्णन के पश्चात् दूती की दुर्दशा के साथ ही ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। सुन्दर कवि ने बारह महीनों मे होने वाले ऋतु परिवर्तन से सयोग सुख मे होने वाली वृद्धियो का ही वर्णन किया है—

मोर अनद उठे नर-नारि सवारति गोहि लषै लषनाये।
चन्द बिलास हुलास विकास अवास आकास हिये है दीषाये।
धान कै पानी कै सुन्दर लागौ सवाद सुगन्ध सुहाये।
और महीनान ते पिय भी जिय कातिक मास के वासर भाये॥१॥

(सुन्दर कवि कृत 'बारहमासी' (अपूर्ण) हस्त० प्रति)

ग्रन्थ में प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण न होकर सुखदायी उपादानो का वर्णन ही प्रमुख रूप से हुआ है। अन्य स्थानो पर इस रूप को वियोग दुख जन्य अनुभूतियो के प्रकाशन के लिए ही प्रयोग किया गया है।

पावस विरहिणियों को सर्वाधिक कष्टदायी ऋतु है। असाढ के महीने मे सबसे प्रथम उठते हुए मेघ को देख कर ही कालिदास के मेघदूत का यक्ष विरह की पीड़ा से तिलमिला उठा था और उसने उसी मेघ को अपना सन्देश लेकर प्रियतमा

के पास भजा था। अत प्रारम्भ के बारहमासे भी असाढ से ही प्रारम्भ हुए। 'नेमिनाथ राजमती' में राजमती का विरह वर्णन असाढ़ से प्रारम्भ होकर जेठ तक चलता है। विद्यापति की 'पदावली' का विरह वर्णन भी असाढ़ से प्रारम्भ होता है। जायसी आदि सूफी कवि नरहरि, नन्ददास, बोधा, नरपति, जनगोपाल, सुन्दरदास, अहमद एवं लालदास के बारहमासे असाढ से ही प्रारम्भ हुए हैं। केशव की 'कविप्रिया' का बारहमासा एव ब्रह्मानन्द कृत 'रसिक सुरमी भास' दो रचनाएँ ऐसी भी है, जो चैत से प्रारम्भ होती है। चैत्र बसन्त के आगमन का मास होने से वियोगियों को पावस के ही समान दुखदायी होता है। बारहमासे के प्रारम्भ का महीना उद्दीपक ही होना चाहिए। कुछ ग्रन्थो मे उनका प्रारम्भ अगहन से कराया गया है।[1] सयोग के बारहमासो का प्रारम्भ कार्तिक से किया गया है। वर्षा ऋतु के समाप्त हो जाने के कारण अवरुद्ध मार्ग खुल गये है और उन विरहिणी नायिकाओं के पति जो वर्षा के कारण घर लौटने मे असमर्थ रहे थे, अब घर लौट आये हैं। 'षट्ऋतु-वर्णन को प्रारम्भ करने की ऋतु ग्रीष्म ही अधिक मानी गई है तथापि कही-कही वर्षा या बसन्त से भी प्रारम्भ किया गया है। पहले प्रकार मे 'इन्द्रावती' का ऋतु-वर्णन तथा दूसरे प्रकार मे 'पद्मावत' का ऋतु-वर्णन आते है।

वर्णित-विषय—अपभ्रंश की 'बारहमासा' सज्ञक रचनाओ मे नायिकाओ के विरह वर्णन की व्यंजना का ही प्रयत्न है। विद्यापति की नायिका पति के परदेश चले जाने पर असाढ आते ही उसकी खोज मे जोगिनवेश बनाकर उसके पास जाने की बात कहती है—

मोर पिया सखि गैल दूर देस
जोवन दए गैल साल सनेस
मास असाढ उनत नव मेघ।
(देखिए राज० खोज रिपोर्ट ४, पृष्ठ १६१-१६३ तक)
पिया विसलेस रहओं निरथेध
कौन पुरुष सखि कौन-सो देस
करब माय तहाँ जोगिन बेस।
(पदावली, पृष्ठ २७१)

कबीर ने 'बारहमासी' मे प्रत्येक माह के साथ चित्त के भ्रम निवारण एव परब्रह्म को ध्यान करने का उपदेश दिया है—

---

[1] नेमिनाथ तथा राजमती के कुछ बारहमासे जिनका उल्लेख परम्परा के प्रकरण में होगा, श्रावण से प्रारम्भ होते है। कुछ चैत तथा कुछ अगहन से भी होते हैं।

बारहमासी सुनो हो सन्तौ, एक सुरति ल्यौ ल्याइये।
पारब्रह्म कौ ध्यान धरिये सतगुरु माथौ नाइये।

असाढ़— असहाडा आपा आगम बाडी मुनिजन पार न पावई।
काम कोटि मिटाइ सतगुर गम्य आगम लखावई।।

(१५वाँ त्रैवार्षिक खोज विवरण पृ० १८५ से उद्धृत)

सूफी कवियों ने अपने प्रेम-कथा काव्यों में वियोग वर्णन के लिए बारहमासे लिखे है। 'पद्मावत' मे नागमती विरह वर्णन के अन्तर्गत बारहमासा अत्यन्त भाव-पूर्ण एवं हृदयग्राही है। प्रत्येक माह का वर्णन विप्रलभ शृगार के उद्दीपन की दृष्टि से हुआ है। नागमती विरह मे हुई अपनी दुरवस्था का वर्णन करती है। विरह उसे भस्म किए दे रहा है। वह विरह जन्य दुख के आवेग से पशु और पक्षियो को भी अपने प्रति सहानुभूति के लिए आमन्त्रित कर उठती है। वह काले रंग के भौरा और काग से अपना सन्देश पिय तक ले जाने की प्रार्थना करती है क्योंकि उसे आशा है कि यह भुक्त भोगी (विरह से जलकर इनका भी रग काला पड़ गया है।) है, मेरे सदेश का पिय तक अवश्य पहुँचा देंगे। सदेश भेजने की यह प्रणाली सभी सूफी कवियों द्वारा अपनायी गई है। 'चित्रावली' में भी परेवा के हाथ पाती भेजने का प्रसग है, जहाँ चित्रावली उस परेवा से अपने बारह महीनो के विरह का वर्णन करती है। 'विरह मजरी' मे नन्ददास की गोपियों ने चन्द्र को दूत बनाकर अपने बारह महीनों की विरह दशा का वर्णन कृष्ण से कहने, द्वारिका भेजा है। केशवदास की कविप्रिया के 'बारहमासे' की नायिका प्रत्येक माह की कामोद्दीपक वस्तुओं एव व्यापारो का चित्रण करके प्रियतम को जाने से रोके रखती है—

लोक लाज तजि राज रंक निरंसक विराजत।
जोइ भावइ सोइ कहत करत पुनि हास न लाजत।
घर घर जुवती जुवन जोर गहि गाठिन जोरहि।
वसन छीनि मुख मीडि आंजि लोचन तिन तोरहि।
पटवास सुवास अकास उडि भुव मंडल सब मडिये।
कह केशवदास विलास निधि फागुन फागुन छडिये।

(कविप्रिया छन्द २६६)

'अहमदी बारहमासी' मे ऋतु वर्णन, विरहिणी की व्याकुलता एवं उसकी शरीर की अवस्था का वर्णन प्रत्येक मास के आधार पर किया गया है—

दोहा— रितु असाढ पिय दरस विनु काया भई अचेत।
प्रीति पुरातन कथ की क्यों हू चैन न देत।।१।।

+ + +

कुण्डलियाँ आहि काहि बूझौ सखी कथ मिलन कब होइ।
पिय पिय रटि रसना थकी नैन थके मग जोइ।
नैन थके मग जोइ होइ पीतम बिनु मरना।
सुख सम्पत्ति धन प्राण कहा ले मेरे करना।
जा बिनु बौरी हूँ भई चित्त मे उपज्यौ चाव।
ता बालम की प्रीति करि कब जो कहो जो आव ॥५॥

(अहमद बारहमासी हस्त० प्रति)

अहमद ने बारह महीनों का वर्णन करके 'अधिक मास मिलन को' लिख कर विरहिणी के सयोग का चित्र खींचा है जिसमे वह पूर्ण सुखी है उसका प्रियतम अपने आने के साथ समस्त सुख लाया है।

लालदास बरेली वाले, त्रोधा कवि एवं ब्रह्मानन्द ने कृष्ण के विरह में गोपियो की बारहमासी लिखी है। गोपियो के विरह से सम्बन्धित होने के कारण ये बारहमासियाँ बडी ही लोकप्रिय हुई है—

पहिला महीना असाढ लागा बरषा रितु आई।
प्रीतम हमरे श्याम सलौने पाती भिजवाई।
कहो वे कैसे नहिं आये।
ऐसे चतुर सुजान श्याम चेरी ने बिरमाये।
डारि करि जादू की फाँसी।
श्री राधा गोपी त्यागि करी घरबारी कुबिजा सी।

(लालदास बारहमासी हस्त० प्रति)

चैत्र चतुर्भुज ना आये राधा जी करसि विचार।
लावे को पीउ नी बधावणी आपु एकावलि हार ॥२॥
चंदन चीर न भावै सुहावै न सही पर बात।
दिवस गयौ अति दोहिलौ भार्वी लेबो रात ॥३॥

(ब्रह्मानन्द—रसिक सुरती मास हस्त० प्रति)

लालदास की बारहमासी ब्रज के गाँव मे आज भी गाई जाती है और उसकी अन्तिम टेक 'श्री राधा गोपी त्यागि करी घरबारी कुब्रिजा सी' प्रत्येक माह के अन्त मे दुहरती है। टेक के दुहरने वाली अनेक बारहमासी सभा के सग्रह मे लेखक ने देखी हैं जिनका उल्लेख आगे के प्रकरण मे हुआ है।

बारहमासा के वर्णन के लिए जिन छन्दों का प्रयोग हुआ उनमे दोहे, चौपाई, सवैया एवं छप्पय प्रमुख है। साधारणत कवियो ने एक-एक छन्द में ही एक-एक माह की कथा का वर्णन किया है। जायसी एव अन्य सूफी कवियो ने एक मास के

र्णन के लिए ७ चौपाई एव एक दोहे का विधान किया है। सुन्दरदास, नरहरि, ालदास, केशवदास, सुन्दर कवि एवं ब्रह्मानन्द ने बारह महीनो के लिए १२ छन्दो ा ही क्रम स्वीकार किया है किसी-किसी मे अधिक मास मिलन का होने से छन्द ख्या १३ मिलती है। अहमद कृत बारहमासी मे प्रत्येक माह के वर्णन के लिए दोहा, १ सोरठा, १ अरिल्ल, ५ चौपाई, १ कुण्डलिया, १ दोहा एव १ कवित्त स प्रकार ७ छन्दो का विधान किया है। उसकी कुल छन्द सख्या ६१ है।

विशेषताएँ—बारहमासा काव्यरूप की विशेषताएँ सक्षेप में ये है—

१—उद्दीपन के लिए ही प्रयुक्त हुआ। प्रकृति वर्णन रूढ है। नई उद्भावनाओ के लिए कोई प्रयत्न नही है। इस काव्यरूप का प्रयोग वियोग वर्णन के लिए ही हुआ। कुछ कवियो ने इसका प्रयोग सयोग पक्ष मे सयोग जन्य आनन्द की अभिवृद्धि के लिए भी किया।

२—इसका प्रारम्भ साधारणत आषाढ से किया जाता है। इसके अपवाद भी मिलते है, कही यह चैत तथा कही अगहन से भी प्रारम्भ होता है।

३—मिलन के १२ महीनो के चित्रण के पश्चात् सयोग का वर्णन भी यदा-कदा मिलता है।

४—सन्तो ने इसे ज्ञानोपदेश के लिए ग्रहण किया।

५—साधारणत एक माह के वर्णन के लिए एक छन्द लिखने का नियम था। लेकिन कुछ कवियो ने एक माह के वर्णन के लिए अनेक छन्दो का विधान किया है।

१६—संख्या परक काव्य-रूप

परिभाषा एवं व्याख्या—"जो ग्रन्थ एक ही छन्द मे लिखे जाते है और उनकी संख्या उनमे प्रयुक्त छन्दों की सख्या के आधार पर दी जाती है, सख्यापरक काव्यरूप के अन्तर्गत आते है।" इस प्रकार की रचनाएँ मुक्तक कोटि की होती है। किसी विशेष अवसर अथवा विषय से सन्बन्धित छन्दो का इसमे सकलन होता है। प्राय. प्रयुक्त छन्द अथवा विषय के साथ छन्द सख्या जोड कर ग्रन्थो की सज्ञाएँ दी गई है—यथा—दोहा शतक, सवैया छत्तीसी एव भ्रमर बत्तीसी, तिल शतक आदि। कवियो के नाम के साथ संख्या का समावेश करके भी सज्ञाएँ दी गई है यथा—डूँगर बावनी, जमाल पचीसी, छीहल बावनी। कही-कहीं सिर्फ सख्या ही ग्रन्थ की सज्ञा का काम देती है यथा—कबीर कृत 'चौंतीसा', जटमल कृत 'बावनी', बालचन्द्र कृत 'बत्तीसी' आदि। इन सज्ञाओ के इन रूपो को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस काव्यरूप में विषय छन्द आदि को प्रमुखता न दी जाकर छन्द सख्या क

प्रमुखता दी जाती है। जिन ग्रन्थों मे विषय को प्रमुखता दी गई है यह इस काव्य-रूप के संज्ञा से साम्य रखते हुए भी अन्य काव्यरूपों के अन्तर्गत आ जाते है। चतुर्थ अध्याय मे इसी रूप के प्रकरण मे ऐसे अनेक अष्टकों एव 'बावनी' संज्ञक रचनाओ पर विचार हो चुका है।

आलोच्यकाल के इस कोटि के ग्रन्थों मे निम्नलिखित संज्ञाएँ प्राप्त होती है—'अष्टक, पच्चीसी, बत्तीसी, चौतीसा, छत्तीसी, पंचशिका, बावनी, चौवनी, चौहत्तरी, चौरासी, शतक एवं सतसई। नीचे इन सब कोटियों की रचनाओ पर छन्द एवं विषय के दृष्टिकोण से विचार किया जावेगा।

अष्टक—स्तुति के लिये लिखे गये अष्टकों के अतिरिक्त सन्त कवियों ने ज्ञान, गुरु महिमा, भ्रम निवारण, गुरु कृपा, गुरु उपदेश, नाम महिमा आदि विषयो के प्रतिपादन के लिए भी अष्टकों की रचना की। दादू पन्थी सन्त सुन्दरदास ने ज्ञान वर्णन के लिए इस प्रचलित प्रकार को अपनाकर इसमें संगीत तत्त्व का समावेश किया। उनके द्वारा लिखे गए इन अष्टकों मे एक टेक प्रारम्भ से अन्त तक सर्वत्र दुहराई है। यह अष्टक आज भी दादू द्वारों में बड़े चाव से गाए जाते है। उनके ग्रन्थ 'भ्रम विध्वंश अष्टक' में दादू दयाल ने जिस प्रकार 'भ्रम का निवारण करके ज्ञान का प्रकाश किया' उसका वर्णन है। गुरु कृपा से आनन्द देने वाले आत्मज्ञान का प्रस्फुरण हुआ—"दादू का चेला भरम पछेली सुन्दर न्यारा है खेला" टेक है। 'गुरु कृपा अष्टक' मे गुरु की कृपा का वर्णन है—'दादू आया शब्द सुनाया, ब्रह्म बताया अविनासी' टेक है। 'गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक' मे गुरु के उपदेश द्वारा शिष्य के उद्धार का वर्णन है जिसमे 'दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम है' टेक है। 'रामाष्टक' मे ईश्वर के अविकारी एव एकरस रहने वाले स्वरूप का वर्णन किया है—'तुम सदा एकरस रामजी रामजी' टेक है। 'आत्मा अचलाष्टक' ग्रन्थ मे आत्मा की अचलता का वर्णन विभिन्न लौकिक उदाहरणों द्वारा किया गया है। 'पीर मुरीद अष्टक' ग्रन्थ मे पीर द्वारा मुरीद को 'मारफियत' की बताई राह का वर्णन किया गया है। पीर मुरीद को मंजिल तक पहुँचा कर चुप हो जाता है। 'जो तुम तालिब होइगा समुझि लेगा सैन' टेक है। 'ज्ञान झूलना अष्टक' में उपनिषदों के 'नेति-नेति' दार्शनिक ज्ञान प्रणाली की व्याख्या हुई है।

इस प्रकार इन अष्टकों मे ज्ञान प्रतिपादन के साथ-साथ ईश्वर एवं गुरु की महिमा का भी पर्याप्त रूप से गान हुआ है। इन अष्टकों में ८ से लेकर १२ तक छन्दों का विधान मिलता है। जहाँ छन्द संख्या ८ है वहाँ सब छन्द एक ही प्रकार के है। कहीं-कहीं प्रारम्भ में एक दोहा तथा ८ छन्द रखे गये है। कहीं प्रारम्भ में दो दोहा दिये गये हैं। 'गुरुदेव महिमा अष्टक' मे २ दोहा प्रारम्भ मे फिर

५ भुजग प्रभात छन्द तथा २ दोहा अन्त मे दिये गये है। 'गुरु कृपा अष्टक' में तो छन्दो का क्रम और भी जटिल है। उसमें प्रारम्भ मे दो दोहो के पश्चात् एक त्रिभगी छन्द तथा एक दोहे का क्रम रखा है। अन्त में एक छप्पय भी दिया गया गया है। टेक सर्वत्र त्रिभगी छन्द की ही दुहरती है। इस प्रकार इसमें छन्द सख्या १८ है जिसमें ८ त्रिभगी छन्द, ९ दोहे तथा १ छप्पय है। इन अष्टकों में ग्रहीत प्रधान छन्द बड़े-बड़े हैं, 'आत्मा अचलाष्टक' मे तो 'कुण्डलिया' छन्द रखा गया है।

रहीम ने ग्रन्थ 'मदनाष्टक' मे कृष्ण की शोभा का वर्णन किया है। कृष्ण की मनोहारी रूपराशि जो गोपियो के हृदय मे काम भावना को जागृत कर देने वाली है, उसी शोभा का एक सखी दूसरी से वर्णन कर रही है—

मनसि मय मितात्व आय कै वासु कीया।
तनधन सब मेरा मान ते छीन लीया।
अति चतुर मृगाक्षी देखते भौन भागी।
मदन सिरसि भूयः क्या बला आनि लागी ॥१॥
(ना० प्र० सभा ११वी त्रै० खोज रिपोर्ट, पृष्ठ ३८०)

इस 'मदनाष्टक' मे अन्तिम पक्ति की टेक सर्वत्र दुहरती है। रहीम ने अपने इतर 'मदनाष्टक को हिन्दी एव फारसी दोनों भाषाओं मे लिखा। ध्रुवदास कृत 'आनन्दाष्टक' ग्रन्थ मे उस प्रेमरस के आनन्द का वर्णन हुआ है जो बृन्दावन में नित्य नवीन रूप धारण करता है और जिसके समक्ष बैकुण्ठ के भोग भी फीके प्रतीत होते है। इनके दूसरे ग्रन्थ 'भजनाष्टक' मे मधुर रस की महत्ता का वर्णन किया गया है जिसके समक्ष अन्य भजन आदि सब व्यर्थ है। उसके अतिरिक्त और कोई सुख है ही नही—

यापर नाहिन भजन कछु नाहिन है सुख और।
प्रेम मगन विलसत दोऊ परम रसिक सिरमौर।
(ब्यालीस लीला—भजनाष्टक, पृष्ठ ६३)

इन दोनो ग्रन्थो मे ९, ९ छन्दों का क्रम रखा गया है। अन्तिम दोहा अष्टक के पाठ के फल से सम्बन्धित है।

'अष्टक' सम्बन्धी इन सभी रचनाओ को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इनमे अधिकांशत: छन्द सख्या आठ से अधिक रखी जाती है। प्रधानत: आठ छन्दों मे वर्ण्य विषय का तथा अधिक छन्दो मे ग्रन्थ के पाठ का माहात्म्य अथवा उसके लिखने का कारण आदि का वर्णन रहता है। संस्कृत के अष्टक स्तुतिपरक होते थे। स्तुति के समय गान किए जाने के कारण उनमे टेक दुहरती थी। आलोच्य

काल के ज्ञान एव श्रृ गार वर्णन वाले ग्रष्टकों में भी उसी आधार पर टेक दुहरती हुई दिखाई देती है।

पचीसी—'पचीसी' संज्ञक दो रचनाएँ जमाल कृत 'जमाल पचीसी' तथा कादिर कृत 'इश्क पचीसी' मिलती है। इन दोनो का ही वर्ण्य विषय श्रृ गार है। जमाल के दोहों का 'जमालमाला' एवं 'जमाल दोहावली' नामो से दो बार प्रकाशन हो चुका है।[1] सम्भव है जिस 'जमाल पचीसी' का मिश्र बन्धुओ ने उल्लेख किया है, वह इसी दोहावली के अन्तर्गत आए हुए दोहो मे से २५ दोहों का संग्रह हो। जमाल के दोहों के एक अन्य सग्रह का ना० प्र० सभा की ११वीं खोज रिपोर्ट में उल्लेख हुआ है।[2] जमाल के दोहों मे पहेलियो का समावेश ही प्रधानतः दिखाई देता है—

मालिन बेचति कमल को, काहे बदन छिपाय।
या में अचरज कौन है, कह जमाल समुझाय।१०।
सजि सोरह बारह पहिर, अटा चढी इक बाल।
उतरी कोयल बैन सुनि, कारण कवन जमाल।१६।
(जमालमाला-पन्नालाल भैय्या द्वारा प्रकाशित)

कादिर कृत 'इश्क पचीसी' मे श्रृ गार के २५ दोहे है जिसे हिन्दी विद्या-पीठ के श्री उदयशंकर शास्त्री ने ब्रजभारती सम्वत् २०१४ के तृतीय अक में प्रकाशित कराया है।

बत्तीसी—बत्तीसी संज्ञक चार रचनाएँ प्राप्त होती है—नरपति कृत 'नन्द बत्तीसी' केशवदास ब्रजवासी कृत 'भ्रमर बत्तीसी', बालचन्द्र कृत 'बत्तीसी' तथा दामोदर स्वामी कृत 'नेमि बत्तीसी'। इन रचनाओं की संज्ञा से ही इनके विषय का आभास हो जाता है। ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध उनके विषय को स्पष्ट कर देता है। बाल-चन्द जैन की रचना की संज्ञा 'बत्तीसी' ही दी गई है। उसमें ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करके उसके ध्यान करने का उपदेश दिया गया है।[3] 'नेमि बत्तीसी' में भक्त कवि के हृदय की भावनाओं का प्रकाशन हुआ है। कवि के हृदय मे वृन्दावन धाम

---

[1] 'जमालमाला' का प्रकाशन पन्नालाल भैय्या ने लहरी प्रेस बनारस से सन् १६१५ में कराया। 'जमालमाला' के दोहो मे कुछ और दोहे मिलाकर जोध-पुर के महावीरसिंह गहलौत ने उसे 'जमाल दोहावली' के नाम से प्रकाशित कराया है।

[2] देखिए—खोज रिपोर्ट पृष्ठ २५१।

[3] देखिए—राजस्थानी खोज रिपोर्ट भाग ४, पृष्ठ १०७।

की बडी उत्कट अभिलाषा है। वृन्दावन मे नित्य वास करके यह इन नियमों का पालन करना चाहता है—

श्री हरिवश कृपाल लाल पद पकज ध्याऊँ
वृन्दावन मे बसौ सीस रसिकन को नाऊँ।
अँचऊँ जमुना नीर जीभ राधापति गाऊँ।
नैनन निरखौ कुँज रेनु या तन लपटाऊँ।
कहूँ झूठ न बोलौ मत कहीं निन्दा सुनौ न कान।
नित परयुवती जननी गनौ परधन गरल समान।

(नेमि बत्तीसी हस्त० प्रति०)

जैसा कि अन्य सख्यापरक ग्रन्थो मे होता है इस सज्ञा की रचनाओं में भी छन्द सख्या ३३ मिलती है। ३२ छन्द विषय वर्णन के तथा एक अन्तिम छन्द परिचय, रचना काल अथवा ग्रन्थ के पाठ के माहात्म्य के लिए होता है। छन्द प्रारम्भ से अन्त तक एक से ही मिलते है।

चौंतीसा—इस प्रकार की एक रचना कबीर की ही मिलती है जो उनकी इसी प्रकार की अन्य रचना 'ज्ञान चौंतीसा' से भिन्न कही जाती है। 'ज्ञान चौंतीसा' मे तो बारहखड़ी की शैली मे ज्ञान का वर्णन है। प्रस्तुत ग्रन्थ में भी ज्ञान-उपदेश ही वर्णित है। ग्रन्थ की छन्द सख्या जैसा कि ग्रन्थ के नाम से ज्ञात होता है चौंतीस अथवा पैंतीस होनी चाहिए लेकिन प्राप्त प्रति की छन्द सख्या ७५ है जिससे इसमे अन्य कवियों द्वारा अपनी रचना का समावेश किया जाना सिद्ध होता है।

छत्तीसी—इस प्रकार की रचनाएँ जैन कवियो द्वारा ही लिखी गई। समय सुन्दर की ७ रचनाए इसी सज्ञा की प्राप्त होती है। इन रचनाओ के नाम से ही इनके विषय एव स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। 'क्षमा छत्तीसी' में क्षमा का, 'कर्म छत्तीसी' मे कर्म का, 'पुण्य छत्तीसी' मे पुण्य का, 'सन्तोष छत्तीसी' मे सन्तोष का महत्त्व बताया गया है। 'दुष्काल वर्णन छत्तीसी' मे दुष्काल का सुन्दर मार्मिक वर्णन है, 'सवैया छत्तीसी' मे उपदेश सम्बन्धी ३६ सवैया है। कुशल लाभ की 'स्थूलि भद्र छत्तीसी' रचना का राजस्थानी चतुर्थ खोज रिपोर्ट मे उल्लेख हुआ है। इस रिपोर्ट के आधार पर इस रचना मे स्थूलि भद्र के तप एवं शील का वर्णन हुआ है।[१]

इन छत्तीसी सज्ञक रचनाओं की परम्परा जैन कवियों मे बाद मे भी प्रचलित रही और अनेक उपदेश ज्ञान, चरित्र, करुणा आदि पर छत्तीसी संज्ञक रचनाओं की रचना हुई। 'छत्तीसी' संज्ञक रचनाओं मे अधिकतर छन्द संख्या ३३

[१] देखिए रिपोर्ट, पृ० १०५।

होती है। प्रारम्भ के ३६ छन्द एक प्रकार के तथा अन्त का छन्द बदला हुआ होता है।

पंचाशिका—बनारसीदास कृत 'वेद निर्णय पचाशिका' एव हेमराज कृत पचाशिका वचनिका' इस सज्ञा की दो रचनाएं मिलती है। बनारसीदास कृत 'पचाशिका' सज्ञक ग्रन्थ में जैन मतानुसार वेदों की व्याख्या की गई है। कवि ने ग्रन्थ का वर्ण्य विषय ग्रन्थ के प्रारम्भ मे इस प्रकार दिया है—

नमो रिषभ स्वामी प्रमुख जिन चौबीस महल्ल।
गुरु चरन चित भाषौं मुख भाषौ वेद विरतल।

उनके मतानुसार वेदों का स्वरूप यह है—

सवैया—

प्रथम पुनीत प्रथम मानु जोग वेद जामे त्रेसठ सिलका महापुरुष की कथा है।
दूजा वेद करमानु जोग जाके गरभ मे बरनी अनादि लोकान्त लोक चिति पथा है।
चरनानु जोग वेद तीसरो प्रगट जामे मोष पंथ कारण अपारसिन्धु मथा है।
चौथा वेद दरवानु जोग जामें दरव के षट भेद करम उछेद सरवथा है।
(ना० प्र० सभा १३वी खोज रिपोर्ट, पृष्ठ १४७)

यह चारो वेद गुप्त हो गए इसीलिए ससार मे ऋग्वेद आदि का प्रचार हुआ। कवि उन्ही गुप्त वेदों के वर्णन की बात कहता है। यह वर्णन उन्हीं के लिए है जिनके हृदय से मिथ्या रूपी अन्धकार समाप्त हो गया है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ तथा अन्त मे दो-दो दोहे और बीच में पचास सवैये है। इस प्रकार कुल छन्द सख्या ५४ है। दूसरा ग्रन्थ 'पंचाशिका वचनिका' जैन कवि हेमराज की रचना है जिसका उल्लेख विनोद भाग २ पृष्ठ ४२० पर हुआ है लेकिन ग्रन्थ की प्रति प्राप्त नही हो सकी है। अत. उसके विषय पर निश्चय पूर्वक कुछ नही कहा जा सकता है। सज्ञा के आधार पर यह अनुमान होता है कि उसमे जैन उपदेश परक ५० वचनों का सग्रह हुआ होगा।

बावनी—यह प्रकार कवियों को बड़ा ही प्रिय रहा है। इस सज्ञा के ग्रन्थ दो स्वरूपों को ध्यान में रख कर लिखे जाते रहे है—१—बाराखड़ी, २—संख्यापरक काव्य। बारहखड़ी रूप की बावनी सज्ञक रचनाओं का उल्लेख पीछे हो चुका है। यहाँ उन्ही रचनाओं का उल्लेख है जिनमे छन्दो की संख्या के आधार पर ग्रन्थ की सज्ञा दी गई है।

सर्वप्रथम रचना 'डूंगर बावनी' डूंगर नाम के जैन कवि की रचना है। इस ग्रन्थ में नीति का वर्णन है। ऐसे छप्पयो की संख्या ५२ है। छीहल कवि की

'बावनी' संज्ञक रचना का उल्लेख 'राजस्थान के जैनशास्त्र भण्डारों की सूची भाग ३' मे हुआ है। ग्रन्थ की प्रति देखने को नही मिल सकी, लेकिन यह ज्ञात हुआ है कि इसमे नीति के ५२ छप्पय है।[1] सिद्धराम के बावनी ग्रन्थ का उल्लेख तृतीय त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट मे हुआ है। इस ग्रन्थ मे ज्ञान-वैराग्य का ही वर्णन है।[2] दुरसा कृत 'किरतार बावनी' ग्रन्थ प्राप्त नही हो सका है लेकिन ग्रन्थ की संज्ञा से ऐसा ज्ञात होता है कि उक्त ग्रन्थ मे ईश्वर के गुणो का गान हुआ होगा और यह ग्रन्थ रचयिता के अन्य ग्रन्थ 'विरुद छिहत्तरी' के समान ही सख्या परक रहा होगा। बनारसीदास जैन का 'सवैया बावनी' ग्रन्थ है जिसमे कवि ने सवैया छन्द मे धर्म सम्बन्धी उपदेश दिये है।[3]

ग्रन्थ के अन्त मे कवि ने ज्ञाताओ से इन बावन सवैयो मे वर्णित ज्ञान मे से तत्त्व को ग्रहण करने की प्रार्थना की है। भीषजन कृत 'सर्वज्ञ बावनी' ग्रन्थ मे ईश्वर व गुरु आदि की भक्ति की श्रेष्ठता बताते हुए उसे भवसागर से पार उतारने का माध्यम बताया गया है।[4]

बावनी संज्ञक इन रचनाओं में विभिन्न छन्दों का विधान हुआ है और इनमें नीति एवं उपदेश ही प्रधानत. वर्णित हुए है। कुछ ग्रन्थों मे छन्द सख्या दी हुई सख्या से १ अथवा २ अधिक प्राप्त होती है। अग्रदास कृत 'हितोपदेश उपाख्यान बावनी' जिसमे छन्दो की सख्या ५२ न होकर ६८ है इसका इतर नाम कुण्डलिया है। अतः उसका विवेचन छन्द-गीत-परक काव्यरूप के प्रकरण मे किया गया है।

चौवनी—इस सख्या की एक ही रचना ध्रुवदास कृत 'प्रीति चौवनी' प्राप्त हुई है। इस ग्रन्थ मे ध्रुवदासजी ने 'रसरीति' का बखान करते हुए राधा-कृष्ण के नित्य नवीन प्रेम का वर्णन किया है। कवि ने यह दिखाया है कि जब तक विषयों की ओर मन आकृष्ट होता रहता है तब तक इस 'रसरीति' के प्रति आकर्षण नही होता। उस समय तक ससारी व्यक्ति उस झूठे विषय-वासना-युक्त प्रेम को कचन समझ कर ग्रहण किये रहता है—

जहँ लगि लालच विषय को, सो न होय ध्रुव प्रेम।
तासो कहा बसाइ ध्रुव, पीतल सो कहैं हेम॥

---

[1] डा० शिवप्रसादसिंह—सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य, पृष्ठ १७१।

[2] देखिए रिपोर्ट सख्या १७४, पृष्ठ २२२।

[3] देखिए ना० प्र० सभा, १३वी खोज रिपोर्ट, पृष्ठ १४३-१४६।

[4] देखिए ना० प्र० सभा, १४वी खोज रिपोर्ट, पृष्ठ १५६।

पलट परत ताकी दशा, जो सनेह रंग रात।
और अंग मिटि कै सबै, नैना ही ह्वै जात॥
(ध्रुवदास कृत ब्यालीस लीला—प्रीति चौवनी, पृष्ठ ५८)

इस ग्रन्थ में इसी 'प्रेमरस' का वर्णन ५२ दोहों में हुआ है। बीच मे एक कुण्डलिया है। ५३ वे तथा ५४ वे दोहे मे ग्रन्थ को सुनने का फल दिया गया है। इस प्रकार कुल छन्द सख्या ५५ है जिसमें ५४ दोहे तथा एक कुण्डलिया है।

चौहत्तरी—इस संज्ञा की भी एक ही रचना दुरसाचारण कृत 'प्रताप चौहत्तरी' प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम कहीं-कहीं 'विरुद छिहत्तरी' भी दिया गया है। इस ग्रन्थ में अकबर की नीति का वर्णन करते हुए मेवाड के महाराणा प्रतापसिंह की आन, मर्यादा एवं प्रण के निर्वाह करने का सोरठियो दोहों में वर्णन हुआ है—

अकबर गरब न आण, हीदू सह चाकर हुआ।
दीठौ कोई दिवांण, करतौ लटका कटहड़े॥१॥
लोपै हीदू लाज, सगपण रोपै तुरकसूं।
आरज-कुल री आज, पूंजी राण प्रतापसी॥५॥
(राज० भाषा और साहित्य पृष्ठ १४० से उद्धृत)

ग्रन्थ में छन्दों की सख्या की न्यूनता एवं अधिकता के कारण ही इसकी दोनो सज्ञाएँ प्राप्त होती है।

चौरासी—हित हरिवंश कृत 'हित चौरासी' ही अकेली रचना इस संज्ञा के साथ प्राप्त होती है। 'हित चौरासी' मे हितहरिवंश ने राधा-कृष्ण का केलि-वर्णन अपने सम्प्रदायों के सिद्धान्तो के आधारों पर की है। ग्रन्थ मे ८४ पद है जो विभिन्न राग-रागिनियों में लिखे गये हैं।

शतक—'शतक' सज्ञक रचनाएँ संस्कृत साहित्य के समान हिन्दी मे भी पर्याप्त मात्रा मे लिखी गई। हितकृष्णचन्द्र कृत 'आशा शतक', श्री भट्ट कृत 'युगल शतक', रूपचन्द कृत 'परमार्थी दोहा शतक', मुबारक कृत 'तिल शतक', 'अलक शतक', सारंगधर कृत 'भाव शतक' तथा ध्रुवदास कृत 'तीन शतक'[1] इस प्रकार कुल ९ ग्रन्थ इस संज्ञा के आलोच्यकाल में प्राप्त होते है। इन ग्रन्थों की संज्ञा से ही उनमे वर्णित विषय का ज्ञान हो जाता है। 'आशा शतक' तथा 'युगल शतक' तो भक्त कवियो की रचना होने के कारण राधा-कृष्ण केलि के वर्णन से सम्बन्धित हैं। 'युगल शतक' मे युगल अर्थात् 'राधा-कृष्ण' की केलि के पदों का संग्रह है।

[1] भजन सत, वृन्दावन सत तथा शृंगार सत।

इस ग्रन्थ में सिद्धान्त सुख, सेवा सुख, सहज सुख, उत्साह सुख आदि का पदो मे वर्णन हुआ है। ग्रन्थ मे एक दोहे के पश्चात् एक पद का क्रम रखा गया है। सर्वप्रथम एक दोहे मे आभास देकर पद मे विषय को स्पष्ट किया गया है— ग्रन्थ मे कुल १०० पद तथा १०१ दोहा है। अन्तिम एक दोहा ग्रन्थ के रचनाकाल का उल्लेख करता है।

रूपचन्द एक जैन कवि थे। इन्होने अपने शतक मे उपदेश परक सौ दोहो का संग्रह किया है। दोहों का विषय जैन धर्म से सम्बन्धित उपदेश है। इन्होंने अपने उपदेशों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए सामान्यजन-जीवन के उदाहरणों द्वारा उन्हे समर्थित कराया है। मुबारक कृत अनेक शतक लिखे जाने का उल्लेख मिलता है लेकिन इनके दो ग्रन्थ ही प्राप्त हुए है। 'तिलशतक' मे नायिका के बदन पर के तिल से उसके मुख की बढी हुई शोभा का विभिन्न अलंकारो की सहायता से और 'अलक शतक' मे नायिका के बालो का एव उनके फैलकर मुख के चारों ओर लटक जाने से बढी हुई शोभा का वर्णन हुआ है।

शारगधर कृत 'भाव शतक' शतक संज्ञक एक अन्य रचना है। इस ग्रन्थ मे शृंगार रस के भावपूर्ण दोहो का संग्रह है। कवि किसी नायिका की किसी विशेष परिस्थितिवश बनाई गई मुद्राओं एव भावो का एक दोहे में प्रश्न रूप मे बखान करता है और दूसरे दोहे मे उसका उत्तर देता है—

> आतुर नायक काम बस, बसन उघारत बाम।
> मुग्धा मुख नीचत कियो, कहि सुजान वेहि काम ॥१॥

इसी मुद्रा का कारण कवि स्वय इस प्रकार वर्णन करता है—

> सुरत समर कारण इहाँ, आयो आतुर कन्त।
> मनु मुगधा बूझत कुचनि, जुझहु काहे बलवन्त ॥२॥
>
> (राज० चतुर्थ खोज रिपोर्ट, पृष्ठ ७६ से उद्धृत)

ग्रन्थ की रचना कवि ने अज्ञानियो को सुजान बनाकर राज-समाज मे आदर प्राप्त कराने के लिए की है साथ ही मन को सरस करना भी कवि को अभीष्ट है। इस ग्रन्थ मे कुल दोहा संख्या १२६ है। प्रश्न और उत्तर का क्रम अन्त तक चलता है।

ध्रुवदासजी ने अपने ग्रन्थ वृन्दावन सत (शतक) मे वृन्दावन के रसरंग-सुख का वर्णन किया है। उनके विचार से यह सुख बिना राधा की कृपा के वर्णन नही किया जा सकता है। जब प्रिया के चरणो का बल मिला तभी कवि इसको वर्णन करने में सफल हुआ है—

प्रिया चरन बल आनि कैं, बाढ्यो हिये हुलास।
नेई उर में आनि है, बृन्दा विपिनि प्रकास॥
(व्यालीस लीला—बृन्दावन सत लीला, पृष्ठ १३)

इसमे बृन्दावन की भूमि, वृक्ष, कुंज, वेलि, लता, पशु, पक्षियों का वर्णन करके राधा-कृष्ण की केलि एवं विहार का वर्णन किया गया है। बृन्दावन वास को कवि ने अत्यन्त ही श्रेष्ठ ठहराया है। वह उस वास के लिए सबको छोड़ देने का परामर्श देता है। ग्रन्थ दोहों मे लिखा गया है जिनकी सख्या ११६ है।

'भजन सत लीला' ग्रन्थ मे भजन करने की विधि का वर्णन है। मज्जन, उबटन, तिलक आदि के पश्चात् राधा के तन की सेवा करने मे ही युगलमूर्ति की सेवा का अधिकारी हो सकता है। सेवा की रीति वर्णन के अनन्तर युगलमूर्ति को प्रेम करने का ही मन को उपदेश दिया गया है—

रे मन रसिकन सग बिनु, रच न उपजै प्रेम।
या रस को साधन यहै, और करौ जिनि नेम॥
(वही पृष्ठ ७०)

और इस प्रेम को प्राप्त करने के लिए भजन की आवश्यकता पर बल दिया गया है—

तब पावै रस सार, शुद्ध भजन आवै हिये।
यातै कह्यौ विस्तार, भजन नसैनी प्रेम की॥
(वही, पृष्ठ ७७)

दोहा तथा सोरठा ११२ तथा १ कुण्डलिया कुल ११३ छन्दो मे यह ग्रन्थ लिखा गया है।

'भजन शृंगार सत लीला' को तीन शृंखलाओ मे विभक्त किया गया है प्रथम मे ४३, द्वितीय मे ४० तथा तृतीय मे ४२ छन्द है। प्रथम शृंखला मे लाडली रूप का, द्वितीय मे प्रेम का एवं तृतीय मे रति-विलास का वर्णन है। कवि ने स्वय प्रत्येक शृंखला के पूर्व उसके विषय का उल्लेख किया है—

प्रथम शृंखला माहि कछू, कह्यौ लाडली रूप।
निरखि लाल सखि रहे छकि, सो छवि अतिहि अनूप॥
(वही, पृष्ठ ७८)

द्वितिय शृंखला सुनत ही, श्रवननि अति सुख होइ।
प्रेम रतन गुन रूप सो, मानो राखी पोइ।
(वही, पृष्ठ ६०)

अब सुन तीजी शृंखला, रति विलास आनन्द ।
तेहि रस मादिक मत्त रहै, विवि वृन्दावन चन्द ।।
(वही, पृष्ठ १००)

तीनों शृ खलाओं का वर्णन कवित्त तथा सवैयो मे हुआ है । कुल २४ दोहे और १२५ कवित्त सवैयो का ग्रन्थ मे समावेश है ।

सतसई—संस्कृत की 'आर्या सप्तसती' एव प्रकृति की 'गाथा सप्तशती' के समान ही आलोच्यकाल में भी 'सतसई' संज्ञक एक रचना रहीम कृत 'सतसई' प्राप्त होती है। रहीम बहुश्रुत एव अनुभवी व्यक्ति थे । सतसई के दोहो मे व्यावहारिक बातों की मार्मिक ढंग के अभिव्यक्ति हुई है । उन्होंने दोहे के प्रथम चरण में नीति के सामान्य नियम का वर्णन करके दूसरे चरण में दिए हुए उदाहरण से उस कथन को पुष्ट किया है । उनके विशाल अनुभव की जो अभिव्यक्ति उनके दोहो मे हुई है वह उनकी भावुकता एव मार्मिकता के कारण इतनी सजीव एव हृदयग्राही बन पडी है कि उनके अधिकाश नीति के दोहे सामान्य दैनिक जीवन मे घुलकर सर्वमान्य तथ्यों के समान गृहीत होने लगे है और उन्हे इस प्रकार प्रयोग करते है मानो वह उनकी निजी उद्भावनाएँ हो । अकेला यही ग्रन्थ रहीम के वास्तविक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है । रहीम का नाम आते ही उनकी अन्य किसी रचना पर ध्यान न जाकर उनके दोहों पर ही ध्यान जाता है । सतसई लिखने की इस परम्परा का रीति-युग मे बडा प्रचार हुआ । वहाँ उसके वर्ण्य विषय नीति एव शृ गार स्वीकार किए गए ।

संख्यापक-काव्यरूप के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली विविध संज्ञाओं वाली रचनाओं का ऊपर विवेचन हुआ है । इस समस्त रूपों मे से कुछ तो पर्याप्त विकसित हुए और उनकी परवर्त्तीकाल के साहित्य में पुष्ट परम्परा दृष्टिगोचर होती है । इस रूप के अन्तर्गत इसके स्वरूप के अनुसार, विषय भी फुटकर श्रेणी के ही ग्रहण किए गए । ज्ञान, उपदेश, भक्ति, वैराग्य, नीति एव शृ गार इस रूप के प्रधान वर्ण्य विषय इस काल में प्राप्त होते है । वीर रसपूर्ण फुटकर रचनाओ को भी रचनाएँ इसी रूप को आधार मानकर लिखी गई । वर्ण्य विषय के अनुसार ही कवियो ने छन्द-विधान किया । शृ गारपूर्ण वर्णनो के लिए दोहा, कवित्त एवं सवैया, वीररस के वर्णन के लिए दोहा, भक्ति एव ज्ञान वर्णन के लिए सवैया, छप्पय दोहा एवं पद तथा नीति वर्णन के लिए दोहा आदि छन्दों का प्रयोग किया गया । इन विषयो के वर्णन के लिए ये छन्द पूर्णत. उपयुक्त थे । इस प्रकार के विषयों के प्रतिपादन में यह रूप इतना सफल रहा कि विक्रम की १८वी शताब्दी के प्रारम्भ से १६वीं शताब्दी के अन्त तक इन्ही विषयों के प्रतिपादन के लिए ग्रहण होता रहा ।

[रा रीतिकालीन साहित्य जो शृंगार, नीति, भक्ति आदि से सम्बन्धित रचनाओं से [ओ]तप्रोत है, फुटकर रूप में ही वर्णित हुआ और उनमें से बहुत से ग्रन्थों की संज्ञाएँ [उ]नमें प्रयुक्त छन्द संख्या के आधार पर ही दी गई।

[वि]शेषताएं

१—इस काव्यरूप में छन्दों की संख्या ही प्रमुख तत्त्व होती है।

२—अधिकांश ग्रन्थों में छन्दों की संख्या इंगित संख्या से अधिक होती है। साधारणतः अधिक छन्द का विधान १ से ४ तक होता है। कहीं-कहीं संख्या और भी अधिक होती है। 'भाव शतक' में छन्द संख्या १२६ है।

३—इसके अन्तर्गत शृंगार, नीति, ज्ञान, भक्ति, धर्म-सिद्धान्त आदि विषयों का समावेश किया जाता है।

४—छन्दों का प्रयोग नियमित नहीं होता। दोहा जैसे छोटे छन्द से लेकर कुण्डलिया जैसे बड़े छन्दों तक का प्रयोग मिलता है। वर्ण्य विषय के अनुसार ही छन्दों का प्रयोग किया जाता है।

२०—भ्रमरगीत

व्याख्या एवं परिभाषा—'भ्रमर गीत' प्रसंग का आधार 'श्रीमद्भागवत' का दशमस्कन्ध है, जिसके अध्याय ४६-४७ में इस प्रसंग का वर्णन हुआ है। कृष्ण उद्धव के ज्ञानाभिमान को चूर्ण करने एवं व्रजवासियों को परितोष देने उन्हें व्रज में भेजते हैं। व्रज में गोपियाँ उद्धव को कृष्ण के पास से आया जान उनसे कृष्ण की कुशलता एवं अपने प्रति प्रेम की बात पूछती हैं। उद्धव द्वारा ज्ञान का उपदेश दिए जाने पर वह चकित हो उठती हैं लेकिन तभी वार्त्तालाप के स्थान पर एक भ्रमर के आ जाने से गोपियाँ कृष्ण एवं उद्धव को लक्ष्य कर भ्रमर के व्याज से खूब खरी-खोटी सुनाती हैं 'यह' गोपी-उद्धव-प्रसंग' जिसमें भ्रमर के व्याज से उद्धव एवं कृष्ण पर फबतियाँ कसी गई, साहित्य में 'भ्रमरगीत' की संज्ञा से अभिहित हुआ।" सूरदास ने सम्पूर्ण 'श्रीमद्भागवत' की कथा को पदों में गाया, अतः उनके सूरसागर में इस प्रसंग के भी अनेकों पदों को स्थान मिला। 'सूर सागर' के इन पदों पर 'लीला के पदों' के अन्तर्गत विचार हो चुका है। अष्टछाप के अन्य दो कवियों ने 'भँवर गीत' संज्ञक ग्रन्थों की रचना की। विक्रम की १५वीं शताब्दी की एक रचना विष्णुदास कृत 'सनेह लीला' और बताई जाती है जिसमें इसी प्रसंग का वर्णन हुआ है। यहाँ इस ग्रन्थ के स्वरूप पर विचार कर लेना आवश्यक है।

'सनेह लीला' ग्रन्थ में गोपियों को परितोष देने एवं उनकी दशा देखने उद्धव व्रज में जाते हैं। वह गोपियों के समक्ष प्रेम को छोड़कर ज्ञान के सीधे मार्ग पर

चलने का प्रस्ताव रखते है, लेकिन प्रेम की दीवानी गोपियाँ उनकी बात न सुनकर उन कृष्ण लीलाओ का बखान करती है जिनमें उन्होंने कृष्ण के साथ रहकर अपार आनन्द प्राप्त किया था। गोपियाँ प्रेम विभोर हो उठती है और उनके नेत्रों के समक्ष उन लीलाओ के चित्र एक के पश्चात् एक स्पष्ट होते जाते है। उन्हे उद्धव की उपस्थिति का भी ज्ञान नहीं रहता। वह उन्ही लीलाओ का वर्णन करती हुई आँसू बहाती रहती है। उनकी इस प्रेम दशा को देखकर उद्धव का ज्ञान देने का उत्साह समाप्त हो जाता है और वह स्वय प्रेम-मार्गी होकर कृष्ण के पास लौटते हैं। इस ग्रन्थ मे प्रसग तो वही उद्धव-गोपी-सम्वाद का ही ग्रहण किया गया है, लेकिन दार्शनिक सिद्धान्तो के खण्डन-मण्डन का वह प्रयास कही भी लक्षित नही होता जो नन्ददास आदि कवियो के भ्रमरगीतो मे दिखाई देता है। इसमे लीला-वर्णन का प्रयास ही अधिक है। कृष्ण-गोपी-सम्बन्ध का ही इसमे विस्तृत वर्णन है।[1] ग्रन्थ की सज्ञा से भी उसके रूप का आभास होता है। कवि ने उसकी संज्ञा भ्रमरगीत न देकर 'सनेह लीला' ही दी है। इसका कारण यह है कि इसमे भ्रमर का समावेश ही नही किया गया। मोहन माथुर कृत 'सनेह लीला' भी इसी प्रकार की रचना है। परवर्त्ती भक्त कवि रसिकराम कृत 'सनेह लीला' भी ठीक इसी प्रकार की है। अनेक 'सनेह लीला' सज्ञक ग्रन्थ यह स्पष्ट कर देते है कि इनकी रचना करते समय कवि का उद्देश्य दार्शनिक विचारो का खण्डन-मण्डन न होकर लीला कथन ही था। यदि इन कवियो का उद्देश्य 'भ्रमरगीत' परम्परा के अन्तर्गत रचना करने का होता तो नन्ददास के पश्चात् होने के कारण मोहन माथुर एवं रसिकराय के ग्रन्थो की सज्ञा भी भ्रमरगीत होनी चाहिए थी और उनमे भ्रमर का समावेश भी होना चाहिए था। अत' उक्त रचनाएँ इस प्रसग से सम्बन्धित होते हुए भी भिन्न शैली मे लिखी जाने के कारण 'लीला-काव्य' की कोटि की रचनाएँ हैं। डॉ० शिवप्रसादसिह ने भी इस ग्रन्थ को लीला-काव्य की कोटि की रचना माना है।[1] इस रचना का उल्लेख 'लीला-काव्य' के अन्तर्गत हो चुका है।

इस काल की 'भँवरगीत' सज्ञक दो रचनाएँ प्राप्त है जिनमें गोपी उद्धव के मध्य हुए दार्शनिक वाद-विवादो का विवेचन हुआ है। नन्ददास के भँवरगीत मे दार्शनिक विचारों की अधिकता है। इसी कारण उन्होने उस भूमिका को भी छोड दिया है, जिसे सूरदास ने 'सूरसागर' मे ग्रहण किया है। लक्ष्मीनारायण के 'प्रेम तरगिनी' ग्रन्थ मे भी दार्शनिक खण्डन-मण्डन का प्रयास है।

---

[1] ना० प्रा० सभा ११ वी खोज रिपोर्ट सख्या २०४ (व) की प्रति के आधार।

[1] सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य, पृ० ३३२।

ऊपर इस प्रकार की जो व्याख्या हुई है, उसके आधार पर इसकी परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—

'उद्धव-गोपी-प्रसग की ऐसी रचनाएँ, जिनमे भ्रमर के व्याज से उद्धव एव कृष्ण से कही गई कटूक्तियो के साथ-साथ निर्गुण एव सगुण से सम्बन्धित दार्शनिक विचारो के खण्डन-मण्डन का प्रयास था, 'भ्रमरगीत' कही गई।'

वर्णित-विषय—यह प्रसग 'श्रीमद्भागवत' मे उद्धृत होने के कारण इसका विषय भी उसी के आधार पर रखा गया। तथापि कवियों ने अपनी-अपनी रुचि के आधार पर कथा मे कुछ भेद अवश्य ला दिया है। सूरदास ने जहाँ 'सूरसागर' मे भ्रमरगीत' प्रसग के प्रारम्भ में 'कृष्ण की गोकुल विषयक चिन्ता, उद्धव का अहकार उन्हें गोकुल भेजने का विचार, नन्द आदि को पत्र, कुब्जा का पत्र, उद्धव-ब्रज-गमन ब्रजवासियो का उद्धव को कृष्ण समझना आदि बातो का प्रस्तावना के रूप में वर्णन, किया है, उन सबको नन्ददास ने बिल्कुल छोड दिया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ही उद्धव गोपियो के समक्ष उपस्थित होकर कृष्ण का सन्देश सुनाते हुए दिखाई देते है—

कहन श्याम सन्देश एक मैं तुम पै आयो।

(नन्ददास ग्रन्थावली भाग १, पृष्ठ १२३।)

नन्ददास के इस ग्रन्थ की कथा मे भागवत की कथा से भी बड़ा अन्तर दिखाई देता है। भागवत के अनुसार उद्धव नन्द, यशोदा एव गोपियो के कृष्ण के विरह जन्य सन्ताप को शान्त करने ब्रज मे जाते हैं वहाँ उनकी भेंट सर्वप्रथम नन्द से होती है। कृष्ण की लीलाओं के स्मरण मात्र से ही नन्द विभोर हो उठते है। उद्धव अपने उपदेश द्वारा उन्हे प्रबोध देकर कृष्ण को अकर्मा, अजन्मा आदि बतलाते है। इसी वार्तालाप से रात व्यतीत होती है। उनके रथ को देखकर प्रातःकाल ब्रजवासियों को उनके आगमन की बात ज्ञात होती है। किन्तु नन्ददास ने तो नन्द की भेट का वृत्तान्त बिल्कुल छोड ही दिया है। वहाँ तो वह गोपियो को ही प्रबोधने आए दिखाई देते है। कहना न होगा कि सूरदास के 'भ्रमरगीत' मे भी भागवत की कथा का पूर्ण पालन नहीं हुआ है। वहाँ उद्धव की भेंट ब्रजवासियो से होती है जो उन्हे कृष्ण समझकर घेर लेते है। भागवत मे गोपियाँ उद्धव से कृष्ण की स्वार्थी मनोवृत्ति का वर्णन करती हैं और फिर शीघ्र ही भ्रमर का प्रवेश हो जाता है। वहाँ सगुण-निर्गुण की उक्तियो का अभाव है। हाँ गोपियाँ कृष्ण के विभिन्न अवतारो का वर्णन करती हुई उनकी क्रूरताओं का वर्णन करती है। उद्धव ब्रज मे कई महीने ठहरते है तब कही जाकर गोपियों को सन्तुष्ट कर पाते हैं। 'भ्रमरगीत' मे उद्धव गोपियों को उपदेश देते दिखाई देते है। और शीघ्र ही निर्गुण-सगुण विवाद

प्रारम्भ हो जाता है। भ्रमर को लक्ष कर सुनाए गए अधिकाश उपालम्भ भागवत से ही ग्रहण किए गए है। भक्ति एवं ज्ञान की बातो के समाप्त होते ही गोपियों के समक्ष कृष्ण का स्वरूप आ जाता है और वह अनेक प्रेमपूर्ण कटाक्ष कर उठती है। इसके पश्चात् भ्रमर का प्रवेश होता है और फिर उपालम्भो का ताँता लग जाता है। विभिन्न अवतारो की क्रूरता का वर्णन यहाँ भी मिल जाता है। अन्त मे उद्धव अपनी हार स्वीकार कर कृष्ण के पास लौटते है। इस प्रकार कथावस्तु को नन्ददास ने पर्याप्त परिवर्तित रूप मे ग्रहण किया है जिसका एकमात्र कारण दार्शनिक भावना का काव्य मे अधिकाधिक प्रवेश कराने की उनकी प्रवृत्ति ही है।

अन्य कवियो ने कथा के पूर्ण क्रम का निर्वाह नही किया। उन्होने गोपियो एव उद्धव के बीच होने वाली चोटो तक ही अपने को सीमित रखा है। आलम कृत कवित्तों में भ्रमरगीत प्रसग का प्रारम्भ इस कवित्त से होता है—

जाके जोग जुगिया जगत ही सजोग जागे भगत सजोग बसि अलप अलेषतौ।
सनक सनन्द सनकाद सिव मुनिजन सारद-नारद हूँ के लगत न भेष तौ।
आलम सुकवि आनि ब्रज वपु सिष धारयौ ध्यावत है जाको ताके नहीं रूपरेख तौ।
निगम ते अगम सुगम करि जान्यौ तुम निगुन जो ब्रह्म सोइ सगुन के भेष तौ।४३।
(हस्त० लिखित प्रति पृष्ठ १३)

इसमे निर्गुण-सगुण वर्णन के साथ-साथ गोपियो के प्रेम का वर्णन ही प्रधान है। उद्धव लौटकर कृष्ण को गोपियो की दशा एव यशोदा के विरह से अवगत कराते है। गोपियो के विरह के अन्तर्गत ऋतु परिवर्तन, चन्द्रमा, फूल आदि उद्दीपक पदार्थो से मिलने वाले कष्टों का वर्णन ही प्रधान है। आलोच्यकाल के इस परम्परा के अन्य ग्रन्थो मे दार्शनिक सिद्धान्तो का विवेचन तो है लेकिन प्रेम एव विरह के वर्णनो की ही प्रधानता है। पर फुटकर रूप से लिखे जाने वाले छन्दो मे इस तत्त्व की अधिकता परिलक्षित होती है। इन कवियो का उद्देश्य सिद्धान्त निरूपण न होकर प्रेम वर्णन ही अधिक था।

२१—कथा

व्याख्या एवं परिभाषा—

कथा शब्द की व्युत्पत्ति कथ् धातु से होने के कारण 'कथा' शब्द का अर्थ 'वह जो कहा जाय' होता -[1] 'कही जाने वाली' ही कथा होती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसको सुनने वाला भी होना चाहिए। क्योकि श्रोता के अभाव मे किसी वस्तु को कहना सम्भव नही है। अत: कथा का तात्पर्य किसी बात का किसी अन्य

[1] हिन्दी साहित्य कोष सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा आदि पृष्ठ १८३

से कहने का है। इसमें श्रोता एवं वक्ता दोनों की उपस्थिति अनिवार्य सिद्ध होती है। किसी घटना अथवा वस्तु विशेष का वर्णन करना जिसका परिणाम निश्चित हो और वक्ता उसे पहिले से ही समझता हो तथा उसी परिणाम से अवगत कराने को वह बात श्रोता के सम्मुख कही जा रही हो, यह सब बातें कथा के लिए आवश्यक होती है। इस प्रकार की कथाओं के विषय भी वक्ता अथवा श्रोता की (जैसा वह जानना चाहे) इच्छा के ऊपर निर्भर रहते हैं। इन कथाओं में कल्पना का प्राधान्य न होकर घटनाओं की निश्चितता का विश्वास होता है। किसी भी विषय, तिथि, वार, मनुष्य, पशु, पक्षी, पेड़ आदि से सम्बन्धित प्रत्यक्ष अथवा कल्पना प्रसूत अनुभवों का प्रकाशन इनका विषय हो सकता है।

कथा शब्द का प्रयोग साहित्य में सदैव से कुछ व्यापक अर्थ में होता आया है और यह शब्द चरित-काव्य, कथा-काव्य आदि के लिए प्रयुक्त हुआ है। उक्त प्रसंगों में इस पर विचार हो चुका है। इस प्रसंग के अन्तर्गत 'कथा' शब्द को उसके उसी शाब्दिक अर्थ के भीतर रख कर ही उसके अन्तर्गत रची गई रचनाओं पर विचार किया जावेगा। ऊपर दी हुई कथा शब्द की व्युत्पत्ति एवं उसके लक्षणों के आधार पर 'कथा' संज्ञक रचनाओं की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है— 'श्रोता-वक्ता प्रणाली में किसी विषय अथवा क्रिया विशेष का वर्णन करके उसके निश्चित परिणाम से श्रोता को अवगत कराने वाले ग्रन्थों को 'कथा' की संज्ञा दी जाती है।'

आलोच्यकाल की कथा संज्ञक रचनाएँ अनुष्ठान कथा तथा माहात्म्य कथा के रूप में प्राप्त होती हैं। अनुष्ठान कथाओं में वे कथाएँ आती हैं जो कि पर्व विशेष पर अनुष्ठान की एक आवश्यक क्रिया के रूप में अनुष्ठान कर्ता द्वारा कही अथवा सुनी जाती हैं। ऐसी कथाएँ अनुष्ठान का ही एक भाग होती हैं। इन अनुष्ठानों में कथा का महत्व अन्य क्रियाओं के समान ही होता है। इन कथाओं में फल का उल्लेख प्रतीयमान होता है। कथा के अन्त में कथा श्रवण के फल का विधान होता है और यह उल्लेख होता है कि 'जैसा इसको हुआ वैसा सब को हो।' ऐसे व्रत एवं अनुष्ठान आज भी लगभग सभी हिन्दू स्त्रियाँ आए दिन घरों में करती रहती हैं। करवाचौथ तथा होली अष्टमी के अवसर पर कही जाने वाली कथाएँ अनुष्ठान कथाएँ ही हैं। प्रत्येक अनुष्ठान की एक अलग कहानी होती है। इस प्रकार के अनुष्ठान नित्य प्रति न होकर साल में एक निश्चित तिथि को ही किए जाते हैं। माहात्म्य कथाओं में ऐसी कथाएँ आती हैं जिनमें किसी विशेष अनुष्ठान के फल का बार-बार उल्लेख होता है। इन कथाओं में किसी विशेष व्रत, अनुष्ठान आदि के अनेक व्यक्तियों द्वारा किये जाने और उसके प्राप्त होने वाले फल का उल्लेख रहता है। किसी-किसी कथा में विरुद्ध आचरण करने वाले के लिए दण्ड का विधान भी

किया जाता है। वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रचलित सत्यनारायण की कथा 'माहात्म्य कथा' का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

वर्णित-विषय—

अनुष्ठान कथा— आलोच्यकाल में प्राप्त दोनों अनुष्ठान कथाएँ 'सकट चौथ' की कथाएँ है। गणेश जी का नाम सकट हरण है। सकटों से बचने के लिए ही किसी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व गणेश जी की वन्दना अथवा पूजा की जाती है। गणेश जी को ही सकट हरण क्यों माना गया इस विषय की एक पौराणिक कथा है। उसी पौराणिक कथा को इनमें वर्णित किया गया है। यह कथा गणेश चतुर्थी के दिन व्रत के समय कही एव सुनी जाती है। कथा इस प्रकार है—कृष्ण ने युधिष्ठिर से कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी सिद्धि के लिए गणेश की पूजा करने के लिए कहा था तो युधिष्ठिर ने शका की थी कि गणेश आदि देव कैसे है। कृष्ण ने उनकी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए इस प्रकार कथा वर्णन की—एक बार कैलाश पर महादेव स्नान करने गये। तभी नारद ऋषि आये। उमा ने आदर किया और आने का कारण पूछा। वह बोले, उमा! बडे आश्चर्य की बात है कि शिव के गले में पडी मुण्डों की माला तुम्हारे सिरों से बनाई गई है और यह बात शिव ने तुम्हें आज तक नही बताई है। इतना कह नारद चले गये। शिव के आगमन पर उमा ने इस तथ्य को जानने के लिए आग्रह किया। शिव ने कथा सुनाना तो स्वीकार किया लेकिन पार्वती से जाग कर हुँकार देने का आश्वासन चाहा पार्वती के स्वीकार कर लेने पर शिव ने कथा सुनाना प्रारम्भ किया। कुछ समय पश्चात् पार्वती सो गई और पास ही वृक्ष पर बैठा तोता उनके स्थान पर हुँकार देता रहा। कथा समाप्त होने पर जब शिव ने पार्वती को सोता पाया तो उन्हे ज्ञात हुआ कि तोता पूरी कहानी सुनाता रहा है। वह तोते को पकडने के लिए उसके पीछे दौड़े। तोता दौडते-दौडते व्यास पत्नी के उबासी लेने को खुले मुख मे प्रवेश कर गया। शिव ने व्यास से अपना चोर मांगा। व्यास ने पत्नी के पेट से जन्म लने वाले बालक को शिव को दे देने का वचन दिया। शिव लौटकर उमा पर क्रोधित हुए जिससे पार्वती भी क्रोधित होकर शिव से अलग रहकर तपस्या मे लीन हुई। तपस्या से जमे हुए शरीर के मैल से एक बालक की मूर्ति बनाकर उसमे उन्होंने प्राण प्रतिष्ठा की और उसे द्वार पर बिठा कर एव किसी को भी अन्दर न आने देने का आदेश देकर स्वय तपस्या मे लीन हुई। समाधि समाप्त होने पर शिव पार्वती को ढूँढने निकले। गणेश ने शिव को गुफा के अन्दर जाने से रोका। शिव के बल प्रयोग पर दोनो में युद्ध प्रारम्भ हुआ और शिव ने त्रिशूल से गणेश के मस्तक को काट कर अन्दर प्रवेश किया वस्तु स्थिति ज्ञात होने पर पार्वती ने

वालक को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना की। शिव ने हाथी के पीछे खड़े बालक के मस्तक को काटकर गणेश के धड़ पर रखा। विष्णु आदि देवता शकर के दर्शन के लिए कैलाश पर आए। उन्होंने कार्तिक एवं गणेश को लड्डू लेने के लिए उत्साहित करके उनसे विश्व की परिक्रमा कराने का आयोजन किया। इस परिक्रमा मे गणेश की विजय हुई और उन्हे पुरस्कार स्वरूप मोदक प्रदान किये गये। कार्त्तिक जिसका वाहन मयूर था और जो गणेश के वाहन मूषक मे अधिक शीघ्रता से चलता था, जब लौटकर आया तो गणेश को लड्डू खाते देखकर बड़ा क्रोधित हुआ। क्रोध मे भर कर उसने गणेश के एक मुक्का मारा जिससे उसका एक दाँत टूट गया और तभी से वह 'एक दन्त' कहलाया और परिक्रमा मे जीतने के कारण आदि देव घोषित किया गया।'

मोतीलाल एव शुक्र दोनों ने इसी कथा का वर्णन किया है। कथा के प्रारम्भ मे कथा लिखने का कारण भी दिया गया है—

सुमिरन करौ गनेश को हरिश्चरनन चित लाई।
सकट चौथि महिमा सुनी कथा कहौ समुझाई।१।
(मोतीलाल कृत-'गणेश पुराण'—हस्त० प्रति०)

कवि ने सकट चौथि व्रत की महिमा सुनी थी उसी महिमा वाले अनुष्ठान की कथा का वर्णन उसने किया है। ग्रन्थान्त मे अनुष्ठान कथा के अन्तर्गत होने वाले फल का भी वर्णन हुआ है—

नारी पुरुष करै व्रत कोई। साकल सीधी फल पावै सोई।
सो यह कथा सुनै जो गावै। अन्तकाल सुरपुर पहुँचावै।
(वही प्रति)

अनुष्ठान कथाओ मे फल का उल्लेख प्रतीयमान होता है। इस कथा में भी फल का उल्लेख इसी रूप मे हुआ है। जो कोई भी गणेश व्रत के समय इस कथा को कहेगा अथवा सुनेगा उसे सब कार्यों में सिद्धि एव अन्त मे स्वर्ग लाभ होगा। एक अन्य विशेषता भी इन कथाओ मे लक्षित होती है, कि इनका खण्ड आदि मे विभाजन नही होता। यह स्वरूपत. कहानी है, जिसमे विभाजन को स्थान ही नही है।

माहात्म्य कथा— इस कोटि की कथाओ मे श्रुति पचमी कथा, सकट व्रत कथा, मानसी तीर्थ माहात्म्य कथा, आदित्य वार कथा एव एकादशी माहात्म्य ही प्रमुख है। संकट व्रत कथा को ही वन्दन ने गणेश व्रत कथा एव हरिशंकर द्विज ने 'गणेश जी की कथा चार युग' की संज्ञाएँ भी दी है। संकट व्रत कथा अथवा गणेश व्रत कथा—सकट चौथ की कथा (गणेश पुराण अथवा गणेश व्रत कथा) से पूर्णतया

भिन्न है। संकट व्रत कथा अनुष्ठान कथा न होकर माहात्म्य कथा है। इससे सकट चौथ के अनुष्ठान के समय कही जाने वाली कथा न होकर सकट व्रत करने वाले व्यक्तियो को प्राप्त होने वाले फलो का ही उल्लेख हुआ है। 'श्रुति पंचमी कथा' मे भी इस अनुष्ठान को करने वाले सुदत्त को उससे प्राप्त होने वाले फल का ही वर्णन है। जैनो मे श्रुति पंचमी की कथा का बड़ा महत्त्व है। उनके अनेक प्राचीन काव्य ग्रन्थो मे इस कथा का वर्णन हुआ है। 'भविष्यदत्त कहा' मे भी श्रुति पचमी की कथा के माहात्म्य के दर्शन होते है। आलोच्यकाल के जैन कवि ब्रह्मरायमल द्वारा वर्णित 'श्रुतिपचमी कथा' इस प्रकार है—

जैन तीर्थ करो की वन्दना के पश्चात कवि हस्तिनागपुर की शोभा का वर्णन करता हुआ वहाँ के सेठ 'धनपति' के निवास की बात कहता है। एक अन्य सेठ धनेसर और उसकी सेठानी 'धनिश्री' से कमलश्री कन्या पैदा हुई। कालान्तर मे उस कन्या का विवाह धनपति से हुआ। कुछ दिन पश्चात् एक मुनि को दिये गये आहार के उपलक्ष में मुनि ने उन्हे पुत्र उत्पन्न होने का वरदान दिया। फलत सुदत्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। धनपति ने कमलश्री का त्याग कर दिया। वह अपने पिता के घर चली गई। मन्त्री की राय के अनुसार पिता ने उसे आश्रय दिया। उधर पुत्र सुदत्त ने पाठशाला से लौटकर धनपति से माता के बारे से पूछा और सब बात ज्ञात होने पर स्वय भी माता के पास जाकर रहने लगा। धनदत्त की पुत्री स्वरूपा के साथ धनपति का दूसरा विवाह हुआ, उससे पुत्र बन्धुदत्त का जन्म हुआ। वयस्क होने पर वह व्यापार हेतु परदेश गया। सुदत्त भी माता मे आज्ञा लेकर उसके साथ गया। मार्ग मे अपनी माता स्वरूपा की सम्मति के अनुसार बन्धुदत्त ने सुदत्त को एक स्थान पर जहाज से छोड दिया। सुदत्त भटकते हुए जैन मन्दिर मे पहुँचा। वही सयोगवश उसका विवाह हुआ और वह वहाँ का राजा बन गया। कमलश्री पुत्र वियोग मे दुखी हुई। एक वयोवृद्धा के उपदेश से वह एक आर्यिका के पास गई, आर्यिका ने श्रुतिपचमी के व्रत का विधान आदि बताकर उसके पुत्र के निश्चय मिलन का वरदान दिया। बन्धुदत्त लौटा और मार्ग मे मिलने वाले अपने भाई सुदत्त को जो उसे समुद्र के किनारे अपनी स्त्री सहित मिल गया था, फिर छोड कर उसकी पत्नी को लेकर घर आ गया। कमलश्री को सन्देह हुआ, आर्यिका ने उसके पुत्र को शीघ्र आने का अभिवचन दिया। एक यक्ष की सहायता से 'सेज्या-नाग सुन्दरी' और 'पंचवरन मानिक' को लेकर सुदत्त लौटा। माता से बन्धुदत्त का समाचार पूछा। माता से सम्पूर्ण समाचार गुप्त रखने का आदेश लेकर वह राजा से भेट को गया। राजा के यहाँ जाकर श्रेष्ठी पुत्र से हुए स्त्री सम्बन्धी झगडे की सूचना दी, जिसमे सुदत्त की विजय हुई और बन्धुदत्त को दण्ड मिला। बन्धुदत्त की सहायता से मेदिनीपुर के राजा ने सुदत्त पर उसकी स्त्री छीनने के लिए चढाई की

और हार कर अपनी पुत्री का उसके साथ विवाह कर दिया। अपनी दोनों स्त्रियो को लेकर सुदत्त तीर्थयात्रा को गया। वहाँ जैन मुनि से उपदेश लिया, लौटकर माता ने अपने भाग्य की सराहना करते हुए आर्यिका सम्बन्धी सभी बातो का उससे वर्णन किया। उसने सकुटुम्ब व्रतादि किया और कमलश्री भी बन्धुओं सहित आर्यिकाश्रम गई। अन्त मे तप के द्वारा उनको स्वर्ग की प्राप्ति हुई।' कथा समाप्ति के साथ ही कथा के पाठ का माहात्म्य भी दिया गया है—

> यह कथा पूरण भई। सकल भव्य को मगल भई।
> पढ़े सुने जे करैं बखाण। सो पावै शिवपुर शिव थाण।

(तृतीय त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट संख्या ९८, पृ० ३४६-५०)

इस प्रकार इस श्रुतिपंचमी की कथा मे 'सुदत्त' की कथा का वर्णन किया गया है और कवि ने यह दिखाया है कि श्रुतिपंचमी के व्रत के प्रभाव से किस प्रकार सुदत्त के कष्टो का अन्त हुआ। अन्त मे व्रत की महत्ता देखकर सुदत्त का उस व्रत मे सलग्न होना भी कवि ने वर्णन किया है। सकट व्रत कथा अथवा गणेश व्रत कथा मे संकट व्रत करने के माहात्म्य का ही वर्णन हुआ है। प्रति खण्डित प्राप्त हुई है अत कथा का प्रारम्भ पृष्ठ १४ से होता है—गणेश व्रत का महत्त्व राजा तथा प्रधान का आख्यान, ब्राह्मण बालको का अवे से जीवित निकलना, गणेश स्तुति। प्रथम अध्याय समाप्त।

संकट व्रत, व्रत के सूत्रपात होने का कारण राजा युधिष्ठर द्वारा इस व्रत के किए जाने का कारण, व्रत का महत्त्व तथा विधान, पाडवों द्वारा इस व्रत का सम्पन्न किया जाना तथा उनकी उस व्रत मे सलग्नता। द्वितीय अध्याय।

उद्यापन के पश्चात् धर्मसुत द्वारा संकट व्रत तथा गणेश को धन्यवाद देना। सीताहरण के पश्चात् वशिष्ठ के आदेशानुसार इस व्रत का किया जाना, और उसके फलस्वरूप विजयी होने का वर्णन, ब्रह्म हत्या के दोष का निवारण, सात सौ मनाद्योग की स्थापना, व्रत का फल, तृतीय अध्याय।

वशिष्ट द्वारा राम के अनुरोध पर (व्रत का इतिहास वर्णन) राजा हरिश्चन्द्र का आख्यान, नारद के उपदेश से हरिश्चन्द्र का व्रत रखना, गणेश जी की उत्पत्यादि का विवरण तथा व्रत का फल वर्णन, व्रत के प्रभाव से राजा की दुर्दशा का अन्त।

इस कथा में भी चार अध्याय है। इसमें इस व्रत के अनेक व्यक्तियों द्वारा किए जाने और उससे मिलने वाले फलों के साथ-साथ व्रत के इतिहास का भी वर्णन हुआ है। यह अनुष्ठान कथा आज लोक मे सर्वाधिक प्रचलित सत्यनारायण की कथा के समान ही है स्वरूप की दृष्टि से दोनो मे कोई भेद नही है।

माहात्म्य कथा—लालदास कृत मानसी तीर्थ माहात्म्य ग्रन्थ में युधिष्ठिर द्वारा प्रश्न किए जाने पर कि कौन सा ऐसा विधान है जिसको करके सब तीर्थों का फल प्राप्त हो सकता है, भीष्म मनसा तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन करते है। भीष्म उसी प्राचीन कथा का बखान करते है जो रूमांचक ने जनक से कही थी। इस ग्रन्थ मे ३६ कथाएँ है। ग्रन्थ का सार अन्त की पक्तियों से स्पष्ट हो जाता है—

सन्तोषी वष्णव जो होई। विष्णु रूप करि पूजे सोई।
तीर्थ और भूमि घर जेते। धर्म सहस्र सो पूजे तेते।
तो लगि तीर्थ फले न राजा। निर फल वेद क्रिया तप साजा।
निर्मल मन प्रसन्न नही होई। तौ लगि वृथा करै श्रम कोई।
सुनि यह कथा सुधि मन होई। बुधि निहचै प्रीति सो सोई।
मनसा तीरथ कहा बखानी। तै छत्तीस कथा लै जानि।

(१३वी खोज रिपोर्ट ना० प्र० सभा पृष्ठ ४०४ संख्या २६३)

इसमें शरीर और इन्द्रियो को वश मे रखना ही सबसे बडा तीर्थ माना गया है। इस कथा के पढने तथा इसमें वर्णित आचरण पर चलने से समस्त तीर्थों का फल लाभ होता है।

हीरामनि कवि की एकादशी कथा मे एकादशी की कथा का महात्म्य तथा अम्बरीष की कथा का वर्णन है, जिसमे भगवान अम्बरीष के एकादशी व्रत मे प्रसन्न होकर उसे वरदान देते है—

हरि वर दीन्ह सकल सुप षानी। रिधि सिधि सम्पति मगल दानी।
बिनु जप तप व्रत करि सुख पावै। कोटि जन्म करि पाप नसावै।
पाप जो ब्रह्म हत्यादिक जेते। व्रत के रहत न लागहिं तेते।
जन्म कर्म दुख दोष नसावै। वहुरि न भव सागर तेहि आवै।

(ना० प्र० बारहवी त्रै० वार्षिक रि० संख्या १६७ पृ० ६४६)

यह कथा नारद ने अगस्त मुनि को सुनाई थी। कथा को व्रत के समय सुनने-सुनाने वाले के समस्त सुख एव परम पद प्राप्ति के फल का उल्लेख किया जाता है।

भाऊ ने रविवार की कथा लिखी है जिसकी सज्ञा 'आदित्य कथा' है, 'आदित्य कथा' मे जैन कवि ने तीर्थ करों की वन्दना के पश्चात् मतिसागर सेठ की कथा का वर्णन किया है। सेठ के सात पुत्रो का विछोह और फिर माँ बाप से मिलन का इस कथा मे वर्णन है जो रवि व्रत की कथा के कारण हुआ है ग्रन्थान्त मे ग्रन्थ के पाठ से मनुष्य की दुर्गति छूट जाने का उल्लेख किया गया है। अधिकांश माहात्म्य कथाओं का खण्डों में विभाजन किया गया है एक से अधिक उदाहरण

होने के कारण उनको खण्डो मे विभाजित करना अनिवार्य हो गया है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अनुष्ठान कथाओं मे इस विभाजन के लिए कोई स्थान ही नही है।

अनुष्ठान एव माहात्म्य कथाओ के विषय-वस्तु के विवेचन मे यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की कथाएँ जैन एव हिन्दू दोनों मे बडी प्रचलित थी। अनेक प्रकार के व्रत एव अनुष्ठानों से सम्बन्धित अनेक कहानियों का प्रचलन था। इन कथाओं मे से अधिकाश पौराणिक आख्यानो के अन्तर्गत वर्णित कथाओ का हिन्दी रूपान्तर है। कवियो ने कही-कही उनके मूल का उल्लेख भी कर दिया है। सब कहानियाँ दोहे-चौपाइयो मे लिखी गई है। वर्णनात्मक होने के कारण चौपाई छन्द का प्रयोग अत्यन्त ही समीचीन था।

विशेषताएँ—

१—इन कथाओ मे हिन्दू एव जैन दोनों धर्मों मे प्रचलित कथा का वर्णन हुआ है।

२—समस्त कथाओ में वर्णित व्रत अथवा कथा के श्रवण का माहात्म्य उल्लेख अवश्य हुआ है। अनुष्ठान कथाओ मे फल का उल्लेख प्रतीयमान रूप में तथा माहात्म्य कथाओ मे अनेक प्रसगो के अन्तर्गत अनेक स्थानो पर स्पष्टरूप से होता है।

३—वर्णनात्मक होने के कारण चौपाई जैसे छोटे कथानक छन्द का ही सर्वत्र प्रयोग हुआ है।

४—माहात्म्य कथाओं का खण्डो मे विभाजन किया जाता है जबकि अनुष्ठान कथाओ मे विभाजन नही होता है।

२२—अष्टयाम

काव्य-रूप की व्याख्या एवं परिभाषा—यह हिन्दी का निजी काव्यरूप है। इसमें कथा-प्रसंग नहीं होता। यह दिन-चर्या के वर्णनो का सग्रहीत रूप होता है। इसे मुक्तक निबन्ध कहना अधिक समीचीन है। शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे जिन्हे वर्णनात्मक प्रबन्ध कहा है[१] यह कुछ सीमा तक उन्हीं काव्य-ग्रन्थों की कोटि को पहुँचता है। अन्तर केवल इतना ही है कि इसमे वर्णनों की इतनी अधिकता नहीं रहती जितनी कि कथात्मक प्रबन्धों के अन्दर संग्रहीत इन वर्णनात्मक प्रबन्धों में रहती है। इस रूप के अन्तर्गत आने वाले प्रारम्भिक ग्रन्थो

[१] पृ० ३२३।

मे कृष्ण की दिन-चर्या का ही वर्णन है। दिन के पूरे समय की चर्या का वर्णन होने से ही प्रारम्भिक रचनाओ की सज्ञा 'समय प्रबन्ध' दी जाती थी। राधावल्लभी एव निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्त कवियो ने कृष्ण की ७ समय की सेवाओ का ही वर्णन किया है, इसीलिए ग्रन्थों की सज्ञा उन्होंने अष्टयाम न देकर 'समय प्रबन्ध' ही दी। इन कवियो से इतर श्रेणी के कवियो ने जिनमे की कृष्ण की आठो याम की सेवा का प्रचलन था, इस प्रकार के ग्रन्थो की सज्ञा अष्टयाम दी। सूरदास आदि अष्टछाप के कवियो के पदो मे तो यह वर्णन आठो समय के आधार पर हुआ है। कृष्ण के समान ही राम भक्त कवियो ने राम के अष्टयाम भी लिखे। ऊपर इस काव्यरूप की की गई व्याख्या के आधार पर इसकी परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—'ऐसे काव्य जिनमे कृष्ण अथवा राम के दिनरात के आठो पहरों की चर्या का वर्णन होता था, अष्टयाम कहलाते थे।'

समय-प्रबन्ध एवं अष्टयाम मे स्वरूपत कोई भेद नही है। उपासना पद्धति की भिन्नता के कारण ही जिन सम्प्रदायो मे सात समय की सेवा का ही विधान है उन सम्प्रदायों के कवियो ने इसकी सज्ञा अष्टयाम न देकर समय प्रबन्ध दी है तथापि इन रचनाओ मे भी आठो प्रहर की जीवनचर्या का ही वर्णन हुआ है।

वर्णित-विषय—इन ग्रन्थो मे जागरण से लेकर रात्रि के शयन करने तक की शोभा एव क्रीडाओं का वर्णन किया गया है। नागरीदास ने ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ही अपने ग्रन्थ के विषय को स्पष्ट कर दिया है—

श्री हित सेवक पद सुपद करि प्रणाम चित्त लाय।
सेवा समै प्रबन्ध को चाहौ धोरु रसाय।५।

(समय प्रबन्ध—हस्त० प्रति)

ग्रन्थ मे दिए गए वर्णन इस प्रकार है—सुन्दर बृन्दावन धाम, वहाँ पाँच योजन का बिहार स्थान, सभी सुखदाई वस्तुओ से युक्त, वहाँ श्यामा-श्याम खेलते है। सुन्दर मण्डल पर कमलों के बीच शोभायमान है। दोनो की आठ-आठ सहचरी हैं जो सेवा मे परम चतुर है। सखियो द्वारा निर्मित शैय्या पर दोनों रसयुक्त वार्त्तालाप मे संलग्न है। तत्पश्चात् स्नान को उठते है। सखियाँ स्नान कराती है। स्नान के बाद शृंगार होता है। शृंगार के पश्चात् वन विहार जिसमें युगल अनेक क्रीडाएँ करते हुए आनन्द मग्न होते है। इसी समय कृष्ण मुरली बजाते है। तत्पश्चात् राजभोग होता है। राजभोग के पश्चात्, उत्थापन, तदन्तर भोग होता है। भोग के पश्चात् सायंकाल के समय रास आदि अनेक मनोहारी क्रीडाएँ एव तदन्तर शयन। इस वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित आठों याम की सेवा में से तीसरी सेवा 'ग्वाल' को जिसका सीधा सम्बन्ध

कृष्ण से है राधावल्लभी सम्प्रदाय में ग्रहण नहीं किया गया है। इस सम्प्रदाय में राधा एवं रस रहस्य लीला की प्रधानता होने के कारण उक्त सातों समय की सेवा का ही वर्णन हुआ है। इस सम्प्रदाय में कृष्ण स्वयं इष्ट नहीं। इष्ट के प्रियतम होने के कारण सम्मान्य है। अन्य सेवाओं के वर्णनों को भी राधा के माध्यम से वर्णन के लिए स्वीकार किया गया है। प्राकृत विधि-निषेधों को न मानने के कारण ही राधावल्लभी सम्प्रदाय में केलि वर्णन की प्रधानता लक्षित होती है। राधा-कृष्ण की रूप-शोभा, स्तुति एवं केलि का ही इन सब समयों की सेवा के अन्तर्गत वर्णन हुआ है।

शेष दोनों राधावल्लभी भक्तों के समय-प्रबन्धों में इसी क्रम का निर्वाह हुआ है। भक्त कवि नाभादास ने भी एक 'अष्टयाम' लिखा है जिसमें राम की दिन-चर्या का वर्णन है। वर्णन का क्रम इस प्रकार है—१. अवध शोभा, रात्रि शोभा, राम का जागना, शौचादि जाना, २. आरती, ग्रामवासियों का दर्शन करना, सखियों का मित्रदर्शन को जाना, ३ स्नान वस्त्रादि परिधान, ४ भोजन, ५. राजदर्शन, भ्रमण, ६. मित्रों आदि द्वारा पूजन, चौगान आदि खेलना, महल आगमन, ७. पतंग लड़ाना, कौशिल्या के पास जाना, संगीत आदि सुनना, ८. आरती, केलि वार्तालाप एवं शयन। कवि ने शयन से पूर्व राम की केलि का जो वर्णन किया है वह पूर्ण मर्या-दित है—

जाइ पलंग बैठे रंग भीने। सैन करन की दिसि रुष कीन्हे।
पौढ़ेलाल प्रिया पद लालत। रस मंजरी चमर सिर चालत।
रसमंजरी चरण तब लागी। प्रिय आयसु सिर धरि अनुरागी।

जब लगि दंपति सैन करि, परदा दीन झुकाय।
निज निज ठाँव अली सकल, झीने शब्द सुनाय॥[1]

इस काव्य का आगे चलकर पर्याप्त विकास हुआ। रीतिकाल में राधा-कृष्ण के अतिरिक्त राजा-महाराजाओं के अष्टयाम भी लिखे गये।

विशेषताएँ—

१—यह काव्यरूप इस काल में अपनी प्रारम्भिक दशा में था। यहाँ इसके स्वरूप का पूर्ण विकास नहीं हुआ।

२—इसमें कृष्ण एवं राम की दैनिक चर्या का वर्णन हुआ करता था।

३—यह मुक्तक निबन्ध कहा जा सकता है। इसमें प्रबन्धात्मकता का अभाव रहता है।

---

[1] देखिए—नागरी प्रचारिणी सभा, ११वीं खोज रिपोर्ट, पृष्ठ ३११।

४—कृष्ण सम्बन्धी अष्टयाम पदो एवं दोहों मे तथा राम सम्बन्धी अष्टयाम दोहे चौपाई मे लिखे गये।

२३—नखशिख

परिभाषा एवं व्याख्या—"स्त्री (नायिका) के अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य का क्रम पूर्वक वर्णन जिन रचनाओ मे किया जाता है वे 'नखशिख काव्य' के अन्तर्गत आती है।" इन रचनाओ मे स्त्री सौन्दर्य का वर्णन शिख से लेकर नख तक चलता है। अत सर्वप्रथम वर्णन केशों का होता है। केशो के पश्चात् ललाट, भौह, नेत्र, नासिका, ओष्ट, दन्त, स्तन, कटि आदि का क्रमश एक-एक या अधिक छन्दों में वर्णन किया जाता है। जो अंग जितने ही अधिक प्रभावोत्पादक तथा-कवि-मन को आकर्षित करने वाले होते है उनका वर्णन उतना ही विस्तृत तथा सजीव होता है। केश, नासिका, दन्त, ओष्ट, स्तन तथा कटि, इन अंगो का वर्णन अधिकाश कवियो ने बड़े विस्तार से किया है।

नायिका के सौन्दर्य-चित्रण के लिए इस काव्यरूप की उपयोगिता सर्वविदित है।जायसी की 'पद्मावत' के 'नखशिख खण्ड' में इसी शैली को आधार बनाकर सौन्दर्य वर्णन किया गया है। जायसी ने शैली के आधार पर इस खण्ड का नाम भी 'नखशिख' ही रखा है। इसके अन्तर्गत वर्णन का क्रम यह है—अलक, माँग, लिलाट भौह, नैन, बरुनी, नासिका, अधर, दसन, रसना, कपोल, श्रवण, कण्ठ, भुजा, कुच, पेट, रोमावली, पीठि, लक, नाभिकुण्ड तथा नितम्ब। जायसी ने प्रत्येक अग के सौन्दर्य वर्णन के लिए सात चौपाई तथा एक दोहे का विधान किया है। पद्मावत का यह वर्णन हिन्दी साहित्य मे नखशिख प्रणाली के आधार पर किये जाने वाले सौन्दर्य वर्णनो में सर्वप्रथम है। कथाकाव्य के अन्तर्गत इस वर्णन की सफलता ने कवियों को आकर्षित किया और कालान्तर में यह स्वतन्त्र काव्यरूप के समान विकसित हुआ।

वर्णित-विषय—इस काव्यरूप मे शैली ही प्रधान तत्त्व है। एक निश्चित शैली के अन्दर किया गया नायिका का सौन्दर्य वर्णन इसका मुख्य विषय है। आलोच्यकाल में नखशिख सज्ञक सर्वप्रथम रचना बलभद्र कृत 'नखशिख' प्राप्त होती है जिसका प्रारम्भ कवि ने केश-वर्णन से किया है—

मरकत के सूत किधौं, पन्नग के पूत किधौं भमर अभूत तमराज के से तार है।
मषतूल गुन ग्राम सोभित सरस स्याम कामैंन कानन के कुहू के कुमार हैं।
कोप की किरनि कि जलद नलनि केतलू उपमा अनन्त चार चमर सिगार है।
कारे सटकारे भीने सौंधे से सरस बास जैसे बलभद्र नव बाला तेरे बार है॥

हस्तलिखित प्रति

सम्पूर्ण अंगो के वर्णन के साथ आभूषण तथा शृंगार आदि का वर्णन भी कई-कई छन्दो मे हुआ है। कुल कवित्तो की सख्या ६७ है।

केशव जी तथा कृष्ण कवि ने भी 'नखशिख' सज्ञक ग्रन्थों मे वर्णन का क्रम यही रखा है। इस रूप की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सौन्दर्य वर्णन के लिए कवित्त तथा सवैया इन दो छन्दो का ही व्यवहार हुआ है। फुटकर रूप से नायिका के अंगो के सौन्दर्य का वर्णन अकबर के दरबारी कवियों के छन्दों मे यथेष्ठ मात्रा मे प्राप्त होता है। उन्होने इस वर्णन मे नखशिख की शैली का आश्रय न लेकर अपनी रुचि के अगों का ही विशेष वर्णन किया है। नखशिख वर्णन की यह शैली आलोच्यकाल के अन्त मे प्रगट होकर रीतिकाल में पर्याप्त विकसित हुई और तब उसमें नई-नई उपमाओ एव उद्भावनाओ का समावेश हुआ।

विशेषताएँ—

१—इस काव्यरूप में वर्णन की शैली ही प्रधान होती है। अग-प्रत्यंग के सौन्दर्य का क्रम से वर्णन ही इसके अन्तर्गत आता है।

२—यह सौन्दर्य वर्णन मुक्तक रूप मे होता है। प्रत्येक छन्द अपने मे स्वतन्त्र एव पूर्ण होता है।

३—वर्णन के लिए निश्चित छन्द सख्या अथवा वर्णनो मे एकरसता रखने का प्रयत्न नही होता। अंग विशेष का वर्णन उनके प्रभाव अथवा कवि रुचि के अनुसार छोटा अथवा बडा हो सकता है।

४—इसमे कवित्त तथा सवैया दो छन्दो का ही प्रयोग हुआ है। जो सौन्दर्य वर्णन के लिए सबसे अधिक उपयुक्त थे।

२४—नाटक

संस्कृत साहित्य में नाटक—संस्कृत के आचार्यों ने नाटक को रूपक का भेद बताया है। रूपक के दस भेद बताये गये है—

नाटक मथ प्रकरण भाण व्यायोग समवकार डिमाः।
ईहामृगाक वीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥३॥

(विश्वनाथ कृत साहित्य दर्पण)

इस प्रकार नाटक मथ, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, वीथि, प्रहसन, रूपक के दस भेद होते हैं जिनमें नाटक सर्वप्रधान है। उसे नाट्याचार्यों ने नाट्यप्रकृति की सज्ञा प्रदान की है। रूपक का यह भेद इतना प्रचलित हुआ कि परवर्त्ती काल मे 'नाटक' शब्द रूपक का स्थनापन्न बन गया। रूपक के ये भेद वस्तु, नायक एवं रस इन तीन आधारों पर ही किये गये है। यही तीनो

नाटक के तत्त्व कहलाते है। संस्कृत के अनेक आचार्यो ने नाटक आदि रूपक भेदो की विशेषताओ पर विस्तार से प्रकाश डाला है। आचार्य वामन ने 'काव्यालंकार सूत्र वृत्ति' मे काव्य के पाँच भेदो मे से एक भेद 'अभिनेयार्थ' अर्थात् नाटक को महाकाव्य के पश्चात् स्थान दिया है। भामह ने 'नाटक, द्विपदी, शम्या, रासक और स्कन्धादि इन पाँच प्रकार के रूपक एव उपरूपको को अभिनेयार्थ काव्य माना है—

नाटक, द्विपदी, शम्या, रासक स्कन्धकादियत।
उक्त तदभिनेयार्थ मुक्तोऽन्यै स्तस्यविस्तर ।।२५।।

नाटक का नायक धीरोदात्त क्षत्रिय कुलोत्पन्न एवं गुण सम्पन्न होना चाहिए। शृंगार, वीर, शान्त मे के एक रस प्रधान होना चाहिए। 'साहित्य दर्पण' मे कहा गया है—

एक एवं भवेदगी शृगारो वीर एव वा।
अगमन्यैरसा· सर्वेकार्या निर्बहणेद्भुत: ।।१०।।

(पृष्ठ ४११)

संस्कृत के आचार्यो के लक्षणों के आधार पर 'नाटक' के स्वरूप को इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—"नाटक वह अभिनेयार्थ काव्य है जो पच सन्धि युक्त, पौराणिक कथाऐतिहासिक वस्तु, ५ से १० तक अंक, धीरोदात्त नायक, शृगार या वीर रस, कौशिकी या सात्विकी वृत्ति से युत हो।

आलोच्यकाल के नाटक व्याख्या एवं परिभाषा—संस्कृत के नाटक आचार्यो द्वारा बताये गये लक्षणों को ध्यान मे रखकर ही रचे गये। आलोच्यकाल के हिन्दी नाटक सस्कृत के नाटको के प्रभाव से सर्वथा मुक्त दिखाई देते हैं। इस काल के नाटक सस्कृत के नाट्याचार्यो द्वारा निर्धारित नियमों के आधार पर न लिखे जाकर जननाटक की शैली मे लिखे गए। हिन्दी के इन प्रारम्भिक नाटको के स्वरूप को समझने के लिए जैन कवियो के रास ग्रन्थ एव वैष्णवो की रासलीला पर विचार करना आवश्यक है, जिनका इस रूप के विकास में पर्याप्त योग है।

रास प्रकरण मे जैन कवियो के रास ग्रन्थो पर विचार किया जा चुका है। जैनो के रास ग्रन्थ अभिनेय होते थे। जैन श्रावको एवं धर्मप्राण जनता के समक्ष उनका अभिनय किया जाता था। १४वी और १५वी शताब्दी के रास ग्रन्थो मे उनके अभिनीत होने के उल्लेख प्राप्त होते है। यह रास नाटक सस्कृत की नाटक परम्परा से सर्वथा भिन्न थे। इनका सम्बन्ध शास्त्र से न होकर लोक से था। विक्रम की १६वी शताब्दी मे समस्त उत्तर भारत में वैष्णव धर्म का प्रचार हुआ। ईश्वर के गुणगान के लिए कीर्तन को प्रमुखता दी जाने लगी। कृष्ण की अनेक लीलाएँ वैष्णव मन्दिरो मे जन-सामान्य को आकर्षित करने के लिए प्रदर्शित की जाने लगीं

जिस प्रकार जैन कवि अपने सिद्धान्तो के प्रचार के लिए राम ग्रन्थो की रचना करते जा रहे थे, उसी प्रकार वैष्णव कवियो ने भी जन-सामान्य के मध्य भक्ति के प्रचार हेतु कृष्ण-रास की रचना की। कुछ साहित्यिक रुचि वाले वैष्णव कवि इस काल मे नाटक लिखने की ओर भी प्रवृत्त हुए। तुलसीदास ने राम के चरित्र का उस काल मे प्रचलित लगभग समस्त रूपो मे गान किया था, लेकिन उन्होने भक्तो मे प्रचलित 'रास' (नाटक) रूप को छोड दिया था। फलत अनेक भक्तों ने उस रूप को लेकर राम का चरित्र लिखने का प्रयत्न किया। वैष्णव धर्म के आन्दोलन की प्रमुखता होने के कारण उस काल मे नाटको के लिए रामायण एव भागवत मे कथा वस्तु के लिए सामग्री ग्रहण करना आवश्यक भी था।

इस काल मे सामान्य जन का सम्बन्ध सस्कृत के नाटको से छूट चुका था। जो आनन्द उन्हे नृत्य गीत युक्त रास के गेय पदों मे प्राप्त होता था, वह सस्कृत नाटकों मे प्रचलित कोरे वाद-विवाद युक्त गद्य मे कहाँ था। फलत लोकरुचि का ध्यान रखते हुए इन नाटककारो ने सस्कृत के नाटको को आधार न बनाकर लोक मे प्रचलित जननाटक की शैली को आधार बनाया। इस काल के नाटकों का यह स्वरूप पूर्णतः मौलिक था, लेकिन इनका अक विभाजन सस्कृत के नाटको के आधार पर ही किया गया। संस्कृत के नाटकों का अन्य कोई बन्धन इन नाटककारो को स्वीकार नही था।

इन नाटको मे कुछ ऐसे तत्त्व है जो न तो सस्कृत नाटको से मेल खाते है और न वर्तमान काल के उन नाटको मे, जो सस्कृत के नाटको को आधार मान कर लिखे गए है। आलोच्यकाल के ये नाटक पद्यबद्ध है। प्रारम्भ से अन्त तक सम्वाद के रूप मे अथवा कवि की भक्ति के द्वारा ही कथानक आगे बढता चलता है। पात्रो के प्रवेश, प्रस्थान आदि के विधान के साथ-साथ इनमे नान्दी, प्रस्तावना, भरत वाक्य आदि नाटकीय नियमो का पालन भी नही हुआ है। इनके इस स्वरूप के कारण कुछ विद्वान इन ग्रन्थो को नाटक मानना पसन्द नही करते।[1] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी हिन्दी के नाटकों का प्रारम्भ अपने पिता द्वारा लिखित 'नहुष' नाटक से माना है। इस सम्बन्ध मे यह निवेदन कर देना आवश्यक है कि ये नाटक सस्कृत नाटको की शैली पर नही लिखे गए। इनमे सस्कृत के नाटको अथवा परवर्ती हिन्दी के नाटको मे साम्य ढूँढना अनुचित है। यह नाटक हिन्दी साहित्य की मौलिक रचनाएँ है। इन नाटककारो ने जननाटको की शैली को अपनाया है। इस प्रकार के नाटकों मे समस्त कथानक पद्य मे चलना गुण माना जाता है। इनको रचने का उद्देश्य लोकरजन के साथ-साथ जनसामान्य एव विद्वत् समाज को पास-पास लाना

---

[1] डा० सोमनाथ—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, पृ० ७।

था। इस प्रकार के नाटक आलोच्यकाल की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करते है। डा० दशरथ ओझा ने लिखा है कि 'आलोच्यकाल के नाटककारों ने समाज की स्थिति को समझा। उन्ही ने अनुभव किया कि पडित समाज जननाट्य शैली की रमणीयता से पराङ्मुख हो रहा है और साधारण जनता सस्कृत नाटकों के भाव-गाभीर्य से वचित रह जाती है। अतएव ऐसे नाटको की आवश्यकता थी जो दोनो वर्गो को रमणीय और उन्नायक सिद्ध हो।[१] जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है आलोच्यकाल के इन नाटको की कथावस्तु तो सस्कृत नाटको के आधार पर ही रखी गई लेकिन इसकी शैली मे पूर्णत. परिवर्तन कर दिया गया। इन नाटकों मे से कुछ नाटक तो लोक सामान्य के बीच बड़े प्रसिद्ध थे। लछीराम कृत 'करुणाभरण नाटक' मे नाटककार ने उसके अभिनय करने की बात का स्वय उल्लेख किया है।

> लछीराम नाटक कर्‌यौ दीनौ गुनीन पढाइ।
> भेख रेख निर्तन निपुन लाए नरनि सिधाइ।
> सुहृद मण्डली जोरि तहाँ कीनो बडो समाजु।३।
> जो उन नाच्यौ सो कह्यौ कविता मे सुख साजु।४।
>
> (करुणाभरण नाटक—हस्त० प्रति)

लछीराम ने नाटक लिखा। उसे निपुण व्यक्तियो को पढाया गया। अनेक निपुण नर्तको द्वारा उसका अभिनय हुआ। उसी अभिनय के आधार पर यह नाटक पद्यबद्ध किया गया। इस कथन से इन नाटको के स्वरूप पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। इस काल के नाटकों के स्वरूप पर ऊपर विचार हो चुका है उसके आधार पर इस रूप की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—

सस्कृत नाटको की परम्परा से मुक्त, अंको मे विभाजित, जननाटक की शैली मे, लोक सामान्य के बीच अभिनय करने के उद्देश्य से पौराणिक कथावस्तु को आधार बनाकर लिखी गई, आलोच्यकाल की रचनाएँ नाटक कही गईं।"

वर्णित विषय—इस कोटि का सर्वप्रथम ग्रन्थ बलभद्र कृत 'हनुमान नाटक' है जो अप्राप्त है। शेष चार नाटक प्राप्त है। इनमें से हरिराम कृत 'जानकी-राम चारित्र नाटक', प्राणचन्द कृत 'रामायण महानाटक' एव हृदयराम कृत 'हनुमान नाटक' की कथावस्तु का सम्बन्ध राम कथा से है। लछीराम कृत 'करुणाभरण नाटक' कृष्ण की कथा से सम्बन्धित है। 'रामचरित्र नाटक' एव 'रामायण महानाटक' की कथावस्तु 'रामचरितमानस' से पूर्ण साम्य रखती है। दोनो नाटक पाँच-पाँच अको मे विभाजित है। प्राणचन्द ने तो इन विभाजनो का उल्लेख भी कर दिया है—

---

[१] हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृ० १७३

ऐनाऐक कपि आधि कै गये जहाँ जमुषान।
पाँच अंक नाटक कर प्राणचन्द चौहान।
रामायण महानाटक, हस्तलिखित प्रति, पृ० ६४।

इन दोनो ग्रन्थ मे राम-कथा सम्वाद शैली में वर्णन की गई है।

हृदयराम कृत 'हनुमान नाटक' संस्कृत के इसी नाम के ग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है। यह संस्कृत के ग्रन्थ का अनुवाद नही है। दोनो की कथाओ मे कई स्थानों पर भेद दिखाई देता है। संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' में परशुराम के शान्त हो जाने पर विवाह कार्य सम्पादित होता है जबकि इस नाटक मे विवाह के पश्चात् बरात के लौटते समय अयोध्या के मार्ग मे परशुराम जी मिलते है। लंकादहन का वर्णन भी इस ग्रन्थ में संस्कृत के ग्रन्थ की अपेक्षा अधिक विस्तृत एव सजीव है। संस्कृत के ग्रन्थ के १०वें अंक मे रावण और सीता का सम्वाद मिलता है जबकि हिन्दी के ग्रन्थ मे इसका वर्णन नही है। इस ग्रन्थ की कथा मे रामचरितमानस की कथा मे भी कही-कही भेद किया गया है। परशुराम सम्वाद के अवसर पर दशरथ की उपस्थिति इस ग्रन्थ मे दिखाई गई है जो जानकी मगल से मिलती है। ग्रन्थ मे हनुमान सम्बन्धी कथा का वर्णन ही अधिक विस्तार से हुआ है। रामचरितमानस की अनेक उक्तियाँ एव भाव लगभग उसी रूप मे इस ग्रन्थ मे प्राप्त होते है—

आजु जुरे सब देसन देस ते आजु नरेस कुलाहल भारी।
रे सिव कौ धनु क्यो न उठावत आवत हौ ढिग ते बलिहारी।
श्री रघुवीर वही समसों भई वीर बिना छित रोय पुकारी।
देषउ हाथ लगाइ सबै भटनाक चली कट नाक तिहारी।
(हनुमान नाटक—हस्तलिखित प्रति)

ग्रन्थ का अन्त हनुमान की शक्ति के साथ होता है जिसमे वह अपने सम्पूर्ण कार्यों का श्रेय राम के चरणों के प्रताप को देते हैं—

राम के पाइन के बल पाइ मे बालि को मारि के राज लियो।
अरु राम के पाइन के बलि ते कपि मण्डल में कपिराज भयो।
इन राम के पाइन मे जब ही चित चौपि मिलाइ के नैकु दयो।
तब ही सब पूरण काम भये कवि राम यहै जियते न हियो।१४०।
(वही प्रति)

इस ग्रन्थ की कथा छः अको मे विभाजित है जिन्हे 'आकुस' कहा गया है।

लछीराम ने 'करुणाभरण नाटक' की रचना रसिक, भक्त, कवि आदि के कहने पर करुणा एवं शृंगार के वर्णन तथा प्रेम बढाने के लिए की—

रसिक भक्ति पडित कविनु कही महा फल लेऊ।
करुणा नाटिकु भरन तुम लछीराम करि देउ ।
प्रेम बढ़े मनु निकट ही औरु आवै अति रोय।
करुणा अरु शृगार रस, जहाँ बहुत करि होय ।२।
(करुणाभरण नाटक—हस्तलिखित प्रति)

फलत कवि को कथानक भी वैसा ही चुनना पडा। प्रथम अध्याय मे सूर्य-ग्रहण के अवसर पर समस्त यादव एव अपनी रानियों सहित कृष्ण का और समस्त ग्वाल, गोपी, राधा एव यशोदा सहित नन्द का कुरुक्षेत्र मे मिलन का वर्णन किया है। कुरुक्षेत्र मे कृष्ण का आगमन सुनकर राधा की दशा बड़ी विचित्र हो उठी, उसे शका होने लगी कि कही कृष्ण राजा होकर अनेक सुन्दर-सुन्दर रानियो से युक्त होने के कारण मेरे प्रेम को भूल तो नही गए। फिर भी उसे अपने प्रेम पर विश्वास है। वह प्रेम ही ऐसा है, जिसे भुलाया नही जा सकता है—

कहा भयो रानी बहुत सुन्दर सुबरण गात।
मेरी औरु गोपाल की न्यारी है कछु बात ।।३६।।
(वही प्रति, पृष्ठ ३)

दूसरे अध्याय मे गोप, आदि की दशा का वर्णन किया गया है। साथ खेलने वाले गोप कुमार अब भी उन्हीं पुरानी कल्पनाओ मे मग्न है, उनसे अपने पहिले अरमानो को चुका लेना चाहते है। कोई-कोई तो कृष्ण पर पुराने चढे हुए खेल के दाँव को अब लेने की बात कह देता है—

एक कहै आवन तौ देऊ। तब हम दाव खेल कौ लेऊ ।।१०।।
(वही प्रति, पृष्ठ ५)

तीसरे अध्याय मे व्रजवासियो के आगमन को सुनकर कृष्ण की दशा का वर्णन है। कृष्ण व्रजवासियो के प्यार को स्मरण करके रोने और काँपने लगे। सभी ने समझाया। रुक्मिणी यह समाचार सुनकर दौडी आई। व्रजवासियो के प्रेम की कथाओं को सुनकर वह व्रजवासियों के दरशनों की लालसा से भर उठीं लेकिन सत्यभामा राधा के आने की बात सुनकर ईर्ष्या से जल उठी और कृष्ण को व्यग वचनों से वेधने लगी। चौथे अध्याय मे कृष्ण और व्रजवासियों की भेंट का अपूर्व वर्णन है। पाँचवे अध्याय में प्रेम की अनन्यता का वर्णन है। कृष्ण राधा के प्रेम की महत्ता को रुक्मिणी के समक्ष रखते है। राधा की विरह दशा एवं कृष्ण-राधा मिलन का वर्णन है। छठे एव अन्तिम अध्याय में व्रजवासियों का विदा होना एवं प्रेम के भाव की श्रेष्ठता का राधा द्वारा प्रतिपादन है कृष्ण को अपनी ओर

आकृष्ट करने का आक्षप सत्यभामा मे सुनकर राधा प्रम के नाते को ही सवश्रष्ठ ठहराती है। प्रेम मे कोई नियम नही होता। वह कहती है—

नैमु न देख्यौ पाइयें तहाँ प्रेम कौ ठाँव।
कत न पूछै बात री मोहि सुहागिन नाम ॥४४॥
(वही प्रति, पृष्ठ २१)

राधा कृष्ण से यह वरदान माँगती है—

तब राधा ऐसी कही तौ वृन्दावन जाऊ।
कै मो सग नित व्योहरो कै तौ सरहि समाउ ॥५५॥
(वही प्रति, पृष्ठ २२)

नाटक के प्रधान उद्देश्य प्रेम की महत्ता प्रदर्शन के साथ ही नाटक का अन्त होता है।

इसकी एक प्रति और प्राप्त हुई है[1] जिसके अनुसार सप्तम खण्ड मे 'अद्वैत भाव' प्रेम की वह दशा, जिसमे प्रेम और प्रेमी दोनो एकाकार हो उठते है, का वर्णन हुआ है। इस अक मे वह संसार के समस्त पदार्थों को कृष्णमय मानते हुए कहते है—

आपुहि व्रज कालिन्दी बरनन। आपुहि वेनु धेनु गोपीजन।
आपुहि कामी कामिनि कामु। कुंज धाम अरु जमुना जामु ॥१४॥
आपुहि सरद ससिकला प्रकाश। आपुहि सगीत आपुहि रास।
आपुहि नारि पुरुष है आपु। ताहि कहाँ लगि लागै पापु ॥१५॥
(हस्तलिखित प्रति)

इसी अंक में कवि ने अपने को कवीन्द्राचार्य सरस्वती का शिष्य बताया है जो बड़े विद्वान् थे एवं काशी मे रहते थे।

इन नाटकों मे से 'हनुमान नाटक' ही ऐसा है जिसमे कवित्त-सवैयो का प्रयोग हुआ है। शेष नाटकों में कथा दोहे चौपाई मे वर्णन की गई है जिनका कोई निश्चित क्रम इनमे दिखाई नही देता। जननाटको की शैली में ढाली गई पौराणिक कथाएँ उस काल में इतनी लोकप्रिय हुईं कि साधारण जनता के अतिरिक्त उच्च वर्ग के व्यक्ति भी उनमे रस लेने लगे। परवर्ती काल के अनेक आश्रयदाताओ ने अपने आश्रय में रहने वाले कवियो को नाटक लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। नेवाज का 'शकुन्तला नाटक' आजमशाह के प्रोत्साहन से तथा सोमनाथ का 'मालती माधव'

[1] देखिए—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी मे संग्रहीत हस्तलिखित प्रति संख्या ८१२/२१।

प्रतापसिंह की प्रेरणा से लिखा गया। इन नाटको ने एक अन्य रूप में भी जनता को प्रभावित किया। कृष्ण की रास लीला के समान ही राम की लीला के लिए भी इन नाटको ने मार्ग प्रशस्त किया। राम का लोकपावन चरित्र अभिनय के योग्य बनकर रामलीला के रूप मे लोक मे प्रचलित हुआ। उन्नीसवी शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते राम चरित्र के आधार पर लिखे नाटको की संज्ञा भी 'लीला' के साथ दी जाने लगी। उस काल की 'रामलीला विहार नाटक' ऐसी ही रचना है।

विशेषताएँ—

१—आलोच्यकाल मे नाटक का स्वरूप पूर्णत. मौलिक रहा। इसमे सस्कृत के नाटको से उनमे प्रचलित अक विभाजन के अतिरिक्त और कोई तत्त्व ग्रहण नही किया गया।

२—उन नाटको मे जन नाटकों की शैली अपनाई गई। ये नाटक जैन कवियों मे प्रचलित रास एवं वैष्णव कवियो की रासलीला के सम्मि-श्रण का परिणाम थे।

३—नाटक छन्दोबद्ध है, इनमें गद्य का पूर्ण अभाव है।

४—जननाटको की शैली मे लिखे जाने के कारण इनमे गीत, नृत्य एव अभिनय तीनो तत्त्वो का समावेश किया जाता था। उस काल मे इनका अभिनय किया जाता था।

५—अभिनय के लिए लिखे जाने के कारण इनमे सम्वाद शैली का प्रयोग अधिकाधिक किया जाता था, जिनसे इनमे नाटकीयता आ जाती थी।

६—इनमे कथावस्तु का विधान सस्कृत के नाटको के आधार पर ही किया गया। राम और कृष्ण के चरित्र ही प्रमुख रूप से वर्णन किए गए।

७—प्रधानतः दोहे, चौपाई, कवित्त एव सवैयो का ही प्रयोग हुआ।

प्रत्येक काव्यरूप की परम्परा

षष्ठ अध्याय

षष्ठ अध्याय

प्रत्येक काव्यरूप की परम्परा

चतुर्थ अध्याय में आलोच्यकाल के सभी काव्यरूपो का ऐतिहासिक अनुसन्धान प्रस्तुत करते समय प्रत्येक काव्यरूप के अन्तर्गत विक्रम की १७वी शताब्दी के अन्त तक रची गई रचनाओ का उल्लेख किया गया है। अध्ययन को पूर्ण बनाने के लिए प्रत्येक काव्यरूप की, आलोच्यकाल के बाद प्राप्त होने वाली परम्परा पर विचार कर लेना भी आवश्यक है। इस अध्याय में प्रत्येक काव्यरूप के अन्तर्गत रची जाने वाली परवर्ती काल की प्रमुख-प्रमुख रचनाओं का उल्लेख करके उनके द्वारा काव्यरूप मे हुए विकास को दिखाने का प्रयास किया गया है। परम्परा मे जिन रचनाओ का उल्लेख हुआ है, उनमे से उन रचनाओ को छोड़कर जिनका हिन्दी साहित्य के विविध इतिहासो मे हो चुका है, शेष के उल्लेख के आधार को भी रचना के साथ दे दिया गया है।[1] रचनाओ की तालिका प्रस्तुत करने मे कालक्रम का यथासम्भव ध्यान रखा गया है इसी लिए ग्रन्थो के रचनाकाल को विस्तार भय से छोड दिया गया है।

१—बानी

आलोच्यकाल के समान ही परवर्तीकाल मे भी सन्त एवं भक्त दोनो प्रकार के कवियों की बानियाँ प्राप्त होती है। कुछ प्रमुख बानियाँ ये है—

सन्तों की बानियां—१. लालदास कृत बानी, २ भीखा साहब कृत बानी, ३. गुलाल साहब कृत बानी, ४. दरयाव जी कृत वाणी, ५. दूलनदास कृत बानी, ६. रामाचरण कृत वाणी, ७. पलटूदास कृत बानी, ८. तुलसीदास (हाथरस वाले) कृत बानी, ९. कानडदास कृत कानडदास की वाणी, (राज० खो० भाग ४) १०. फकीरादास कृत बानी, (ना० प्र० खोज सख्या १४) ११. सूरतराम कृत बानी (राज० खोज भाग ३), १२ दूल्हराम की बानी, (वही खोज विवरण)

[1] इस आधार के उल्लेख के लिए इन सकेताक्षरो का प्रयोग किया गया है—

[अ] (ना० प्र० खो०) नागरी प्रचारिणी सभा की हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज।

[आ] (ना० प्र० की प्रति) नागरी प्रचारिणी सभा की हस्तलिखित प्रति।

[इ] (राज० खोज) राजस्थान मे हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज।

भक्तों की बानियां—१. जनहरिदास कृत बानी (ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा की प्रति), २. नरहरिदास कृत वाणी, ३. रसिकदास कृत वाणी, ४. नवलदास कृत वाणी, ५ ललित किशोरी कृत वाणी, (सभी निम्बार्क सम्प्रदाय बृन्दावन मे सग्रहीत), ६. देवदास कृत वाणी (राज० खोज भाग ३) एव ७. माधवदास कृत वाणी (बाबा कृष्णदास कुसुम सरोवर वाले की प्रति)।

सन्त कवियों की जिन बानियो का ऊपर उल्लेख हुआ है उनमे से अधिकाश वेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हो चुकी है। जैसा कि पिछले अध्याय मे बानी के प्रकरण मे कहा जा चुका है कि परवर्त्ती सन्तो एवं भक्तो मे 'बानी' शब्द उनके समस्त कृतित्व के लिए ही प्रयोग होने लगा था। आलोच्यकाल के भक्तों की रचनाएँ तो इसी अर्थ को लेकर लिखी ही गई थी। परवर्त्ती काल की इन प्रकाशित एव अप्रकाशित रचनाओ को देखने से यह ज्ञात होता है कि इस काल मे किसी भी सन्त अथवा भक्त कवि की उपदेश अथवा सिद्धान्त विषयक रचनाओ के सग्रह के लिए बानी सज्ञा दे दी जाती थी। बानी शब्द का प्रचार आज भी साहित्य मे सन्तो की रचनाओ के लिए होता है ' 'सन्तो की रचनाएँ' न कहकर 'सन्तों की बानियाँ' कहना ही विद्वान अधिक पसन्द करते है। सन्तों की बानियो के विषय भी आलोच्य काल के समान ही रहे। इन बानियो मे प्राय. उन सभी काव्यरूपो का समावेश हुआ जिनका कबीर ने प्रयोग किया था। सन्तो ने साखी, सबद, ककहरा, बारहमासा, झूलना, हिंडोला, होली, बसन्त, रेखता, मगल आदि अनेक रूपो के आधार पर कविता की। यारी साहब एव गुलाल साहब ने सबसे अधिक काव्यरूपो का प्रयोग किया। भक्त कवियो ने अपनी बानियो मे भक्ति एवं उपदेश को ही स्थान दिया। माधवदास जी ने तो अपनी वाणी मे 'ग्वालिनी झगरो', 'नारायण लीला' एव 'प्रतीत परीक्षा' इन लीलाओं का भी समावेश किया है। इन भक्तों ने अपनी वाणियो मे पदो को स्थान न देकर दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया एव चौबोला को ही अधिक स्थान दिया।

२—चरित-काव्य

आलोच्यकाल के पश्चात् भी चरित्र-काव्य लिखे जाते रहे। इस काल मे इस प्रकार के काव्य-ग्रन्थों की कुछ विशेष उन्नति न हुई। सैकडो की सख्या मे प्राप्त होने वाले ग्रन्थों मे कुछ ही ऐसे है जिनमें कवित्व का यथेष्ट आकर्षण वर्तमान है। इस काल में भी 'चरित-काव्य' की उसी शिथिल परिभाषा के दर्शन होते है जो आलोच्यकाल मे प्रचलित थी। आलोच्यकाल के चरित-काव्यो के समान परवर्त्ती काल मे भी सभी प्रकार के चरित-काव्य लिखे जाते रहे। ऐतिहासिक चरित-काव्यो की संख्या इस काल मे अत्यधिक है। राज्याश्रित कवियों ने 'रासो', विलास', 'रूपक'

प्रथवा प्रकाश संज्ञा देकर अनेक ग्रंथ लिखे जिनमें अपने आश्रयदाता अथवा प्राचीन वीरों के जीवन चरित्र, दान, युद्ध, शौर्य आदि का विस्तृत वर्णन किया। कुछ चरित्र-काव्य ये है—

१ पीताम्बर कृत 'राम विलास', २. दीनदत्त कृत 'आत्म चरित्र', ३ किशोरदास कृत 'राजप्रकाश', ४ डूगरसी कृत 'शत्रुसाल रासो', ५. जग्गा जी कृत 'रतनरासौ' ६ गिरधर कृत 'सगतसिंघ रासौ', ७. नरहरिदास कृत 'अवतारचरित्र' ८ मानजी कृत 'राज विलास', ९. छत्र कृत 'विजय मुक्तावली', १० गोविन्दसिंह कृत 'चण्डी चरित्र', ११. लाल कृत 'छत्रप्रकाश', १२ दयाल कृत 'राणा रासो', १३ वीर भाण कृत 'राजरूपक', १४. करणीदान कृत 'सूरजप्रकाश' एवं 'विडदसिणगार', १५ नन्दराम कृत 'जगविलास', १६. सोमनाथ कृत 'रामचरित्र रत्नाकर', १७ विश्वनाथसिंह कृत 'रामायण', १८. जोधराज कृत 'हम्मीर रासो', १९. गुमान कृत 'नैषध चरित्र', २०. भगवन्तराय खीची कृत 'रामायण', २१. सूदन कृत 'सुजान चरित्र', २२ गोकुलनाथ कृत 'सीताराम गुणार्णव', २३. मचति कृत 'कृष्णायन', २४. मधुसूदन कृत 'रामाश्वमेघ', २५. मनियारसिंह कृत 'सुन्दरकाड', २६ नवलसिंह कायस्थ कृत 'आल्हा रामायण' २७. चन्दशेखर कृत 'हम्मीर हठ' २८ किशन जी कृत 'भीम विलास', एवं 'रघुबर जस प्रकाश', २९. सूरजमल कृत 'बलवन्त विलास' ३०. सादू पृथ्वीराज कृत 'अभय विलास', ३१. महाराजजयसिंह कृत 'कृष्णचरित्र' एवं 'हतचरितामृत', ३२. भागवत मुदित कृत 'हतचरित्र' (ना० प्र० सभा की प्रति), ३३. बालकृष्ण कृत 'सुदामाचरित्र' (राज० खोज भाग १), ३४. गणेशदास कृत 'सुदामा चरित्र' (वही खोज), ३५. अज्ञात कवि कृत 'सूरजवंश' (वही खोज), ३६ माधुरीदास कृत 'रामाश्वमेघ' (ना० प्र० सभा खोज ११), ३७ रामचरन कृत 'उषा अनिरुद्ध का व्याह' (वही खोज), ३८. लोचनदास कृत 'भक्त भावना' (वही खोज), ३९. बनादास कृत 'उभय प्रबोधक रामायन' (वही खोज), ४० खुशालचन्द्र कृत 'यशोधर चरित्र', 'धन्यकुमार चरित्र', 'जम्बू चरित्र', ४१ चेतन विजय कृत 'जम्बू चरित्र' (राज० खोज० भाग २), ४२. अज्ञात कवि कृत 'श्रीपाल रासो' (वही खोज) आदि।

आलोच्यकाल के पश्चात् लिखे गए चरित-काव्यों की संख्या ऊपर दिये गए ग्रन्थो तक ही सीमित नही है। ऊपर की सूची मे तो प्रत्येक कोटि के प्रमुख-प्रमुख ग्रन्थो का ही उल्लेख किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि इस काल में भी ऐतिहासिक, पौराणिक एवं धार्मिक तीनो प्रकार के चरित्र-काव्य प्राप्त होते हैं। पौराणिक पुरुषो मे राम, कृष्ण, उषा, नल एवं सुदामा के लोक प्रसिद्ध चरित्र ग्रहण किए गए। महाभारत की कथा को भी चरित-काव्य के समान वर्णन किया गया। कुछ कवियो ने तो भगवान के सभी अवतारो का वर्णन किया। ऐसे ग्रन्थो मे राम एवं

कृष्ण के चरित्र का ही वर्णन विस्तार से किया गया और उनके चरित्र वर्णन मे उन्होंने बहुत कुछ तुलसी, केशव एव सूर से ग्रहण किया । भाव ही नही, कही-कही तो शब्दावली भी ज्यो की त्यो ग्रहण करली गई । नरहरि कृत 'अवतार चरित्र' मे राम अवतार का वर्णन तुलसी के 'रामचरित मानस' एव केशव की 'रामचन्द्रिका' से बहुत साम्य रखता है । कुछ कवियो ने राम-कथा का वर्णन रीति की परिपाटी के आधार पर किया । किशन जी आढा कृत 'रघुवर जस प्रकाश' मे राम-कथा का वर्णन छन्दो के लक्षण एव उदाहरणों के रूप मे किया गया है । 'रासो', 'विलास', 'प्रकाश', 'रूपक', आदि सज्ञाएँ देकर इस काल मे अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे गए । इन ग्रन्थों मे आश्रयदाता अथवा अन्य इतिहास प्रसिद्ध वीरों के जीवन चरित्र, युद्ध, वीरता आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है । राज्याश्रयो मे रहने के कारण कवियो मे कल्पना एव राज-स्तुति का प्रयास पर्याप्त मात्रा मे लक्षित होता है । धार्मिक चरित-काव्यो मे जैनो के धार्मिक पुरुष एव हिन्दू भक्त दोनो के ही चरित्र वर्णन किए गए । जैन कवियो द्वारा तो उन्ही चरित्रों का वर्णन किया गया जो आलोच्यकाल मे बडे लोकप्रिय थे । हिन्दू कवियो ने भी अपने गुरुओ के जीवत चरित्र लिखे । भगवत मुदित कृत 'हितचरित्र' स्वामी हित हरिवश के जीवन चरित्र से एवं लोचनदास कृत 'भक्त भावना' कबीर के जीवन चरित्र मे सम्बन्धित है । दीनदत्त कृत 'आत्म चरित्र' एक ऐसी रचना है जो बनारसीदास कृत 'अर्द्ध कथानक' के समान आत्म चरित है ।

परवर्त्ती काल की इन रचनाओ मे छन्द एव शैली दोनों दृष्टियो से भी अन्तर होता है । ऐतिहासिक चरित-काव्यो मे प्रधानत उसी शैली का प्रयोग हुआ जो चन्द कृत 'पृथ्वीराज रासो' में दिखलाई देती है । वर्ण्य विषय की समानता होने के कारण छन्दो का विधान भी 'पृथ्वीराज रासो' जैसा ही दिखाई देता है । राम-कथा का गान करने वाले राजस्थान के कवियों ने उस पौराणिक कथा को भी उसी शैली एवं छन्दों मे वर्णन किया है । 'आल्हा' की लोकप्रियता के कारण नवलसिंह कायस्थ ने 'आल्हा रामायण' की रचना की और उन्नीसवी शताब्दी के रामचरण नामक कवि ने आल्हा की तर्ज पर आल्हा गीत मे 'उषा, अनिरुद्ध का व्याह' नामक ग्रन्थ लिखा । व्रजभाषा मे लिखे गए चरित-काव्यो मे तो प्रधानत तुलसीदास द्वारा व्यवहृत दोहा-चौपाई की शैली ही अपनाई जाती रही ।

३—रास

विक्रम की सत्रहवी शताब्दी के पश्चात् भी जैन कवि रास ग्रन्थों की रचना करते रहे । इन रास ग्रन्थो मे विषय-वस्तु, शैली, छन्द, संज्ञा आदि सभी आवश्यक तत्त्व वही ग्रहण किये गए जो ाल के मे लिखे गए रास ग्रन्थो मे

ग्रहण किए जाते थे परवर्त्तीकाल क कुछ प्रमुख रास ग्रन्थ य हैं—१ तत्वविजय कृत 'अगरदत्त मित्राणन्द 'रास (राज० खोज० भाग–३), २ सूरविजय कृत 'रत्नपाल रत्नावली रास', ३ जिनहर्ष कृत 'श्रीपाल चतुष्ट पदी' (वही) ४ ज्ञान विमल सूरि कृत 'आनन्द मन्दिर नास्ति रास' (वही), ५. मोहन विजय कृत 'चन्द-राज चरित्र'—रास (वही). ६. मनिकुशल कृत 'चन्द्रलेहा चतुष्पदी' (वही), ७. जयविमल कृत 'जम्बू स्वामी रास' (राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर की प्रति). ८. उदय-रत्न कृत 'लीलावती रास' (वही), ९. हर्षमूर्ति कृत 'चन्दलैला चौपाई (वही), १० ऋषभदास कृत 'हरिसूरि रास' (वही), ११. जिनहर्ष कृत 'उत्तमकुमार रास' (वही), १२ अज्ञात कवि कृत 'चित्रसेन पद्मावती रास', (राज० खोज० भाग ३) १३ मावतराम कृत 'द्रौपदी चौपाई' (वही), १४. जिनोदय सूरि कृत 'हंसराज वच्छराज चउपई' (वही), १५. अज्ञात कृत 'परदेशी राजा री चौपई' (वही)।

सभी दृष्टियो से परवर्त्तीकाल की रचनाएँ आलोच्यकाल की सोलहवी शताब्दी की रचनाओ के समान ही है। इस काल मे अधिकाश रास ग्रन्थ प्रेमपरक कहानियो को लेकर ही लिखे गए। जिन धार्मिक व्यक्तियो के चरित्र को आधार बनाकर रास ग्रन्थ लिखे गए वे सभी ऐसे है जिन पर अपभ्रश काल से लेकर आलोच्यकाल तक के अनेक जैन कवि रास ग्रन्थो की रचना कर चुके थे।

४—कथावार्त्ता-काव्य

आलोच्यकाल के पश्चात भी लोक-प्रचलित प्रेम-काव्यरूपो के आधार पर कथावार्त्ता काव्य लिखे जाते रहे। सत्रहवी शताब्दी के जान कवि हाँसी वाले शेख मुहम्मद चिश्ती के शिष्य थे और बहुत प्रतिभाशाली कवि थे। उन्होने अनेक प्रेमा-ख्यान लिखे जिनमे से कुछ सत्रहवी शताब्दी मे तथा शेष अठारहवी शताब्दी मे रचे गए। इस प्रकार आलोच्यकाल के पश्चात् प्रेमकथा-काव्यो की परम्परा का प्रारम्भ उन्ही के प्रेमाख्यानो से होता है। उनके अतिरिक्त अन्य अनेक हिन्दू एव मुसलमान कवियो ने भी लोक-प्रचलित कथानको को आधार बनाकर काव्य-रचना की। परवर्त्तीकाल मे रची गई कुछ प्रमुख रचनाएँ ये है—१–जान कवि कृत 'पुहुपवरखा', 'कमलावती कथा', 'कलावती कथा', 'छीता की कथा', 'रूपमंजरी, 'मोहनी', 'चन्द्रसेन राजा सति निधान की कथा', 'अरवेसर पातिसाह की कथा', 'कामरानी या पीतमदास की कथा', 'बालूकिया विरही की कथा', 'तमीम अनसारी की कथा', 'कथा कलन्दर की', 'कथा निर्मल की', 'शीलवन्ती की कथा', 'कुलवन्ती की कथा', खिजरखाँ साहिजादा व देवल देवी', 'कनकावती की कथा', 'कामलता', 'मधुकर मालति', 'रत्नावलि एव लैला मजनू', २–टीकम कृत 'चन्द हस कथा' (राज० खो० भाग २), ३–कासिनशाह कृत 'हस जवाहर', अज्ञात कवि कृत ढोलामारवणी बात',

(वही खोज रिपोर्ट भाग १), धरणीधर कृत 'प्रेमप्रगास' दुखहरन कृत 'पुहुपावती', नूर मुहम्मद कृत 'इन्द्रावती', एव 'अनुराग बाँसुरी', मुरली कृत 'त्रिया विनोद' (वही रिपोर्ट), निगम कायस्थ कृत 'मधुमालती', लालचन्द कृत 'पद्मिनी चरित्र' (वही खोज), चन्दन कृत 'सीतवसन्त', हरनारायण कृत 'माधवानल कामकदला', 'बैताल पचीसी', अज्ञात कृत 'चत्र मुकुट रानी चन्द्र किरन की कथा' (नागरी प्रचारिणी की प्रति) चारण नरवन्दो कृत 'राजारिसाल री बात', (राज० खोज० भाग १), अज्ञात कृत 'बीजा सोरठ री बात' (वही खोज), शिवदास कृत 'बैताल पचीसी' (वही खोज), भगवतदास कृत 'बैताल पचीसी' (राजस्थानी खोज० भाग २), यादवराम कृत 'ढोलामारवणी' (नागरी प्रचारिणी सभा की १५वी खोज रिपोर्ट), शेख निसार कृत 'यूसुफ जुलेखाँ' ख्वाजा अहमद कृत 'नूरजहाँ' शेख रहीम कृत 'भाषा प्रेम रस' एव नसीर कृत 'प्रेम दर्पण'। इन रचनाओ के अतिरिक्त राजस्थान के अनेक कवियो द्वारा "बात" सज्ञक प्रेम कहानियाँ लिखी गई। इस प्रकार की अनेक रचनाओं के संग्रह राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज भाग १ तथा २ मे प्राप्त हुए है। इन संग्रहों मे १०० से भी अधिक प्रेम कहानियाँ है।

ऊपर की रचनाओ को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि आलोच्यकाल के पश्चात् प्राप्त होने वाली रचनाएँ भी सख्या मे अल्प नही है। इन रचनाओ से इस काव्यरूप की लोकप्रियता का अनुमान होता है। सूफी कवियो के प्रेमाख्यान जिनका प्रारम्भ १५वी शताब्दी मे हुआ था आधुनिक काल तक मिलते हैं। हाँ, एक बात अवश्य है कि इस काल के सूफी कवियो ने भारतीय प्रेमाख्यानो के साथ-साथ ईरानी प्रेम-कहानियो को भी अपनाया है। आलोच्यकाल के समान इस काल मे भी सन्त कवियो ने आध्यात्मिक एवं सिद्धान्तों के प्रचार के हेतु प्रेम-कथानको का आश्रय लिया है। धरणीदास का 'प्रेम प्रयास' तथा दुखहरण की 'पुहुपावती' ऐसी ही रचनाएँ है। विशुद्ध लौकिक प्रेम-कथाएँ भी उसी प्राचीन परिपाटी को आधार मानकर लिखी जाती रही। राजस्थान मे प्राप्त अनेक 'बात' सज्ञक रचनाओ मे पद्य के साथ-साथ गद्य भी प्रयोग किया गया। निजन्धरी कथाओ के नायक विक्रमादित्य से सम्बन्धित 'बैताल पचीसी' की कहानियाँ भी इस काल मे अनेक कवियों द्वारा लिखी गई। आलोच्यकाल की कथाओ के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रेम-कथाएँ भी इस काल में दिखाई देती है। इन सभी कथा-काव्यों मे व्यवहृत शैली, छन्द, कथानक रूढियाँ आदि के दृष्टिकोण से आलोच्यकाल के कथा-काव्यो से कोई भेद दिखाई नही देता है।

५—पद, सबद, लीला के पद

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पश्चात् भक्ति की धारा के मन्द पड जाने से सबद, एवं लीला के पद भी कम संख्या मे लिखे जाने लगे। आलोच्यकाल के

अधिकांश भक्ति कवि उच्च कोटि के संगीतज्ञ भी थे इसी कारण पद-गान का प्रचलन भी अधिक था। परवर्त्तीकाल के भक्त कवियो ने पदो की रचना न करके अन्य छन्दो मे अपनी भक्ति विषयक भावनाओं को व्यक्त किया। सन्त कवियों मे 'सबद' का वह महत्त्व जो आलोच्यकाल के प्रारम्भ मे था, फलत 'सबद' के नाम से ग्रन्थ रचना का प्रयास परवर्त्तीकाल मे कम ही हुआ। इस काव्यरूप के अन्तर्गत आने वाली परवर्त्तीकाल की प्रमुख-प्रमुख रचनाएँ ये है—१ जगजीवन साहब कृत 'शब्द सागर', २. चरनदास कृत 'शब्द', ३ भीखा साहब कृत 'शब्दावली', (ना० प्र० खो० ११वाँ विवरण) ४. गवरी बाई कृत 'पद' ५ विश्वनाथसिंह कृत 'गीतावली' 'शब्द', ६ नागरीदास कृत पद प्रबोध माला, पद मुक्तावली ७ अलबेली अलि कृत पदावली, ८. बृन्दावन कृत पद ९. प्रियादास कृत पदावली (ना० प्र० खो० ११वाँ विवरण), १०. रामसखे कृत पदावली (वही विवरण). ११ प्रतापसिंह कृत 'हरि-पद' १२. मधुर अली कृत युगलविनोद पदावली (वही विवरण) १३ रामाधीन कृत रामचरित्र (राज० खो० भाग ४), एव १४ तुलसीसाहब कृत शब्दावली।

इस काव्यरूप के अन्तर्गत आने वाली इन रचनाओ में उन्ही विषयो का वर्णन किया जाता रहा जो आलोच्यकाल में इस रूप के अन्दर वर्णन के लिए स्वीकार हो चुके थे। कृष्ण की लीलाओं को पदो मे गान करने का प्रयास कृष्ण भक्त कवियो द्वारा हुआ। तुलसीदास की 'गीतावली' के समान इस काल मे भी कई कवियो ने फुटकर रूप से राम के चरित्र का पदो मे गान किया। विश्वनाथसिहजी ने तो उसका नाम भी 'गीतावली' ही रखा। उपदेशपरक पद भी लिखे जाते थे। नागरीदास के पद इसी कोटि के है। सन्त कवियो ने इस काल में भी शब्दो (सबदो) की रचना की और उनमें ज्ञान एव उपदेश की बातो का समावेश किया। बीसवी शताब्दी के अनेक सन्तो की रचनाओं के सग्रह 'शब्दावली' नाम से प्रकाशित हुए है। परवर्त्तीकाल मे इस काव्यरूप से कोई विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर नही होता है। हाँ, रचनाओं की सख्या अल्प अवश्य है।

६—स्तोत्र, स्तुति, विनती काव्य

आलोच्यकाल के समान परवर्त्तीकाल मे भी इस काव्यरूप के अन्तर्गत आने वाली अनेक रचनाएँ लिखी गई इस कोटि की कुछ प्रमुख रचनाएँ ये हैं—

१. पुन्य सागर कृत पचकल्याण स्तोत्र (इसमे मेघ कुमार चौढ़ालिया, श्री महावीर पारणउ, श्री आदिनाथ सेत्रु, श्री जीरापल्लि पार्श्वनाथ स्तवन, तथा श्री पच कल्याण स्तोत्र) है (राज० खोज० भाग ३) २. अज्ञात कृत भगवती जयकर्ण स्तोत्र (राज० खोज० भाग १), ३. धरमसी कृत चौबीस जिन सवैया (वही खोज भाग ४), ४. विनोदीलाल कृत चौबीस जिन स्तवन सवैया (वही), ५. जिनरत्न

सूरि कृत 'चौबीसी' (वही), ६. मगनलाल कृत चौबीसी (वही), ७ उदय कृत चौबीसी (वही), ८. राज कृत चौबीसी (वही), ९ जिनहर्ष कृत चौबीसी (वही), १० ज्ञानसार कृत चौबीसी (वही), ११ क्षमा कल्याण कृत जयतिहुअण स्तोत्र भाषा (वही), १२ पद्माकर कृत गगालहरी, १३ ग्वाल कृत यमुना लहरी, राधा अष्टक, १४ मनियारसिंह कृत सौन्दर्य लहरी (देवी की स्तुति), १५. दीनदयालगिरि कृत विश्वनाथ नवरत्न, १६ विश्वनाथसिंह कृत हनुमान स्तुति (रा० खोज० भाग १), १७. मान कृत हनुमान विरुदावली (ना० प्र० ११वाँ विवरण), १८ कमल कलश सूरि कृत महावीर स्तवन (वही), १९. बनादास कृत अर्जपत्रिका (वही), २० परवतदास कृत विनयनव पजक (९ स्तुति परक पचक) (वही), २१. नय-विजय कृत बीस हरमाण जिन स्तवन (२० जिनों की स्तुति : (राज० खोज० भाग ३) २२ बालदास बाबा कृत अहोपा अष्टक (ना०प्र० १४वाँ विवरण), २३. भोला-नाथ कृत शिव स्तुति (वही) एव २४ गिरदास कृत दनुजारि स्तोत्र, शिवस्तोत्र, गोपालस्तोत्र, भगवतस्तोत्र, श्रीरामस्तोत्र, श्रीराधा स्तोत्र। स्त्रोत लिखने की परम्परा भारतेन्दु हरिश्चन्द के बाद तक प्रचलित रही। जगन्नाथदास रत्नाकर कृत गंगाल-हरी एव अनेक अष्टक तथा वियोगी हरि कृत चरखा स्तोत्र इसी प्रकार की रचनाएँ है।

ऊपर इस काव्यरूप की जिन रचनाओ का उल्लेख हुआ है उनमें सभी देवी-देवताओं से सम्बन्धित है। गुरुओं की स्तुति परक रचनाओ का अभाव है। हिन्दू कवियो ने राम, शिव, राधा, गोपाल, हनुमान, काली (पार्वती) के साथ-साथ गगा एव यमुना की स्तुति के भी स्तोत्रों की रचना की। जैन कवियो ने २४ तीर्थ करो की ही स्तुति की और इस प्रकार की रचनाओ की सज्ञा 'चौबीसी' दी। एकाध जैन कवि ने सस्कृत के स्तुतिपरक ग्रन्थो को भाषा मे लिखा। गोस्वामी तुलसीदास की 'विनय पत्रिका' के समान बनादास ने 'अर्ज पत्रिका' प्रस्तुत की। इन सभी रचनाओ मे सकाम स्तुति का प्रयास है। ग्वाल कृत 'यमुना लहरी' मे नवरस एव षट्ऋतु वर्णन का भी समावेश है, जो उस युग की प्रवृत्ति के कारण है। परिस्थितियो के कारण वर्तमान काल मे आकर चरखा द्वारा लोक-कल्याण की कामना करने वाले कवियों ने उसमे भी देवत्व की स्थापना की और चरखा के भी स्तोत्र लिखे गए। इन स्तुतिपरक रचनाओ की संज्ञाएँ भी आलोच्यकाल की सज्ञाओ के समान ही प्राप्त होती है। पचक सज्ञा का प्रयोग आलोच्यकाल में नही हुआ था। हाँ, सस्कृत मे तो अनेक स्तुतिपरक पचक प्राप्त होते है। स्तुतिपरक इन रचनाओ मे दोहे-चौपाई एव सवैया का ही प्रयोग अधिक हुआ है। एकाध कवि (यथा परवतदास के पंचको मे) पदों का प्रयोग भी मिलता है।

७---सिद्धान्त एव उपदेशपरक-काव्य

पिछले अध्यायो मे दिखाया जा चुका है कि आलोच्यकाल मे इस रूप के अन्तर्गत आने वाली रचनाओं की सख्या सबसे बडी है। भक्ति-आन्दोलन की प्रमुखता ने इस रूप की रचनाओ के निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त किया था और अनेक सन्त अथवा भक्त कवियो ने अपने सिद्धान्तो के निरूपण के लिए अथवा उपदेश देने के लिए अनेक ग्रन्थो की रचना की थी। परवर्त्तीकाल मे भी इस प्रकार की रचनाएँ लिखी जाती रही। कुछ प्रमुख-प्रमुख रचनाएँ ये है—१ महाराजा जसवन्तसिंह कृत सिद्धान्त बोध, सिद्धान्त सार, अनुभव प्रकाश, अपरोक्ष सिद्धान्त, आनन्द विलास इच्छाविवेक, २. गिरधारी कृत भक्ति माहात्म्य (ना०प्र०द्वि०त्रै० खोज विवरण), ३ सुखदेव कृत आध्यात्म्य प्रकाश, ४. चन्दन कृत तत्त्व सग्रह, ५ ग्वाल कृत भक्त भावना, ६. गुरुगोविन्दसिंह कृत सुनीति प्रकाश, सर्वलोहप्रकाश, प्रेम सुमार्ग, बुद्धि सागर, ७ चरणदास कृत भक्ति सागर, भक्ति पदारथ, मन विरक्त करन गुटका, ब्रह्मज्ञान सागर, ८ दयाबाई कृत दयाबोध, ९ खिर्दमन्द अली कृत 'हिन्दी मतायला दीन' (ना० प्र० सभा ११ वॉ विवरण), १०. गुलाबसिंह कृत मोक्ष पथ प्रकाश (वही विवरण), ११ विश्वनाथसिंह कृत अबोध नीति, पाखण्ड खण्डिनी, ध्यान मञ्जरी, परमतत्त्व, चित्रकूट माहात्य, अयोध्या महात्म्य, विश्वनाथ प्रकाश, १२ नागरीदास कृत भक्ति सार, देह दशा, १३. जनकराग किशोरीशरण कृत वेदान्त सार, श्रुति दीपिका, १४. चन्द्रशेखर कृत विवेक विलास, हरिविलास, १५ महाराजा मानसिंह कृत नाथ चरित्र, जालन्धर ज्ञान सागर आदि, १६. महाराज जयसिंह कृत अनुभव प्रकाश (राज० मे हि० खोज० भाग १), १७. अनुरागीदास कृत गुरु विरुदावली, दीन विरुदावली (वही खोज), १८ गरीबगिरि कृत जोग पॉवडी (वही विवरण), १९ मोहनदास कृत दत्तात्रेय लीला (वही विवरण), २० प्रेमदास कृत प्रेमसागर (वही विवरण), २१ जगन्नाथ कृत मोहमर्द राजा की कथा (वही विवरण) २२. बनादास कृत ब्रह्मायन द्वार, ब्रह्मायन तत्त्व निरूपण, ब्रह्मायन परमात्मा बोध, (ना० प्र० सभा ११ वॉ विवरण), २३ रामचरन कृत चेतावनी (वही विवरण), २४ सदासुख मिश्र कृत अष्टावक्रोक्ति भाषा (वही विवरण), २५. गुणदेव कृत कलयुग कथा (ना० प्र० १५ वाँ विवरण) एव २६ गोविन्दलाल कृत कलयुग लीला (ना० प्र० सभा १४वाँ विवरण)।

इस काव्यरूप के अन्तर्गत आने वाली रचनाओ की सख्या इस काल से भी बहुत बड़ी है। इस काल मे भी इस रूप की रचनाओ के अन्तर्गत लगभग उन सभी सज्ञाओं का समावेश हुआ है जो आलोच्यकाल मे प्राप्त होती है। 'विलास', 'प्रकाश' एव 'माहात्म्य' सज्ञक कुछ ग्रन्थ भी इस काल मे लिखे गए। इस काव्यरूप

का सम्बन्ध विषय से होने के कारण इस काल की रचनाओ के वर्ण्यविषय भी आलोच्यकाल की रचनाओ के मेल मे ही रहे। हॉ, एक मुसलमान कवि खिर्दमन्द अली ने कुरान की आयतो की व्याख्या पौराणिक ढग पर करते हुए उपदेश देने का प्रयास किया जो भक्त एव सन्त कवियो के सिद्धान्त ग्रन्थो के मुसलमानो पर पडे हुए प्रभाव को स्पष्ट करता है। इन रचनाओ मे उन्ही सब छन्दो का प्रयोग किया गया जो आलोच्यकाल मे इस रूप के अन्तर्गत रची जाने वाली रचनाओं मे व्यवहृत हुए थे।

८—प्रशस्ति-काव्य

आलोच्यकाल के पश्चात् का अधिकाश साहित्य उन कवियो द्वारा लिखा गया जिनको राज्याश्रय प्राप्त था। राजाओ के दरबार मे रहने वाले ये कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशसा में वीररस की फुटकल कविताएँ करते रहते थे। इन कविताओ मे युद्धवीरता अथवा दानवीरता की ही अत्युक्तिपूर्ण प्रशसा की जाया करती थी। इस प्रकार की प्रशस्ति के ढग पर लिखी गई कविताएँ उन आश्रय-दाताओं के नाम से, रस अथवा नायिका भेद के निरूपण के लिए लिखे गए ग्रन्थो के आदि में तथा उदाहरणों के लिए प्रयोग की जाती थी। फिर भी कुछ कवियो द्वारा अपने आश्रयदाताओ की प्रशसा पुस्तकाकार रूप मे की गई। इस प्रकार की रचनाएँ संख्या मे अल्प ही है। इस कोटि मे आने वाली उच्च कोटि की तीन रचनाएँ ही प्राप्त होती है—भूषण कृत 'शिवा-बावनी', 'छत्रसाल-दशक' एवं पद्माकर कृत हिम्मत बहादुर विरुदावली।

इन ग्रन्थो मे आश्रयदाता की वीरता, दान आदि का वर्णन फुटकर कवित्तो मे हुआ है। शृ गार रस की प्रधानता होने के कारण इस कोटि की रचनाओं का इस काल मे अभाव रहा। आश्रयदाताओ की प्रशसा मे जो कवित्त-सवैये लिखे गए वह उन कवियो द्वारा अपने रीति ग्रन्थो मे सग्रहीत किए जाते रहे। इसी कारण इस प्रकार की पुस्तकाकार रचनाओ का इस काल मे अभाव ही रहा।

९—पुराण

पुराणों के अनुवाद आलोच्यकाल के पश्चात् भी हिन्दी भाषा में किए जाते रहे। परवर्त्तीकाल की कुछ प्रमुख रचनाएँ ये है—१. नरहरिदास बारहठ कृत दशमस्कन्ध भाषा, २. कुलपति कृत द्रोण पर्व ३ सबलसिंह चौहान कृत महाभारत, ४. खुशालचन्द काला (जैन) कृत हरिवश पुराण, पद्मपुराण, उत्तरपुराण, ५. खेतसी कृत भाषाभारथ, ६. सोमनाथ कृत भागवत दशम स्कन्ध भाषा, ७. भिखारी-दास कृत विष्णु पुराण भाषा ८ मनीराम मिश्र कृत मगल (दश

का अनुवाद), ९. मुरली कृत अश्वमेध यज्ञ (राज० खोज० भाग १), १०. सरजूराम पण्डित कृत जैमिनि पुराण भाषा, ११ गोकुलनाथ गोपीनाथ और मणिदेव कृत महाभारत, हरिवंश पुराण, १२ बाबा रघुनाथदास कृत विश्रामसागर, १३. देव कर्ण कृत वाराणसी विलास (वाराह पुराण के एक भाग का अनुवाद : राज० खोज० भाग १), १४ सालव कृत हरिचरित्र (वही विवरण), १५ कृष्णदास कृत भागवत भाषा (ना० प्रचारिणी सभा ११वाँ विवरण), १६. हरिवल्लभ कृत भागवत भाषा (राज० खो० भाग ४), १७–जैजैराम अग्रवाल कृत ब्रह्मवैवर्त्त पुराण (ना० प्र० १४ वाँ विवरण), १८–बुलाक राम कृत गरुड पुराण (ना० प्र० सभा १५ वाँ विवरण) ।

ऊपर की रचनाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काल मे भी 'श्रीमद्‌भागवत' एवं 'महाभारत' का ही अधिक प्रचार रहा । अन्य पुराणो के अनुवाद भी किए गए । जैन कवियो के पुराण भी इस काल मे प्राप्त होते है । इन पुराणो के अनुवादों की सज्ञा 'पुराण' देने की ओर कवियो का आग्रह कम ही दिखाई देता है । अधिकाश ग्रन्थो मे अनुवाद के लिए आलोच्यकाल मे गृहीत दोहे चौपाई की शैली का ही प्रयोग किया गया । राजस्थान मे डिंगल कवियो द्वारा रचे गए ग्रन्थों मे मोतीदाम, दोहा, छप्पय आदि छन्दो का ही प्रयोग किया गया ।

१०—ऐतिहासिक-काव्य

ऐतिहासिक-काव्य की कोटि मे आने वाली रचनाएँ आलोच्यकाल के पश्चात् कम ही लिखी गईं । राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण अधिकाश कवियो ने अपने आश्रयदाताओ अथवा श्रेष्ठ वीरो के समस्त जीवन को आधार बनाकर 'रासो', 'प्रकाश', 'विलास', 'रूपक' आदि सज्ञाएँ देकर चरित-काव्य लिखे जिनमे नायक के वश की उत्पत्ति से लेकर उसमे पूर्व तक के समस्त राजाओं का संक्षेप मे उल्लेख करके चरित नायक के जीवन की प्राय सभी प्रमुख घटनाओ का विस्तृत विवेचन किया जाता था । किसी इतिहास प्रसिद्ध वीर पुरुष के किसी इतिहास प्रसिद्ध गुण को प्रकाशित करने वाली किसी इतिहास सम्मत घटना का उल्लेख करने वाली रचनाओ का इस काल मे अभाव ही रहा । फिर भी कुछ रचनाए इस प्रकार की भी प्राप्त हो जाती है । कुछ प्रमुख रचनाएँ ये है—१–हरीदास कृत अमर बत्तीसी (राज० खोज०२), २–जग्गाजी कृत वचनिका राठौड रतनसिंह महेशदासोत री (राज० खो० भाग १), ३–ढाढीबादर कृत नीमाणी वीरमाण री (वही विवरण) ।

इन रचनाओं में प्रथम रचना की सज्ञा तो सख्या के आधार पर दी गई है जो केशवदास की 'रतन बावनी' जैसी रचना है । शेष दोनो रचनाओं मे क्रमश

राठौड़ रतनसिंह एव वीरमजी की वीरता का वर्णन ही प्रधान रूप मे हुआ है। वीररस के वर्णन से युक्त रचना होने के कारण इन ग्रन्थो मे सवैया, छप्पय, नीसाणी एव दोहा छन्दो का ही प्रयोग हुआ है। सभी दृष्टियो से ये रचनाएँ आलोच्यकाल की इस रूप के अन्तर्गत आने वाली रचनाओ के समान ही हैं।

११—मगल-काव्य

परम मागलिक अवसर से सम्बन्धित होने के कारण 'मगल-काव्य' सदैव से ही लोक-प्रचलित रहे है। आलोच्यकाल के समान परवर्त्तीकाल मे भी अनेक मगल-काव्य लिखे गए जिनमे से कुछ ये है—१ हीरालाल कायस्थ कृत रुक्मिनी मगल २. केसोराम कृत रुक्मिणी मगल (राज० खोज० भाग १), ३ मडन कृत जानकी जू कौ व्याह, ४ विश्वनाथसिह कृत आदि मगल, ५. गणेशप्रसाद कृत रुक्मिणी मगल (ना० प्र० सभा १४वाँ विवरण), ६ हरचन्द कृत रुक्मिनी मगल (वही १५वाँ विवरण), ७ नवलसिह कायस्थ कृत रुक्मिनी मगल, ८ महाराज रघुराजसिह कृत रुक्मिनी परिणय।

ऊपर की रचनाओ को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काल मे दो प्रकार के मंगल-काव्य ही लिखे गए—१ विवाह के वर्णन वाले, २. कबीर के समान सृष्टि प्रक्रिया के वर्णन वाले। विवाह वर्णन वाले काव्यों मे रुक्मिणी के विवाह वर्णन वाले ग्रन्थो की सख्या ही अधिक है। कुल एक ग्रन्थ जानकी जी के विवाह से सम्बन्धित प्राप्त होता है। विश्वनाथसिह का 'आदि मगल' कबीर के 'आदि मगल' को आधार बनाकर लिखा गया है। परवर्त्तीकाल की रचनाएँ आलोच्यकाल की रचनाओ के मेल मे ही है।

१२—लीला-काव्य

आलोच्यकाल के पश्चात् जहाँ भक्ति की भावनाओ से ओत-प्रोत रहने वाली रचनाओ की सख्या मे कमी हुई, वहाँ लीला-काव्यो मे बहुत बढोतरी हुई। उसका कारण यह बताया जा सकता है कि लीला-काव्यो मे शृ गाररस की प्रधानता होने के कारण इस काल की शृ गारप्रिय मनोवृत्ति वाले कवियों को वह रूप बहुत रुचिकर प्रतीत हुआ। फलत अनेक लीला ग्रन्थ रचे गए परवर्त्तीकाल के कुछ लीला-काव्य ये है—१–देवीदास कृत अनूप कृष्ण चन्द्रिका, दामोदर लीला (राज० खोज० भाग १), २–कृष्णदास कृत दानलीला (खोज १६०३ वि०), ३– माधौराम कृत राधाकृष्ण विलास (दानलीला : (वही खोज भाग ४), नारायण लीला (वही खोज भाग १), ४– कवीन्द्र (उदयनाथ) कृत जोगलीला, ५–उदयकृत जोगलीला (ना० प्र० की प्रति), दानलीला एव अघासुरमारन लीला

(ना० प्र० सभा १५वाँ विवरण), ६–रसिकराम कृत सनेहलीला (ना० प्र० की प्रति), रामविलास (राज० खोज० भाग १) ७–रामराय कृत आरसी झगरौ (ना० प्र० सभा की प्रति), ८–बालकृष्ण कृत परतीति परीक्षा (ना० प्र० सभा की प्रति), ९–पीथल कृत जुगल विलास (राज० खोज० भाग ४), १०–सोमनाथ कृत कृष्णलीलावली, पचाध्यायी, ११–हसराज कृत सनेह सागर, १२–सूरतिमिश्र कृत रासलीला, दानलीला (राज० खोज ४), १३–गगाधर कृत नागलीला (ना० प्र० सभा १४वाँ विवरण), १४–रसिक गोविन्द कृत युगल रस माधुरी, १५–मंचित कृत सुरभी दानलीला, १६–नवलसिंह कायस्थ कृत रासपचाध्यायी, १७–चाचावृन्दावनदास कृत रास उत्साहवर्द्धन एव लीला (४१ लीलाएँ), १८–व्रजवासीदास कृत व्रजविलास, १९–राज्यप्रसाद कृत दानलीला (ना० प्र० सभा ११वाँ विवरण), २०–मधुरअली कृत युगल बसत विहारलीला, हिंडोलालीला (वही विवरण), २१–पद्माकर कृत लिलहारी लीला (ना० प्र० सभा १४वाँ विवरण), २२–गौरशकर कृत चीरहरन लीला, गोवर्धन लीला (वही विवरण), २३–भोलानाथ कृत जोगी लीला (वही विवरण), २४–गणेश प्रसाद कृत दानलीला (वही विवरण) एव २५–गुलाबजी कृत कृष्णलीला, रामलीला, विभीषणलीला।

ऊपर परवर्त्तीकाल मे रची जाने वाली कुछ लीलाओ की सूची प्रस्तुत की गई है। इन रचनाओ के देखने मे इस रूप के विकास का कुछ आभास होता है। कृष्ण लीलाओ से प्रभावित होकर कुछ राम-भक्त कवियो ने भी रास की लीलाओ का गान करना आरम्भ किया। अयोध्या के महथ रामचरणदासजी ने अपने ग्रन्थ 'कौशल खड' मे राम की रासलीला का वर्णन करके इस प्रकार कीरचनाओं के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया था। फलत. परवर्त्ती काल के मधुरअली आदि कवियो ने भी राम के विहार, रास, हिंडोला आदि से सम्बन्धित लीलाएँ लिखी। कृष्ण की जितनी लीलाएँ लिखी गई उनमे आलोच्यकाल की समस्त लीलाओ के अतिरिक्त उनके पौरुष से सम्बन्धित लीलाओ का समावेश किया गया जिनमे प्रेम वर्णन ही प्रधान न होकर उनके बल एव पौरुष का वर्णन ही प्रधान था। हाँ, छद्मलीलाओं का इस काल में बडा प्रचार हुआ, 'मनिहारिन लीला', 'लिलहारी लीला', 'जोगी लीला', 'परतीति परीक्षा' ऐसी ही लीलाएँ है। रास लीलाएँ भी खूब लिखी गई और एकाध कवि ने तो उसकी संज्ञा आलोच्यकाल के समान 'पचाध्यायी' भी दी। कृष्ण की प्रमुख लीलाओ का अभिनय लोक-प्रचलित हो चुका था इसी कारण राम के चरित्र को भी कवियों ने अभिनय के योग्य बना कर उसका अभिनय करना प्रारम्भ कर दिया। 'रामलीला', 'विभीषण लीला' ऐसी ही रचनाएँ हैं। इन लीला-काव्यो मे अनेक प्रकार के छन्दो का प्रयोग हुआ। दोहा, चौपाई, रोला कवित्त एवं सवैया छन्द प्रधान रूप से प्रयोग किए गए। कुछ लीलाएँ तो ऐसी है जिनमे

संगीत तत्त्व की प्रधानता स्पष्ट लक्षित होती है। ऐसी रचनाओं में प्रथम छन्द की टेक अन्त तक दुहरती चलती है, रामराय कृत 'आरसी झगरौ' ऐसी ही रचना है।

१३—साखी

आलोच्यकाल के पश्चात् 'साखी' संज्ञक रचनाओं का अभाव है। जैसा कि पिछले अध्यायों में कहा गया है कि प्रारम्भ में 'साखी' शब्द गुरु के ज्ञानपूर्ण वचनों लिए प्रयुक्त होता था और धीरे-धीरे सभी सन्तों के उपदेशपरक वचनों को 'साखी' संज्ञा दी जाने लगी थी। परवर्त्ती काल के सन्तों में कोई उच्च कोटि का साधक नहीं हुआ, फिर भी सभी सन्त अपने आपको गुरु ही समझते थे। फिर 'साखी' संज्ञा किसके उपदेशपूर्ण वचनों को दी जाती ? यद्यपि अनेक सन्तों ने साखियाँ लिखी लेकिन वह उनकी वाणियों में अथवा उनकी अन्य रचनाओं में संग्रहीत हैं। जिस प्रकार के सतों के वचनों को 'साखी' संज्ञा दी जाती थी उनके अभाव के कारण इस रूप का समाप्त हो जाना भी आवश्यक था। परवर्त्तीकाल में एक मुसलमान कवि काजी कदम कृत साखी (ना० प्र० खोज १९०२) की 'साखी' संज्ञक रचना प्राप्त होती है। यह रचना भी १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ अथवा १७वीं शताब्दी के अन्त की है। परवर्त्तीकाल में 'साखी' संज्ञक रचनाओं का एकदम अभाव है।

१४—छन्द-गीत परक-काव्य

ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्द एवं गीत के आधार पर ग्रन्थ का नामकरण करने की परिपाटी आलोच्यकाल के पश्चात् भी पर्याप्त प्रचलित हुई। इस काल में कुछ ऐसे छन्दों के आधार पर भी ग्रन्थों की संज्ञा दी गई जो आलोच्यकाल में कम ही प्रचलित थे। इस रूप के अन्तर्गत आने वाली परवर्त्तीकाल की कुछ प्रमुख रचनाएँ ये हैं—

१—मतिसुन्दर कृत विक्रम बेलि (राज० खोज० भाग ३), २—सेनापति कृत कवित्त रत्नाकर, ३—मतिखेतल कृत चित्तौड गजल, उदयपुर गजल (राज० खो० भाग २), ४—लक्ष्मीचन्द कृत आगरा गजल (राज० खोज २), ५—जयसोम विबुद्ध कृत भावना वेलि (राज०खोज भाग ३), ६—यारी साहब कृत कवित्त, झूलना, ७—गुलाल साहब कृत हिंडोला, होली, बसंत, रेखता, ८—भीखा साहब कृत होली वसन्त, कवित्त रेखता एवं कुंडलिया, ९—नागरीदास (सावतसिंह) कृत कृष्ण जन्मोत्सव कवित्त, साँझी के कवित्त, प्रियाजन्मोत्सव के कवित्त, चादनी के कवित्त, दिवारी के कवित्त, होरी के कवित्त, हिंडोरा के कवित्त, वर्षा के कवित्त, वैराग्य वल्लरी, कलि वैराग्य-वल्लरी, छूटक कवित्त, चरचरियाँ, रेखता, रसानुक्रम के दोहे, रसानुक्रम के कवित्त, १०—यति कल्याण कृत गिरनार गजल (राज० खोज० भाग १),

११–चाचा वृन्दावनदास कृत कृष्णगिरि पूजन वेलि, श्री हितरूप चरित वेलि, हिंडोरा, राधा जन्म उत्सव बेलि, भक्त सुजस वेलि, करुणा बेलि वेलि, १२–गिरवरदास कृत भक्त विनय दोहावली (ना० प्र० सभा ११ वीं खोज), १३–प्रतापसिंह कृत दुखहरण बेलि, सोरठ, ख्याल, रेखता संग्रह, १४–देवहर्ष कृत पाटण गजल (राज० खो० भाग २), १५–कृपाराम कृत रजिया के सोरठे १६–हेम कृत जोधपुर नगर वर्णन गजल (राज० खो० भाग २) १७–यति गुलाब विजय कृत कापरडा गजल (वही खोज), १८–रतनदास कृत दोहावली (राज०खोज० भाग३), १९–रामसखे कृत दोहावली (ना०प्र० ११वी खोज) २०–हरिरामदास कृत नीसाणी, २१–महाराज विश्वनाथसिंह कृत अयोध्या जी के भजन ,राजनीति दूहा, चौरासी रमैनी (राज० खोज भाग १), २२–किशोरीशरण कृत दोहावली, २३–गिरधर कृत कुण्डलियाँ २४–सम्मन कृत नीति के दोहे २५–ठाकुर कृत कवित्त, २६–पल्टूदास कृत राम कुंडलियाँ (ना० प्र० ११वाँ विवरण), २७–जगजीवनदासकृत कहरा (ना० प्र० खोज १४), २८–दीनदयालु कृत अन्योक्तिकल्पद्रुम, दृष्टान्त तरंगिनी २९–नवलसिंह कायस्थ कृत भारत कवितावली, रहसिलावनी, ३०–फकीरादास कृत कहरा (ना० प्र० खोज भाग १४) ।

ऊपर की सूची को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि परवर्त्तीकाल में लगभग वे सभी गीत छन्दपरक काव्यरूप प्रचलित थे जो आलोच्यकाल में वर्तमान थे। इन रूपों के वर्ण्य विषय भी लगभग वही रहे जो आलोच्यकाल में स्वीकार किये जा चुके थे। बेलि संज्ञक रचनाओं में वर्णन प्रधान विषयों का समावेश किया जाने लगा। गजल तो नगरों के वर्णन के लिए ही प्रयोग की गई। कुंडलियाँ एवं दोहा का सम्बन्ध नीति एवं उपदेशों से जुड़ गया। कवित्त-सवैया शृंगारी भावों को व्यक्त करने के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध हुए। रेखता झूलना एवं कहरा का सम्बन्ध सन्त कवियों से ही जुड़ा रहा। इस काल के कहरा संज्ञक रचनाओं में भक्ति एवं ज्ञानोपदेश का ही विवेचन हुआ। इस काल में एकाध कवि ने बरवै भी लिखा और उसमें नायिका भेद का ही वर्णन किया। कबीर एवं भक्त कवियों में प्रचलित आलोच्यकाल के सभी प्रमुख गीत छन्दपरकरूपों को इस काल में प्रयोग किया गया।

१५—माल या माला काव्यरूप

इस काव्यरूप की शैली को आधार बनाकर आलोच्यकाल के पश्चात् भी अनेक रचनाएँ की गयी। इस काल में इस शैली के अन्तर्गत की गयी कुछ प्रमुख रचनाएँ ये हैं—

१. विनयसागर कृत अनेकार्थी नाममाला (राज० भोज० भाग २), २ भगवत मुदित कृत रसिक अनन्यमाला (ना० प्र० सभा की प्रति) ३. अनाथदास कृत विचारमाल (ना०प्र० सभा ११वाँ खोज), ४ निरोत्तमपुरी कृत विचार माल (राज० खोज० भाग ३), ५ महासिंह कृत अनेकार्थ नाममाला (राज० खोज० २), ६ राघवदास कृत भक्तमाल, ७. भिखारीदास कृत नामप्रकाश, अमरप्रकाश, (अमर कोश का पद्यानुवाद) ८ नागरीदास कृत ब्रज सम्बन्धी नाममाला, ९ चाचा वृन्दावन कृत हितहरिवंश जू की सहस्रनामावली, १० चन्दन कृत नाममाला, ११. गोकुलनाथ कृत नाम रत्नमाला, अमरकोश भाषा, ११. महाराज विश्वनाथसिंह कृत विनय-माला (राज० खोज० भाग १,) १२ सागरकृत अनेकार्थी (राज० खोज० भाग २), १३ चेतनविजय कृत आतमबोध नाममाला (राज० खोज० भाग २), १४. सुबुद्धि कृत आरम्भ नाममाला (राज० खोज भाग २), १५. बद्रीदास कृत मानमजरी नाम-माला (वही खोज), १६ सुधामुखी कृत भक्त नामावली, (ना० प्र० सभा ११वाँ विवरण), १७. कृष्णदास कृत अमरसार नाममाला (रा० खोज० भाग ४), १८ गारतनू वीरमाला कृत एकाक्षरी नाममाला (राज० खोज० भाग ४), एवं कनक-कुशल कृत लखपतमजरी नाममाला (वही खोज)।

ऊपर के ग्रन्थो को देखने से यह ज्ञात होता है कि परवर्त्तीकाल मे भी आलोच्यकाल के समान ही इस काव्यरूप मे तीनो प्रकार की रचनाएँ—'कोशग्रन्थ', 'सग्रह ग्रन्थ' एवं 'नाम स्मरण ग्रन्थ' प्राप्त होती है। कोशग्रन्थो मे कई कवियो ने तो नन्ददास के अनुकरण पर 'मानमजरी नाममाला' भी लिखी जो दो उद्देश्यो को लेकर लिखी गई रचनाएँ है। इस काल मे सम्कृत के 'अमरकोश' के भाषानुवाद भी हुए। नाभाजी के भक्तमाल के समान इस काल मे भक्तमाल भी लिखा गया जिसमे परवर्त्ती भक्तो एव सन्तो को भी सम्मिलित कर दिया गया। चाचा वृन्दावन दास का 'हित हरिवश जू की सहस्र नामावली', 'विष्णु सहस्र नाम' की कोटि का 'नाम स्मरण ग्रन्थ' है। सभी दृष्टियों से परवर्त्तीकाल की रचनाएँ आलोच्यकाल की रचनाओ के मेल में है।

१६—सम्वाद, वादु, गोष्ठी बोध सज्ञक काव्य

कबीर जैसे उच्चकोटि के सन्त कवियो के अभाव के कारण परवर्त्तीकाल मे 'सम्वाद', वादु, गोष्ठी, बोध सज्ञक रचनाओं का भी अभाव रहा। इन परवर्त्ती सन्तों मे कोई इतना उच्चकोटि का साधक एव सिद्ध पुरुष नही था जो किसी अन्य श्रेष्ठ सन्त अथवा भक्त को बोध देने मे समर्थ हो अथवा जिसके साथ मुहम्मद, गोरख, दत्तात्रेय आदि जैसे पुरुषो के साथ सम्वाद अथवा गोष्ठी कराने की कल्पना की जा सकती हो। कुल तीन रचनाएँ इस शैली की लिखी प्राप्त होती हैं—

१ कृष्ण कवि कृत धर्म सम्वाद (ना० प्र० सभा ११वाँ खोज विवरण), २. अज्ञात कवि कृत मृग सम्वाद री चौपाई (राज० खोज० भाग १) एव ३. नवलसिंह कायस्थ कृत दानलोभ सम्वाद।

इन ग्रन्थो मे से प्रथम ग्रन्थ में धर्मराज एवं एक अतिथि के बीच 'भोजनादि विचार', 'राजा के दरश का कारण' एव 'भोजन मे दोष विचार' आदि का सम्वाद रूप मे वर्णन हुआ है। धर्मराज प्रश्न करते है, अतिथि उत्तर देता है। यह प्रश्नोत्तर रूप मे है। दूसरे ग्रन्थ मे मृग एव व्याध के सम्वाद द्वारा नीति एवं उपदेश का वर्णन किया गया है। नवलसिह कायस्थ का दानलोभ सम्वाद ग्रन्थ आलोच्यकाल के नरहरि के 'बादु' ग्रन्थ के अन्तर्गत सग्रहीत वादो के अनुसार ही है। प्रथम एव द्वितीय रचना सामान्य शैली की एव अन्तिम प्रतीक शैली की है। छन्द, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियो से ये रचनाएँ आलोच्यकाल की रचनाओ के मेल में ही है।

१७—बारहखडी या बावनी

आलोच्यकाल के पश्चात् 'बारहखडी' की शैली पर काव्य-रचना की परम्परा पर्याप्त मात्रा मे प्रचलित रही। इस काल मे भी अनेक 'बारहखडी या 'बावनी' सज्ञक रचनाएँ लिखी गयी। इस काल की इस शैली मे लिखी कुछ प्रमुख रचनाएँ ये हैं—

१ धर्मवर्द्धन कृत धर्म बावनी (राज० खोज० भाग ४), २ जिनहर्ष कृत दूहा बावनी एव जसराज बावनी (वही विवरण) ३ जिनरंग सूरि कृत प्रबोध बावनी (वही), ४ केशव कृत केशवदास बावनी (वही खोज), ५. दत्त कृत बारह खडी (वही खोज), ६. सूरत कृत बारहखड़ी (वही खोज), ७ निहालचन्द कृत ब्रह्म बावनी (वही खोज), ८ सघपति कृत जेन सार बावनी (वही खोज), ९ लच्छलाल कृत अक्षर बत्तीसी (वही खोज), १०. हरिराम कृत सुदामा की बारहखडी (वही खोज, भाग १), ११ चेतनकृत अध्यात्म बाराखडी (वही खोज), १२ रसिक गोविन्द कृत रामायण सूचनिका, १३ सिवजी कृत कका बत्तीसी (राज० खोज० भाग ४), १४ महाराज विश्वनाथसिंह कृत ककहरा, १५ जनकराज किशोरीशरण कृत बारहखडी, १६. रामसहायदास कृत ककहरा, १७ अज्ञात कवि कृत सुदामा की बारहखडी (ना०प्र० सभा की प्रति), १८. कुंज कृत बारहखडी : उषा चरित्र (ना० प्र० सभा की प्रति), १९. रामरतन कृत बारहखडी (ना० प्र० सभा ११वाँ विवरण), २०. मस्तराम कृत बारहखडी (ना० प्र० ११वाँ खोज विवरण), २१. बालचन्द्र कृत सवैया बावनी (राज० खोज० भाग ४), २२ अमरविजय कृत अक्षर बत्तीसी (वही खोज) एवं २३ चिदानन्द कृत सवैया बावनी (वही खोज)।

आलोच्यकाल के समान ही इस काल मे भी अधिकाश रचनाओं की सज्ञाएँ 'बारहखडी' अथवा बावनी प्राप्त होती है। अक्षरो के क्रम के विषय मे कोई निश्चित नियम इस काल मे भी लक्षित नही होता। बावनी सज्ञक जैन कवियो की रचनाओ मे 'ओ नम सिद्ध' के पाँच अक्षरो के साथ १२ स्वर एव ३५ व्यंजन इस प्रकार ५२ अक्षरो पर लिखा गया है। फिर भी यह क्रम सभी रचनाओ मे प्राप्त नही होता। बारहखडी एव ककहरा सज्ञक अधिकाश रचनाएँ 'क' मे ही प्रारम्भ होती हैं और उनमे छन्द सख्या ४१ से लेकर ४३६ तक प्राप्त होती है। सूरत कृत बारहखडी की छन्द सख्या ४१ एव चेतन कृत अध्यात्म्य बारहखडी की छन्द सख्या ४३६ है बत्तीसी सज्ञक रचनाओ मे 'क' से प्रारम्भ करके 'ह' तक ही अक्षरो के क्रम को ग्रहण करके रचना की जाती है। अमर विजय कृत 'अक्षर बत्तीसी' की छन्द सख्या तो ३० ही है। 'बावनी' सज्ञक रचनाओं की छन्द सख्या ५२ से लेकर ५८ तक प्राप्त होती है।

इस काल मे इस रूप के वर्ण्य विषय मे भी एकाध कवि द्वारा परिवर्तन किया गया। रसिक गोविंद कृत 'रामायण सूचनिका' एव रामरतन कृत 'रामबारहखडी' मे राम की कथा को सक्षेप मे इसी शैली मे वर्णित किया गया। कुंज कवि ने इसी शैली मे 'ऊषा चरित्र' वर्णन किया। शेष रचनाओ मे ज्ञान एव सिद्धान्त की बातो को ही वर्णित किया गया। इस काल की रचनाओ की सज्ञा रचनाओं के विषय, उसमे प्रयुक्त छन्द अथवा कवि के नाम के साथ बावनी अथवा बारहखडी लगा कर देने की ही प्रथा रही। इस काल मे भी इस रूप मे उन्ही छन्दो का प्रयोग हुआ जिनका आलोच्यकाल मे हुआ था।

१८—बारहमासा

आलोच्यकाल मे 'बारहमासा' लिखने का प्रारभ हुआ था इसलिए इस काल मे इस रूप की रचनाएँ सख्या मे कम ही प्राप्त होती है। परवर्त्तीकाल मे शृंगार वर्णन की अधिकता होने से कारण विरह वर्णन के लिए 'बारह मासा' की उपयोगिता को कवियो ने पहचाना। विक्रम की १८वी एव १९ वी शताब्दी मे सैकडो की सख्या मे बारहमासे लिखे गए। शृंगारी कवियो के अतिरिक्त भक्त कवियो ने भी अनेक बारहमासे लिखे। इस काल के जैन कवियो द्वारा नेमिराजमती के बारहमासे ही अधिकता से लिखे गए। इस काल के लिखे हुए कुछ प्रसिद्ध बारहमासे ये है—

१—केशवदास कृत नेमि राजमती बारहमासा (राज०खोज० भाग ४), २—वृन्द कृत बारहमासा (वही खोज), ३—मन्सूर कृत विकट कहानी (ना०प्र० सभा ११वाँ विवरण) ४—हसराज कृत बारहमासी ५—अज्ञात कवि कृत ी (ना०प्र० की

प्रति। ६–अज्ञात कृत कृष्ण का बारहमासा (वही की प्रति), ७–भजनदास कृत बारहमासी (वही की प्रति), ८–मगनदास कृत बारहमासी (वही की प्रति), ९–जगन्नाथ कृत बारहमासी (वही की प्रति), १०–खैरास्थाह कृत बारहमासी (वही की प्रति), ११–अज्ञात कवि कृत कृष्ण की बारहमासी (राज० खोज भाग ३), १२–विनयचन्द कृत नेमि राजमती बारहमासी (खोज भाग ४), १३–जसराज (जिनहर्ष) नेमि कृत बारहमासा (वही खोज), १४–लक्ष्मीवल्लभ कृत नेमिराजुल बारहमामासा (वही खोज), १५–जिनसमुद्र सूरिकृत नेमिनाथ बारहमासा (वही खोज), १६–धर्मसी कृत नेमिराजमती बारहमासा (वही खोज), १७–लब्धि वर्द्धन कृत नेमि बारहमासा (वही खोज), १८–विनोदीलाल कृत नेमि राजुमती बारहमासा (वही खोज) १९–बद्रीकवि कृत बारहमासी (वही खोज) २०–मान कृत बारहमासी (वहीखोज), २१–लालदास कृत बारहमासी (वही खोज), २२–हादम काजी कृत बारहमासी (वही खोज) २३–साहि मुहम्मद फुरकनी कृत बारहमासा (वही खोज), २४–भोलानाथ कृत विरह बारहमासी (ना० प्र० सभा १४वाँ विवरण) एवं कृष्ण जी की बारहमासी (वही विवरण), २५–द्वारिकादास कृत तत्वज्ञान बारहमासी (वही विवरण) ।

इन रचनाओ के अतिरिक्त पचासों रचनाओ का उल्लेख खोज विवरणो मे हुआ है। नागरी प्रचारिणी सभा मे अनेको बारहमासी सग्रहीत है जिनमे मे कई तो सूर एवं तुलसी की बताई गई हैं।

इन बारहमासियों मे से जो हिन्दू कवियो द्वारा लिखी गई हैं उनमें से अधिकाश कृष्ण से सम्बन्धित है। उन सबका प्रारम्भ असाढ से होता है और गाने के लिए लिखी जाने के कारण उनमे टेक के दुहरने का विधान किया गया है। जैन कवियो के बारहमासे नेमि राजमती सम्बन्धी है और उनका प्रारम्भ सावन से होता है। इसमे टेक दुहरने का विधान नही होता । कुछ जैन कवियो ने १३ वें छन्द मे नेमि एवं राजमती के मिलन का (पृथ्वी पर अथवा शिवलोक मे) भी वर्णन किया है। विनयचन्द्र की बारहमासी मे मिलन यही, बारह महीनो की विरह दशा के अन्त मे, एवं जिनहर्ष की बारहमासी मे तप से मुक्ति प्राप्त कर शिवलोक मे होता है। विनोदीलाल का बारहमासा तो नेमि एवं राजमती के प्रश्नोत्तर रूप मे लिखा गया है। राजमती पूछती है कि तुम सयम व्रत धारण कर रहे हो, हम बारहमास कैसे बितावेंगे ।

यह बेर नही प्रिय सयम की तुम काहे को ऐसी चित्तधरी ।
कैसे बारह मास बितावेगे समझाओ पिया हम ही सगरी ।

नेमि इसका उत्तर देता है। इसी प्रकार बारह महिनों की विरह दशा एव उसको बिताने के लिए संयम का वर्णन इसमे मिलता है। एक-एक माह के लिए प्रश्न एव उत्तर के लिए २-२ छन्दों का विधान किया गया है। नन्द, बद्री एव द्वारिकादास के बारहमासे चैत से तथा मान का अगहन से प्रारम्भ होता है। द्वारिकादास एव दोनो मुसलमान कवियो के बारहमासे आध्यात्मिक विषयो से सम्बन्धित है।

इन सब ग्रन्थो मे लगभग वही सब तत्त्व मिलते है जो आलोच्यकाल के बारह-मासो मे प्राप्त होते है। ग्रन्थ संख्या ५, अज्ञात कवि कृत 'बारहमासी' की जो प्रति नागरी प्रचारिणी सभा मे संग्रहीत है उसमे रामायण की कथा बारहमासी में गायी गई है। कवि मन्सूर कृत, 'विकट कहानी' में बारहमासे की शैली मे शेरो मे विरह वर्णन हुआ है। इन बारहमासो मे से अधिकाश में छन्द सख्या १२ अथवा १३ प्राप्त होती है। कुछ ग्रन्थो मे छन्द संख्या अधिक भी है। विनोदीलाल के बारह मासे मे छन्दसख्या २६, मान से बारहमासे मे ३७, हादम काजी के बारहमासे मे१३२ तथा साहि मुहम्मद फुरकती के बारहमासे मे ८३ है। इस काल मे बारहमासा वर्णन के लिए उन्ही छन्दो का प्रयोग हुआ जो आलोच्यकाल मे प्रयुक्त हो चुके थे।

१६—संख्यापरक—काव्य

ग्रंथ में प्रयुक्त छन्दों की सख्या के आधार पर उसका नामकरण करने की परिपाटी आलोच्यकाल के बाद भी प्रचलित रही। इस काल में इस प्रकार के सैंकडो ग्रंथ लिखे गए। कुछ प्रमुख रचनाएँ ये है—

१—किशन कवि कृत उपदेश बावनी (राज०खोज० भाग ३), २—बिहारीलाल कृत बिहारी सतसई, ३—महाराज देवीसिंह कृत शृंगार शतक (रा०खोज० भाग ४), ४—मंडन कृत जनक पचीसी एव नैन पचासा, ५—मतिराम कृत मतिराम सतसई, ६—भूषण कृत भूषण हजारा- ७—वृन्द कृत सतसई एव भाव पचाशिका, ८—देवकृत ब्रह्म दर्शन पचीसी, तत्त्वदर्शन पचीसी, आत्मदर्शन पचीसी, जगदर्शन पचीसी एवं नीति शतक, ९—प्रीतम कृत खटमल बाईसी, १०—भिखारीदास कृत शतरज शतिका, ११—भूपति कृत सतसई, १२—तोषनिधि कृत विनय शतक, १३—बैताल कृत विक्रम सतसई, १४—रसनिधि कृत रतनहजारा, १५—नागरीदास कृत भोजनानन्द अष्टक, पावस पचीसी, अरिलाष्टक, फागु गोकुलाष्टक, अरिल पचीसी, १६—भगवतराय खीची कृत हनुमत पचीसी, १७—दत्तू कृत ब्रजराज पचासा, (ना० प्र० ११वाँ विवरण), १८—श्री हठीजी कृत राधा सुधा शतक, १९—मनियारसिंह कृत हनुमत छबीसी, २०—गणेश कृत हनुमत पचीसी, २१—खुमान कृत लक्ष्मण शतक, हनुमान पंचक, हनुमान पचीसी, नृसिंह पचीसी, २२—रामनाथ कृत चित्रकूट शतक (ना० प्र० खोज ११) २३—रामसहायदास कृत रामसतसई २४—उम्मेदराम कृत भवध पचीसी मिथिला पचीसी जनक

शतक २५–ज्ञानसार कृत गूढा बावनी (मिहाल बावनी), प्रस्ताविक अष्टोत्तरी, आत्मप्रबोध छत्तीसी, मतिप्रबोध छत्तीसी, चारित्र छत्तीसी (राज० खोज० भाग ४), २६–दरयावदास दीवा कृत जनक पचीसी (राज० खोज० भाग ४) २७–प्रतापसिंह कृत रमक जमक बत्तीसी, प्रीति पच्चीसी, २८–बाँकीदास कृत सूर छत्तीसी, सीह छत्तीसी, धवल पच्चीसी, दातार बावनी, सुपह्छत्तीसी, कुकवि बत्तीसी, विदुर बत्तीसी, सिद्धराव छत्तीसी, सतोष बावनी, सुजस छत्तीसी, वचन विवेक पच्चीसी, कायर बावनी, कृपण पच्चीसी एवं हमरोट छत्तीसी, २९. महाराज विश्वनाथसिंह कृत गीता रघुनन्दन शतिका, शान्ति शतक, वेदान्त पंचक शतिका, ध्रुवाष्टक, बनत चौबीसी, ३०. चन्द्रशेखर कृत वृन्दावन शतक, ३१. सूरजमल कृत वीर सतसई, ३२ माधोदास कृत करुणा बत्तीसी (ना० प्र० सभा की प्रति), ३३ बनादास कृत विज्ञान छत्तीसी (ना० प्र० सभा ११वाँ विवरण), ३४ राचरनदास कृत नामशतक, उपासना शतक, वैराग्य शतक, विरह शतक एव विवेक शतक (वही खोज), ३५ जिनहर्ष कृत उपदेश छत्तीसी (राज०खोज०भाग ३), ३६ मुनि क्षमाहंस कृत बावनी (वही खोज), ३७ यशोविजय कृत समताशतक १९वी शदी (राज०खोज ४), ३८ देवकीनन्दन कृत सुसरारि पचीसी (ना० प्र० सभा १४वी खोज), ३९ नवलसिंह कृत भाषा सप्तसती एव ४०–गौरीशकर कृत ऋतुराज शतक (ना० प्र० सभा १४ वी खोज) ।

इस काव्यरूप के अन्तर्गत रचना करने वाले कवियों की सख्या बहुत बड़ी है। ऊपर जिन कवियो का उल्लेख हुआ है वह इस प्रकार की रचना करने वाले कवियो मे प्रमुख है। इस प्रकार की रचना करने की परम्परा तो वर्तमान काल मे भी प्रचलित दिखाई देती है। 'वियोगी हरि' कृत 'वीर सतसई' सतसई परम्परा की एक उत्कृष्ट रचना है। आलोच्यकाल मे इस रूप के अन्तर्गत जितनी सज्ञाएँ प्राप्त हुई उनमे से 'चौवनी' को छोड़कर शेष सब सज्ञाएँ परवर्त्तीकाल मे प्राप्त होती है। कुछ नयी सज्ञाएँ भी प्राप्त होती है यथा—पचक, बाईसी, छबीसी, हजरा आदि। इस काल मे पच्चीसी, छत्तीसी, शतक एव 'सतसई' संज्ञक रचनाओ की सज्ञा ही अधिक है। ज्ञान वैराग्य, नीति शृंगार, भक्ति आदि विषयो का ही इन रचनाओ मे समावेश किया गया। प्रीतम कवि की खटमल बाईसी' रचना हास्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। जैन कवियो ने अपनी 'छत्तीसी' सज्ञक रचनाओ में उसी विषय को प्रतिपादित किया है जो आलोच्यकाल मे इस सज्ञा की रचनाओ मे किया गया था। 'शतक' एव 'सतसई' सज्ञक रचनाएँ नीति एव शृंगार वर्णन के लिए ही लिखी गई। आगे चलकर वियोगी हरि ने इसमे वीर भावो का वर्णन करने का सफल प्रयास किया। 'पचीसी' सज्ञक रचनाओ मे विविध विषयों का विवेचन किया गया। इस काव्यरूप के अन्तर्गत दोहा एवं कवित्त-सवैया का ही प्रमुख रूप से प्रयोग किया गया। नीति वर्णन के लिए छप्पय छन्द का प्रयोग भी एकाध कवि

ने किया। बैताल कवि की 'विक्रम सतसई' इस प्रकार की अत्युत्तम रचना है। इन सभी रचनाओ मे छन्द सख्या निर्धारित सख्या से अधिक प्राप्त होती है। इसके लिए कोई निश्चित नियम इन रचनाओ मे दृष्टिगोचर नही होता। गौरीशकर कृत 'ऋतुराज शतक' नामक रचना मे तो ३८४ अनुष्टप छन्द है। जबकि रामचरनदास कृत 'नामशतक' ग्रन्थ मे राम के नाम माहात्म्य के ठीक १०० दोहे है। जैन कवियों की 'छत्तीसी' सज्ञक रचनाओ की छन्द सख्या ३७ से ४६ तक प्राप्त होती हैं।

२०—भ्रमरगीत

अष्टछाप के कवियों द्वारा अपनाया जाने के कारण यह रूप आलोच्यकाल के बाद भी लोकप्रिय हुआ। यद्यपि परवर्त्तीकाल की परिस्थितियाँ इस प्रकार के विषयों के वर्णन के लिए उपयुक्त नही थी तथापि कुछ भक्त एव कुछ अन्य कवियो ने 'भ्रमरगीत' लिखे। इस काल की प्रमुख रचनाएँ ये हैं—

१—चाचा बृन्दावनदास कृत-भँवरगीत, ग्वाल कृत गोपी पच्चीसी एव गणेशप्रसाद कृत 'भ्रमरगीत सम्वाद' (ना० प्र० सभा १४वी खोज)। वर्तमान काल मे सत्यनारायन कविरत्न ने इसी प्रसग को लेकर 'भ्रमरदूत' एव जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'उद्धव शतक' की रचना की। फुटकर रूप मे शृंगार की रचना करने वाले अनेक कवियो ने इस प्रसंग पर अनेक कवित्त एवं सवैयो की रचना की।

इन रचनाओ मे से कुछ में उस भूमिका का अभाव है जो 'श्रीमद्भागवत' एव 'सूरसागर' मे इस प्रसंग के वर्णन करने से पूर्व दी गई है। नन्ददास के 'भवरगीत' के समान यह सीधे उद्धव-गोपी-सम्वाद से प्रारम्भ होते हैं। 'गोपी पच्चीसी' एव 'उद्धव शतक'—दो ग्रन्थो की सज्ञा उनमे व्यवहृत छन्दो के आधार पर दी गई है। 'उद्धव शतक' मे तो सूरसागर के समान इस प्रसग की भूमिका भी दी गई है। वर्तमान काल के दोनो (भ्रमर दूत एव उद्धवशतक) ग्रन्थ बड़े ही लोकप्रिय हुए हैं। 'भ्रमर दूत' मे तो ठीक उसी छन्द का व्यवहार हुआ है जो नन्ददास के भ्रमरगीत मे है। प्रत्येक छन्द के अन्त मे 'सखा सुनिश्याम के', 'सुनो ब्रजनागरी' इन दोनो टेको मे से प्रसगानुसार एक टेक दुहरती है। 'उद्धवशतक' बडा लोकप्रिय हुआ। यह घनाक्षरी छन्द में है। चाचा बृन्दावनदास का 'भँवरगीत' पदों में एव शेष सभी सवैया छन्दों मे लिखे गए है।

२१—कथाएँ

विक्रम की १७वी शताब्दी के पश्चात् के साहित्य मे अनेक कथाएँ भी प्राप्त होती हैं। आलोच्यकाल के समान ये कथाएँ भी अनुष्ठान कथा एव माहात्म्य कथा दोनों प्रकार की हैं। परवर्त्तीकाल की प्रमुख कथाएँ ये है—

अनुष्ठान कथाएं— १—हुलासदास कृत गणेश जी की कथा (राज० खो० भाग ४), २ गेंदीराम कृत सूरजपुराण (सूर्यकथा ना० प्र० १४वाँ विवरण), ३ केशवराम कायस्थ कृत गणेश व्रत कथा (वही खोज), ४. हरिकृष्ण पाडेय कृत अनन्त चतुर्दशी कथा (ना० प्र० सभा १५वाँ विवरण) एव रत्नत्रय कथा (वही खोज)।

माहात्म्य कथाएँ—१ भगवानदास निरजनी कृत कार्त्तिक माहात्म्य (ना० प्र० १४वाँ विवरण), २ कृष्णदास दनिया कृत महालक्ष्मी की कथा एव एकादशी माहात्म्य, ३ द्विज तीर्थ कृत कार्त्तिक माहात्म्य (राज०खोज० भाग ४), ४ आनन्द-राम कृत एकादशी कथा भाषा (वही खोज), ५ रामदीन कृत सत्यनारायण कथा (ना० प्र० ११वाँ विवरण), ६ वासुदेव सनाढ्य कृत सत्यनारायण व्रत कथा एव एकादशी माहात्म्य (ना० प्र० १४वाँ विवरण) एव ७ गणेशदत्त कृत सत्यनारायण जी व्रत कथा (वही खोज)।

अनुष्ठान कथाओं मे गणेश व्रत कथा तो आलोच्यकाल मे ही प्रचलित थी। इस काल मे सूर्य व्रत कथा भी लिखी गई जो रविवार के व्रत मे कही जाती है। हरिकृष्ण पांडे ने जैन आधार पर दो अन्य अनुष्ठान कथाएँ लिखी। माहात्म्य कथाओ में कार्त्तिक माहात्म्य सम्बन्धी कई रचनाएँ लिखी गयी। इन रचनाओ का आधार ब्रह्मपुराण था। भगवानदास निरजनी की कथा तो पूर्णत पुराण-कथा पर आधारित है इसीलिए इस कथा का २६ अध्यायो में विभाजन किया गया है। सत्यनारायण की कथा आज भी लोक-प्रचलित है। महालक्ष्मी की कथा इस काल की लिखी एक नवीन माहात्म्य कथा है। इस काल मे इन सभी कथाओ के वर्णन के लिए वही पूर्व प्रचलित दोहे-चौपाई की शैली अपनाई गयी।

२२—अष्टयाम

इस काव्यरूप का जन्म आलोच्यकाल की अन्तिम शताब्दी में हुआ था। आलोच्यकाल मे इसके अन्तर्गत कुछ गिनी-चुनी रचनाएँ ही लिखी गई। इसका पूर्ण विकास आलोच्यकाल के पश्चात् हुआ। परवर्त्ती काल मे अनेक अष्टयाम लिखे गए। इस प्रकार के कुछ प्रमुख ग्रन्थ ये है—

१ हरिराम (रसिक राम) कृत नित्य लीला (ना० प्र० सभा की प्रति), २ कृष्णदास कृत समय प्रबन्ध (ना० प्र० तृ० त्रै विवरण), ३ देव कृत अष्ट-याम, ४ रघुनाथ कृत जगतमोहन, ५ रसिक अली कृत अष्टयाम, ६. चाचा हित बृन्दावनदास कृत अष्टयाम, (मिश्र बन्धु विनोद के अनुसार इन्होने १६ समय प्रबन्ध लिखे) ७. खुमान कृत अष्टयाम, ८. रसिक गोविन्द कृत समय प्रबन्ध, ९ महाराज विश्वनाथसिंह कृत अष्टयाम, १०. शीलमणि कृत अष्टयाम (ना० प्र० ११वाँ

विवरण), ११ हनुमान कृत अष्टयाम, १२ महाराज रघुराजसिंह कृत रामाष्टायाम।

ऊपर जो ग्रन्थ दिए गए है उनमे से सभी की सज्ञा अष्टयाम नही है। हरि राय कृत 'नित्य लीला' ग्रन्थ मे राधा एव कृष्ण की आठो याम की लीला का वर्णन हुआ है। अत यह ग्रन्थ इसी कोटि का है। 'समय प्रबन्ध' लिखने की परिपाटी तो आलोच्यकाल से ही प्रचलित थी और इस प्रकार के ग्रन्थो मे उपासना पद्धति के भेद के कारण कृष्ण के सात समय एव आठों याम की दिनचर्या का वर्णन हुआ करता था। इस काल मे भी राधावल्लभी एव निम्बार्क सम्प्रदायो के भक्तो ने इस प्रकार की रचनाओ की सज्ञा समय प्रबन्ध ही दी है। कृष्ण के अष्टयाम के समान आलोच्यकाल मे राम का अष्टयाम भी नाभादास ने वर्णन किया था। इस काल मे भी नीलमणि एव महाराज रघुराजसिंह ने राम के अष्टयाम लिखे। शृंगारी कवियों ने राधा-कृष्ण के अष्टयाम न लिखकर विलासी राजाओ के अष्टयाम लिखना प्रारम्भ किया। देव, खुमान, रघुनाथ, आदि के ग्रन्थ इसी प्रकार के है। रघुनाथ कवि कृत 'जगतमोहन' ग्रन्थ मे कृष्ण की १२ घन्टे की दिनचर्या का वर्णन किया गया है लेकिन कवि का उद्देश्य कृष्ण की दिनचर्या वर्णन करने का न प्रतीत होकर किसी ऐश्वर्यवान राजा की दिनचर्या वर्णन करने का प्रतीत होता है। कवि ने इस ग्रन्थ मे राजनीति, सामुद्रिक, वैद्यक, ज्योतिष, शालिहोत्र मृगया, सैना, नगर गढरक्षा, शतरज आदि के विस्तृत वर्णनो का समावेश किया है। रसिक गोविन्द कृत 'समय प्रबन्ध' मे राधा-कृष्ण की आठों याम की दिनचर्या तक ही कवि ने अपने को सीमित न रखकर उनकी समस्त ऋतुओ की दिनचर्या का वर्णन किया है। चाचा वृन्दावनदासजी के 'समय प्रबन्धो' की अधिकता का कारण विभिन्न अवसरों पर राधा-कृष्ण की दिनचर्या का वर्णन करना ही है। परवर्त्तीकाल के 'अष्टयाम' राजाओ से सम्बन्धित अनेक विषयो से भरे होने के कारण अधिक बड़े-बड़े एव कुछ सीमा तक नीरस हो गए।

२३.नखसिख

अष्टयाम के समान नखशिख की परिपाटी का प्रारम्भ भी आलोच्यकाल मे ही हुआ। लेकिन इसका पूर्ण विकास परवर्त्तीकाल मे ही हुआ। इस काल मे शृंगार की रचनाओ की प्रधानता होने के कारण नायिका के सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग मे उसके अंग-प्रत्यग की शोभा का अनेक कवियो द्वारा वर्णन किया गया। अनेक कवियों ने इस शैली को आधार बनाकर स्वतन्त्र ग्रन्थो की भी रचना की। नायिकाओ के सौन्दर्य के साथ-साथ राधा-कृष्ण एव सीता-राम के सौन्दर्य का भी इसी शैली मे वर्णन किया गया और उनकी सज्ञा भी नखशिख अथवा शिखनख दी गई। परवर्त्तीकाल में इस शैली मे लिखे गए कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ ये है—

१. रूप जी कृत नखशिख (राज० खोज० भाग १), २. कुलपति मिश्र कृत नख-शिख ३. देव कृत नखशिख प्रेमदर्शन, ४. सूरति मिश्र कृत नखशिख ५. तोपनिधि कृत नखशिख, ६. रसलीन कृत अंगदर्पण ७. घनश्याम कृत नखशिख (राज० खोज० भाग २) ८. नागरीदास कृत नखशिख एवं शिखनख, ९. चन्दन कृत नखशिख, १०. देवकीनन्दन कृत नखशिख, ११. हित वृन्दावनदास कृत नखशिख, १२. खुमान कृत हनुमान नख-खिश, १३. गोकुलनाथ कृत राधा नखशिख, १४. ग्वालकवि कृत कृष्ण जू को नखशिख, १५. प्रतापसिंह कृत जुगल नखशिख, १६. प्रेमसखी कृत सीताराम नखशिख, (ना० प्र० सभा ११वाँ विवरण) १६. पजनेश कृत नखशिख, १८ गिरधरदास कृत लक्ष्मी नख-शिख, १९ सेवक कृत नखशिख।

ऊपर के ग्रन्थो के देखने से यह स्पष्ट है कि नखशिख वर्णन की यह प्रणाली नायिकाओं के सौन्दर्य तक ही सीमित नही रही, राधाकृष्ण एव सीताराम के भी नखशिख लिखे गए। खुमानकवि ने हनुमान जी का नखशिख भी लिखा, भक्त कवि नागरीदास जी ने नखशिख के साथ-साथ शिखनख भी लिखा। यह काव्यरूप परवर्त्ती-काल मे अत्यन्त लोकप्रिय रहा। अनेक कवियो ने नायिका भेद वर्णन के प्रसग मे नखशिख वर्णन किया। इस वर्णन के लिए इस काल मे कवित्त एव सवैया छन्द का ही व्यवहार किया गया।

२४—नाटक

आलोच्यकाल के जन नाटको की शैली पर लिखे गए नाटको की परम्परा परवर्त्तीकाल मे भी चलती रही। इस काल मे भी अनेक नाटक लिखे गए। कुछ प्रसिद्ध नाटक ये है।

१. अनाथदास कृत प्रबन्ध चन्द्रोदय नाटक (ना० प्र० सभा ११वाँ विवरण) २. राम कृत हनुमान नाटक ३. महाराज जसवतसिंह कृत प्रबोध चन्द्रोदय ४ नेवाज कृत शकुन्तला नाटक, ५ उदय कृत हनुमान एव रामकरुणानाटक, (ना० प्र० सभा की प्रतियाँ) ६. हरिवल्लभ कृत प्रबोधचन्द्रोदय (राज० खोज भाग २), ७ जगजीवन कृत हनुमान नाटक (राज० खोज भाग २), ८. सोमनाथ कृत माधव बिनोद नाटक ९. रघुराय कृत सभासार नाटक (राज० खोज० भाग १), १०. महाराज विश्वनाथ सिंह कृत आनन्द रघुनन्दन नाटक, ११. गणेश कृत प्रद्युम्न विजय नाटक, १२ केदार-नाथ लछमनदास कृत प्रह्लाद चरित नाटक (ना० प्र० ११वी खोज) एव १३. गिरधरदास कृत नहुष नाटक।

ऊपर के नाटकों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काल मे 'प्रबन्ध चन्द्रोदय' एव 'हनुमान नाटक' दो नाटको का बड़ा प्रचलन रहा।

इन दोनो नाटकों को ही कई कवियो ने लिखा। सस्कृत के नाटको के आधार पर इन नाटको को जननाटको की शैली मे लिखा गया। महाराज विश्वनाथसिह जी का 'आनन्द रघुनन्दन नाटक' प्रथम नाटक है जिसे सस्कृत के शास्त्रीय नाटको की दृष्टि में रखते हुये नाटक की सज्ञा दी जा सकती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसी नाटक से हिन्दी के नाटको का प्रारम्भ स्वीकार किया है। इस ग्रन्थ मे सम्वादों के लिए गद्य का विधान किया गया है। इसमे अक विधान एव पात्र विधान भी है। इनके पश्चात् भारतेन्दु जी के पिता गिरधरदास का 'नहुष नाटक' तो वर्तमान काल के सभी गुणों से युक्त है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल से तो हिन्दी साहित्य मे अनेक नाटक लिखे जाने लगे। स्वय भारतेन्दु जी ने भी अनेक नाटक लिखे। भारतेन्दु एव उनके बाद के नाटक सस्कृत के नाटको को दृष्टि में रखकर लिखे गए। उनमे उन सभी तत्त्वों का समावेश आवश्यक समझा गया जो सस्कृत के नाटकों मे प्राप्त होते थे। यही कारण है कि आलोच्यकाल एव उसके बाद के पूर्णत: पद्य में लिखे गए नाटको को वह नाटक कहना स्वीकार ही नही करते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद से जन नाटको का ह्रास होता दिखाई देता है।

उपसंहार
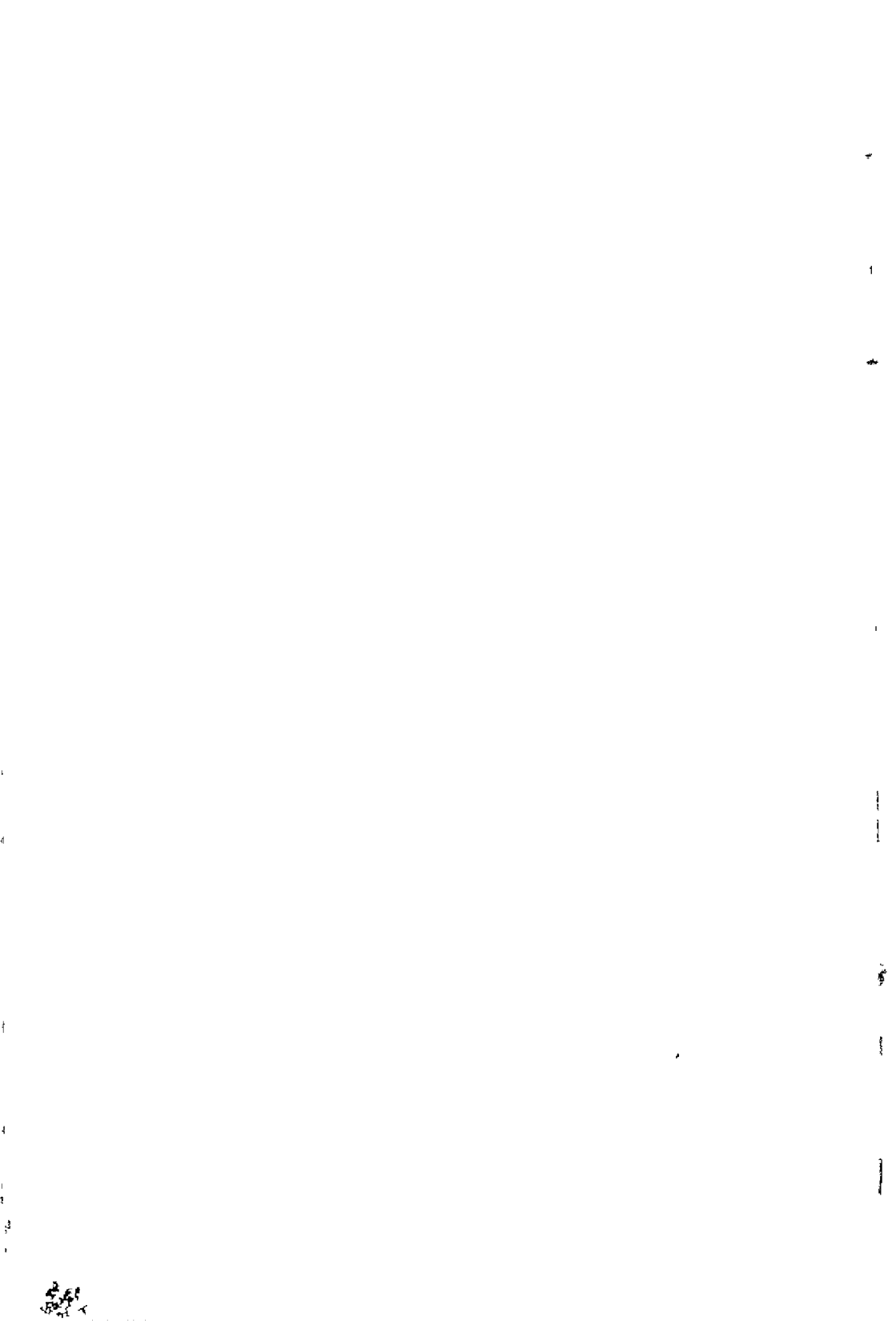
उपसंहार

विक्रम की १५वीं शताब्दी से १७वी शताब्दी तक की जितनी हिन्दी रचनाओं का अभी तक पता चला है उनकी सख्या पर्याप्त बडी है। इन तीन सौ वर्षो के साहित्य के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि मानव अनुभूति के उत्तरोत्तर विकास के साथ ही काव्यरूपो का भी सहज एव सुन्दर विकास होता रहा है। किसी युगविशेष की कल्पना और अनुभूतियो के साथ ही काव्यरूपो मे भी परिवर्तन होते रहे है और इस परिवर्तन मे कवि की मनोवृत्ति का बहुत बडा हाथ रहा है। कोई काव्यरूप किसी समय मे जब अपने चरम पर पहुँच जाता है तो उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है और वह नवीन रूप धारण करके लोक के समक्ष उपस्थित होता है। उत्थान के पश्चात् पतन तो आवश्यक है ही, किसी प्राचीन काव्यरूप का पतन ही नवीन काव्यरूप को जन्म देता है।

कवि की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ही काव्य को जन्म देती है। जब कवि अनेक मार्गो द्वारा अपनी अनुभूतियो का प्रकाशन करता है तब हमारे समक्ष अन्यान्य रूप उपस्थित हो जाते है। कभी तो कवि की अनुभूति स्वत. किसी काव्यरूप के ढाँचे को तैयार करती है और कभी वह पुराने ढाँचे मे अपनी अनुभूति को ढाल कर व्यक्त करता है। जब कवि की अनुभूति किसी नवीन ढाँचे को तैयार करती है और उस अनुभूति और अभिव्यक्ति मे एकसूत्रता स्थापित हो जाती है तभी नवीन काव्यरूप को जन्म मिलता है। यदि कवि दोनो मे एकसूत्रता स्थापित करने मे असफल रहता है तो वह अभिव्यक्ति काव्यरूप न होकर एक प्रयोगमात्र रह जाती है।

आलोच्यकाल के साहित्य मे हमे ४० के लगभग प्रयोग प्राप्त होते हैं। इन सभी प्रयोगों मे अनुभूति एव अभिव्यक्ति मे एकसूत्रता स्थापित नही हो पाई है इसी कारण सभी प्रयोग काव्यरूप की कोटि को ग्रहण नही कर सके है। इस काल मे भक्त एव सन्त कवियो की उपदेशपरक रचनाओ की अधिकता है। ज्ञान, उपदेश, चितावणी, बोध, प्रबोध, सम्बोध, निरूपण, नामा, विचार, सिद्धान्त, सग्रह अथवा सागर, विप्रमतीसी, लीला आदि अनेक संज्ञाएँ देकर इन सन्त एव भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं मे या तो ज्ञानोपदेश का प्रयास किया या अपने सिद्धान्तो के प्रतिपादन का। लेकिन अनुभूति एव अभिव्यक्ति मे एकसूत्रता का अभाव रहा इसी कारण आलोच्यकाल की ये रचनाएँ किसी नवीन काव्यरूप को जन्म न दे सकीं। यह संज्ञा मात्र ही रह गईं। जिस प्रकार साखी, सबद अथवा रमैनी के

नाम से काव्यरूप प्रचलित हुए उस प्रकार इन सज्ञाओ मे से किसी के नाम से कोई रूप प्रचलित न हो सका। इसका कारण यह है कि इस कोटि के अधिकाश ग्रन्थो का कलापक्ष अत्यन्त हीन कोटि का है। इनमे सुनी-सुनाई बातों को पद्य रूप मे रखने का प्रयत्न ही अधिक हुआ है। मौलिकता एव कवि-कल्पना का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। किसी निश्चित ढाँचे मे न ढली होने के कारण इस प्रकार की समस्त रचनाओ को विषय के आधार पर सिद्धान्त एवं उपदेशपरक काव्य के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। विषय की दृष्टि से इन सभी रचनाओ मे अद्भुत साम्य है। इन ग्रन्थो की रचना करने वाले कवियो का ध्यान अभिव्यक्ति पर न होकर अनुभूति पर ही केन्द्रित रहा। फलत: यह अनेक प्रकार के प्रयोगो का सग्रहीत रूप ही बन सका। छन्द-गीत-परक काव्यरूप मे भी कुछ स्फुट प्रयोग मिल जाते है लेकिन उस रूप की अधिकाश रचनाओ मे अनुभूति एव अभिव्यक्ति मे एकसूत्रता दृष्टिगोचर होती है, जो काव्यरूप के रूप-निर्धारण के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

आलोच्यकाल मे प्राप्त इन २४ काव्यरूपो में से २, ३, ४, ५, ६, ६, ११, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १६, २१, २४, सख्या वाले काव्यरूप ऐसे है जो किसी न किसी रूप मे प्राचीनकाल मे ही प्रचलित थे। यह सही है कि इनमे से कुछ ऐसे भी है जिनका वास्तविक विकास आलोच्यकाल में ही हुआ था। 'साखी', 'बारहखडी' एव 'बारहमासा' ऐसे ही काव्यरूप है। कुछ काव्यरूप यथा—चरित-काव्य, रास, कथा-काव्य, पद, स्तोत्र, पुराण, माल या माला तो ऐसे है जो संस्कृत अथवा अपभ्रंश साहित्य मे पर्याप्त प्रचलित रहे है। बानी, सिद्धान्त एवं उपदेश परक-काव्य, प्रशस्तिकाव्य, ऐतिहासिक काव्य, लीला काव्य, भ्रमरगीत, अष्टयाम एव नखशिख ऐसे काव्यरूप है जिनका जन्म एव रूप निर्धारण आलोच्यकाल मे ही हुआ। जो काव्यरूप आलोच्यकाल के पूर्व मे ही प्रचलित थे, इस काल मे भी प्रचलित रहे। इस काल की परिस्थितियाँ ऐसी थी कि इन काव्यरूपो के विकास के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ। आलोच्यकाल मे भक्ति की लहर सम्पूर्ण उत्तरी भारतवर्ष मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल चुकी थी। सन्त और भक्त दोनो ही अपने-अपने सिद्धान्तो को जनता तक पहुँचाने के लिए सचेष्ट थे। फलत. 'सिद्धान्त एव उपदेशपरक' अनेको रचनाओ का इस काल मे जन्म हुआ। सन्तो के वचनो को अधिक प्रामाणिक एवं वेदवाक्य के समान अकाट्य सिद्ध करने के प्रयत्न में उन सन्तो के शिष्यो ने गुरुवाणी को अधिकाधिक महत्त्व देना प्रारम्भ कर दिया और उनके इसी प्रयत्न के फलस्वरूप 'बानी' सज्ञक रचनाओ की अधिकाधिक महत्ता स्थापित होती गई और इस प्रकार की रचनाओं का एक अलग प्रकार ही बन

गया । इस काल में कृष्ण भक्त कवियो ने कृष्ण के लोक-कल्याणकारी रूप का न ग्रहण कर उनके मधुर रूप को ही ग्रहण किया । वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग की स्थापना करके उसमें नित्याचार एव कीर्तन की महत्ता पर बल दिया । फलत श्रीनाथ जी के मन्दिर में कृष्ण की आठो झाँकियो के समय अष्टछाप के कवियो द्वारा नित्य नवीन पदो द्वारा कीर्तन किया जाने लगा । कृष्ण की लीलाओं का अष्टछाप के कवियों ने पदो मे इतना सुन्दर गान किया कि अन्य कवि भी लीला गान के लिए लालायित हो उठे । फलत: कृष्ण की विभिन्न लीलाओ को लेकर लीला-काव्य लिखे जाने लगे । नित्याचार की प्रधानता होने के कारण श्रीनाथ जी के मन्दिर मे आठो याम की सेवा का विधान किया गया । मन्दिर मे उपास्यदेव के नित्य कर्म के अनुसार आठ झाँकियाँ सजाई जाने लगी । उन झाँकियो के समय नियत गायक कृष्ण की शोभा एव उनकी लीलाओं का गान करते थे । इस प्रकार कृष्ण की आठो याम की शोभा एव उनकी क्रीडाओ का क्रमिक रूप से गान करने की प्रथा का जन्म हुआ । धीरे-धीरे कृष्ण की आठों याम की शोभा एव चर्या का जिसमे उनकी विभिन्न क्रीडाओ का ही मुख्य रूप से वर्णन हुआ करता था, भक्त कवियो द्वारा स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया जाने लगा और इस प्रकार के काव्यो की सज्ञा 'समय प्रबन्ध' अथवा 'अष्टयाम' दी जाने लगी । कृष्ण की विभिन्न लीलाओ का वर्णन 'श्रीमद्भागवत' के दशमस्कन्ध के आधार पर इन भक्त कवियों द्वारा किया गया । इसी स्कन्ध के 'भ्रमरगीत' प्रसग को भी सूरदास ने 'सूरसागर' मे वर्णन किया । उनकी देखा देखी अन्य कवियों ने इस प्रसग को आधार बनाकर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे ऊपर कहा जा चुका है कि अष्टछाप के कवियो ने कृष्ण की आठों याम की शोभा का वर्णन अनेक पदो मे किया था । सौन्दर्य वर्णन मे सस्कृत के कवि भी बड़े सिद्धहस्त थे । अनेक प्राचीन कथा-काव्यो मे नायिकाओ के सौन्दर्य का विशद वर्णन हुआ करता था । जायसी ने 'पद्मावत' मे पदमावती के सौन्दर्य का वर्णन शिख से लेकर नख तक अग-प्रत्यंग को आधार बना कर किया । भक्त कवियो ने भी इसी आधार पर कृष्ण की शोभा का वर्णन करना प्रारम्भ किया । राजनैतिक स्थिरता के कारण कवियो को राज्याश्रय प्राप्त होने लगा था । ऐसी दशा मे राजदरबारो के सौन्दर्यवर्णन के लिए इस परिपाटी का आश्रय लिया जाने लगा । कृष्ण के सौन्दर्य के साथ-साथ सामान्य स्त्रियो के सौन्दर्य का वर्णन भी इसी शैली मे किया जाने लगा । इस प्रकार आलोच्यकाल के अन्तिम चरण मे 'नखशिख' काव्यरूप का जन्म हुआ ।

ऊपर यह दिखाया गया है कि आलोच्य काल मे दो प्रकार के काव्यरूप प्रचलित थे । कुछ काव्यरूप तो ऐसे थे जो सस्कृत, अपभ्रंश अथवा सिद्ध एव नाथ योगियो मे प्रचलित थे और हिन्दी साहित्य मे सीधे वहीं से ग्रहण किए गए ।

कुछ काव्यरूप ऐसे भी है जो प्राचीनकाल में या तो प्रचलित ही नही थे या उनका रूप उस काल मे सर्वथा भिन्न था और उसका वर्तमान रूप आलोच्यकाल की देन है। जो काव्यरूप प्राचीनकाल मे प्रचलित थे वे तो उन्ही परिस्थितयो मे उसी रूप मे आलोच्यकाल मे भी प्रचलित रहे लेकिन जिन काव्यरूपो का जन्म आलोच्यकाल मे हुआ उनके प्रचार का कारण वही परिस्थितियाँ थी जिनके कारण उनका जन्म हुआ था। 'प्रशस्ति काव्य' एव 'ऐतिहासिक काव्य' संस्कृत साहित्य एव हिन्दी के आदिकाल मे किसी न किसी रूप में वर्तमान तो थे लेकिन इनका विकास आलोच्यकाल मे ही हुआ क्योकि इन रूपो के विकास के लिए इस काल मे अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त हुई। राजाश्रय मे रहने वाले कवि अपने आश्रयदाता की अतिरंजित प्रशसा करना अपना कर्त्तव्य समझने लगे थे। उच्चकोटि के योद्धाओ के न होने के कारण इस काल के किसी वीर द्वारा असाधारण वीरता का कार्य कर देने पर कवियो द्वारा उसका वर्णन खूब बढा-चढ़ा कर किया जाने लगा। ऐसे ग्रन्थो मे उस इतिहास प्रसिद्ध वीर के समस्त जीवन की घटनाओं का वर्णन न होकर एकाध घटना का ही वर्णन होना था जिसके आधार पर चरितनायक के किसी गुण का बखान करना ही कवि का उद्देश्य हुआ करता था। इस प्रकार के ऐतिहासिक-काव्य आलोच्यकाल की आवश्यकता का ही परिणाम थे।

आलोच्यकाल मे प्रचलित सभी काव्यरूप परवर्त्तीकाल मे भी प्रचलित रहे। हाँ, परिस्थितियो के आधार पर उनके स्वरूप मे कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ। उच्च कोटि के साधक एव सन्तो के अभाव के कारण 'साखी', 'सबद' एव 'रमैनी' इन तीनो रूपों का प्रचलन इस काल मे न के बराबर ही रहा। शृंगार वर्णन की प्रधानता होने के कारण अष्टयाम, नखशिख, लीलाकाव्य एव बारहमासा अधिक लिखे गए। मुगल शासन मे देश मे स्थापित हुई शान्ति के कारण जहाँ एक ओर कथा-काव्य, कथा, छन्द-गीत-परक काव्य, संख्यापरक-काव्य के अन्तर्गत रचे गए ग्रन्थो की सख्या अधिक प्राप्त होती है, वहाँ ऐतिहासिक-काव्य-ग्रन्थो की सख्या अत्यल्प। २०वी शताब्दी मे हिंदी-साहित्य मे गद्य का प्रादुर्भाव हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय मे हिंदी-साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात हुआ और काव्य के नवीन मापदड स्वीकार किए गए। फलत. बीसवी शती के काव्य नई मान्यताओ एव काव्यरूपो को स्वीकार करके लिखे गए।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

सम्वत् १४०१ से १७०० तक के समस्त ग्रंथकार एवं उनके ग्रंथों का विवरण

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रंथ	रचनाकाल	आधार विशेष
१.	गोरखनाथ	१ गोरखबोध २ दत्त गोरख-सम्वाद ३. गोरखनाथ के स्फुट ग्रन्थ ४ ज्ञान-सिद्धान्त योग ५ ज्ञानतिलक ६ योगेश्वरीसाखी ७ नरवैबोध ८ विराट पुराण ६ गोरखसार, १०. गोरखबानी ११ गोरखनाथ जीरा पद[१] ।	१४०० वि० लगभग	मिश्रबन्धु विनोद
२	नामदेव	बानी	१४०७वि० से पूर्व	मिश्रबन्धु विनोद
३.	अग्रवाल	प्रद्युम्न चरित्र	१४११ वि०	नागरी प्रचारिणी १२वीं त्रै० रिपोर्ट
४	विनयप्रभ-उपाध्याय	१.गौतमरासा २ हसवच्छ रासा ३. शीलरासा	१४१२ वि० लगभग	मिश्रबन्धु विनोद
५.	हरसेवकमुनि	मयण रेहा रास	१४१३ वि०	मि० विनोद
६.	शारगधर	१. हम्मीररासो २. हम्मीर काव्य	१४३० वि० लगभग	राज० भाषा और साहित्य
७.	विद्धणुजैन	ज्ञानपचमी चौपाई	१४२३ वि०	मि० विनोद

[१] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य मे गोरखनाथ के निम्न ग्रन्थो का उल्लेख किया है — १. शब्द, २. शिष्यादर्शन, ३. प्राणसकली, ४. आत्मबोध, ५. अभयमात्रायोग, ६. पन्द्रह तिथि, ७ सप्तवार, ८. रोमाली' ६. ज्ञान चौतीसा, १०. पचमात्रा, ११ गोरखगणेशगोष्ठी, १२. महादेव गोरख-गोष्ठी १३. शिष्ट पुरान, १४. दयाबोध, १५. जाति भँवरावली, १६. नवग्रह, १७. नवरात्रि, १८. अष्टपारक्षय, १६. रसराह, २०. ज्ञान माला, २१. व्रत, २२. निरजन, पुराण, २३. इन्द्रिय देवता, २४. मूलगर्भावली, २५. अष्ट मुद्रा, २६. चौबीस सिद्ध, २७. षडक्षरी, २८ पञ्च अग्नि, २६. अष्ट चक्र, ३०. अवलि सिलूक, ३१. काफिर बोध। उनके अनुसार रचनाकाल वि० १० वी शताब्दी है। पृष्ठ ३२।

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार	विशेष
८.	सिद्धसूरि जैन	शिवदत्त रास	१४२३० वि	मि० विनोद	
९	हीरानन्द सूरि जैन	कलिकाल रास	१४२६ वि०	मि० विनोद	
१०	असाइत	हंसाउली	१४२७ वि०	राज० भाषा और साहित्य	
११.	विद्यापति	पदावली	१४५० वि० लगभग	मि० विनोद	
१२.	सोमसुन्दर सूरि	आराधना रास	१४५० वि०	मि० विनोद	
१३.	नारायण देव कवि जाषू मणियार	हरिचन्द्र पुराण	१४५३ वि०	"	
१४.	मुनि सुन्दर जैन	शात रस रास	१४५५ वि०	"	
१५	रामानन्द	१ रामरक्षा २ ज्ञान तिलक ३. स्फुट पद	१४५५ वि० लगभग	"	चतुर्थ त्रै० वा० रिपोर्ट
१६.	सैन	पद	१४५७ वि०	"	
१७.	भवानन्द	अमृतधार	"		
१८.	रैदास	बानी	"	"	खोज१९०२ मे प्राप्त
१९.	श्रीधर	रणमल छन्द	१४५७ वि०	राज०भाषा और इतिहास	
२०.	पीपा	१. बाणी २. जोग चितावणी ग्रन्थ		मि० विनोद ना० प्र० की हस्त० प्रति	
२१.	जयसागर जैन	कुशल सूरि स्तोत्र	१४८२ वि०	मि० विनोद	
२२	लखनसेनि	हरि चरित्र बिराट पद	"	ना०प्र० पत्रिका वर्ष ५७ अक १ हस्त० ग्रन्थो की खोज	

---

१. ये दोनो ग्रन्थ अप्राप्त है। शारंगधर का रचनाकाल आचार्य शुक्ल और डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार १४ वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। देखिये पृष्ठ सख्या २४ एव १७६ क्रमश. हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास। डा० द्विवेदी इन ग्रन्थो को प्रामाणिक नहीं मानते। देखिये हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ५४।

क्र० सं०	नामकवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार	विशेष
२३	हीराणंद	विद्याविलास रास	१४८५ वि०	मि० विनोद	
२४.	शिवदास	अचलदास खीची री वचनिका	१४८५ वि० लगभग	राज० भाषा और साहित्य	
२५	दयासागर सूरि	धर्मदत्त चरित्र	१४८६ वि०	मि० विनोद	
२६	विष्णुदास	१ महाभारत कथा २ स्वर्गारोहण, ३. रुक्मिणि मगल ४. सनेह लीला	१४९२ वि० लगभग ” ”	मि० विनोद ” सूर पूर्व व्रजभाषा और साहित्य।	
२७	चक्रपाणिव्यास	रुक्मिणी हरण	१५वीं शताब्दी	मि० विनोद	
२८.	विधिचन्द्र शर्मा	१ अवतार रासा २. ब्रह्म-विद्यार्थ प्रकाश	”	”	
२९.	साधन	मैनासत	”	हिन्दी विद्यापीठ की प्रति	
३०.	रामानन्द	रामरक्षा स्तोत्र	१५०० वि०	मि० विनोद	
३१	नारायणदास	छिताई वार्त्ता	”	खोज रिपोर्ट ४१-४२ ई०	
३२.	परमानन्द	ओषाहरण	१५१२ वि०	ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५७, अक १ हिन्दी हस्त० की खोज	
३३.	दामो	लक्ष्मणसेन-पद्मावती	१५१६ वि०	मि० विनोद	
३४.	चेतनदास	प्रसग पारिजात	१५१७ वि०	ना०प्र० पत्रिका वर्ष ५७, अक १ हि० हस्त की खोज।	
३५.	कबीरदास	१. अमरमूल, २. अनुराग सागर, ३ उग्रज्ञान, ४. मूलसिद्धान्त, ५. ब्रह्म-निरूपण, ६. हसमुक्तावली ७ कबीर परिचय की साखी, ८ शब्दावली,	१५२१ वि० लगभग	” ” ” ” ” ”	
		९. पद, १० साखियाँ, ११ दोहे, १२. सुखनिधान, १३. कबीरदास गोरख-गोष्ठी १४ कबीरपजी, १५ बलख की रमैनी १६.	१५२१ वि० लगभग ” ” ”	मि० विनोद ” ” ” ”	

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार	विशेष
		विवेकसागर, १७. विचार-	१५२१ वि० लग०	मि० विनोद	
		माल, १८ कायापञ्जी १९	"	"	
		रामरक्षा, २०, अठपहरा,	"	"	
		२१ निर्भयज्ञान, २२	"	"	
		कबीर-धर्मदासगोष्ठी, २३	"	"	
		अगाध मंगल, २४. वलख की	"	"	
		पंजी, २५ ज्ञान चौंतीसा,	"	"	
		२६. कबीराष्टक, २७	"	"	
		मंगल शब्द, २८. रामानन्द	"	"	
		की गोष्ठी, २९. आनन्दराम	"	"	
		सागर, ३०. आदि मगल,	"	"	
		३१. अनाथ मगल, ३२.	"	"	
		अक्षरभेद की रमैनी, ३३	"	"	
		अक्षर खंड की रमैनी ३४.	"	"	
		अर्जनामा, ३५. आरती,	"	"	
		३६. भक्ति का अग, ३७.	"	"	
		छप्पय, ३८. चौकाघर	"	"	
		की रमैनी ३९ ज्ञान	"	"	
		गूदरी, ४०. ज्ञान सागर	"	"	
		४१. ज्ञान स्वरोदय, ४२	"	"	
		करमखड की रमैनी, ४३.	"	"	
		मुहम्मद बोध, ४४. नाम	"	"	
		माहात्म्य ४५. पिया	"	"	
		पहचानवै को अग, ४६.	"	"	
		पुकार शब्द अनलहक	"	"	
		४७. साध कौ अंग, ४८	"	"	
		सतसग कौ अग, ४९.	"	"	
		स्वास गु जार, ५०.तीसाजत्र,	"	"	
		५१. जन्मबोध, ५२.	"	"	
		ज्ञानसंबोध, ५३ मखहोम	"	"	
		५४ निर्भयज्ञान. ५५. सत-	"	"	
		नाम ५६. बानी, ५७. ज्ञानस्तोत्र	"	"	

क्र० स० नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
	५८ हिंडोरा,	१५२१ वि० ल०	मि० विनोद
	५९ सत कबीर ब्रदी छोरी,	,,	,,
	६० शब्द वशावली, ६१	,,	,,
	उग्रगीता, ६२ बसत, ६३,	,,	,,
	होली, ६४ चाँचरा,	,,	,,
	६५ रेखता, ६६ झूलना	१५२१ वि०	मि० विमोद
	६७ खसरा, ६८ रागगौरी	लगभग	,,
	६९. राग भैरव, ७०	,,	,,
	राग काफी, ७१ फगुआ	,,	,,
	७२ बारहमासा, ७३	,,	,,
	चौतीसा, ७४ अलिफनामा	,,	,,
	७५ रमैनी, ७६ बीजक,	,,	,,
	७७ आगम, ७८. रामसार	,,	,,
	सोरठा, ७९ कबीर जी	,,	,,
	कृत शब्द, ८०. पारखा,	,,	,,
	८१. ज्ञानतिलक, ८२.	,,	,,
	सुरति सम्बाद ८३ सन्तो	,,	,,
	की गाली, ८३ कबीर-	,,	ना०प्र०, १३वीं त्रै०
	माण्यो ८५ अम्बराबती।	,,	वा० खोज रिपोर्ट
३६. जनगिरधारी	भक्त माहात्म्य	१५२५ वि०	मि० विनोद
३७ कमाल	कमाल की वाणी	—	,,
३८ धर्मदास	१-शब्द रैदास को वाद, २	—	१५वीं त्रै०
	स्वांस गु जार	,,	वा० खोज रिपोर्ट
	३. सुखनिधान ४. शब्द	,,	डा० वर्मा का इतिहास
३९. भगौदास	बीजक		मि० विनोद
४० श्रुतिगोपाल	सुख निधान		,,
४१. कनकप्रभ सूरि	वैद्यक	१५३० वि० लगभग	,,
४२. कल्लोल	ढोलामारू रा दूहा	१५३० वि०	राज० भाषा और साहित्य
४३ ज्ञानसागर जैन	श्रीपाल चरित्र	१५३१ वि०	मि० विनोद

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
४४	डूंगर	डूंगर बावनी	१५३८ वि०	सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य।
४५	गुणरतन	श्रीपाल रास	१५३१ वि०	पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर की प्रति।
४६	प्रतापसिंह	चन्द कुंवर री बात	—	
४७.	मानिक कवि	बैताल पचीसी	१५४६ वि०	१५वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट
४८.	ठक्कुर सी	१ पचेन्द्रीय वेलि, २. नेमि राजमति वेलि, ३. पार्श्वनाथ शकुन सत्ता-वीसी।	१५५० वि० ,, ,,	सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य ,,
४६	संवेग सुन्दर उपाध्याय	सार सिखावन रासा	१५४८ वि० लग०	मि० विनोद
५०.	नरपति	१. नन्द बत्तीसी २, विक्रम पच दण्ड, ३ स्नेहपरिक्रम, ४ नि स्नेह परिक्रम	१५४५ वि० से १५६० के बाद तक।	राज० भाषा और साहित्य
५१.	सिंहा	१ जम्बूस्वामी वेलि, २ नेमि वेलि	१५५१ वि० लग०	सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य।
५२.	भीम	डगवय पुराण	१५५० वि० लग०	ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५७ अंक १, हस्त० ग्रथो की खोज।
५३.	रामचन्द्रसूरि	मुनिपतिराजर्षि चरित्र	१५५० वि०	मि० विनोद
५४	भानुदास	स्फुट छद	१५५५ वि० लग०	मि० विनोद
५५.	सिद्धसेन	विक्रमपच दण्ड चौपाई	१५५६ वि०	राज० हस्त० प्रथम खोज रिपोर्ट
५६.	अनन्तदास	१ कबीरपरचई, २. त्रिलोचन परचई, ३. रैदास परचई	१५५७ वि०	मि० विनोद

क्र० सं०	कवि का नाम	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
५७.	घेघनाथ	नेमिश्वर गीत	१५५७ वि०	खोज रिपोर्ट सन् १९४४-४६
५८	हरीराम	गीताभानु प्रकाश	१५५८ वि०	मि० विनोद
५९.	पुरुषोत्तम	धर्माश्वमेध	,,	मि० विनोद
६०	वल्लभाचार्य	पद	१५६० वि० लग०	मि० विनोद
६१.	कुतुबन	मृगावती	१५६० वि०	मि० विनोद
६२	चतुर्भुजदास	मधुमालती की कथा		सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य।
६३	सैन	छन्द	१५६० वि० लग०	मि० विनोद
६४	ईश्वर सूरि जैन	ललिताग चरित्र	१५६१ वि०	मि० विनोद
६५.	मुनि आनन्द	विक्रम वापर चरित्र	१५६२ वि०	मि० विनोद
६६	चन्द	हितोपदेश	१५६३ वि०	मि० विनोद
६७.	हितहरिवंश	१. हित चौरासी	१५६५ वि० लग०	मि० विनोद
		२ फुटकर बानी	,,	द्वि० त्रै० खा० खोज रिपोर्ट
६८.	उदयभान	विक्रम चरित्र प्रबन्ध	१५६७ वि०	पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर की प्रति
६९	हितकृष्णचन्द्रगो०	१. आशाशतक, २.	१५६७ वि० लग०	मि० विनोद
		सारसंग्रह,	,,	,,
		३. अर्थकौमुदी, ४	,,	,,
		करुणानन्द, ५. राधानुनय	,,	,,
		विनोद, ६. काव्य अष्टपदी	,,	,,
७०	गोपीनाथ	स्फुट पद	१५६८ वि० लग०	,,
७१	बीठलदास	पद	१५६८ वि० लग०	,,
७२	लावण्यसमय गणि	१ विमल मंत्रीरास	१५६८ वि०	,,
		२ करसम्वाद रासा	१५७५ वि०	,,
		३ रावण सम्वाद	१५७२ वि०	पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर
७३	सहजसुन्दर जैन	१.गुणरत्नाकर	१५७२ वि०	मि० विनोद
		२. रतनसार चौपाई	१५८२ वि०	ना० प्र० की प्रति

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
७४	चतुरमल	नेमिश्वर गीत	१५७१ वि०	सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य ;
७५	छीहल	१ .पंच सहेली	१५७५ वि०	मि० विनोद
		२ बावनी ३-पथी-गीत	—	राज० के जैन शास्त्र भंडारो की सूची, भाग ३ ।
			—	
		४-आत्म प्रतिबोध जयमाल	,,	सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य
७६.	बालचन्द्र जैन	रामसीता चरित्र	१५८० वि०	मि० विनोद
७७	गौरवदासजैन	यशोधर चरित्र	,,	मि० विनोद
७८.	ठकुर सी	कृष्ण चरित्र	,	मि० विनोद
७९.	सिद्धराम	१ साखी २	१५८२ वि० लग०	मि० विनोद
		शब्द, ३ वैराग्य	,,	,,
		को अंग, ४ योग	,,	,,
		ध्यान को अंग, ५.	,,	,,
		शब्द बावनी	,,	,,
८०.	हरचन्द	अगडदत्त रास	१५८४ वि०	पुरातत्व मन्दिर जयपुर की प्रति
८१.	गणपति	माधवानल प्रबन्ध दोहाबद्ध	,,	हिन्दी साहित्य
८२.	लालचराम हलवाई	भागवत दशम स्कंध भाषा	१५८७ वि०	मि० विनोद एव खोज रिपोर्ट १९२६-२८
		. हरि चरित्र '	,,	मि० विमोद
८३	मोतीलाल	गणेश पुराण भाषा	१५९० वि०	मि० विनोद
८४	सूजाजी	राव जैतसी रो छंद	१५९१-९८ वि०	राज० भाषा और साहित्य
८५.	गुरु अंगद	१ जन्म साखी	१५९६ वि०	१२वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट
		२ पद	१५९६ वि० लग०	मि० विनोद
८६.	जायसी	१-पदमावत,	१५९७ वि०	मि० विनोद
		२ अखरावत		

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
		३. आखिरी-कलाम		मि० विनोद
		४. कहरानामा		१३वी त्रै० वा० खोज रिपोर्ट
८७	कृपाराम	हिततरंगिनी	१५९८ वि०	मि० विनोद
८८	केशवदास ब्रजवासी	भ्रमर बत्तीसी	,,	खोज रिपोर्ट १९०२
८९.	कृष्णदास पयहारी	१-जुगलमान चरित	१५५९-८४ वि०	राज० भाषा और साहित्य
		२-ब्रह्मगीता, ३. प्रेमतत्त्व निरूपण	,, ,,	,,
		४ दानलीला	,,	१३वी त्रै० वा० खोज रिपोर्ट
९०.	देपाल	चन्दन वाला चौपाई	१६वी शती	पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर प्रति
९१.	सूरदास	१ सूरसागर, २ सूरसारावली,	१६०० वि० लग०	मि० विनोद
		३-साहित्यलहरी,	,,	,,
		४ ब्याहलो	,,	,,
		५. नलदमयन्ती	,,	,
		६. गोवर्धन लीला, ७. दशम स्कन्ध टीका, ८. नागलीला, ९ पदसग्रह १० प्याण-प्यारी ११. भागवत, १२. सूरपचीसी, १३ सूरदासजी का पद, १४. सूरसागर सार, १५. एकादशी माहात्म्य, १६. राम-जन्म।	—	खोज मे प्राप्त तथा डा० वर्मा द्वारा उद्धृत (अन्तिम दो ग्रन्थ सूरजदास द्वारा लिखित बताये गये है) पृष्ठ सख्या ५२४-२६।
९२.	कृष्णदास	१. भ्रमर गीत, २. प्रेम-तत्त्व निरूपण, ३. जुगल मान चरित्र, ४. वैष्णव वन्दन	१६०० वि०	हि० सा० का आलो० इतिहास ,,

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार	विशेष
९३	मीराबाई	१-नरसी का मायरा २ गीत गोविन्द की टीका,	१६०० वि० लग०	मि० विनोद	
		३ रागसोरठ के पद,	"	"	
		४ राग गोविन्द ५.	"	"	
		सत्य भाभाजि नू रूसरा	"	राजस्थानी भाषा और साहित्य	
९४.	नरोत्तमदास	१ सुदामाचरित,	१६०२ वि० लग०	मि० विनोद	
		२ ध्रुवचरित ३. बिचार माला	"	"	
९५	सोमविमल	श्रेणिकरास	१६०३ वि०	पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर की प्रति।	
९६	परमानंददास	१ परमानन्द सागर,	१६०६ वि० लग०	मि० विनोद	
		२. ध्रुव चरित्र, ३. पद,	"	"	
		४. दानलीला ५. दधि लीला	" "	१२ वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट	
९७	कुम्भनदास	पद	१६०७ वि० लग०	मि० विनोद	
९८	हरराज	ढोला मारू वानी	१६०७ वि०	मि० विनोद	
९९	हरिराय	वरषोत्सव	१६०७ वि० लग०	मि० विनोद	
१००.	केशवकिशोर	वल्लभ कुल वेलि	१६०७ वि०	जैन गुर्जर कवियों० बड़ौदा	
१०१	अमोलक	स्यानखवास की कथा	१६०३-११ वि०	ना० प्र० त्रै० वा० १३वीं खोज रिपोर्ट।	
१०२.	बलवीर	डगोपर्व	१६०८ वि०	मि० विनोद	
१०३.	गोविन्दराम	हाडावती	१६०९ वि०	मि० विनोद	
१०४.	ईसरदास	सत्यवती कथा	सिकन्दर के रा० काल में	" हिन्दी साहित्य	
१०५.	गो० वनचन्द्र	फुटकर पद	१६१० वि० लग०	मि० विनोद	
१०६	लालदास स्वामी	१. वार्ता, २ .मंगल	"	"	
१०७.	सेवकजी	सेवकवानी	"	"	
१०८.	हरिवंश अलि	हिताष्टक २ भाग	"	"	
१०९	प्रपन्न गेसानद वैष्णव	भक्तिभावनी	१६०९ वि०	मि० विनोद तथा ना० प्र० १४वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट	

क्र० स०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार	विशेष
११०.	विनय समुद्र	सिंहासन बत्तीसी	१६११ वि०	मि० विनोद	
१११.	अज्ञात	वल्लभाख्यान	,,	खोज रिपोर्ट १९१७-१९१९ के अनुसार।	
११२	महीराज	नलदमयन्ती रास	१६१२ वि०	प्रकाशित	
११३.	छीतस्वामी	स्फुट पद	१६१३ वि० लग०	मि० विनोद	
११४.	बिट्ठल विपुल	बानी	१६१५ वि० लग०	मि० विनोद	
११५.	जयवन्त सूरि	नेमि राजुल बारहमास बेलि	,,	जैन गुर्जर कवियो	
११६	सुन्दरदास जैन	हनुमान चरित्र	१६१६ वि०	१२वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट	
११७.	रतन खाती	नरसी मेहता को माहेरौ	,,	राज०पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर की प्रति	
११८.	कुशललाभ	१ माधवानल कामकदला	१६१६ वि०लग०	राज०भाषा और साहित्य	
		२. ढोला मारू री चौपाई	,,	,,	
		३ तेजसार रास, ४ अग-	,,	,,	
		डदत्त चौपाई, ५. पार्श्व	,,	,,	
		नाथ स्तवन, ६. गोडी	,,	,,	
		छन्द, ७. नवकार छन्द	,,	,,	
		८. भवानी छन्द, ९ पूज्य-	,,	,,	
		वाहरण गीत, १० पिंगल	,,	,,	
		सिरोमणि ग्रन्थ, ११.	,,	,,	
		स्थूलिभद्र छत्तीसी	,,	राज०खोज रिपोर्ट भाग ४	
११९.	हरिदास स्वामी	१. बानी, २ साधारण	१६१७ वि० लग०	मि० विनोद	
		सिद्धान्त ३. रस के पद,	,,	,,	
		४. भरथरी वैराग्य, ५	,,	,,	
		पद, ६. केलिमाल, ७	,,	,,	
		हरिदास जू कौ ग्रन्थ	,,	,,	
१२०	ब्रह्मरायमल जैन	१. हनुमत मोक्ष कथा,	१६१६–३० वि०	मि० विनोद	

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
		२. श्रीपाल रासो, ३.	१६३३ वि०	मि० विनोद
		श्रुतिपचमी कथा	१६३३ वि०	१२वीं त्रै वा० खोज रिपोर्ट
१२१.	बन्दन	१ गणेशव्रत कथा,	१६१६ वि० लग०	मि० विनोद
		२ भगवान स्तुति	"	"
१२२	मोहनलाल मिश्र	शृ गार सागर	"	"
१२३	रायमल्ल पांडे	हनुमच्चरित्र	१६१६ वि०	"
१२४	चेतनचन्द्र	अश्वविनोद	"	"
१२५	दयासागर	मदननरिंद चरित	१६१६ वि०	राज०पुरा० मन्दिर जयपुर की प्रति ।
१२६	मनोहर	शत प्रश्नोत्तरी	१६२० वि० लग०	मि० विनोद
१२७	सर्वजीत	विष्णु पद	"	मि० विनोद
१२८	गोविंद स्वामी	स्फुटपद	१६२३ वि० लग०	मि० विनोद
१२९	व्यासजी[1]	१ बानी, २. रागमाला	"	मि० विनोद
		३. रास के पद, ४. ब्रह्म-ज्ञान, ५ मगलाचार पद, ६ साखी	"	"
१३०,	नन्ददास	१ अनेकार्थ नाम माला	"	"
		२. रास पचाध्यायी,	"	"
		३. रुक्मिनी मंगल, ४ हितोपदेश,	"	"
		५. दसम स्कन्ध,	"	"
		६ दानलीला, ७. मानलीला,	"	"
		८ ज्ञानमजरी,	"	"

[1] मिश्रबन्धु विनोद में दो व्यास जी बताये गये है । व्यास जी ओरछा एवं व्यास जी मथुरा । वास्तव में दोनों दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति न होकर एक ही है । व्यास जी की बानी राधावल्लभी सम्प्रदाय वृन्दावन एव अग्रवाल प्रेस मथुरा दो स्थानों से प्रकाशित हो चुकी है । दोनों मे उनके ग्रन्थों की सख्या दो मानी गयी है— १ रागमाला, २. बाणी ।

(विशेष विवरण के लिए देखिये—वासुदेव गोस्वामी द्वारा सम्पादित भक्त कवि व्यास जी पृष्ठ १४५ १४६

क्र० सं० नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
	९ अनेकार्थ मंजरी, १०.	१६२३ वि० लग०	मि० विनोद
	रूप मजरी, ११. नाम	,,	,,
	मजरी, १२. नाम चिन्ता	,,	,,
	मणिमाला, १३. रसमजरी,	,,	,,
	१४ विरहमजरी, १५. नाम	,,	,,
	माला, १६ श्याम सगाई,	,,	,,
	१७. नासिकेतु पुराण,	,,	,,
	१८. भँवरगीत	,,	,,
	१९ सिद्धान्त पचाध्यायी,	,,	हिन्दी साहित्य का इतिहास
	२०. रासलीला, २१. फूल-	,,	खो० रि० १९०६-८,
	मंजरी, २२ रानी मागी,	,,	१९२९-३१
	२३. कृष्ण मगल।	,	खो०रि० १९३५-३७
	२४. रासलीला,	,,	प्रकाशित
	२५ बाँसुरीलीला, २६ अर्थ चन्द्रोदय	,,	डा० माताप्रसाद गुप्त के सूचनानुसार नन्ददास ग्रन्थावली से उद्धृत
१३१, चतुर्भुजदास	१. द्वादश यश, २. भक्ति	१६२५ वि०लग०	मि० विनोद
	प्रताप, ३ हितजू का मगल	,,	,
	४. पद	,,	,,
१३२ कृष्णचन्द्र गो०	सिद्धान्त के पद	१६२६ वि० लग०	,,
१३३. जमाल	जमाल पचीसी	१६२७ वि० लग०	,,
१३४ जल्ह	बुद्धि रासो	,,	राज०भा० और साहित्य
१३५. भगवत रसिक	१ अनन्य निश्चयात्मक,	,,	मि० विनोद
	२ नित्यविहारी युगल ध्यान,	,,	,,
	३. अनन्य रसिका भरण,	,,	,,
	४ निश्चयात्मक ग्रन्थ उत्तरार्द्ध,	,,	,,
	४ निर्बोध मन रजन	,,	,,
१३६ हलधर	१ सुदामा चरित्र	,,	ना० प्र० की प्रति
१३७. नयसुन्दर	शील रक्षा रास	१६२९ वि०	राज० पुरा० मन्दिर, जयपुर की प्रति
१३८. दादूदयाल	१. वानी, २ सबद	१६३० वि०लग०	मि० विनोद
१३९ विहारिनदास	वाणी	..	..

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
१४०	नागरीदास	समय प्रबन्ध दो भाग	१६३० वि०ल०	मि० विनोद
१४१	जैतराम	१. गीता की टीका, २. मील रासा	१६३२ वि० लग०	,,
१४२.	तुलसीदास	१ रामचरितमानस, २.	१६३१ वि०	,,
		पार्वती मगल, ३. कविता-	,,	,
		वली, ४ रामगीतावली,	,,	,,
		५ कृष्ण गीतावली,	,,	,,
		६. विनयपत्रिका,	,,	,
		७ रामलला नहछू, ८ जानकी	,,	,,
		मगल, ९. दोहावली, १० सत-	,,	,,
		सई, ११. बाहुक, १२ बैराग्य	,,	,,
		सदीपिनी, १३ रामाज्ञा, १४	,,	,,
		बरवै रामायण, १५. सकट	,,	,,
		मोचन, १६. कुण्डलिया	,,	,,
		रामायण, १७ रामायण	,,	,,
		छन्दावली, १८, छप्पय रामायण,	,,	,
		१९. कलिधर्म निरूपण,	,,	,,
		२० अकावली, २१ ध्रुव प्रश्ना-	,,	,,
		वली, २२. पदावली रामायण,	,,	,,
		२३ करखा रामायण, २४. रोला	,,	,,
		रामायण, २५ झूलना रामायण,	,,	,,
		२६ रामशलाका, २७. तुलसीदास	,,	,,
		की बानी, २८. ज्ञान को परिकरण,	,,	,,
		२९. मगल रामायण, ३० गीता	,,	,,
		भाषा, ३१ सूर्यपुराण, ३२ राम	,,	,,
		मुक्तावली, ३३ ज्ञान दीपिका,	,,	,,
		३४ स्वयंवर, ३५. रामगीता,	,,	,,
		३६ हनुमान चालीसा, ३७. कृष्ण	,,	,,
		चरित्र, ३८ सुगुनावली,	,,	,,
		३९ भँवरगीत ४० हनुमानस्तुति	,,	ना०प्र० १२वीं त्रै०वा०
		४१ सप्तक ४२ सतपच चौपाई		खोज रिपोट

क्र० सं०	कवि का नाम	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
		४३ शबरीमंगल,	१६३१ वि०	ना०प्र० सभा काशी की
		४४ बारहमासी	"	प्रतियाँ।
१४३.	बिहारीवल्लभ	१ भगवत रसिक जू की	१६३२ वि०लग०	मि० विनोद
		कथा, २. बानी	"	"
१४४.	जयचन्द	नासिकेत पुराण	१६३२ वि०	ना० प्र० १३वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट।
१४५.	गदाधर भट्ट	१ बाणी,	१६३२ वि०लग०	मि० विनोद तथा ना०प्र०
		२. ध्यान लीला	"	खोज रिपोर्ट १९१२-१४ ई०
१४६	अग्रदास	१. रामभजन मंजरी,	"	मि० विनोद
		२. हितोपदेश उपाख्यान	"	"
		बावनी (कुण्डलिया[1]), ३.	"	"
		पद, ४. राम चरित्र के पद,	"	"
		५. रामाष्टक, ६. छप्पय,	"	ना०प्र० सभा काशी की प्रतियाँ
		७. ध्यान मंजरी	"	राज० पिंगल साहित्य
१४७.	देवीदास	सिंहासन बत्तीसी	१६३३ वि०	राज० खोज रिपोर्ट भाग ३।
१४८	अज्ञात	कुतुबशतक	लिपि १६३३वि०	हि० सा० आलो० इतिहास
१४९.	बोधा	१ बाग वर्णन, २. बारहमासी,	१६३६ वि०ल०	ना० प्र० १५वीं त्रै०
		३. फूलमाला, ४. पक्षी	"	वा० खोज रिपोर्ट
		मंजरी, ५. पशुजाति नायक-	"	"
		नायिका कथन	"	"
१५०.	हीरकलश	सिंहासन बत्तीसी चरित चौ०	१६३६ वि०	राज०भाषा और साहित्य
१५१	करनेश बंदिजन	१. कर्ण भरण,	१६३७ वि०लग०	मि० विनोद
		२. कर्ण भूषण, ३. भूप भूषण	"	"
१५२.	मुनिलाल	रामप्रकाश	"	"
१५३.	गोपीनाथ	भागवत दशम पूर्वार्द्ध	१६३९ वि०	ना०प्र० १४वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट
१५४.	तखतमल्ल	श्री कन्कुण्ड की चौपाई	१६३९ वि०लग०	मि० विनोद
१५५.	बलभद्र	१. नखशिख, २ भागवत	१६४० वि०लग०	"
		भाष्य, ३. दूषण विचार,	"	"

[1] नागरी प्रचारिणी १३वीं त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट के आधार पर कुण्डलियाँ एवं हितोपदेश उपाख्यान बावनी दो ग्रन्थ न होकर एक ग्रन्थ के दो नाम है।

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
		४. रसविलास	”	ना०प्र० सभा काशी की प्रति
		५ हनुमान नाटक	’	हि० सा० का इतिहास
१५६.	तानसेन	१. संगीतसार, २ रागमाला,	”	मि० विनोद
		३ गणेश स्तोत्र	”	”
१५७.	टोडरमल	स्फुट पद	”	”
१५८.	बीरबल	स्फुट छन्द	”	”
१५९.	होलराय	स्फुट छन्द	१६४० वि० लग०	”
२६०	सूरजदास मदनमोहन	स्फुट पद	”	”
१६१.	नारायणदास	हितोपदेश भाषा	१६४० वि० लग०	”
१६२	निपटनिरंजन[1]	१. सन्तसरसी,	”	”
		२. निरंजन संग्रह	”	”
१६३.	आलम	१. माधवानल कामकंदला,	९९१ हिजरी	”
		२. छप्पय, ३. कवित्त,	१६४० वि० लग०	”
		४. श्यामसनेही या रुक्मिणी ब्याहलो	”	१५वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट
		५. सुदामा चरित[2]	”	ना०प्र० सभा काशी की प्रति
१६४.	गोविन्ददास	एकान्त पद	१६४० वि० लग०	हि० सा० आलो० इतिहास
१६५	अमृतराय	महाभारत भाषा	१६४१ वि० लग०	मि० विनोद
१६६	हरिशंकर द्विज	गणेशजी की कथा चारि युग की (संकट व्रत कथा)	”	”
१६७.	राजपाल	जम्बू स्वामी रास	१६४२ वि०	राज० पुरा०मन्दिर जयपुर की प्रति
१६८.	जिनदास पांडे	१ जम्बू चरित्र, २ ज्ञान स्वरोदय, ३ स्फुट कवित्त	१६४२ वि०लग०	मि० विनोद

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार इनका जन्म १५९६ वि० है, हि० साहित्य पृष्ठ २०२।

[2] ना० प्रचारिणी सभा काशी की १५वीं खोज रिपोर्ट में इसे दूसरे आलम की कृति माना गया है, जिनका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है। यह खड़ी बोली में है। यह इनकी रचना नहीं मानी जानी चाहिए।

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
१६९.	लालदास बनिया	१. इतिहास भाषा, (महाभारत इतिहासकार)	१६४३ वि०लग०	मि० विनोद
		२ बलिवामन की कथा,	,,	,,
		३. मानसी तीर्थ माहात्म्य	,,	ना०प्र० १३वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट
१७०	कल्याणदेव जैन	हंसराज वच्छराज चौपाई	१६४३ वि०	मि० विनोद
१७१.	पृथ्वीराज राठौर	१. वेलिकृषन रुकिमनी री,	१६४४ वि०ल०	राज० भाषा और साहित्य
		२. दशम भागवत रा दूहा,	,,	,,
		३, दशरथरावउत, ४. बसदेव रावउत,	,,	,,
		५. गंगालहरी	,,	,,
१७२	कनकसोम	आर्द्रकुमार धवल	१६४४ वि०	पुरा० मन्दिर जयपुर की प्रति
		आसाढ भूत चौपाई	१६३८ वि०	ना० प्र० १८वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट
१७३.	विजय सूरि	नेमिनाथ शीलरास	,,	,,
१७४	गोपाल लाहौरी	रसविलास	१६४४ वि०	राज० खोज रिपोर्ट भाग २
१७५	आशानन्द	१ लक्ष्मणायण, २. निरंजन पुराण, ३. गोगा-जीरी पेडी, ४. बाघा रा दूहा, ५ उमादे भटियारी रा कवित्त, ६. फुटकर गीत	१६४४ वि०ल०	राज० भाषा और साहित्य
१७६.	गणेश मिश्र	विक्रम विलास	१६४५ वि०	हि०सा० आलो० इतिहास
१७७.	गुरु अर्जुन	सुखमनी	१६५० से पूर्व	ना०प्र० १४वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट
१७८.	हेमरतन	गोराबादल पद्मिनी चौ०	१६४५ वि०	ना०प्र० सभा काशी की प्रति
१७९.	अज्ञात	भागवत दशम स्कन्ध श्रीधरी टीका	१६४७ वि०	राज० पुरा० मन्दिर जयपुर की प्रति
१८०.	नैनसुख वैद्य	मनोत्सव	१६४९ वि०	मि० विनोद
१८१	दुरसाचारण	प्रताप चौहत्तरी (विरुदछिहत्तरी) २. किरतार बावनी, ३. श्रीकुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजमत।	१६५० वि०	राज० भाषा और साहित्य

क्र० सं०	कवि का नाम	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
१८२.	झूठा स्वामी	पद्यावली	१६५० वि०	मि० विनोद
१८३	चिन्तामणि त्रिपाठी	१. पिंगल,	”	”
		२. कविकुल कल्पतरु	”	”
१८४	अनन्तदास	१. सेउसमन की परची,	१६५० वि० लग०	मि० विनोद
		२ नामदेवजी की परची,	”	”
		३. त्रिलोचन की परची,	”	”
		४ धनाजी की परची,	”	”
		५. कबीर की परची, ६.	”	”
		रैदास की परची, ७. रका-	”	”
		वका की परची, ८. पीपा	”	”
		की परची,	”	”
		९. मोह विवेक ग्रन्थ	”	ना०प्र० सभा काशी की प्रति
१८५	नागरीदास	बानी	”	बृन्दावन मे प्राप्त प्रति
१८६.	दामोदरचन्द्र गो०	१. समय प्रबन्ध,	”	मि० विनोद
		२. हस्तामलक,	”	”
		३. स्फुट पद	”	”
१८७.	रहीम	१. रहीम सतसई, २. बरवै	”	”
		नायिका भेद, ३ रास पचा-	”	”
		ध्यायी, ४. मदनाष्टक,	”	”
		५. शृंगार सोरठा, ६ नगर	”	”
		शोभा वर्णन।	”	”
१८८.	ईसरदास बारहट	१. हरिरस, २. हालाँ	”	राज० भाषा और साहित्य
		झालाँ रा कुण्डलियाँ,	”	”
		३. छोटा हरिरस, ४. बाल	”	”
		लीला, ५. गुण भागवत हंस,	”	”
		६. गरुड़ पुराण, ७. गुण	”	”
		आगम, ८. निन्दा स्तुति,	”	”
		९. देवयाणी, १०. वैराट,	”	”
		११. रास कैलास,	”	”
		१२ सभा पर्व	”	”
१८९.	नरहरि बन्दीजन	१. कवित्त, २. छप्पय	”	हिन्दी साहित्य
		३. रुक्मिणी मगल	”	”

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
१९०.	परमलदास	श्रीपाल चरित्र	१६५१ वि०	ना० प्र० १४वीं त्रै० वार्षिक खोज रिपोर्ट
१९१	केशवदास	१. रसिकप्रिया,	१६४८	हिन्दी साहित्य
		२. कविप्रिया,	१६५८	"
		३. रामचन्द्रिका,	"	"
		४. वीरसिंह देव चरित्र,	१६६४	"
		५ विज्ञान गीता,	१६६७	"
		६. जहाँगीर जसचन्द्रिका	१६६९	"
		७. नखशिख, ८. रतन	—	मि० विनोद
		बावनी, ९. बारहमासा	—	ना०प्र० १३वीं त्रै०वा० खोज रिपोर्ट
१९२	हरिराम	१. छन्द रत्नावली,	१६५१	मि० विनोद
		२. जानकी रामचरित्र नाटक	१६५१ वि० लग०	"
१९३	शुक्र	सकट चौथ की कथा	१६५१ वि०	"
१९४.	जगजीवनदास	वाणी	१६५१वि०लग०	राज०भाषा और साहित्य
१९५.	अज्ञात	नेमिनाथ के रेखने	१६५२ वि०	ना०प्र० सभा काशी की प्रति
१९६.	दुर्गादास	समीधर स्वामी स्तवन	"	"
१९७	श्री भट्ट	आदिवाणी (युगलसत)	१६५२ वि०	वृन्दावन की प्रति
१९८.	लछीराम	१. योग सुधानिधि,	१६५७ वि० लग०	मि० विनोद
		२ करुणाभरण नाटक,	"	"
		३ ज्ञानानन्द नाटक,	"	राज० खोज रिपोर्ट भाग २
		४ ब्रह्मा नन्दनीय, ५.	"	"
		विवेकसार ज्ञान कहानी,	"	"
		६. ब्रह्मतरंग	"	"
१९९	जनगोपाल	१. ध्रुव चरित्र,	"	मि० विनोद
		२ भरथरी चरित्र	"	"
		३. प्रह्लाद चरित्र	"	ब्रज साहित्य मण्डल की प्रति
		४. जडभरत चरित्र,	"	ना०प्र० सभा काशी की प्रतियाँ
		५ गुरु २४ लीला, ६ मोह-	"	"
		मर्द राजा की कथा,	"	"
		७. मोह विवेक सम्वाद,	"	"

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
		८. शुक सम्वाद, ९. अनन्त लीला, १०. बारह मासिया,	१६५७ वि०ल०	राज० भाषा और साहित्य
		११ साखी, १२. पद, १३. दादू जन्म लीला परची	"	"
२००.	बालकृष्ण त्रिपाठी	रसचन्द्रिका	१६५७ वि०	मि० विनोद
२०१	गग	१. कवित्त	१६५७ वि० लग०	मि० विनोद
		२. पदावली	"	अकबरी दरबार के हिन्दी कवि
२०२	विजयदेव सूरि	श्री शील रास	१६५७ वि०	मि० विनोद
२०३.	लक्ष्मीनारायण मैथिल	१ प्रेम तरगिनी, २. हनुमान जी का तमाचा	१६५७ वि०लग०	"
२०४	अज्ञात	रूपावती	१६५७ वि०	राज० खोज रिपोर्ट भाग २
२०५	खेमजी ब्रजवासी	चितवनी	१६५० वि०लग०	मि० विनोद
२०६.	कादिर	१. स्फुट पद	"	"
		२. इश्क पचीसी	"	श्री उदयशकर शास्त्री द्वारा ब्रजभारती मे प्रकाशित।
२०७.	अमरेश	पद	"	मि० विनोद
२०८.	प्रवीन	सार सग्रह	"	"
२०९.	गदाधर जी	स्फुट पद	"	"
२१०.	घनश्याम शुक्ल	१. साँझी, २ मानसपुर पद्यावली	"	"
२११	पीताम्बरदास स्वामी	१ बानी	"	"
		२. हरिदास के पदो की टीका	"	ना०प्र० १२वी त्रै० वा०
		३. समय प्रबन्ध (२)	"	खोज रिपोर्ट
२१२.	आनन्द कायस्थ	१. कोक मजरी	१६६० वि०	मि० विनोद
		२ वचन विनोद	१६७६ वि०	राज० खोज रिपोर्ट भाग २
२१३.	हरिरामदास	प्राचीन बानी	१६६० वि०	मि० विनोद
२१४.	हरिव्यास देव	महावाणी	१६२० वि०लग०	बृन्दावन मे प्राप्त प्रति
२१५.	माधोदास	सन्तगुणसागर सिद्धान्त	१६६१ वि०	राज० भाषा और साहित्य
२१६.	ऋषभदास जैन	१ श्रेणिक रा, २. रोहिणी रास ३ कुमारपाल रास	१६६२ वि०लग०	मि० विनोद
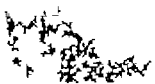
क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
२१७	जिनदास	जम्बू स्वामी की कथा	१६६३ वि	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति
२१८.	नन्द या नन्दलाल	१. सुदर्शन चरित्र	"	ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५७
		२ यशोधर चरित्र	१६७० वि०	अंक १, हिन्दी हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज
२१९	दादू पिंजारा	१ विचार सागर	१६६३ वि० लग०	मि० विनोद
		२ स्फुट रचना	"	"
२२०	रायमल्ल ब्रह्मचारी	१. भविष्यदत्त चरित्र,	१६६४ वि० ल०	"
		२. सीता चरित्र	"	"
२२१.	धर्मदास	१ महाभारत (द्रोणपर्व)	१६६४ वि०	"
		२ भीष्म पर्व,	१६६६ वि०	ना० प्र० खोज रिपोर्ट
		३. डंगौ पर्व	"	१९२०-२२
२२२.	बखनाजी	वाणी	१६४०-७० वि०	राज० भाषा और साहित्य
२२३.	गरीबदास	वाणी	जन्म १६३२ वि०	"
२२४	जगन्नाथदास	१. वाणी,	१६६४ वि०ल०	ना०प्र० १६वीं त्रै० वा०
		२. गुणगजनामा,	"	खोज रिपोर्ट
		३. गीतासार,	"	ग्रन्थ सं० ४ विनोद के
		४. योगवशिष्टसार		आधार पर
२२५.	नयसुन्दर	नलायनो उद्धार	१६६५ वि०	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति
२२६.	मोहन माथुर	१. अष्टावक्र	१६६५ वि०	मि० विनोद
		२. कपोत लीला	१६६७ वि०	ना०प्र० १२वीं त्रै०वा० खोज रि०
		३. केलि कल्लोल	"	ना०प्र०खोज रि० १९१७-१९ई०
२२७.	रघुनाथ ब्राह्मण	१ रघुनाथ विलास	१६६६वि०	मि० विनोद
		२. रस मंजरी	—	ना०प्र० १३वीं त्रै०वा० खो० रि०
२२८.	रूपचन्द	१. परमार्थी दोहा शतक	१६६६ वि० ल०	मि० विनोद
		२. गीत परमार्थी	"	"
२२९.	हरखचन्द	१. पुण्यसार	१६६६ वि०	"
२३०.	प्राणचन्द	रामायण नाटक	१६६७ वि०	"
२३१.	भूपति (इटावा)	भागवत दशमस्कन्ध	"	ना०प्र० १२वीं त्रै० वार्षिक खोज रिपोर्ट
२३२.	कृष्णदास	दानशील तप भावना रास	१६६६ वि०	राज०खोज रिपोर्ट भाग ४
२३३	पदम भगत	रुक्मिणी को व्याहलो	--	मि० विनोद

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
२३४.	विद्याकमल	भगवती गीत	१६६६ वि० ल०	मि० विनोद
२३५.	मुनि लावण्य	रावण मन्दोदरी संवाद	"	"
२३६.	सायांजी	१. रुक्मिणी हरण	१६६०-७० वि०	राज० भाषा और
		२. नागदमण	"	साहित्य
२३७	रज्जब जी	१. वाणी, २. सर्वंगी	—	"
२३८	काशीराम	१. लग्न सुन्दरी,	१६७० वि० लग०	ना०प्र० १५वीं त्रै० वा०
		२. जैमिनी सूत्राणि (सटीक)	"	खोज रिपोर्ट
२३९.	रसखान	१ प्रेमवाटिका,	१६७० वि०लग०	मि० विनोद
		२ सुजान रसखान	"	"
२४०.	नाभादास	१. भक्तमाल, २. अष्टयाम	"	"
२४१.	मुबारक	१. तिल शतक, २. अलक शतक	"	"
२४२.	उसमान	चित्रावली	१६७० वि०	"
२४३.	बनारसीदास	१ अर्द्ध कथानक,	१६७० वि० लग०	"
		२. बनारसी विलास,	"	"
		३. नाममाला, ४ नाटक	"	"
		समय सार, ५. बनारसी	"	"
		पद्धति, ६. कल्याण मंदिर,	"	"
		भाषा, ७. मारगन विद्या,	"	"
		८ मोक्षपैडी, ९ वेद	१६८६ वि०	ना०प्र० १३वीं त्रै० वा०
		निर्णय पचासिका,	"	खोज रिपोर्ट
		१०. सवैया बावनी	"	"
२४४.	ब्रह्म गुलाल	कृपन जगबानिक की कथा	१६७१ वि०	ना०प्र० १५वीं त्रै० वा० खोज रिपोर्ट
२४५.	गंगादास	भीष्म पर्व	"	राज० चतुर्थ खोज रिपोर्ट
२४६.	सारंगधर	भाव शतक	१६७२ वि०	"
२४७.	मालदेव	१. पुरन्दरकुमार कथा,	"	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति
		२. गजसिंह कुमार कथा	"	"
२४८.	मुकुन्ददास	कोकभाषा	१६७३ वि०	मि० विनोद
२४९.	चेतराम	ढोलामारू की कथा	"	"
२५०.	समय प्रमोद	चउपरवी चौपाई	"	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति
२५१	हेमरतन	लीलावती चौपाई		"

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार	विशेष
२५२.	श्रीलालजी	भागवत दशम स्कन्ध	१६७४ वि०	ना० प्र० १५वीं त्रै० वार्षिक खोज रिपोर्ट	
२५३.	बान कवि	कलि चरित्र	"	मि० विनोद	
२५४.	लक्ष्मीधर त्रिपाठी	साठिक फल	"	ना०प्र० खो०रि० १६२०-२२ई०	
२५५	पुहकर	रसरतन	१६७५ वि०	ना० प्र० सभा काशी की प्रति	
२५६.	भद्रसेन	चन्दन मलयागिरि री वात	"	राज० भाषा और साहित्य	
२५७.	मान कवि	हंसराज बच्छराज रास	"	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति	
२५८.	रतन विमल	अमरतेज राजा धर्मबुद्धि मन्त्री रास	"	"	
२५९.	गुण सूरि जैन	ढाल सागर	१६७६ वि०	मि० विनोद	
२६०.	शेखनबी	ज्ञानदीप	"	"	
२६१.	समय सुन्दर	१. शत्रुंजय रास,	१६७२ से	"	
		२. साब प्रद्युम्न रास	१७०० वि०	"	
		३. प्रिय मेलक चौपाई,	"	"	
		४. पोषह विधि चौपाई,	"	"	
		५. जिनदत्तर्षि कथा,	"	"	
		६. प्रत्येक बुद्धि चौपाई,	१७००	"	
		७. करकंडु चौपाई,	"	"	
		८. नलदमयन्ती चौपाई,	१६७३	"	
		९. वल्कल चीरी चौपाई,	"	"	
		१०. धनदत्त चौपाई,	"	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति	
		११. मृगावती चौपाई,	१६६०	"	
		१२. सीताराम चौपाई,	"	"	
		१३ दानशील तप भाव रास	"	"	
		१४. क्षमा छत्तीसी,	"	ना०प्र० पत्रिका वर्ष ५७, अंक १	
		१५. कर्म छत्तीसी,	१६६८	'कवि समय सुन्दर' नाहटा जी का लेख	
		१६. पुण्य छत्तीसी,	१६६९	"	
		१७. सन्तोष छत्तीसी,		"	
		१८. दुष्काल वर्णन छत्तीसी	१६८८	"	
		१९. सवैया छत्तीसी,	१६९०	"	
		२०. आलोयणा छत्तीसी	१६९८		

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार	विशेष
		२१. विरहमान बीसी स्तवन		,,	
		२२. ऐरवत क्षेत्र चौबीसी		,,	
२६२.	जान कवि	१. क्यामखाँ रासा,	१६९१	राज० भाषा और साहित्य	
		२. अलिफखाँ की पैड़ी,	१६८३	,,	
		३. सतवन्ती री बात,	,,	,,	
		४. रस कोष	१६७६	,,	
		५. वैदिक मति	१६९५	,,	
		६. पाहन परीक्षा,	१६९१	,,	
		७ कथा मोहिनी,	१६९४	,,	
		८ बुद्ध सागर,	१६९५	,,	
		९. ज्ञानदीप,	१६८६	,,	
		१०. शिक्षा सागर,	१६९५	,,	
		११. मदन विनोद[1]	१६९०	,,	
		१२ नाममाला	—	,,	
१६३.	बलराम	झूलना	१६७६ वि०	ना०प्र० त्रि०त्रै० वार्षिक खोज रिपोर्ट	
२६४.	परशुराम	१. साखी का जोड़ा,	१६७७ वि०लग०	राज० भाषा और साहित्य	
		२ छन्द का जोड़ा, ३ सवैया	,,	तथा बृन्दावन में प्राप्त	
		दस अवतार का, ४ रघुनाथ	,,	परशुराम सागर की हस्त-	
		चरित, ५. श्रीकृष्ण चरित,	,,	लिखित प्रति।	
		६ सिंगार सुदामा चरित,	,,	,,	
		७. द्रौपदी का जोड़ा,	,,	,,	
		८. छप्पय गज ग्राह को,	,,	,,	
		९ प्रह्लाद चरित, १०. अमर	,,	,,	
		बोध लीला, ११. नाम निधि	,,	,,	
		लीला, १२. शौच-निषेध	,,	,,	
		लीला, १३ नाथ-लीला,	,,	,,	

[1] जान कवि कृत ७५ ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इनका रचनाकाल आलोच्य काल के बहुत बाद तक का है। यहाँ उनकी उन्हीं रचनाओं का उल्लेख किया गया है जिनका रचनाकाल ज्ञात है और विक्रम की १७वीं शताब्दी के अन्तर्गत रचे गये। रचनाकाल के लिये राजस्थानी खोज रिपोर्टों को आधार माना गया है

क्र० स०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
		१४. निजरूप लीला,	१७७७ वि०	,,
		१५. श्री हरि लीला, १६ श्री	,,	,,
		निर्वाण लीला, १७. समझणी	,,	,,
		लीला, १८ तिथि लीला,	,,	,,
		१६. वार लीला, २०	,,	,,
		नक्षत्र लीला, २१. श्री	,,	,,
		बावनी लीला, २२. विप्र-	,,	,,
		मती (१६७७ वि०),	,,	,,
		२३. पद ।	,,	,,
(क) २६५	दयालदास	१ राणारासौ,	१६७७ से पूर्व	मि० विनोद
		२ अकल को अग,	,,	,,
		३ रासो को अंग	,,	,,
(ख) २६५	गुण सागर पृथ्वीचन्द कुमार	रास (गुण सागर रास)	लि० १६७७ वि०	राज० पुरा०मन्दिर की प्रति
२६६	अरुभद्र	कोक सामुद्रिक	१६७८ वि०	ना०प्र० १४वीं त्रै० वार्षिक खोज रिपोर्ट
२६७.	माऊ कवि	आदित्यवार कथा	,,	,,
२६८.	सुन्दरदास दादू पंथी	१ सुन्दर विलास,	१६७० वि० से बहुत बाद तक	सुन्दर ग्रन्थावली २ भाग
		२ सर्वांगयोग प्रदीपिका	,,	
		३ पचेन्द्रिय चरित्र,	१६६१	,,
		४. सुख समाधि, ५ स्वप्न	,,	,,
		प्रबोध, ६. वेद विचार,	,,	,,
		७. उक्ति अनूप, ८. अद्भुत	,,	,,
		उपदेश, ६ पच प्रभाव,	,,	,,
		१० गुरु सम्प्रदाय, ११.	,,	,,
		गुन उत्पत्ति नीसांणी,	,,	,,
		१२. सद्गुरु महिमा नीसाणी,	,,	,,
		१३ बावनी,	,,	,,
		१४ गुरुदया षटपदी, १५	,,	,,
		भ्रमविध्वंशाष्टक, १६ गुरु	,,	,,
		कृष्ण अष्टक, १७. गुरु उपदेश	,,	,,
		ज्ञानाष्टक. १८. गुरु महिमा	,,	,,

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
		स्त्रोत अष्टक, १६ राम	१६७७ वि०	"
		अष्टक, २०. नाम अष्टक,	"	"
		२१. आत्मा अचल अष्टक,	"	"
		२२ पंजाबी भाषा अष्टक,	"	"
		२३ ब्रह्मस्तोत्राष्टक, २४.	"	"
		पीर मुरीदाष्टक, २५. अजब	"	"
		ख्याल अष्टक, २६ ज्ञान	"	"
		झूलना अष्टक, २७ सहजा-	"	"
		नन्द ग्रन्थ, २८ गृह वैराग्य	"	"
		बोध ग्रन्थ, २९. हरिबोल	"	"
		चितावनी, ३० तर्क चिना-	"	"
		वनी, ३१ पवगम छन्द ग्रन्थ	"	"
		३२. अडिल्ला छन्द ग्रन्थ,	"	"
		३३ बारहमासी, ३४	"	"
		आयुर्बल भेद आत्मा विचार,	"	"
		३५. त्रिविधि अन्त.करण भेद,	"	"
		३६. पूर्वी भाषा बरवै ग्रन्थ,	"	"
		३७. सवैया	"	"
		३८. सुन्दर सांख्य,	(१६७७वि०)	मि० विनोद
२६९.	अहमद	१ स्फुट काव्य,	१६९६ वि०	"
		२ सामुद्रिक,	१६२८ मे वर्त्तमान	ना० प्र० १५वी त्रै०
		३ बारहमासी,		वार्षिक खोज रिपोर्ट
		४. कोकशास्त्र (रति विनोद) —		ना०प्र० सभा काशी की प्रति
		५. गुन सागर	१६४८ वि०	ना०प्र० ११वी त्रै० वार्षिक खोज रिपोर्ट
२७०.	ताहर	१ कोकशास्त्र	१६७८ वि०	मि० विनोद
		२. मुक्ति विलास	"	ना० प्र० सभा काशी की प्रति
२७१.	रतनेश	कान्ता भूषण	"	ना०प्र० ११वी त्रै० वा० खो० रि०[1]
२७२.	मतिसार	शालिभद्र चौपाई	"	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति

[1] कान्ताभूषण का रचनाकाल मिश्र बन्धु विनोद के आधार पर दिया गया है ।

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
२७३	सरसदास	बानी	१६८० वि०ल०[1]	ना०प्र० १२वी त्रै०वा०खो०रि०
२७४	पूरन कवि	जैमिनि पुराण	१६७६ वि०	,, १५वी ,,
२७५	शिरोमणि मिश्र	नाममाला	१६८० वि०	,, ११वी ,,
२७६	तत्त्ववेत्ता	१ वाणी,	१६८० वि० ल०	राज० पिंगल साहित्य
		२. छप्पय	,,	,,
२७७.	व्रजपति भट्ट	रंगभाव माधुरी	१६८० वि०	ना०प्र० खो० रि० १९१२ १४
२७८.	माधौदास चारण	१ रामायण रासो (राम रासो),	१६८० वि०ल०	मि० विनोद
		२ स्फुट पद,	,,	,,
		३. अध्यात्म रामायण	१५८० वि०	रा०खो० रिपोर्ट भाग ४
		४. भाषा दशमस्कन्ध (अप्राप्त)		राज० भाषा और साहित्य
२७९.	सन्तदास व्रजवासी	१ शब्दावली,	१६८० वि०	मि० विनोद
		२. बाराखडी	,,	,,
२८०	हृदयराम	१. हनुमान नाटक	,,	,,
		२ बलिचरित्र	,,	,,
२८१	घासीराम	पक्षी विलास	१८०६ वि० लग०	,,
२८२	केशवदास चारण	१ गुणरूपक,	१६८१ वि०ल०	रा० भाषा और साहित्य
		२ राव अमरसिहजी रा दूहा,	,,	,,
		३ विवेक वार्त्ता	,,	,,
२८३	बल्लभद्रदास साधु	१. सेवक बानी को सिद्धान्त,	१६८१ वि० ल०	मि० विनोद
		२. स्फुट पद	,,	,,
२८४	काशीराम	कनक मजरी	१६८०-८४ वि०	,,
२८५	सकलचन्द	शत्रुंजय रास	१६८२ वि०	ना०प्र० सभा काशी की प्रति
२८६	ध्रुवदास	ब्यालीस लीला १. जीव दशा लीला,	१६८२ वि०ल०	बृन्दावन की प्रकाशित प्रति
		२ वैद्यक ज्ञान लीला,	,,	,,
		३ मन शिक्षा,	,,	,,
		४ बृन्दावन सत, ५ ख्याल-	,,	,,

[1] मिश्रबन्धु विनोद के अनुसार इनका रचनाकाल १७२० विक्रमी है। याज्ञिक त्रय इनकी मृत्यु १६८३ वि० मानते हैं। ना० प्र० की १२वी खोज रिपोर्ट मे प्राप्त प्रति के आधार पर रचनाकाल विक्रम की १५वीं शताब्दी है। यह हरिदास के शिष्य थे और सम्प्रदाय के भक्तो के मतानुसार इनका रचनाकाल विक्रम की १७वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

क्र० स०	कवि का नाम	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
		हुलास लीला, ६ भक्त नामा-	,,	,,
		वली, ७ बृहद बामन पुराण	,,	,,
		की भाषा, ८ सिद्धान्त	,,	,,
		विचार, ९ प्रीति चौबनी,	,,	,,
		१०. आनन्दाष्टक, ११	,,	,,
		भजनाष्टक, १२. भजन कुण्ड-	,,	,,
		लियाँ, १३ भजन सत लीला,	,,	,,
		१४ भजन शृ गार सत	,,	,,
		लीला, १५. मन शृ गार	,,	,,
		लीला, १६ श्रीहित शृ गार	,,	,,
		लीला, १७ सभा मडल	,,	,,
		लीला, १८. रसमुक्तावली,	,,	,,
		१९ रस हीरावली, २०. रस	,,	,,
		रतनावली, २१. प्रेमावली,	,,	,,
		२२ श्री प्रियाजी की नामा-	,,	,,
		वली, २३. रहस्य मजरी,	,,	,,
		२४. सुख मजरी, २५. रति	,,	,,
		मजरी, २६ नेह मजरी,	,,	,,
		२७. बनविहार लीला, २८	,,	,,
		आनन्द लता लीला, २९.	,,	,,
		अनुराग लता लीला, ३०	,,	,,
		प्रेमलता लीला, ३१ रसानन्द	,,	,,
		लीला, ३२ श्रीब्रज लीला,	,,	,,
		३३. श्री युगल ध्यान लीला,	,,	,,
		३४ निर्त्त बिलास लीला,	,,	,,
		३५. मानलीला, ३६	,,	बृन्दावन की प्रकाशित
		दानलीला, ३७. श्रीपियाजी	,,	प्रति
		की नामावली, ३८. श्री लाल	,,	,,
		जी की नामावली, ३९	,,	,,
		शृ गार समय स्नान के पद,	,,	,,
		४० उत्थापन समय,	,,	,,
		४१. बन विहार समय	,,	,,

क्र० सं०	नामकवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
		४२. ब्याहुलो	"	"
२८७.	वैरागी नारायण	नलदमयन्ती आख्यान	१६८२ वि०	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति
२८८.	भीषजन	१ सर्वज्ञ बावनी,	१६८३ वि०	ना०प्र० १४वीं त्रै० वार्षिक खोज रिपोर्ट
		२ भारती नाममाला,	१६८५ वि०	राज०खोज रि० भाग २
		३. बाराखडी	१६८३ वि०	ना०प्र० सभा काशी की प्रति
२८९.	इच्छाराम	गोविन्द चन्द्रिका	१६८४ वि०	ना०प्र० १४वीं खोज रिपोर्ट
२९०	मस्तराम	रामाश्वमेध	—	" १५वीं "
२९१.	श्रीसार	आणंद सन्धि	१६८४ वि०	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति
२९२.	हेमचन्द्र	१ नयचक्र, २ भक्त स्तोत्र भाषा,	१६८४ वि० लग०	मि० विनोद
			"	"
		३ पचशिका वचनिका	"	"
२९३	चतुर्भुजदास	१ वानी, २ धर्म विचार	"	"
		३, भक्त प्रताप, ४. सन्त	"	"
		प्रताप, ५ सिच्छासार,	"	"
		६ हितउपदेश, ७. पतित-	"	"
		पावन, ८. मोहनीजस,	"	"
		९. अनन्यभजन, १०. राधा	"	"
		प्रताप, ११. मंगलसार,	"	"
		१२. बिमुल मुख भजन,	"	"
		१३ द्वादश यश (१६८६),	"	बृन्दावन मे प्राप्त प्रतियाँ
		१४ पद, १५. हितजू का मगल	"	"
२९४.	मलूकदास	१ भक्तवछल, २ रतनखान,	१६८५ वि०लग०	मि० विनोद
		३ ज्ञानबोध, ४ मलूक रामायण	"	"
२९५	खरगसेन कायस्थ	१. दान लीला,	"	"
		२. दीपमालिका चरित्र	"	"
२९६.	छेमराम	फतह प्रकाश	१६८५ वि०	"
२९७.	बालचन्द	बत्तीसी	"	राज० खो० रिपोर्ट भाग ४
२९८-	अज्ञात	बृन्दावन स्तवन	१६८६ वि०	मि० विनोद

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार	विशेष
२९९.	हीरामनि	१ एकादशी माहात्म्य		ना०प्र० १२वीं खोज रिपोर्ट	
		२. रुक्मिणी मंगल		" १४वीं "	
३००.	बेनीमाधवदास	गुसांई चरित	१६८७ वि०लग०	मि० विनोद	
३०१.	मुनि केशराज	रामरसायन (राम रासो)	"	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति	
३०२,	रसराम	मददीपिका	"	मि० विनोद	
३०३.	कवीन्द्राचार्य	१. कवीन्द्र कल्पलता,	१६८७ वि०ल०	"	
	सरस्वती	२ समर सार,	"	"	
		३ योगवशिष्ट सार[1]	"	"	
३०४.	दामोदर स्वामी	१ नेमबत्तीसी, २. रेखता	"	"	
		३. भक्ति सिद्धान्त, ४ रहस्य	"	"	
		विलास, ५. स्वगुरु प्रताप,	"	"	
		६ जजमान कन्हाई जस,	"	"	
		७ रस लीला, ८ गुरु प्रताप	"	"	
		लीला, ९ बसन्त लीला,	"	"	
		१०. पद, ११, राम पंचा-	"	"	
		ध्यायी, १२. ब्याहलौ,	"	"	
		१३ साखी	"	वृन्दावन मे प्राप्त ह० प्रति	
३०५.	माधुरीदास	१ दान माधुरी, २ मान-	"	मि० विनोद	
		माधुरी, ३ मान लीला, ४.	"	"	
		राधारमण विहारी माधुरी	"	"	
		५ वशीवट विलास माधुरी,	"	"	
		६ उत्कण्ठा माधुरी, ७.	"	"	
		वृन्दावन केलि माधुरी, ८.	"	"	
		वृन्दावन विहार माधुरी ।	"	"	
३०६	मुकुटदास	भक्त विरुदावली	१६८७ वि०	मि० विनोद	
३०७	मोहन कायस्थ	१ सनेह लीला,	१६८७ वि० लग०	"	
		२. स्वरोदय पवन विचार,	"	"	
		३ पवन विजय स्वर शास्त्र	"	"	

[1] ब्रजभारती पत्रिका सं० १९९९, अक ९, वर्ष २ के अनुसार योगवशिष्ट सार का रचनाकाल १७१४ वि० है। इस ग्रन्थ को छोडकर शेप ग्रन्थ आलोच्यकाल की रचनाएँ है। अत उन्ही दो को परिशिष्ट दो मे स्थान दिया जायगा।

क्र० सं० नाम कवि	ग्रंथ	रचनाकाल	आधार विशेष
३०८. कृष्ण कवि	नखशिख	१६८८ वि०	हिन्दी विद्यापीठ,आगरा विश्व विद्यालय की प्रति
३०९. भगवतदास द्विज	नासिकेतु गरुण पुराण	"	ना०प्र० १२वीं खोज रिपोर्ट
३१०. रतिभान	जैमिनि पुराण	"	" १४वीं "
३११. सुन्दरदास ग्वालियर	१ सुन्दरशृंगार,	१६८८ वि०ल०	ना०प्र० १३वीं खोज रिपोर्ट
	२. ध्रुव लीला, ३. सिंहासन बत्तीसी, ४. बारहमासी	१६८८ "	हि० साहित्य का साहित्य
३१२ लूणसागर जैन	अजनासुरी संवाद	१६८९ वि०	मि० विनोद
३१३ लालदास	१ अवध विलास,	१६९०-१७००	ना०प्र० १३वीं खोज रिपोर्ट
	२. बारहमासी	"	"
	३. विक्रम बिलास	"	राज० खोज रिपोर्ट भाग २
३१४. परशुराम ब्रजवासी	१ वैराग्य निर्णय	१६९० वि० लग०	मि० विनोद
	२ ऊषा चरित्र	१६८७ वि०	ना०प्र० १२वीं खोज रिपोर्ट
३१५ पुण्यरतन	यादवरास	१६९० वि० से पूर्व	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति
३१६. कृष्णदास गिरधर	रुक्मिणी ब्याहलो	१६९१ वि०ल०	ना० प्र० १५वीं खोज रिपोर्ट
३१७. सुमतिहंस	विनोद रास	१६९१ वि०	राज० भाषा और साहित्य
३१८. हरिचन्द	रागमाला	"	राज० खोज रिपोर्ट भाग २
३१९. तोष	१. सुधानिधि, २. विनय	१६९१ वि०लग०	मि० विनोद
	शतक, ३ नखशिख	"	"
३२०. चतुरदास	१ एकादश स्कन्ध भाषा	१६९२ वि० ल०	"
	२. गोपेश्वर अष्टक,	"	ना०प्र० १५वीं खोज रिपोर्ट
	३ कूर्माष्टक, ४. रामाष्टक	"	"
	५. सत्यनारायन अष्टक,	"	"
	६. सर्वेश्वरजी का अष्टक,	"	"
	७. गुरु अष्टक, ८ जनक नन्दिनी अष्टक,	"	"
	९ बृन्दावन अष्टक	"	"
३२१. मानसिंह	अश्वमेध पर्व	१६९२ वि०	मि० विनोद
३२२. कनककीर्ति	१ नेमिनाथ रास,	"	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति
	२. द्रौपदी चौपाई,	१६९३ वि०	"

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
३२३.	जटमल	१. प्रेमविलास,	१६६३ वि० लग०	राज० खोज रिपोर्ट भाग २
		२ गजल ग्रन्थ	"	
		३ गोराबादल की कथा	१६८० वि०	हिन्दी साहित्य का आलो० इति०
		४. बावनी	१६६१ वि० लग०	राज० खोज रिपोर्ट भाग ४
३२४.	त्रिविक्रमसेन	शालिहोत्र	१६६४ वि०	मि० विनोद
३२५	बलभद्र	वैद्य विद्या विनोद	१६६५ वि०	"
३२६.	सन्तदास	बाणी	१६६६ वि० से पूर्व	राज० भाषा और साहित्य
३२७	सदलवच्छ सदैवच्छ	सालिगवा रा दूहा	१६६७ वि०	मि० विनोद
३२८.	अज्ञात	"	—	ना०प्र० सभा काशी की प्रति
३२९	निधान	जसवन्त विलास	१६६८ वि०	मि० विनोद
३३०	सेवादास	जैमिनि पुराण	१७०० वि०	ना०प्र० १२वीं खोज रिपोर्ट
३३१	भुवाल	भगवत गीता	"	ना०प्र० खोज रिपोर्ट १९१७-१९
३३२.	कल्याणदास	गुण गोविन्द	"	राज० भाषा और साहित्य
३३३.	हरिनाम	रसोई लीला	"	राज० खोज रिपोर्ट भाग १
३३४.	गगासुत	भक्त माहात्म्य	"	ना०प्र० १२वीं खोज रिपोर्ट
३३५	कपूरचन्द	भाषा रामायण	"	मि० विनोद
३३६.	गोपालदास ब्रजवासी	१ मोह विवेक,	"	"
		२. परिचय स्वामी दादूजी की	"	"
३३७.	सभाचन्द	कलिचरित्र	"	"
३३८.	विनय सुन्दर	सुरसुन्दरी चरित (रास)	१७वीं शताब्दी	राज०पुरा० मन्दिर की प्रति
३३९.	माल मुनि	१. अंजना सुन्दरी रास	"	"
		२. वि० पंचदण्ड रास	"	राज० खोज रिपोर्ट भाग २
३४०	ब्रह्मानन्द	रसिक सुरती भास	"	राज० पुरा० मन्दिर की प्रति
३४१.	सहज सुन्दर	परदेशी रास	"	"
३४२.	विजयभद्र	कमलावती रास	"	"

क्र० सं०	नाम कवि	ग्रन्थ	रचनाकाल	आधार विशेष
३४३.	जिनराज सूरि	रावण मन्दोदरी संवाद	"	राज० खोज रिपोर्ट भाग ४
३४४	लालचन्द या लब्धोदय	पद्मिनी चरित्र	१७०० वि०[1]	हिन्दी साहित्य का इतिहास

[1] राजस्थान में प्राप्त हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग १ में वर्णित लब्धोदय कृत पद्मिनी चरित्र ग्रन्थ का रचनाकाल इस प्रकार है :—

तस आग्रह करि सवत सतरै सतोतरे। चैत्री पुन्यम शनिवार ॥
नवरस सहित सरस बन्ध रच्योरे। निज बुध नै अनुसार ॥६६॥
(पृष्ठ ५२)

इस प्रकार हम इसे १७वी शताब्दी की रचना नही मान सकते।

सहायक ग्रन्थों की सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

(अ) आधार ग्रन्थ

हस्तलिखित

१—अजना सुन्दरी भास—माल मुनि, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
२—अजना सुन्दरी सम्वाद—लूण सागर जैन, राज० पुरा० मन्दिर, जयपुर।
३—अगड़दत्त रास—हरचन्द, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
४—अमरतेज राजा धर्मबुद्धि मन्त्री रास—रतन विमल, राज० पुरा० मन्दिर, जयपुर।
५—अहमदी बारहमासी—अहमद, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
६—आणद सन्धि—श्रीसार, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
७—आदि वाणी (युगलशत)—श्री भट्टदेव, छोटी श्री जी कीकुंज, वृन्दावन।
८—आर्द्रकुमार धवल— कनकसोम, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
९—एकादश स्कंध भाषा— चतुरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१०—कवित्त— आलम, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
११—कबीर की परची—अनन्तदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१२—कबीर की वानी—कबीर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१३—कमलावती रास—विजयभद्र, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१४—करकन्डू चौपई—सहज सुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१५—करुणाभरण नाटक—लछीराम, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१६—कल्याण मन्दिर भाषा—बनारसीदास, ना० प्रचारिणी सभा, काशी।
१७—कलि चरित्र—बान कवि, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१८—कुंडलियां—अग्रदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१९—कुतुवशतक—अज्ञात, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
२०—केलिमाल—हरिदास स्वामी, छोटी श्री जी की कुंज, वृन्दावन।
२१—कोकशास्त्र—ताहिर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
२२—गग पदावली—गग, प० देवदत्त, मादाबाद, मथुरा।
२३—गजसिह कुमार कथा—मालदेव, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
२४—गणेश पुराण भाषा—मोतीलाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
२५—गुरु २४ लीला जनगोपाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

२६—गोपीसनेह बाराखड़ी—सन्तदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
२७—गोराबादल पद्मिनी चौपई—हेमरतन, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर
२८—चदनबाला चौपई—देपाल, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
२९—चउपरवी चौपई—समय प्रमोद, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
३०—छप्पय—अग्रदास, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
३१—जम्बू स्वामी की कथा—जिनदास, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
३२—जम्बू स्वामी रास—राजपाल, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
३३—जहाँगीर जस चन्द्रिका—केशवदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
३४—जोगचिंतावणी ग्रन्थ—पीपा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
३५—झूलना—बलराम, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
३६—ढोलामारू री चौपई—कुशललाभ, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
३७—दानशील तप भाव रास—समय सुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर
३८—द्वादश यश—चतुर्भुजदास, श्री किशोरीशरण जी 'अलि', वृन्दावन।
३९—द्रौपदी चौपई—कनक कीर्ति, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
४०—धनदत्त चौपई—समय सुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
४१—धना की परची—अनन्तदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
४२—धर्मदत्त चरित्र—दयासागर सूरि, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
४३—ध्यान मंजरी—अग्रदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
४४—ध्रुव चरित्र—जनगोपाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा ब्रज साहि मण्डल, मथुरा
४५—नखशिख—बलभद्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
४६—नखशिख—कृष्ण कवि, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
४७—नलदमयन्ती चौपई—समय सुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
४८—नलायनोद्धार—नयसुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
४९—नाटक समय सार—बनारसीदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
५०—नामदेव की परची—अनन्तदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
५१—नामदेव की वाणी—नामदेव, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
५२—नेमिनाथ के रेखते—अज्ञात, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
५३—नेमिनाथ रास—कनककीर्ति, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
५४—नेमिनाथ शलिरास—विनय सूरि, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
५५—पद—लालदास स्वामी, श्री किशोरीशरणजी अलि, वृन्दावन।
५६—पद—चतुर्भुजदास, (राधा वल्लभी), श्री किशोरीशरणजी अलि, वृन्दावन
५७—**प्रत्येक चार बुद्ध चौपई**—समय सुन्दर राज० पुरा० मन्दिर जयपुर

५८—परदेशी रास—सहजसुन्दर, राज० पुरा० मन्दिर, जयपुर।
५९—परशुराम सागर—परशुराम, छोटी श्री जी की कुंज, वृन्दावन।
६०—प्रह्लाद चरित्र—जनगोपाल, ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, तथा नागरी प्र
रिणी सभा, काशी
६१—पिंगल—चिन्तामणि, बाबा कृष्णदास कुसुमसरोवर वाले, मथुरा।
६२—प्रियमेलक चौपई—समयसुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
६३—पीपाजी की परची—अनन्तदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
६४—पीपा की वाणी—पीपा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
६५—पुरन्दर कुमार कथा—मालदेव, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
६६—पृथ्वीचन्द कुमार रास—गुणसागर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
६७—बरवै नायिका भेद—रहीम, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
६८—बलि चरित्र—लालदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
६९—बुद्धि सागर निर्वाण रास—दीपमुनि, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
७०—बानी—विट्ठलविपुल, छोटी श्री जी की कुंज, वृन्दावन।
७१—बानी—बिहारी बल्लभ, टट्टी सम्प्रदाय, वृन्दावन।
७२—बाराखड़ी—भीषजन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
७३—बाराखडी—सुन्दर कवि, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
७४—बारहमासी—लालदास बरेली वाले, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
७५—बिहारिनदास की वाणी—बिहारिनदास, छोटी श्री जी की कुंज, वृन्दावन
७६—बैताल पचीसी—मानिकठ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
७७—भक्तमाल—नाभादास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
७८—भगवत गीता—भुवाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
७९—भरथरी चरित्र—जनगोपाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
८०—भागवत दशम स्कन्ध—लालजी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
८१—भागवत दशम स्कन्ध—भूपति, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
८२—भागवत दशम स्कन्ध भाषा—लालचराम हलवाई, ना० प्रचा० सभा, काशी
८३—भागवत दशम स्कन्ध (श्रीधरी टीका)—अज्ञात, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर
जयपु
८४—मंगल—लालदास स्वामी, श्री किशोरीशरणजी 'अलि' वृन्दावन।
८५—मदननरिन्द चरित्र—दयासागर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
८६—मधु मालती की कथा—चतुर्भुजदास, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
८७—महा बानी—हरिव्यास देव, छोटी श्री जी की कुंज, वृन्दावन।
८८—महाभारत—धर्मदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

८९—महाभारत इतिहास सार—लालदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
९०—माधवानल काम कन्दला—आलम, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
९१—माधवानल काम कन्दला—कुशललाभ, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपु
९२—मुक्तिविलास—ताहर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
९३—मुनिपति चरित्र—हरिभद्र सूरि, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
९४—मोहमर्द राजा की कथा—जनगोपाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
९५—मोह बिबेक ग्रन्थ—अनन्तदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
९६—मृगावती चौपई—समयसुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
९७—यशोधर चरित्र—गौरवदास जैन, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
९८—यादवरास—पुण्यरतन, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
९९—योग सुधानिधि—लछीराम, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१००—रकाबंका की परची—अनन्तदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१०१—रतनकुमार चौपई—सहजसुन्दर जैन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१०२—रति बिनोद—अहमद, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१०३—रमैनी—कबीर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१०४—रसरतन—पुहकर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१०५—रसलीला—दामोदर स्वामी, श्री किशोरीशरण जी 'अलि', वृन्दावन।
१०६—रसविलास—बलभद्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१०७—रसिक सुरती भास—ब्रह्मानन्द, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१०८—रहस्य विलास—दामोदर स्वामी, श्री किशोरीशरण जी 'अलि', वृन्द
१०९—रामजस रसायन—मुनि केशराज, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर
११०—रामरक्षा—रामानन्द, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१११—रामरासो—माधोदास चारण, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
११२—रामायण महानाटक—प्राणचन्द चौहान, नागरी प्रचारिणी सभा, का
११३—रामाष्टक—अग्रदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
११४—रावण सम्वाद—लावण्य समय, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
११५—रास पंचाध्यायी—दामोदर स्वामी, श्री किशोरीशरण जी 'अलि', वृन्द
११६—रुक्मिणी मंगल—हीरामनि, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
११७—रैदास की परची—जनगोपाल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
११८—लालदास की बानी—लालदास स्वामी, श्री किशोरीशरण जी ' वृन्दावन।
११९—लीलावती चौपई—हेमरतन, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१२०—ब्याहलो—दामोदर स्वामी श्री किशोरीशरण जी अलि' वृन्दावन

१२१—वर्षोत्सव—हरिराय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१२२—वसतलीला—दामोदर स्वामी, श्री किशोरीशरण जी 'अलि', वृन्दावन
१२३—वाणी—तत्ववेता, श्री राधावल्लभ जी का मन्दिर।
१२४—वाणी - नागरीदास (बिहारिनदास के शिष्य), छोटी श्री जी की कु
वृन्दाव
१२५—वारव्रत कथा—अज्ञात, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१२६—विक्रमचरित प्रबन्ध—उदयभानु, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१२७—विक्रम पच दड—नरपति, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१२८—विक्रम वापर चरित—मुनि आनन्द, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर
१२९—विक्रम विलास—लाल कवि, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१३०—विद्याविलास रास—हीराणद, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१३१—वैद्य मनोत्सव—नैनमुख, ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा।
१३२—वैद्य विद्या विनोद—बलभद्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१३३—शत्रु जय रास—सकलचन्द, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१३४—शत्रु जय रास—समयसुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१३५—शालिभद्र चौपई—मतिसार, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१३६—शीलरक्षा रास—नयसुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१३७—शीलरास—अज्ञात, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१३८—श्रीपाल चरित्र—ज्ञानसागर जैन, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१३९—श्रीपाल रास—गुणरतन, राजस्थान पुरातत्व, मन्दिर, जयपुर।
१४०—श्री शीलरास—विजयदेव सूरि, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१४१—श्रेणिक रास—सोमविमल, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१४२—सदैवच्छ सावलिगा रा दूहा—अज्ञात, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
१४३—सदैवच्छ सावलिगा रा दूहा—सदैवच्छ, राज० पुरा० मन्दिर, जयपुर।
१४४—समय प्रबन्ध—नागरीदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१४५—समीधर स्वामी स्तवन—दुर्गादास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१४६—स्वगुरु प्रताप—दामोदर स्वामी, श्री किशोरीशरण जी 'अलि', वृन्दावन
१४७—साखी—दामोदार स्वामी, श्री किशोरीशरणजी 'अलि', वृन्दावन।
१४८—साखी—कबीर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१४९—सिंहासन बत्तीसी चरित चौपई—हीरकलश, राजस्थान पुरातत्व म
जय
१५०—सीताराम चौपई—समयसुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१५१—सुखमनी—गुरु अर्जुन नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

१५२—सुदामाचरित—हलधर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१५३—सुन्दर शृङ्गार—महाकवि सुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१५४—सुर सुन्दरी रास—विनय सुन्दर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१५५—सेउसमन की परची—अनन्तदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१५६—हँसराज बच्छराज रास—मानकवि, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१५७—हँसाउली—असाइत, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जयपुर।
१५८—हनुमान नाटक—हृदयराम, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१५९—हरिरस—ईसरदास बारहट, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१६०—हरिवंश पुराण : ढाल सागर—गुण सूरि जैन, राज०पुरा० मन्दिर, जयपुर।
१६१—हितजू का मंगल—चतुर्भुजदास (राधावल्लभी), श्री किशोरीशरण जी 'अलि', वृन्दावन।
१६२—ज्ञान चौतीसा—कबीर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१६३—ज्ञानतिलक—रामानन्द, नागरी प्रचारिणी सभी, काशी।
१६४—ज्ञानदीप—शेखनबी, श्री उदयशंकर जी शास्त्री, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
१६५—त्रिलोचन की परची—अनन्तदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

प्रकाशित

१—अनुराग सागर—कबीर, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग सन् १९२७ ई०।
२—अर्द्धकथानक—बनारसीदास, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय १९५७ ई०।
३—इश्क पचीसी—कादिर, प० उदयशंकर शास्त्री द्वारा ब्रजभारती (२०१४ वि०) मे प्रकाशित।
४—कविप्रिया—केशवदास, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
५—कबीर ग्रंथावली—श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, चतुर्थ संस्करण सं० २००८।
६—क्यामखा रासा—जान कवि, राजस्थान पुरातन ग्रंथ माला, ग्रथांक १३, जयपुर।
७—केशव ग्रंथावली—सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी प्रयाग सन् १९५४ ई०।
८—केसव पच रत्न—संकलन कर्त्ता लाला भगवानदीन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण सं० १९८६ वि०।
९—गंग के कवित्त—सम्पादक पुरोहित हरनारायण शर्मा, सम्वत् २००१ वि०।
१०—गरीबदास की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
११—गोरे बादल की कथा—जटमल, सम्पादक डा० एल० पी० टैसीटरी, एशियाटिक सोसाइटी बंगाल से प्रकाशित

१२—चित्रावली—उसमान, सम्पादक सत्यजीवन वर्मा, नेशनल प्रेस, इलाहाबाद।
१३—जगजीवन साहब की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
१४—जमाल दोहावली—महावीरसिंह गहलोत द्वारा पुस्तक भवन काशी से १९४५ ई० मे प्रकाशित।
१५—जमालमाला—पन्नालाल भैया द्वारा सम्पादित तथा साहित्य लहरी प्रेस बनारस से १९१५ ई० मे प्रकाशित।
१६—जायसी ग्रन्थावली - रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित, नागरी प्रचारिणी सभा काशी मे प्रकाशित।
१७—ढोलामारू रा दूहा—नरोत्तम स्वामी आदि द्वारा सम्पादित, नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित, १९९१ वि०
१८—तुलसी ग्रथावली— नागरी प्रचारिणी सभा काशी (३ भाग) तृतीय सस्करण २००४ वि०।
१९—दादूदयाल की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
२०—धरमदास की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
२१—नन्ददास ग्रन्थावली—उमाशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित (२ भाग) प्रयाग, प्रथम सस्करण, सन् १९४२ ई०।
२२—नलदमयंती रास—महीराज, बड़ौदा से प्रकाशित।
२३—पदावली—विद्यापति, रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी द्वारा सम्पादित लहेरिया सराय, पटना, द्वितीय सस्करण।
२४—ब्यालीस लीला—ध्रुवदास, राधावल्लभ जी का मन्दिर, वृन्दावन से प्रकाशित, स० २०१० वि०।
२५—बषना जी की बानी—मंगलदास द्वारा सम्पादित, जयपुर सम्वत् १९९३ वि०।
२६—बीजक—सम्पादक विचारदास, प्रकाशक रामनरायण इलाहाबाद, तृतीय सस्करण १९८३ वि०।
२७—बीसलदेव रासो—नरपति, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
२८—भक्त कवि व्यास जी—वासुदेव गोस्वामी, मथुरा, प्रथम सस्करण, स० २००९ वि०।
२९—भक्तमाल—नाभादास, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
३०—भ्रमर गीतसार—सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
३१—माधुरी वाणी—माधुरीदास, सम्पादक बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर। वाले, वृन्दावन।
३२—मीरा पदावली—सम्पादिका विष्णुकुमारी 'मंजु'।
३३—मीरा सुधासिन्धु—सम्पादक स्वामी आनन्द स्वरूप, मीरा प्रकाशन समिति भीलवाड़ा, स० २०१४ वि०।

३४—(मूल) गुसाईं चरित - बेनीमाधव दास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
३५—मैनामत—साधन, ग्रंथवीथिका, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्व-विद्यालय, आगरा।
३६—रज्जब जी की बाणी बम्बई, स० १९७५ वि०।
३७—रहीम रत्नावली—मयाशंकर जी याज्ञिक द्वारा सम्पादित।
३८—रामचन्द्रिका—केशवदास नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
३९—रैदास की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
४०—व्यास वाणी—वैष्णव महासभा वृन्दावन द्वारा प्रकाशित सन् १९३५ ई० (२ भाग)।
४१—वाणी—गदाधर भट्ट, सम्पादक बाबा कृष्णदास कुसुम सरोवर वाले, वृन्दावन, स० २००० वि०।
४२—वेलिक्रसन रुकमिनीरी—पृथ्वीराज राठौर, सम्पादक नरोत्तम स्वामी, आगरा से प्रकाशित, सन् १९५३ ई०।
४३—संत बानी-संग्रह—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
४४—सुदामा चरित—निरोत्तमदास
४५—सुन्दर ग्रंथावली—सम्पादक पुरोहित हरिनारायण शर्मा (२ भाग), राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता, स० १९९३ वि०।
४६—सूरसार—सूरदास (राधा-कृष्णदास - श्री वेंकटेश्वर प्रेस, काशी)
४७—(श्री) हितामृतसिन्धु—प्रकाशक महन्त द्वारिकादास जी, वृन्दावन, स० २००९ वि०।

(आ) सहायक ग्रंथ

हिन्दी

१—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि—डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्व-विद्यालय, २००७ वि०।
२—उत्तरी भारत की संत परम्परा - परशुराम चतुर्वेदी, प्रयाग, प्रथम संस्करण स० २००८ वि०।
३—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—अगरचन्द नाहटा, राजस्थान पुरातन ग्रंथ माला अन्तर्गत, जयपुर से प्रकाशित।
४—ऐतिहासिक राम संग्रह विद्याविजय—यशोविजय जैन ग्रंथमालाना व्यवस्थापक मण्डल, भावनगर (स० १९७७ वि०)।
५—कबीर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, चतुर्थ संस्करण, सन् १९५३ ई०।

६—काव्य के रूप—बाबू गुलाबराय, आत्माराम, दिल्ली, सन् १९५१ ई० ।

७—गुजराती साहित्य ना स्वरूपो—प्रो० मंजुलाल मजूमदार, बड़ौदा, सन् १९५४ ई०

८—गुरु ग्रंथ साहिब—भाई गुरदियाल सिंह, अमृतसर ।

९—गोरख बानी—डा० बड़थ्वाल द्वारा सम्पादित, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सम्वत् १९९९ वि० ।

१०—जैन गुर्जर कविओ—श्री देसाई द्वारा सम्पादित, जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स आफिस, बम्बई सन् १९२६ ई० ।

११—जैन साहित्य का इतिहास—नाथूराम प्रेमी

१२—तुलसीदास—डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रथम संस्करण, प्रयाग, १९४९ ई० ।

१३—नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, प्रयाग, सन् १९५० ई० ।

१४—परमात्म प्रकाश दोहा—योगीन्दु, श्री रामचन्द्र जैन-शास्त्रमाला, १० बम्बई सन् १९३० ई० ।

१५—पाहुड़ दोहा—मुनिरामसिंह, डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित, कारजा, स० १९९० वि० ।

१६—पुरातन प्रबन्ध संग्रह—सिंघी जैन ज्ञानपीठ, सम्पादक मुनिजिन विजय जी, बम्बई ।

१७—प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह—सम्पादक चीमनलाल दलाल, गायकवाडा ओरियंटल सिरीज न० सन् १९२० ई० ।

१८—मध्यकालीन साहित्य का लोकतान्त्रिक अध्ययन—डा० सत्येन्द्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।

१९ मिश्रबन्धु विनोद—मिश्रबन्धु, गंगा पुस्तक माला : प्रथम भाग तृतीय संस्करण स० १९८६ वि० तथा द्वितीय भाग, द्वितीय संस्करण स० १९८४ वि०

२०—योगसार दोहा—योगीन्दु, श्री रामचन्द्र जैन शास्त्रमाला, १० बम्बई, सन् १९३० ई० ।

२१—राजस्थान पिंगल साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया, उदयपुर, प्रथम संस्करण सन् १९५२ ई० ।

२२—राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया, प्रयाग, प्रथम संस्करण सं० २००६ वि० ।

२३—रीतिकाल की भूमिका और देव की कविता—डा० नगेन्द्र, दिल्ली, सन् १९४९ ई०

२४—रूपक रहस्य—डा० श्यामसुन्दरदास, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

२५—साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश—राजेन्द्र द्विवेदी प्रथम संस्करण ।

२६—साहित्यालोचन—डा० श्यामसुन्दरदास, प्रयाग, सन् १९३१ ई० ।
२७—सूफी काव्य संग्रह—परशुराम चतुर्वेदी, प्रयाग, सन् १९५१ ई० ।
२८—सूर की झांकी—डा० सत्येन्द्र, आगरा, प्रथम संस्करण १९५६ ई० ।
२९—सूरदास—ब्रजेश्वर वर्मा, प्रयाग, सन् १९५० ई० ।
३०—सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य—डा० शिवप्रसादसिंह, काशी, सन् १९५८ ई०
३१—सूर सौरभ—डा० मुंशीराम शर्मा, कानपुर, सन् १९४९ ई० ।
३२—शिवसिंह—सरोज—शिवसिंह सेंगर, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।
३३—हिन्दी काव्य-धारा—राहुल सांकृत्यायन, किताबमहल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् १९४५ ई० ।
३४—हिन्दी काव्य रूपों का उद्भव और विकास—डा० शकुन्तला दुबे, प्रथम संस्करण १९५८ ई०, काशी ।
३५—हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—भागीरथ मिश्र, लखनऊ, सं० २००५ ।
३६—हिन्दी विश्व कोश—नगेन्द्रनाथ वसु, विश्वकोश लैन. बाग बाजार, कलकत्ता, सं० १९३१ ।
३७—हिन्दी साहित्य—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, दिल्ली, सन् १९५२ ई० ।
३८—हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पटना, प्रथम संस्करण सन् १९५२ ई० ।
३९—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, सन् १९५४ ई० ।
४०—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, काशी, सातवाँ संस्करण, सम्वत् २००८ वि० ।
४१—हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी,
४२—हिन्दी साहित्य कोश—सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, काशी, प्रथम संस्करण, सं० २०१५ वि० ।
४३—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता—डा० बैनीप्रसाद,

संस्कृत

१—काव्य मीमांसा—राजशेखर, पटना १९५४ ई० ।
२—काव्यानुशासन—हेमचन्द्र, ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा ।
३—नाट्यदर्पण—रामचन्द्र, ओरियंटल इन्स्टीटयूट, बड़ौदा ।
४—नाट्य शास्त्र—भरत, गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज वाल्यूम २, ओरिएंटल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा ।
५ प्राकृत पैंगलम सम्पादक चन्द्रमोहन घोष

६—सन्देश रासक—अब्दुर्रहमान, सिंधी जैन सिरीज मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित, बम्बई।
७—साहित्य दर्पण—विश्वनाथ, सम्पादक डा० काणे, ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा।

अंग्रेजी ग्रन्थ

१—अकबर दी ग्रेट मुगल—स्मिथ, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
२—अलबरूनीज इण्डिया—ट्रान्सलेटेड बाई डा० एडवर्ड साचो, लन्दन १९१० ई०।
३—आईने अकबरी—अबुलफजल, रोयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल (थ्री वाल्यूम) बिबलथिका इण्डिका में प्रकाशित।
४—आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया—स्मिथ, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, सन् १९२० ई०।
५—आर्कोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया—बर्गस, जेम्स एण्ड भगवानलाल, बम्बई, १८८१ ई०।
६—इण्डियन आर्कीटेक्चर—हावेल, लन्दन १९१३ ई०।
७—इण्डियन पेन्टिंग—पर्सीब्राउन।
८—इण्डिया थ्रू दी एजेज—डा० जदुनाथ सरकार, तृतीय संस्करण, कलकत्ता।
९—इम्पीरियल गजेटियर—
१०—ए हिस्ट्री आफ इण्डिया—सर जार्ज डनबर, लन्दन, १९३९ ई०।
११—ए हैण्डबुक आफ इण्डियन आर्ट—हावेल, लन्दन, १९२० ई०।
१२—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया—एडीटर, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस।
१३—ट्रेविल्स आफ मार्कोपोलो—मूल, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९२५ ई०।
१४—ट्रेविल्स इन मुगल इम्पायर—बर्नियर, द्वितीय संशोधित संस्करण, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, १९१६ ई०।
१५—फ्रोम अकबर टू औरंगजेब—डब्लू एच० मूरलैण्ड, लन्दन, १९२३ ई०।
१६—बिबलिथिका इंण्डिका (एकलैक्शन आफ एनसियन्ट वर्क)—रायल ऐशियाटिक सोसाइटी, बंगाल।
१७—मुगल इम्पायर इन इण्डिया—एस० आर० शर्मा, बम्बई, १९३४ ई०।
१८—मुगल एडमिनिस्ट्रेशन—डा० जदुनाथ सरकार, कलकत्ता, १९५२ ई०।
१९—मैडीवल इण्डिया—डा० ईश्वरीप्रसाद, इण्डियन प्रेस, १९२८ ई०।
२०—मैडीवल इण्डिया—स्टेनली लैनपूल, लन्दन, १९१० ई०।
२१—सिंघी जैन सिरीज नं० ३३—सम्पादक मुनि जिनविजय, सिंघी जैन शास्त्र विद्यापीठ, बम्बई, सन् १९५३ ई०।
२२—हिस्ट्री आफ अफगान—डोर्न, लन्दन १८२९ ई० ट्रान्सलेशन आफ मखजान-ए अफगाना)

२३—हिस्ट्री आफ इण्डिया—हर्मकिन, लन्दन' १८५४ ई० (२ भाग) ।
२४—हिस्ट्री आफ इण्डिया—मसालिक, तृतीय सस्करण ।
२५—हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स—इलियट, लन्दन, १८६७ ई०

थीसिस

१—अपभ्रंश साहित्य—देवेन्द कुमार जैन (आगरा विश्वविद्यालय, आगरा) ।
२—मध्यकालीन साहित्य मे लोकवार्ता तत्व—डा० गौरीशकर 'सत्येन्द्र'

पत्र-पत्रिकाएँ

१—खोज विवरण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
२—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, (काशी) ।
३—ब्रजभारती (मथुरा) ।
४—भारतीय साहित्य (हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा) ।
५—राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज, चार भाग (उदयपुर) ।
६—विश्वभारती (शान्तिनिकेतन)
७—विशाल भारत (कलकत्ता) ।
८—सैनिक दीपावली अंक अक्टूबर सन् १९५२ ई० (आगरा)